श्रीशिव-शिवासंवादोपनिबद्धं

मेरुतन्त्रम्

हिन्दीभाष्यसमन्वितम्

शिवोपदिष्ट पूजा-पद्धतिसहित शैव-शाक्त-वैष्णव-गाणपत्य-
सौर-कार्त्तवीर्यादि मन्त्रों का दक्षिण-वाममार्गानुसारि
साङ्गोपाङ्ग विवेचन एवं कार्त्तवीर्य-दीपदानविधि-
प्रतिपादक सर्वातिशायी तान्त्रिक ग्रन्थ

हिन्दीभाष्यकारः
श्री कपिलदेव नारायण 'स्वरूपावस्थित'

पुस्तक परिचय

महाकालेनयत्प्रोक्तम्पञ्चमीमुक्तिसाधनम्।
सर्वेषांम्मेरुतां यातन्तत्तन्त्रं मेरुसञ्ज्ञितम्॥

जो यह महाकाल द्वारा कहा गया पञ्चमीमुक्ति साधन जहाँ मध्यमणि की तरह गुम्फित है वह तन्त्र मेरुतन्त्र के नाम से जाना जाता है।

कलियुग में मनुष्य अल्पायु होता है। वह केवल शिश्नोदर परायण रहता है ऐसे में मृत्यु के उपरांत वह प्रेत योनि में ही भटकता रहता है। ऐसे कलियुग के पशुओं के उत्थान के लिए भगवान महाकाल ने मुक्ति के साधनों को तन्त्र के मध्यमणि या मेरु की तरह गुम्फित कर दिया है। भगवान शिव के द्वारा भगवती गौरी व देवों को कैलाश पर्वत पार यह उपदिष्ट है। इसमें तंत्र साधना के समस्त पक्षों का सम्यक् वर्णन है।

सामान्यतया दक्षिणमार्गीय ग्रन्थ वाममार्गीय ग्रन्थों की व वाममार्गीय ग्रन्थ दक्षिणमार्गीय ग्रन्थों की निंदा करते नजर आते हैं, लेकिन यहाँ ऐसा नहीं है। यहाँ दक्षिणमार्ग व वाममार्ग दोनों को बराबर महत्त्व देते हुए दोनों साधना पक्षों का वर्णन किया है। यह इस ग्रन्थ के महाकाल प्रोक्त होने का प्रमाण है।

इस ग्रन्थ में दीक्षा प्रकरण से प्रारंभ कर मंत्र पुरश्चरण, देवता पूजन व प्रयोगों का वर्णन किया गया है। ग्रन्थ में दशमहाविद्या साधना, अन्य भगवती के स्वरूपों की साधना, शिव, विष्णु, सूर्य व गणेश साधना के साथ-साथ नवग्रह साधना का विधान है। इन सब विषयों का एक स्थान पर साधकों को हस्तामलकवत् प्राप्त होना परमेश्वर की कृपा है। आशा है कि साधक इस महद्ग्रन्थ से लाभान्वित हो इष्टाराध्य की साधना करेंगे।

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
525

श्रीशिव-शिवासंवादोपनिबद्धं

मेरुतन्त्रम्

भाषाभाष्यसमन्वितम्

चतुर्थो भागः ✶ 23-26 प्रकाशः

भाषाभाष्यकारः
स्वरूपावस्थित
श्री कपिलदेव नारायण

संस्कर्त्ता
आचार्य श्रीनिवास शर्मा

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

मेरुतन्त्रम् (चतुर्थ भाग)

पृष्ठ : 18+456+2

ISBN : 978-93-89665-15-4 (Set)

प्रकाशक

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन

पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001

दूरभाष : +91 542-2335263; 2335264

email : chaukhambasurbharatiprakashan@gmail.com

website : www.chaukhamba.co.in

प्रथम संस्करण 2021 ई०

मूल्य : ₹ 5000.00 (1-5 भाग सम्पूर्ण)

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)

गली नं. 21-ए, अंसारी रोड

दरियागंज, नई दिल्ली 110002

दूरभाष : +91 11-23286537

email : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

●

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर

पो. बा. नं. 2113, दिल्ली 110007

●

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ौदा भवन के पीछे)

पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

प्रस्तावना

परमकारुणिक परमेश्वर के अपार संसार में विद्यमान अनेक दुःख-परम्पराओं से मानवों की रक्षा के लिये तत्तत् ऋषियों द्वारा षडङ्ग वेद, दर्शन, आयुर्वेद, उपवेद, पुराण आदि का आविर्भाव किया गया। उनमें पारलौकिक एवं इहलौकिक फल-साधक प्रभूत दुर्लभ अनुष्ठानों के होते हुये भी अल्पायु लोगों के लिये वे शीघ्र सिद्धि प्रदान करने वाले नहीं थे; इसीलिये जगत् के कल्याण की कामना से जगदम्बा उमा के द्वारा अल्पायु जनों के कल्याणार्थ चिन्तित होकर जिज्ञासा प्रकट किये जाने पर भगवान् शंकर ने सर्वोत्तम तन्त्रशास्त्र का प्रतिपादन किया। फिर भी 'तन्त्राणां गहनो गतिः' इस उक्ति के अनुसार तन्त्र अपने-आपमें अतिशय गूढ़ अर्थ को समाहित रखने वाला शास्त्र है। 'तन्त्र' शब्द का शाब्दिक अर्थ है—तनोति तन्यते वेति तन्त्रम्। शास्त्रों में तन्त्र का लक्षण इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च मन्त्रनिर्णय एव च।
देवतानाञ्च संस्थानं तीर्थानाञ्चैव वर्णनम्॥
तथैवाश्रमधर्मञ्च विप्रसंस्थानमेव च।
संस्थानञ्चैव भूतानां यन्त्राणाञ्चैव निर्णयः॥
उत्पत्तिर्विबुधानाञ्च तरूणां कल्पसंज्ञितम्।
संस्थानं ज्योतिषाञ्चैव पुराणस्थानमेव च॥
कोशस्य कथनञ्चैव व्रतानां परिभाषणम्।
शौचाशौचस्य चाख्यानं स्त्रीपुंसोश्चैव लक्षणम्॥
राजधर्मो दानधर्मो युगधर्मस्तथैव च।
व्यवहारः कथ्यते च तथा चाध्यात्मवर्णनम्॥
इत्यादिलक्षणैर्युक्तं तन्त्रमित्यभिधीयते।

अर्थात् जिसमें सर्ग, प्रतिसर्ग, मन्त्रनिर्णय, देवताओं का संस्थान, तीर्थ, आश्रम धर्म, विप्रसंस्थान, भूतसंस्थान, यन्त्रनिर्णय, देवताओं की उत्पत्ति, वृक्षों की कल्प-संज्ञात्व, ज्योतिषसंस्थान, पुराणसंस्थान, कोशकथन, व्रतकथन, शौच-अशौच, स्त्री-पुरुष-लक्षण, राजधर्म, दानधर्म, युगधर्म, व्यवहार, अध्यात्म-वर्णन इत्यादि विषयों का विवेचन रहता है, वह शास्त्र 'तन्त्र' शब्द से अभिहित होता है। मनुष्य की समस्त दैवी साधनायें तन्त्र पर ही अवलम्बित होती हैं; यतः समस्त साधनाओं के गूढ़ रहस्य तन्त्रशास्त्र में ही प्रस्फुटित होते हैं। इसमें स्थूलतम साधन-प्रणाली से लेकर अतिगुह्य मन्त्रशास्त्र एवं अतिगुह्यतर योग-साधनादि के समस्त

क्रियाकौशलों का सांगोपांग विवेचन रहता है। यद्यपि तन्त्रों में समाहित दार्शनिक तत्त्व भी अतीव सूक्ष्म हैं, तथापि वे प्रचलित दर्शनशास्त्रों के समान भाषाजाल से जटिल भाष्यों, टीकाओं, नानाविध मत-मतान्तरों एवं विविध वादों द्वारा दुर्बोध्य नहीं हैं; फिर भी साम्प्रदायिक साधनसंकेतज्ञान से सर्वथा शून्य जनों के लिये तन्त्रोक्त साधनजाल में प्रविष्ट होना कथमपि सम्भव नहीं है। जिस प्रकार मनुष्य की प्रकृति सात्त्विक, राजसिक एवं तामसिक-भेद से तीन प्रकार की होती है, उसी प्रकार यह तन्त्रशास्त्र भी सात्त्विक, राजसिक, तामसिक भेद से त्रिविध होता है। साथ ही इसकी साधनप्रणाली भी तदनुरूप गुणभेद से तीन प्रकार की व्याख्यात होती है। फलितार्थ यह है कि जो साधक जिस प्रकृति से ओत-प्रोत होता है एवं जैसी उसकी रुचि होती है, तदनुरूप साधनपथ को अंगीकार करके ही वह अपने इस नश्वर जीवन को सार्थक बनाने में समर्थ होता है। जिस प्रकार देवस्वरूप अथवा दैवी गुणयुक्त जीवों की जननीरूपा शक्ति है, उसी प्रकार असुर गुणयुक्त अथवा असुरों की भी जननीरूपा शक्ति ही है। यही कारण है कि देवता एवं असुर दोनों ही उसकी उपासना में प्रवृत्त रहते हैं, दोनों ही अपने-अपने स्वभावानुरूप उपासना की प्रणाली का अवलम्ब ग्रहण करते हैं और साधना की प्रकृति के अनुसार ही साधनफल को अवाप्त करते हैं। यही कारण है कि शास्त्र में दोनों ही साधन-प्रणालियाँ विवेचित रहती हैं।

वेदों का अनुसरण करते हुये साधनपथ पर अग्रसर होने वाले साधक साधारणत: पाँच उपासक-सम्प्रदायों में विभक्त हैं—गाणपत्य, सौर, शाक्त, वैष्णव एवं शैव। लोक की अज्ञानतावश ये लोग अलग-अलग देवताओं के उपासक कहे जाते हैं अथवा अपने को देवविशेष का उपासक उद्घोषित करते हैं। वस्तुत: वे सभी एक ही विश्वतोमुख भगवान् की अलग-अलग पाँच भावों में उपासना करने वाले होते हैं। स्पष्ट है कि समस्त देव-देवियों में भेदकल्पना जीव की अल्पज्ञता का ही द्योतक है। पद्मपुराण में स्वयं श्रीभगवान् ने कहा भी है—

सौराश्च शैवगाणेशा वैष्णवाः शक्तिपूजकाः।
मामेव ते प्रपद्यन्ते वर्षाम्भः सागरं यथा।।
एकोऽहं पञ्चधा भिन्नः क्रीडार्थं भुवनेऽखिले।

साधकश्रेष्ठ पुष्पदन्त भी कहते हैं कि वेद, सांख्य, योग, पाशुपत, वैष्णवमत-प्रभृति भिन्न-भिन्न भावों में तुम्हारी ही उपासना करते हैं। मनुष्य अपनी-अपनी रुचि के अनुसार कोई सरल, कोई वक्र, नानाविध मार्गों का अवलम्बन कर एकमात्र तुम्हें ही लक्ष्य कर चलते हैं। जिस प्रकार नाना नदियों का पथ विभिन्न होते हुये भी सब एक ही समुद्र में आकर गिरती हैं, उसी प्रकार जिस-किसी मार्ग से होकर जायँ, अन्त में सब कोई भगवान् के चरणतल में ही पहुँचते हैं—

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

यही कारण है कि जीव को उपदिष्ट करते हुये शास्त्र भी कहते हैं कि—

यो ब्रह्मा स हरिः प्रोक्तो यो हरिः स महेश्वरः।
या काली सैव कृष्णः स्याद्यः कृष्णः सैव कालिका॥
देवदेवीं समुद्दिश्य न कुर्यादन्तरं क्वचित्।
तत्तद्भेदो न मन्तव्यः शिवशक्तिमयं जगत्॥

अर्थात् जो ब्रह्म हैं, वही हरि हैं और जो हरि हैं, वही महेश्वर हैं। जो काली हैं, वही कृष्ण हैं और जो कृष्ण हैं, वही काली हैं। देव-देवी को लक्ष्य कर कभी भी अपने मन में भेद उत्पन्न होने देना उचित नहीं है। देवता के चाहे कितने भी नाम और रूप हों, सभी एक ही हैं और यह जगत् भी शिव-शक्तिमय ही है। इसी अभिप्राय से श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कन्ध में भी कहा गया है कि—

त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम्।
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति॥

इस प्रकार स्पष्ट है कि पञ्चदेवता उस एक ही विश्वतोमुख भगवान् के स्फुरणमात्र हैं, फिर भी मनुष्य अपनी इच्छानुसार अपने उपास्य देवता का ग्रहण नहीं कर सकता; करना उचित भी नहीं है। शास्त्रविधि के अनुसार ही समस्त कार्य होने आवश्यक होते हैं; अतः सद्गुरु ही जीव की प्रकृति का विचार करके उसके उपास्य देवता को निर्दिष्ट करने में समर्थ होता है। भिन्न-भिन्न मनुष्यों की जिस प्रकार भिन्न-भिन्न रसों में आसक्ति होती है, उसी प्रकार जीव की भी प्राक्तन कर्म और स्वभाव के अनुसार भिन्न-भिन्न देवताओं में आसक्ति होती है; साथ ही अपने-अपने स्वभाव के अनुसार ही किसी जीव की पुरुषदेवता के प्रति तो किसी जीव की स्त्री-देवता के प्रति तथा उन देवताओं के विविध वर्णों के प्रति स्वाभाविक प्रवृत्ति होती हैं। इन समस्त विषयों का किञ्चित् भी विचार न करके मात्र देवता का नाम-जप एवं रूप-ध्यान करने वाले साधक को शुभ फल की कथमपि प्राप्ति नहीं होती। यही कारण है कि तन्त्रशास्त्र में इस विषय में प्रभूत विचारों और सिद्धान्तों का वर्णन समुपलब्ध होता है।

तन्त्रमतानुसार देवी की उपासना ही एकमात्र शक्ति की उपासना नहीं है। शक्ति के उपासक गाणपत्य, सौर, वैष्णव, शैव और शाक्त सभी हैं। उनके अनुसार पुरुष निर्गुण है और निर्गुण की उपासना नहीं होती। उपास्य देवता के पुरुष होने

पर भी वास्तव में वहाँ उसकी शक्ति की ही उपासना होती है। शक्ति ही हमारे ज्ञान का विषय होती है। शक्तिमान अथवा पुरुष तो ज्ञानातीत सत्तामात्र है; अत: वह किसी भी समय किसी के भी बोध का विषय नहीं होता। वेद एवं तन्त्र में ब्रह्म को सच्चिदानन्द-स्वरूप कहा गया है। इस सच्चिदानन्द में सत् अंश पुरुष अथवा निर्गुण भाव तथा चित् एवं आनन्द अंश गुणयुक्त भाव अर्थात् प्रकृति है और इसी प्रकृति के द्वारा हमें पुरुष का परिचय प्राप्त होता है।

पुरुष और प्रकृति का विचारक ही सांख्य शास्त्र है। यहाँ दु:ख के आत्यन्तिक विनाश को ही मुक्ति कहा गया है। सुख-दु:ख आदि बुद्धि आदि के ही स्वभाव हैं और स्वभाव कथमपि नष्ट नहीं हो सकता। अत: बुद्धि के अतिरिक्त किसी सत्ता को स्वीकार न करने से दु:ख आदि से मुक्तिलाभ असम्भव है; यही कारण है कि बुद्धि के अतिरिक्त सुख-दु:खादि से विरहित एक अतिरिक्त वस्तु अथवा आत्मा को अंगीकार करना पड़ता है और वह आत्मा ही सुख-दु:खादि से रहित निर्गुण पुरुष है। बुद्धि आदि के सुख-दु:खादि धर्म पुरुष में आरोपित होते हैं। इस आरोपित सुख-दु:खादि धर्म के अपगत होने पर ही जीव को मुक्ति-लाभ होता है। बुद्ध्यादि स्वयं में अचेतन पदार्थ हैं और चेतन के सान्निध्य में आने पर ही इनकी प्रवृत्ति देखी जाती है। बुद्धि आदि समस्त जड़ पदार्थ भोग्य पदार्थ हैं; परन्तु भोक्ता के बिना भोग्य सिद्ध नहीं होता। भोग्य पदार्थ का मात्र अनुभव होता है और जो अनुभव करता है या भोग करता है, वही पुरुष है।

सांख्यमत से पुरुष के संयोग द्वारा अचेतन बुद्धि आदि चेतन के समान हो जाते हैं तथा बुद्धि आदि के संयोग से अकर्ता पुरुष कर्ता के समान हो जाता है। सांख्य के पुरुष एवं प्रकृति पारस्परिक साहाय्य के विना संसारी रचना में स्वयं कथमपि समर्थ नहीं होते; किन्तु इसमें भगवदिच्छा का भी कोई प्रयोजन नहीं होता। लेकिन यह सांख्य-सिद्धान्त तन्त्र, उपनिषत् अथवा पुराण-सम्मत नहीं है। गीता के अनुसार भगवान् पुरुषोत्तम ही चरम तत्त्व हैं तथा प्रकृति एवं पुरुष इनकी शक्तिमात्र है। तन्त्रोक्त प्रकृति सांख्योक्त प्रकृति के समान जड़ नहीं है; अपितु वह पूर्ण चैतन्यमयी है। तन्त्रमत से शिव साक्षात् परब्रह्म हैं; न कि जाग्रदवस्थाभिमानी, स्वप्नावस्थाभिमानी एवं सुषुप्त्यवस्थाभिमानी पुरुषविशेष। उनके दो विभाव हैं— सगुण एवं निर्गुण। माया से उपहित परब्रह्म ही सगुण है और माया से अनुपहित होने पर वही निर्गुण कहलाता है। निर्गुण ब्रह्म के सगुण रूप में आने पर ही उसकी कृपा समझ में आती है, उसकी प्रसन्नता का ज्ञान होता है। इसीलिये शास्त्रों में गुणमयी ब्रह्ममूर्ति की उपासना का आदेश है। यह मूर्ति किसी के द्वारा कल्पित नहीं है; अपितु साधकों के कल्याण के लिये ब्रह्म स्वयमेव अपनी रूपकल्पना करता है।

यही अरूप का रूप है और रूप होने पर भी वह शुद्ध चिन्मात्र है। सगुण भाव में शक्ति सुप्रकट रहती है और निर्गुण अवस्था में ब्रह्मशक्ति ब्रह्म में तल्लीन रहती है।

प्रकृति के साथ ब्रह्म का अविनाभाव सम्बन्ध है अर्थात् प्रकृति के विना ब्रह्म नहीं रहता और ब्रह्म के विना प्रकृति नहीं रहती। तिल में तेल के समान प्रकृति ब्रह्म में सदा अनुलिप्त, अभेद्य सम्बन्ध से रहती है। यह प्रकृति जब उसमें तल्लीन रहती है तब वह ब्रह्म निर्गुण कहलाता है। तब वह केवल चिन्मात्र, मन-बुद्धि से अतीत एवं समाधि से बोधगम्य होता है। प्रकृति जब उसमें जागृत हो जाती है तब वह केवल बोधमात्र या शून्यमात्र नहीं रह पाता। तब वह जड़ातीत होते हुये भी जड़मध्य में आकर प्रकाशित होता है। इस प्रकटभाव को ही भगवत्कृपा या अनुग्रहभाव कहा जाता है। उस समय मानों चैतन्य और कर्तृत्व दोनों ही उसमें एक साथ दिखाई पड़ते हैं और इसीलिये कहीं-कहीं निर्गुण ब्रह्म को केवल चैतन्यमात्र कहा गया है एवं इसके कर्तृत्व-भोक्तृत्व को अस्वीकार किया गया है; परन्तु पुरुष प्रकृति से समन्वित होने पर ही सगुण ब्रह्म के नाम से अभिहित होता है। उस समय उसमें चैतन्य और कर्तृत्व दोनों वर्तमान रहते हैं; किन्तु इस अवस्था का अभाव होने पर पुन: उसका ईश्वरत्व नहीं रह जाता। ईश्वरत्व के स्थायी भाव में प्रकृति-पुरुषयुक्त भाव ही अनादि है—यही तन्त्र स्वीकार करता है।

तत्र में आध्यात्मिक मार्ग के उपायरूप से चार प्रकार के मार्गों का उल्लेख किया गया है—पश्वाचार, वीराचार, दिव्याचार एवं कौलाचार। इनमें वेदाचार, वैष्णवाचार एवं शैवाचार में उपदिष्ट आचार का अवलम्बन कर जो साधना की जाती है, वही पश्वाचार होता है। वीर-साधन के विषय में पञ्चतत्त्वों को अपरिहार्य बतलाया गया है; लेकिन कलिकाल के मनुष्यों के लोभी एवं शिश्नोदर-परायण होने के कारण पञ्चतत्त्वों के प्रति उनकी अपरिहार्य आसक्ति को देखते हुये उनके द्वारा साधना सम्भव ही नहीं है। धीर व्यक्ति बार-बार विषय-सेवन करते हुये भी मुकुन्दपदारविन्द से पृथक् नहीं होते। वह हजारो कर्मों में लगे रहने पर भी मुख्य लक्ष्य को कभी विस्मृत नहीं करते। जो साधक संसार के समस्त कर्मों में लिप्त रहते हुये भी गोविन्द को कभी नहीं भूलते, वे ही यथार्थ धीर होते हैं और वे धीर ही यथार्थ वीर साधक होते हैं। वे वीर साधक जिस प्रकार अपने मस्तक पर अग्नि रखकर दोनों हाथों में तलवार लेकर अपने विविध रूप से अंग-सञ्चालन के द्वारा खेल दिखलाते हैं, उसी प्रकार तन्त्रोक्त वीर साधक भी विमुग्धकारिणी वस्तु लेकर साधना करते हैं; फिर भी वे वस्तुयें कभी-भी उन्हें लक्ष्यभ्रष्ट नहीं करतीं। दिव्य भाव के साधक वीरभाव की अपेक्षा अधिक उच्चावस्था-सम्पन्न पुरुष होते हैं, उनको नीचा दिखला सकने की शक्ति किसी सांसारिक वस्तु में नहीं होती। दिव्य भावापन्न

साधक नरदेव होते हैं। वे निरन्तर सन्तोषी, द्वन्द्वसहिष्णु, रागद्वेष-विवर्जित, क्षमाशील एवं समदर्शी होते हैं। वीरसाधकों के समान उनको अपनी असाधारण शक्ति के प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं रहती। उनका हृदय सर्वदा प्रशान्त रहता है, उसमें लेशमात्र भी उद्वेग या आशंका नहीं रहती।

कौलाचार अत्यन्त ही जटिल विषय है; परन्तु तन्त्र में इसकी अत्यधिक प्रशंसा की गई है। इसकी साधना वीराचार के ही समान होतीं है; किन्तु इसमें वीरता प्रदर्शित करने की अपेक्षा वीर बनने की साधना पर ही विशेष लक्ष्य रखा जाता है। कुलाचार में भी पञ्चतत्त्वों का व्यवहार प्रचलित तो अवश्य है; परन्तु वह मत्स्य-मांसासक्त व्यक्ति को संयमपथ में लाने की एक चेष्टामात्र है। जो साधनहीन पुरुष पञ्च मकारों में निमग्न हैं, उनके उस घोर नशे को उतारने के लिये, उन्हें और भी उच्चतर दिव्य मद का मार्ग दिखलाने के लिये जीवों के प्रति भगवान् सदाशिव की अद्भुत करुणा इस साधना में प्रकाशित होती है। कुलाचार के अनुवर्ती होने पर बुद्धि शीघ्र ही निर्मल हो जाती है तथा बुद्धि की निर्मलता से जगज्जननी आद्या के चरणकमल में स्थिर बुद्धि उत्पन्न होती है। स्पष्ट है कि बुद्धि को निर्मल और ब्रह्ममुखी बनाने के लिये ही भोग के द्वारा मोक्ष का द्वार खोलना इस साधना का उद्देश्य है। भगवान् ने इस जगत् की प्रत्येक वस्तु को इस कुशलता से बनाया है कि उनके व्यवहार का यथार्थ ज्ञान होने से उनसे अमृत की प्राप्ति हो सकती है और व्यवहारदोष से उन्हीं से विष भी उत्पन्न हो सकता है। कुलाचार जीवों के भवबन्धन को नष्ट करने की ही चेष्टा करता है। जीव के मद्यपायी होने अथवा लम्पट बनाने के उद्देश्य से शास्त्रविधि की रचना नहीं हुई है। स्त्री के द्वारा कुलाचार का साधन होता है; फिर भी उस स्त्री को भोग की वस्तु नहीं समझा जाता। उसे साक्षात् इष्टदेवी-स्वरूपिणी समझे बिना कोई भी मनुष्य तन्त्रोक्त साधना में सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता। चण्डीस्तव में कहा भी है—

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत् का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः।

स्पष्ट है कि तन्त्र पञ्चमकारों को साधारण दृष्टि से नहीं देखता; अपितु बुद्धि की मलिनता के कारण हम स्वयं तन्त्रों को पवित्रभाव से नहीं देख सकते। तन्त्रोक्त साधना में अतिशीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है। जो सिद्धिलाभ के लिये समुत्सुक रहते हैं, वे ही तन्त्रोक्त प्रणाली से साधन करने में अग्रसर हो सकते हैं; लेकिन जिस प्रकार थोड़े दिनों में ही इससे साधनसिद्धि प्राप्त हो जाती है, उसी प्रकार इसमें उसी परिमाण में साधना की उत्कटता भी अत्यधिक होती है। तन्त्रोक्त साधना के स्थान और काल के विषय में विचार करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह जीव के

साधारण भाव में स्थित चित्त के द्वारा हो ही नहीं सकती। सर्वप्रथम तो साधना का स्थान ही इतना भयंकर बताया गया है कि वहाँ दिन में भी एकाकी जाने में भय होता है। विखरे हुये नरकंकाल, नरमुण्ड एवं विच्छिन्न कंकालराशि से समन्वित, दुर्गन्ध से परिपूर्ण एवं शृगालों के भयोत्पादक रुदन अथवा चिल्लाहट वाले निर्जन श्मशानभूमि में अमावास्या के घोर अन्धकार में मृत शरीर के वक्षःस्थल पर आसीन होने की कल्पना से ही सामान्य मनुष्य जब अचेत होने की स्थिति में पहुँच जाता है, तो फिर वहाँ पर बैठकर साधना करना सम्भव है अथवा नहीं, यह स्वयं विचारणीय है। स्पष्ट है कि जिनका इस मार्ग में अनुराग नहीं है, जिन्हें उक्त वस्तुओं से यथेष्ट घृणा है, उनके लिये यह मार्ग कदापि श्रेयस्कर नहीं है। जीव के रुचिभेद से भिन्न-भिन्न भावमय उपास्य देवता और उनकी साधनप्रणाली में भेद होते हुये भी चाहे जिस मार्ग का अवलम्ब ग्रहण न किया जाय, साधक के लिये लक्ष्य स्थान पर पहुँचने में कोई असुविधा नहीं होती तथा समस्त साधनाओं के चरम लक्ष्यभूत भगवान् भी पृथक्-पृथक् नहीं होते। अतएव साधना की प्रणाली चाहे जो भी हो, भगवत्प्राप्ति के विषय में कोई वैलक्षण्य नहीं घटता। पद्मपुराण में कहा भी है—

सौराश्च शैवगाणेशाः वैष्णवाः शक्तिपूजकाः।
मामेव ते प्रपद्यन्ते वर्षाम्भः सागरं यथा॥

तन्त्र में साधक के बाह्य भाव का उल्लेख करके उसके अन्तर्भाव को जागृत करने के लिये संकेत किया गया है। महादेव पार्वती से कहते हैं कि हे प्रिये! तेज ही आद्य तत्त्व, पवन द्वितीय तत्त्व, जल तृतीय तत्त्व, पृथिवी चतुर्थ तत्त्व एवं जगदाधार आकाश पञ्चम तत्त्व है। हे कुलेश्वरि! कुलधर्म के आचार तथा पञ्चतत्त्व जिस साधक को इस प्रकार विज्ञात हैं, वह निश्चय ही जीवन्मुक्त है; इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिये—

आद्यतत्त्वं विद्धि तेजो द्वितीयं पवनं प्रिये।
अपस्तृतीयं जानीहि चतुर्थं पृथिवी शिवे॥
पञ्चमं जगदाधारं वियद्विद्धि वरानने।
इत्थं ज्ञात्वा कुलेशानि कुलं तत्त्वानि पञ्च च॥
आचारं कुलधर्मस्य जीवन्मुक्तो भवेन्नरः।

तन्त्रों में कुल का स्वरूप इस प्रकार परिभाषित किया गया है—

न कुलं कुलमित्याहुः कुलं ब्रह्म सनातनम्।

स्पष्ट है कि तन्त्रशास्त्र में 'कुल' शब्द से वंशपरम्परा अभिप्रेत नहीं है; अपितु सनातन ब्रह्म ही 'कुल' शब्द-वाच्य है। इस ब्रह्म को वास्तविक रूप से जानकर जो पुरुष मोहशून्य अथवा निर्विकार हो सकते हैं; वे ही कुलतत्त्वज्ञ

कहलाने के अधिकारी होते हैं। जो इस साधना के साधक हैं, वे ही कुलसाधक अथवा कौल कहलाते हैं। इस प्रकार तन्त्र का कुलतत्त्व कोई सहज बात नहीं है, न ही कौल बनना कोई सामान्य बात है। तन्त्र में कहा भी है—

कुलं कुण्डलिनी शक्तिरकुलं तु महेश्वरः।

अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति ही 'कुल' शब्दगम्य है और महेश्वर ही 'अकुल' शब्द से अभिप्रेत हैं। ध्यातव्य है कि कुण्डलिनी तत्त्व का ज्ञान हो जाने पर साधक ब्रह्मज्ञ हो जाता है और यही तन्त्रोक्त साधना का मर्मस्थान है। कुण्डलिनी ही जीवतत्त्व या मुख्य प्राण है। यही यथार्थतः अध्यात्म या परा प्रकृति है तथा जगत् को यही धारण करती है। योगी लोग इसी को प्राणशक्ति कहते हैं—

प्राणो हि भगवानीशः प्राणो विष्णुः पितामहः।
प्राणेन धार्यते लोकः सर्वं प्राणमयं जगत्॥

अर्थात् प्राण ही ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मक है, प्राण ही जगत् को धारण करने वाला है। समस्त जगत् ही प्राणमय है। जो महाशक्ति ब्रह्मरूप से विकसित होकर स्थूल से स्थूलतर जगदादि रूप में परिणत होती है, वह विश्व की मूल या आदि शक्ति बीज ही प्राण या कुण्डलिनी है। राधा के वक्षःस्थल पर स्थित पुरुष ही श्रीकृष्ण अथवा पुरुषोत्तम हैं। श्रीकृष्ण को जानने के लिये सर्वप्रथम राधा को जानना आवश्यक है। वैष्णवों का कथन है कि श्रीकृष्ण को प्राप्त करने के लिये राधिका के अनुगत होकर भजन करना होगा, यही परम सत्य है। योगी एवं तन्त्रोक्त उपासक भी यही कहते हैं कि कुण्डलिनी ही चैतन्य शक्ति है और उसकी कृपा के विना कोई भी शुद्ध चैतन्य या निर्गुण ब्रह्म को नहीं जान सकता।

तन्त्र के छः प्रयोगों के साधन में हमारी मनोवृत्ति कैसी रहती है, इसका कतिपय सांकेतिक शब्दों द्वारा भली-भाँति निदर्शन होता है। वे शब्द हैं—नमः, स्वाहा, वषट्, वौषट्, हुम् और फट्। अन्तःकरण की शान्त अवस्था में 'नमः' का प्रयोग होता है। समस्त दुर्धर्ष, घातक एवं अपकारी शक्तियाँ विनय के समक्ष नत हो जाती हैं। जो मनुष्य यथाशक्ति परोपकार में रत रहकर दूसरों के हित के लिये अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा देता है, वह अपने शत्रुओं की समस्त विरोधभावनाओं को हटाकर उन पर पूर्ण अधिकार कर लेता है। 'वषट्' अन्तःकरण की उस वृत्ति का लक्ष्य कराता है, जिसमें अपने शत्रुओं के सम्बन्धियों का अनिष्ट-साधन करने अथवा उनका प्राणहरण करने की भावना रहती है। 'वौषट्' अपने शत्रुओं के हृदयों में एक-दूसरे के प्रति द्वेष उत्पन्न करने का सूचक है। 'हुम्' बल तथा अपने शत्रुओं को स्थानच्युत करने के निमित्त क्रोध का ज्ञापक है एवं 'फट्' अपने शत्रु के प्रति शस्त्रप्रयोग को अभिव्यक्त करता है। मन्त्रों की भाँति यन्त्र भी अनेक होते हैं। वे यन्त्र

भिन्न-भिन्न प्रकार के चित्रों के संकेत होते हैं। बहुत से यन्त्र प्रकृति के चरित्र का रहस्य बतलाते हैं और कई यन्त्र ऐसे होते हैं, जो मनुष्यों तथा जानवरों के चरित्र का निरूपण करते हैं। तन्त्रशास्त्र में मन्त्रों एवं यन्त्रों का विशद् विवेचन उपलब्ध होता है। इसीलिये तन्त्रशास्त्र का माहात्म्य प्रदर्शित करते हुये कहा गया है—

विष्णुर्वरिष्ठो देवानां ह्रदानामुदधिस्तथा।
नदीनाञ्च यथा गङ्गा पर्वतानां हिमालयः॥
अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां राज्ञाभिद्रो यथा वरः।
देवीनाञ्च यथा दुर्गा वर्णानां ब्राह्मणो यथा॥
तथा समस्तशास्त्राणां तन्त्रशास्त्रमनुत्तमम्।
सर्वकामप्रदं पुण्यं तन्त्रं वै वेदसम्मितम्॥
कीर्त्तनं देवदेवस्य हरस्य मतमेव च।
पावनं श्रद्दधानानामिह लोके परत्र च॥

प्राचीनतम तन्त्रग्रन्थों में रथक्रान्त, विष्णुक्रान्त एवं अश्वक्रान्त—तीनों में चौंसठ-चौंसठ ग्रन्थ दृगोचर होते हैं। इस प्रकार कुल एक सौ बयानबे ग्रन्थों के वर्णन उपलब्ध होते हैं। उनमें से रथक्रान्त तन्त्रग्रन्थों में मेरुतन्त्र का स्थान छठा है। इसके सम्बन्ध में ग्रन्थ के प्रथम प्रकाश में भगवान् शिव का कथन है कि—

महाकालेन यत्प्रोक्तं पञ्चमी मुक्तिसाधनम्।
सर्वेषां मेरुतां यातं तत्तन्त्रं मेरुसंज्ञितम्॥

महाकाल ने जिस पाँचवीं मुक्तिसाधन का कथन किया है, उनमें मेरुतन्त्र सुमेरु पर्वत के समान सर्वोच्च है। ब्रह्मा, विष्णु, गणेश, सूर्य, गौरी आदि देव-देवियों तथा गंगा, यमुना आदि नदियों; साथ ही अन्यान्य उपास्य देवों के मन्त्र, यन्त्र, न्यास, ध्यान, पीठ, शक्ति आवरणार्चन विधियों एवं वैदिक मन्त्रविधियों का भी प्रतिपादक शिव-पार्वती-संवादरूप यह महनीय ग्रन्थ पैंतीस प्रकाशों में विभाजित है। शिव द्वारा उपदिष्ट एक सौ आठ तन्त्रों में सर्वोच्च स्थान पर अवस्थित होने के कारण ही यह 'मेरुतन्त्र' के नाम से अभिहित है। जलन्धर से भयभीत देवताओं और ऋषियों के लिये भगवान् शिव ने इसका उपदेश किया था। यह महनीय ग्रन्थ लगभग पन्द्रह हजार श्लोकों में निबद्ध है। इस ग्रन्थ में ज्ञान, योग, क्रिया तथा चर्या—इन चारो अंगों के साथ-साथ मन्त्रों के रहस्यात्मक प्रभाव का भी विवेचन किया गया है। यन्त्र-मन्त्र का इसमें विशद् वर्णन है। क्रियाविभाग में मूर्ति एवं यन्त्रपूजन के विधान प्रमुख हैं। चर्याविभाग में दैनिक आचार के साथ-साथ व्रत, उत्सव एवं सामाजिक अनुष्ठानों के विस्तृत विवरण हैं। तर्पण और दीपदान के विधान भी इस ग्रन्थ में विवेचित हैं। इसके अनुसार साधना करके आर्त्त,

जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी—चारो प्रकार के श्रेष्ठ कर्मी अपने मनोरथ पूर्ण कर सकते हैं। गीता के सातवें अध्याय के सोलहवें श्लोक में कहा गया है कि मनुष्य की ईश्वर या ईश्वरीय सत्ता-सम्पन्न वस्तुओं के प्रति अभिरुचि के चार प्रमुख कारण हैं—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

अर्थात् भरतवंशियों में श्रेष्ठ हे अर्जुन! चार प्रकार के उत्तम कर्म वाले लोग मेरा अर्चन-पूजन करते हैं, वे हैं—अत्यन्त संकट में पड़ा हुआ, जिज्ञासु अर्थात् यथार्थ ज्ञान का इच्छुक, अर्थार्थी अर्थात् सांसारिक सुखों का अभिलाषी एवं ज्ञानी। इन चार कारणों में से अन्तिम अर्थात् ज्ञानी के अतिरिक्त प्रथम तीन कारण तो ऐसे हैं कि उनसे कोई बचा ही नहीं है। कुछ केवल पीड़ित हैं, कुछ केवल जिज्ञासु हैं तो कुछ केवल अर्थार्थी हैं। इन कष्टों के शमन-हेतु मनीषियों द्वारा अनेक मार्गों का विवेचन किया गया है, जिनमें तन्त्रसाधना श्रेष्ठ है और उनमें भी मेरुतन्त्र श्रेष्ठ है। प्रकृत ग्रन्थ की सर्वातिशायी विशेषता यह है कि यह ग्रन्थरत्न उक्त चारो ही कारणों का समाधान करने वाला है।

प्रस्तुत संस्करण

तन्त्र-साधना हेतु परमोपयोगी यह महनीय ग्रन्थ जो अद्यावधि उपलब्ध है, वह पूर्णतः संस्कृत वाङ्मय में मूलमात्र है। वर्तमान में अल्पज्ञ पाठकों के संस्कृत भाषा-ज्ञान में पूर्णतः दक्ष न होने के कारण अभीष्ट होते हुये भी वे ग्रन्थ-तात्पर्य को अंगीकार करने में समर्थ नहीं हो पा रहे थे, यही कारण है कि यह ग्रन्थ प्रचलन में नहीं था। ग्रन्थ की अनिवार्यता एवं ग्रन्थोक्त अनुष्ठानों की उपयोगिता को हृदयंगम करते हुये चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी के अप्रतिम स्वत्त्वाधिकारी गोलोकवासी नवनीतदास जी गुप्त की सतत् प्रेरणा के परिणाम-स्वरूप इस महनीय ग्रन्थ को भाषाभाष्य से समन्वित करने का दुरूह कार्य पूर्णता को प्राप्त हो सका; यह स्वर्गीय गुप्त जी की उत्कट अभिलाषा एवं उनके अनुवर्ती श्री नवीन एवं नीरज जी के सतत् उत्साहवर्धन का ही प्रतिफल है। आशा एवं विश्वास है कि यह संस्करण अध्येताओं के लिये ग्रन्थ के गूढ़ अर्थ को समझने में सहायक सिद्ध होगा।

श्रीनिवास शर्मा

●

विवेच्य विषय

ग्रन्थ के प्रकृत चतुर्थ भाग में तेईस से लेकर छब्बीस तक चार प्रकाशों को समाहित किया गया है। इसके तेईसवें प्रकाश में ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं के मन्त्रों का सविधि कथन किया गया है। इस क्रम में सर्वप्रथम ब्रह्मशक्ति मन्त्र के उपासना की विधि प्रतिपादित करने के उपरान्त क्रमशः चिन्तामणि-सरस्वती, ज्ञानसरस्वती, नीलसरस्वती, वामा घटसरस्वती, किनिसरस्वती, अन्तरिक्ष-सरस्वती, महासरस्वती एवं त्रिकूटा सरस्वती का साधन-विधान बतलाया गया है। इसके बाद शिवत्रिपुरा एवं रुद्रविश्वेश्वरी के मन्त्रों का उद्धार बतलाकर उनकी उपासना-विधि प्रदर्शित की गई है। तत्पश्चात् विष्णुवागीश्वरी मन्त्र का साधन बतलाकर मुख्य वागीश्वरी, पद्मावती, अश्वारूढ़ा एवं माहेश्वरी के मन्त्रों का उद्धार बतलाकर उनकी उपासना-विधि कही गई है। इसके बाद बालामन्त्रों का निरूपण किया गया है। तदनन्तर अन्नपूर्णेश्वरी एवं गौरी के मन्त्रों का विवेचन कर वज्रेश्वरी का महामन्त्र बतलाया गया है। त्वरिता मन्त्र-साधन निरूपित करने के पश्चात् कौमारी-विधि का कथन किया गया है। तत्पश्चात् वैष्णवी मन्त्र का विवेचन करने के अनन्तर त्रैलोक्यविजया मन्त्र की विधि प्रदर्शित है। इसके बाद अपराजिता वैष्णवी एवं असिद्धसाधिनी वैष्णवी का मन्त्रोद्धार बतलाकर स्वप्नवाराही मन्त्र की विधि प्रदर्शित है। तदनन्तर बगलामुखी एवं छिन्नमस्ता की साधन-विधि का निरूपण कर छिन्नमस्ता के चार भेदों का निरूपण किया गया है। तत्पश्चात् पुष्पहोमविधि वर्णित है। तारामन्त्र की साधन-विधि निरूपित करते हुये पञ्चाक्षर तारामन्त्र का सविधि विवेचन किया गया है। इसके बाद अनेकविध तारामन्त्रों का कथन करके महातारा मन्त्र को बतलाया गया है। तदनन्तर दक्षिणकालिका, भद्रकाली, महाकाली एवं प्रत्यङ्गिरामन्त्रों का कथन कर प्रत्यङ्गिरा का मालामन्त्र बतलाया गया है। आगे चामुण्डा का महामन्त्र निरूपित है। इसके बाद सप्तशती-पाठमाहात्म्य प्रदर्शित करते हुये शतचण्डी-विधान निरूपित है। अनन्तर महालक्ष्मी मन्त्र का कथन कर सप्तविंशाक्षर लक्ष्मी-मन्त्र की साधन-विधि बतलायी गई है। अनन्तर लक्ष्मीहृदय मन्त्र, पद्मप्रभा मन्त्र, साम्राज्यलक्ष्मी मन्त्र, सप्ताक्षर लक्ष्मी मन्त्र, ज्येष्ठा लक्ष्मी मन्त्र एवं सिद्धलक्ष्मी महामन्त्र का सविधि निरूपण करते हुये प्रकाश का समापन किया गया है।

चौबीसवें प्रकाश में दश दिक्पालों के मन्त्र स्फुटित किये गये हैं। इस क्रम में सर्वप्रथम इन्द्रमन्त्र का कथन करने के उपरान्त अग्नि, यम, चित्रगुप्त, निर्ऋति,

आसुरी एवं वरुण के मन्त्रों का सविधि निरूपण करते हुये मणिकर्णी के महामन्त्र को विधि-सहित बतलाया गया है। इसके बाद गंगा के पाँच मन्त्रों का विवेचन करने के पश्चात् क्रमशः रेवा, गोदावरी, यमुना एवं समुद्र का मन्त्र सविधि स्फुटित किया गया है। तदनन्तर वायुमन्त्र का विवेचन किया गया है। इसके बाद महाकृत्या के महामन्त्र का कथन कर कृत्याशान्ति की विधि प्रदर्शित की गई है। तत्पश्चात् कुबेर एवं ईशा के मन्त्रों का उद्धार करते हुये उनकी उपासना-विधि का कथन कर ब्रह्मा के मन्त्र की साधन-विधि निरूपित की गई है। प्रकाशान्त में शेषमन्त्र का निरूपण किया गया है।

पच्चीसवें प्रकाश में दीपविधि विवेचित की गई है। सर्वप्रथम विघ्नहर्त्ता गणेश को दीपदान करने की विधि निरूपित करने के उपरान्त बगला एवं बटुक की दीपदान-विधि सांगोपांग निरूपित की गई है। इसके बाद दीपमन्त्र एवं दीपयन्त्र आदि का निरूपण करने के उपरान्त शक्ति, शिव, रोगहर्त्ता सूर्य एवं विष्णु की दीपदान-विधि का विवेचन करते हुये प्रकाश का समापन किया गया है।

छब्बीसवें प्रकाश में दशावतार मन्त्रों का सविधि निरूपण किया गया है। सर्वप्रथम मत्स्यावतार मन्त्र की विधि निरूपित करते हुये कूर्ममन्त्र की विधि प्रकाशित की गई है। इसके बाद वराहमन्त्र का कथन कर वराह के अष्टाक्षर एवं एकाक्षर मन्त्र का निरूपण किया गया है। पृथिवी मन्त्र का स्फोटन करने के उपरान्त नृसिंह मन्त्रानुष्ठान की विधि प्रकाशित करते हुये नृसिंह के एकाक्षर एवं षडक्षर मन्त्र का निरूपण किया गया है। इसके बाद लक्ष्मीनृसिंह मन्त्र का कथन करने के बाद विविध मन्वन्तर में प्रकट हुये नृसिंह के तत्तत् मन्त्रों का विवेचन किया गया है। अनन्तर वामन-मन्त्रों की विधि प्रदर्शित करते हुये सर्वज्ञेश्वर वामन, भोगवामन, बालकवामन, विश्वरूपवामन एवं बलिवामन के मन्त्रों को बतलाया गया है। तदनन्तर परशुराम-मन्त्र का विवेचन करने के उपरान्त श्रीरामन्त्र की विधि बतलाकर एकाक्षर, द्व्यक्षर, त्र्यक्षर एवं पञ्चाक्षर राममन्त्रों को सविधि निरूपित किया गया है। इसके बाद तत्तत् मन्वन्तरों में समुद्भूत राम के मन्त्रों को कहा गया है। तदनन्तर हनुमान्, भरत, विभीषण, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, सीता, शिव एवं शक्र द्वारा उपासित राम के भिन्न-भिन्न मन्त्रों का फलकथन-पूर्वक विवेचन किया गया है। इसके बाद सीता के मन्त्र का उद्धार बतलाकर श्रीकृष्ण के मन्त्रों की विधि विवेचित करते हुये दशाक्षर कृष्णमन्त्र का निरूपण किया गया है। तदनन्तर द्वितीय से इकहत्तर तक कलि में समुद्भूत कृष्ण के मन्त्रों का अलग-अलग विवेचन किया गया है। अन्त में बौद्ध महामन्त्र का निरूपण करने के पश्चात् कल्कि महामन्त्र का निरूपण करते हुये प्रकाश का समापन किया गया है।

●

विषयानुक्रमणी

।। श्रीः ।।

श्रीशिव-शिवासंवादोपनिबद्धं

मेरुतन्त्रम्

भाषाभाष्यसमन्वितम्

त्रयोविंशतितमः प्रकाशः

(ब्राह्म्याद्यष्टमातृकामन्त्रकथनम्)

ब्रह्मशक्तिमन्त्रोपासनादिविधिः

मुनय ऊचुः

देवदेव महादेव भक्तानुग्रहकारक ।
ब्राह्म्याद्यष्टौ भास्करस्य तटे तिष्ठन्ति शक्तयः ॥१॥
रणे मृतानां योगेन मृतानां सहगामिनाम् ।
स्वर्गं याश्च प्रयच्छन्ति तन्मनूब्रूहि शङ्कर ॥२॥

मुनियों ने कहा—भक्तों पर अनुग्रह करने वाले हे देवों के देव महादेव! सूर्यतट पर अर्थात् सूर्यमण्डल में ब्राह्मी आदि आठ शक्तियाँ विराजमान रहती हैं; जो कि मृत्युयोग के कारण युद्ध में मृत व्यक्तियों के सहगामियों को स्वर्ग प्रदान करती हैं। हे शङ्कर! उन अष्टशक्तियों के मन्त्रों को आप कहें।।१-२।।

श्रीशिव उवाच

ब्रह्मशक्तिस्तु शक्तीनां नायिका परिकीर्तिता ।
योगिनां मुक्तिदात्री सा भोगिनां भोगदा मता ॥३॥
ब्रामित्येकाक्षरं बीजं मुनिर्वाचस्पतिर्मतः ।
गायत्री छन्द उद्दिष्टं वः शक्तिः कीलकं चरः ॥४॥
ध्यायेद् ब्राह्मीं पद्मसंस्थां हंसारूढां चतुर्मुखाम् ।
अक्षमालावराभीतिकमण्डलुकरारुणाम् ॥५॥

बीजेनैव षडङ्गानि मध्ये देवीं प्रपूजयेत्।
षट्कोणेषु षडङ्गानि शक्तयोऽर्च्याः कलादले ॥६॥
चिन्तामणिज्ञाननीलघटाकिन्यन्तरिक्षतः ।
महत्पूर्वाश्च सप्तैताः सरस्वत्यः प्रकीर्तिताः ॥७॥
लोकेश्वरीं शिवान्ते च त्रिपुराद्वितयं भवेत्।
वागीश्वरीरुद्रविष्णुमुखान्ते चाक्षया मता ॥८॥
पद्मावत्येव रूढा च षोडशी कीर्तिनायिका।
तत्तन्मन्त्रैः पूजनीया बाह्ये दिक्पाः सहेतयः ॥९॥
लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं पलाशकुसुमैर्हुनेत्।
तत्पुष्पयुक्तसलिलैस्तर्पयेन्मार्जयेत्कुशैः ॥१०॥
ऐश्वर्यार्थं तु सिध्यर्थं गायत्री प्रथमांघ्रियुक्।
संरक्षणार्थं पुष्ट्यर्थं द्वितीयचरणान्वितम्।
मारणोच्चाटनाद्यर्थं तृतीयेन समन्वितम्।
लक्षमात्रं जपेन्मन्त्रं कार्यसिद्धिः प्रजायते ॥११॥

ब्रह्मशक्ति-मन्त्रोपासना—श्रीशिवजी ने कहा—ब्रह्मशक्ति शक्तियों की नायिका कही गई है। वह योगियों को मोक्ष प्रदान करने वाली एवं भोगियों को भोग प्रदान करने वाली कही गई है। एकाक्षर 'ब्रां' इसका बीजमन्त्र है। इस मन्त्र के ऋषि वाचस्पति, छन्द गायत्री, शक्ति वः और कीलक चर कहे गये हैं। कमल पर विराजमान, हंस पर आरूढ़, अपने रक्त करकमलों में अक्षमाला वर अभय एवं कमण्डलु धारण करने वाली चतुर्मखी ब्राह्मी का ध्यान करना चाहिये। तत्पश्चात् ब्रां बीज के ही छः दीर्घ स्वरूपों (ब्रां ब्रीं ब्रूं ब्रैं ब्रौं ब्रः) से इसका षडङ्गन्यास करने के उपरान्त मध्य में देवी का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर षट्कोण के छः कोणों में षडङ्ग-पूजन करने के बाद सोलह दलों में चिन्तामणिसरस्वती, ज्ञानसरस्वती, नीलसरस्वती, घटसरस्वती, किनीसरस्वती, अन्तरिक्षसरस्वती, महासरस्वती, शिवलोकेश्वरी, त्रिपुराद्वितय, रुद्रवागीश्वरी, विष्णुवागीश्वरी, मुख्यवागीश्वरी, पद्मावती, अश्वारूढ़ा, षोडशी एवं कीर्तिनायिका—इन सोलह शक्तियों का तत्तत् मन्त्रों से अर्चन करना चाहिये। फिर उसके बाहर भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार चार आवरणों में यह पूजन सम्पन्न होता है।

पुरश्चरण-हेतु इस मन्त्र का एक लाख जप करने के पश्चात् पलाश के फूलों से हवन् सम्पन्न करके जल में पलाशपुष्प ड़ालकर तर्पण करने के बाद कुशों द्वारा मार्जन करना चाहिये।
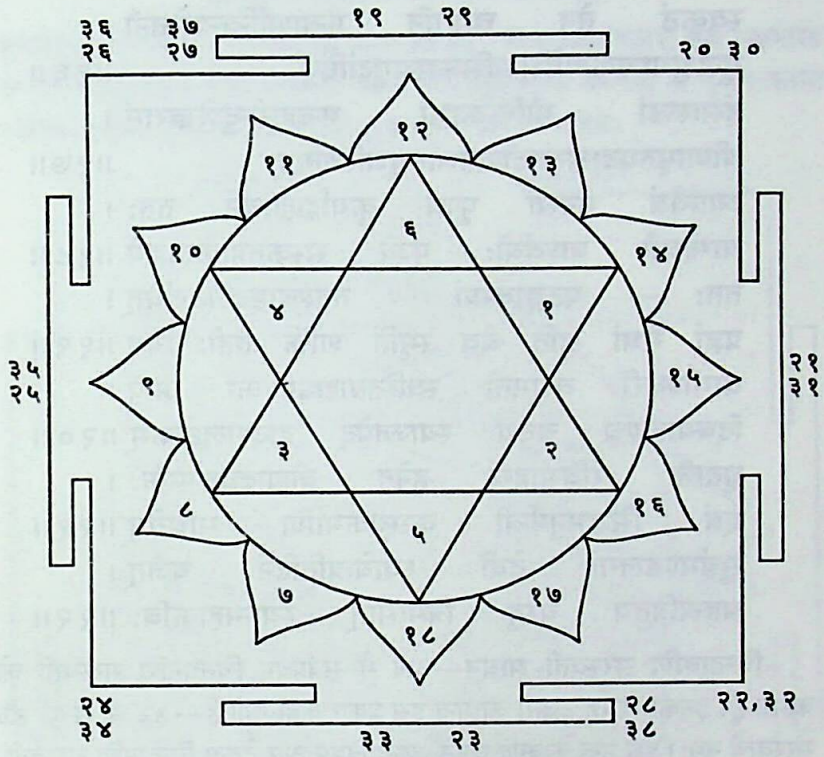
ऐश्वर्य एवं सिद्धि-प्राप्ति के लिये गायत्री के प्रथम चरण को, संरक्षण एवं पुष्टि के लिये द्वितीय. चरण तथा मारण-उच्चाटन आदि के लिये तृतीय चरण को युक्त करके इस मन्त्र का एक लाख जप करने से कार्यसिद्धि होती है।।३-११।।

चिन्तामणिसरस्वतीसाधनम्

अथांदौ सम्प्रवक्ष्यामि चिन्तामणिसरस्वतीम्।
तारं मायां च हसरानैकाराढ्यान् सबिन्दुकान्॥१२॥
पुनर्मायां च तारं च वदेद् ङेऽन्तां सरस्वतीम्॥१३॥
हृदयान्तो भवार्णोऽयं मन्त्रस्तु परिकीर्तितः।
त्रिष्टुप्छन्दो मुनिः कण्ठश्चिन्तामणि सरस्वती॥१४॥
देवताद्यं च बीजं स्याध्रीं शक्तिस्त्वङ्गकल्पनम्।
स्वरसम्पुटितैः कादिवर्णैः स्यादङ्गकल्पनम्॥१५॥
पुनश्च तारहृल्लेखापुटितं दीर्घषट्कियुक्।

स्वकूठं तेन चाङ्गानि मन्त्रार्णान्विन्यसेत्तनौ ।
मूर्द्धभ्रूमध्यकर्णाक्षिनासिकास्यगुदांघ्रिषु ॥१६॥
हंसारूढां मौक्तिकाभां मन्दहासेन्दुशेखराम् ।
वीणामृतघटाक्षस्त्रग्दीप्तहस्ताम्बुजस्थिताम् ॥१७॥
ध्यात्वैवं मनसा पूज्य कुर्याद्बाह्यार्चनं ततः ।
वाग्देव्यौ पार्श्वयोः पूज्ये संस्कृतप्राकृताह्वये ॥१८॥
ततः षडङ्गावरणं ततश्चाष्टदलेऽर्चयेत् ।
प्रज्ञां मेधां श्रुतिं चैव स्मृतिं शक्तिं ततोऽर्चयेत् ॥१९॥
वागीश्वरीं वसुमतीं स्वस्तिब्राह्म्यादिका अपि ।
दिक्पालैश्च चतुर्थं स्याज्जपेद् द्वादशलक्षकम् ॥२०॥
घृताक्तै रविसाहस्रं हुनेद् व्रीह्याढ्यचम्पकैः ।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री काम्यकर्माणि साधयेत् ॥२१॥
सूर्यमण्डलगां देवीं ध्यायेत्प्रतिदिनं यजेत् ।
सहस्त्रत्रितयं यस्तु त्रिमासात् स्यान्महाकविः ॥२२॥

चिन्तामणि सरस्वती-साधन—अब मैं सर्वप्रथम् चिन्तामणि सरस्वती को कहता हूँ। इनका ग्यारह अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—ॐ ह्रीं ह्रैं ह्रीं ॐ सरस्वत्यै नमः। इस मन्त्र के ऋषि कण्ठ, छन्द त्रिष्टुप् और देवता चिन्तामणि सरस्वती, बीज ॐ एवं शक्ति ह्रीं कहा गया है। इसका षडङ्गन्यास स्वर-सम्पुटित कादि वर्णों से इस प्रकार किया जाता है—अं कं खं गं घं ङं आं हृदयाय नमः, इं चं छं जं झं ञं ईं शिरसे स्वाहा, उं टं ठं डं ढ़ं णं ऊं शिखायै वषट्, एं तं थं धं नं ऐं कवचाय हुम्, ओं पं फं बं भं मं औं नेत्रत्रयाय वौषट्, अं यं रं लं वं शं षं सं हं अः अस्त्राय फट्॥१२-१५॥

इसके बाद ॐ एवं ह्रीं से पुटित छः दीर्घ कूटाक्षरों से इस प्रकार न्यास करना चाहिये—ॐ ह्रीं स्ह्रां ॐ ह्रीं हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं स्ह्रीं ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ ह्रीं स्ह्रूं ॐ ह्रीं शिखायै वषट्, ॐ ह्रीं स्ह्रैं ॐ ह्रीं कवचाय हुं, ॐ ह्रीं स्ह्रौं ॐ ह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्रीं स्ह्रः ॐ ह्रीं अस्त्राय फट्। तत्पश्चात् शरीर में इस प्रकार मन्त्रवर्णन्यास करना चाहिये—ॐ का मूर्धा में, ह्रीं का भ्रूमध्य में, स्ह्रैं का दक्ष कर्ण में, ह्रीं का वाम कर्ण में, ॐ का दक्ष नेत्र में, स का वाम नेत्र में, र का नासिका में, स्व का मुख में, त्यै का गुदा में, न का दक्ष पाद में एवं मः का वाम पाद में। इसके बाद अर्चन करने के पूर्व हंस पर आरूढ़, मोतियों के समान आभा वाली, मन्द

हास्ययुक्त, शीर्षभाग पर चन्द्रमा को धारण की हुई, वीणा अमृतकलश एवं अक्षमाला से दीप्त करकमलों वाली देवी का ध्यान करके मानसिक उपचारों से पूजन करना चाहिये। इसके बाद आवाहन करके बाह्य अर्चन करना चाहिये।
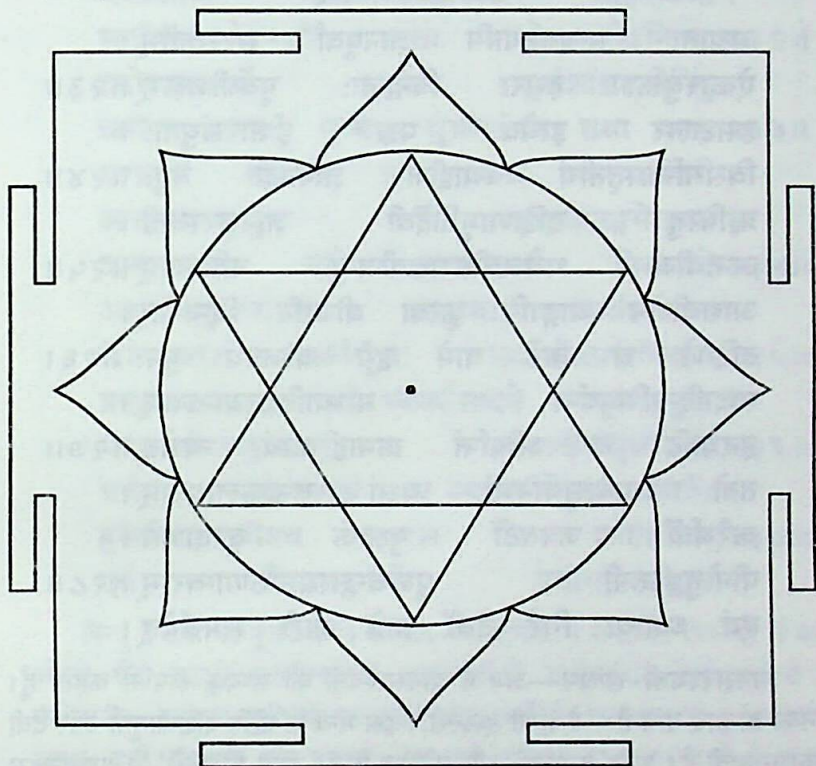
मध्यबिन्दु में सरस्वती का पूजन करके प्रथम आवरण में उनके दोनों ओर संस्कृत और प्राकृत भाषाओं का पूजन करना चाहिये। इसके बाद द्वितीय आवरण में षडङ्ग-पूजन में हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र, अस्त्र का पूजन करने के उपरान्त तृतीय आवरण में अष्टदल में प्रज्ञा, मेधा, श्रुति, स्मृति, वागीश्वरी, वसुमती, स्वस्ति, ब्राह्मी आदि का अर्चन करना चाहिये। चतुर्थ आवरण में भूपुर में इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा और अनन्त का तथा उनके आगे वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अंकुश, गदा, त्रिशूल, पद्म और चक्ररूप आयुधों का अर्चन करना चाहिये।

तदनन्तर मन्त्र का बारह लाख की संख्या में जप करने के बाद घृत-सिक्त चावल और चम्पापुष्प के द्वारा बारह हजार हवन करना चाहिये। इस प्रकार मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर मन्त्रज्ञ साधक को काम्य कर्मों का साधन करना चाहिये। तीन महीने तक

प्रतिदिन सूर्यमण्डल में स्थित देवी का ध्यान करके पूजन करने के बाद तीन हजार मन्त्रजप करने से साधक महाकवि हो जाता है।।१२-२२।।

ज्ञानसरस्वतीसाधनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि ज्ञानपूर्वां सरस्वतीम्।
ऐकारयुक्ता हसरा बिन्द्वन्ताः पूर्वबीजकम्।।२३।।
हसक्षलर इत्येवं पञ्च ईकारसंयुताः।
विसर्गान्तास्तृतीयं स्याद्बीजं ज्ञानप्रदो मनुः।।२४।।
ऋषिस्तु दक्षिणामूर्त्तिर्देवी ज्ञानसरस्वती।
अन्तबीजं भवेच्छक्तिराद्यबीजन्तु कीलकम्।।२५।।
आद्यबीजेन चाङ्गानि कृत्वा बीजानि विन्यसेत्।
दक्षिणे च करे वामे द्वये बीजत्रयं पुनः।।२६।
पादादिनाभिपर्यन्तं नाभ्यादिहृदयान्तकम्।
हृदयादि च शीर्षान्तं क्रमाद्बीजत्रयं न्यसेत्।।२७।।
ततो ध्यायेत्सूर्यनिभां त्र्यक्षां चन्द्रकलाधराम्।
करैर्धत्रीं जपवटीं पुस्तकं वरदाभये।
पीनोत्तुङ्गस्तनीं पूर्णचन्द्रास्यामरुणाम्बराम्।।२८।।
एवं ध्यात्वा गिरं देवीं ततो बाह्ये समर्चयेत्।

ज्ञानसरस्वती-साधन—अब मैं ज्ञानसरस्वती को सम्यक् रूप से कहता हूँ। इनका ज्ञानप्रद मन्त्र है—ऐं ह्स्रां ह्स्क्ष्ल्री:। इस मन्त्र के ऋषि दक्षिणामूर्ति और देवी ज्ञानसरस्वती हैं। शक्ति हस्क्ष्ल्री: और कीलक ऐं है। आद्य बीज 'ऐं' से षडङ्गन्यास करने के बाद दूसरे बीज को दक्षिण कर में और तीसरे बीज का वाम कर में न्यास करना चाहिये। फिर तीनों बीजों का क्रमशः पैर से नाभि-पर्यन्त, नाभि से हृदय-पर्यन्त एवं हृदय से लेकर शिर-पर्यन्त न्यास करने के बाद सूर्यसदृश दीप्तिमान, तीन नेत्रों वाली, चन्द्रकला को धारण करने वाली, हाथों में जपवटी पुस्तक वर एवं अभय धारण की हुई, स्थूल उन्नत स्तनों वाली, पूर्ण चन्द्र-सदृश मुख वाली तथा रक्त वस्त्र धारण की हुई देवी का ध्यान करना चाहिये। इस प्रकार देवी सरस्वती का ध्यान करके सम्यक् रूप से बाह्य पूजन करना चाहिये।।२३-२८।।

नवयोनित्रिकोणेषु वामा ज्येष्ठादिका यजेत्।।२९।।
प्राङ्मध्ययोन्योरन्तस्तु यजेच्छक्तिचतुष्टयम्।
आद्या बह्वी विषघ्नी स्यात्ततो दूरतरा मता।।३०।।

सर्वादौ तेन ता बाह्ये पञ्चकोणं समाचरेत्।
आग्नेयेशाननैर्ऋत्यवायव्ये पश्चिमे क्रमात् ॥३१॥
यजेत्कोणे पञ्चबाणाञ्छोषणं मोहनन्तथा।
सन्दीप्तसम्मोहनकौ तथा चोन्मादनोऽन्तिमः ॥३२॥
ततोऽङ्गावरणं पूज्यं पूर्वाशाद्यष्टयोनिषु।
क्रमेण शक्तयः पूज्याः सुभगा च तथा भगा ॥३३॥
भगपूर्वा सर्पिणी च ततश्च भगमालिनी।
अनङ्गानङ्गकुसुमा ततश्चानङ्गमेखला।
अनङ्गमदना चेति ध्यानमासां निरूप्यते ॥३४॥
अक्षस्त्रक्पुस्तककरा रक्ताभाः सर्वशक्तयः।
दिव्याम्बराः सर्वभूषाः सर्वाभीष्टप्रदायिकाः ॥३५॥
ब्राह्म्याद्याश्च ततोऽभ्यर्च्यास्तदग्रे पूजयेत्पुनः।
भैरवानसिताङ्गाद्यान् शक्रादीनायुधान्यपि ॥३६॥
यजेद् द्वादशलक्षं स्याज्जपस्त्रिमधुरान्वितैः।
हुनेत्पलाशपुष्पैश्च दशांशं वा शतांशकम् ॥३७॥
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगानाचरेदथ।

बिन्दु में देवी का पूजन करने के बाद नव योनियों से समन्वित त्रिकोणों में वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, कलविकरिणी, बलविकरिणी, बलप्रमथिनी, सर्वभूतदमनी और मनोन्मनी—इन नव शक्तियों का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् चारो दिशाओं में आद्या, बह्वी, विषघ्नी और दूरतरा—इन चार शक्तियों का पूजन करने के उपरान्त पञ्चकोण के अग्नि, नैर्ऋत्य, वायव्य, पश्चिम और ईशान कोण में शोषण, मोहन, सन्दीपन, सम्मोहन और उन्मादन—इन पाँच बर्णो का पूजन करना चाहिये। इसके बाद षडङ्ग-पूजन और आवरण-पूजन करना चाहिये। पञ्चकोण के बाहर अष्टयोन्यात्मक चक्र में पूर्वादि क्रम से सुभगा, भगा, भगसर्पिणी, भगमालिनी, अनङ्गा, अनङ्गकुसुमा, अनङ्गमेखला, अनङ्गमदना का पूजन करना चाहिये। ये सभी शक्तियाँ अपने हाथों में अक्षमाला एवं पुस्तक ग्रहण की हुई हैं, रक्त आभा वाली हैं, दिव्य वस्त्र धारण की हुई है, समस्त आभूषणों से भूषित हैं तथा साधक के समस्त अभीष्टों को प्रदान करने वाली हैं।

तदनन्तर उन्हीं अष्टकोणों में ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं का पूजन करके उनके आगे असिताङ्गादि अष्टभैरवों का भी पूजन करना चाहिये। इसके बाद भूपुर में दिक्पालों
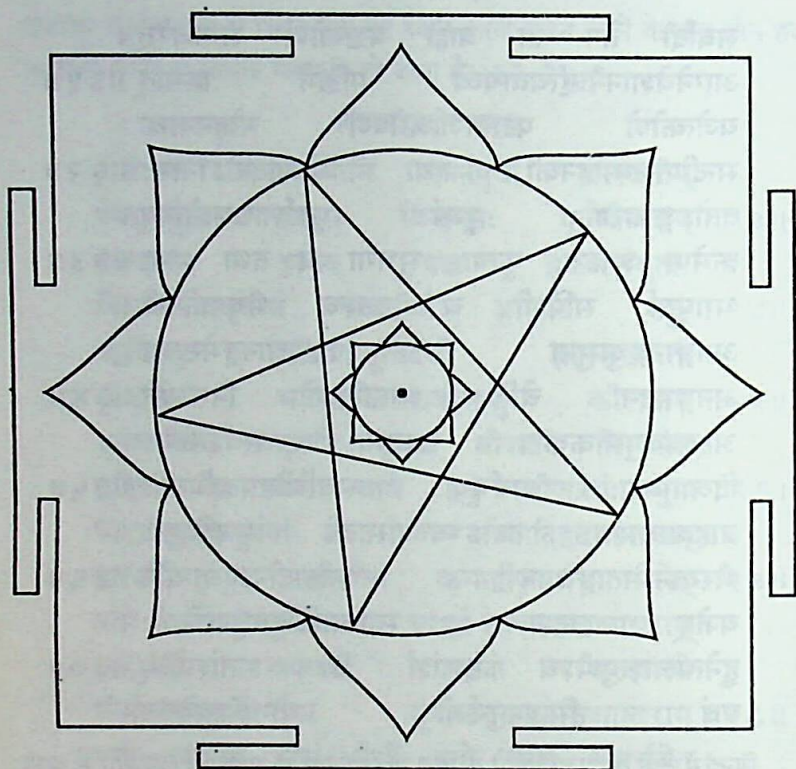
और उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार कुल सात आवरणों में इनका पूजन सम्पन्न होता है। तत्पश्चात् मन्त्र का बारह लाख जप करके त्रिमधुरान्वित पलाशपुष्पों से कृत जप का दशांश (एक लाख बीस हजार) अथवा शतांश (बारह हजार) हवन करना चाहिये। इस प्रकार मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर मन्त्रज्ञ साधक को विविध प्रयोगों का सम्पादन करना चाहिये।।२९-३७।।

पलाशपुष्पैरयुतं सौभाग्याय च होमयेत् ।।३८।।
लक्ष्म्यै तथैव जुहुयान्महासारस्वताय च।
मधुरत्रितयोपेतबिल्वैश्चैवायुतं हुनेत्।
भवन्ति सकला लोका वश्या नास्त्यत्र संशयः ।।३९।।
एवं कुर्यात्समृद्ध्यर्थं बीजैकैकस्य कथ्यते।
पृथक्प्रयोगो ध्यानं च पञ्चाशद्वर्णशोभिताम् ।।४०।।
नवकुन्दनिभां देवीं मुक्ताजालैश्च भूषिताम्।
मुद्राकपालविद्याक्षमालाराजन्महाभुजाम् ।।४१।।

एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षं पूजनाद्यं च पूर्ववत्।
कविता तस्य जायते नानावृत्तार्थशोभिता ।।४२।।

सौभाग्य, लक्ष्मी एवं विद्या-प्राप्ति के लिये पलाश के पुष्पों से दस हजार आहुतियों द्वारा हवन करना चाहिये। त्रिमधुरान्वित बिल्वफल से दस हजार हवन करने से सम्पूर्ण संसार साधक के वशीभूत हो जाता है; इसमें कोई सन्देह नहीं है। इसी प्रकार समृद्धि-प्राप्ति के लिये भी हवन करना चाहिये।

अब एक-एक बीजों के पृथक्-पृथक् प्रयोगों को कहता हूँ। सर्वप्रथम पचास वर्णों से शोभायमान, मोतियों की लड़ियों से सुशोभित, मुद्रा कपाल विद्या एवं अक्षमाला से सुशोभित हाथों वाली, नूतन कुन्दपुष्प-सदृश कान्तिमान देवी का ध्यान काना चाहिये। इस प्रकार ध्यान करके प्रथम बीज का एक लाख जप करने के बाद पूर्ववत् पूजन आदि करना चाहिये। ऐसा करने वाला साधक अनेक प्रकार के छन्द एवं अर्थ से समन्वित कविता करने में समर्थ हो जाता है।।३८-४२।।

रक्तां सुरतरोर्मूले विलसन्मणिपीठगाम्।
सृणिपाशकपालेषुमातुलुङ्गधनुष्कराम् ।।४३।।
रत्नैरलंकृतां काममदघूर्णितलोचनाम्।
हेलाविलाससम्भिन्नां नवयौवनसुन्दरीम् ।।४४।।
देवीं ध्यात्वा जपेल्लक्षं यो बीजं मध्यमं वशी।
त्रैलोक्यं क्षोभयेदाशु पूर्ववत्सिद्धिभागसौ ।।४५।।

जो जितेन्द्रिय साधक कल्पवृक्ष के नीचे रक्त मणियों से निर्मित पीठ पर विलास करती हुई, हाथों में सृणि पाश कपाल बाण मातुलुङ्ग एवं धनुष धारण की हुई, रत्नों से अलंकृत, काममद के कारण भ्रममाण नेत्रों वाली, कामविलास से सम्भिन्न, नवयौवन-सम्पन्न अनिन्द्य सुन्दरी देवी का ध्यान करके मध्यम बीज (हसां) का एक लाख जप करता है, वह तीनों लोकों को शीघ्र ही क्षुब्ध करने में समर्थ हो जाता है; साथ ही पूर्ववत् सिद्धियों का भागी हो जाता है।।४३-४५।।

अक्षमालासुधाकुम्भमुद्रापुस्तकधारिणीम् ।
नवकुन्देन्दुसङ्काशां राजन्मौक्तिकभूषणाम् ।।४६।।
शक्तिं संविन्मयीं ध्यात्वा बीजं सारस्वतं वशी।
यो जपेत्प्राय एतस्य कविता भुवि सम्मता ।।४७।।

जो जितेन्द्रिय साधक हाथों में अक्षमाला अमृतकलश मुद्रा एवं पुस्तक धारण करने वाली, नूतन कुन्दपुष्प-सदृश वर्ण वाली, मोतियों के आभूषण से सुशोभित,

संविन्मयी शक्ति का ध्यान करके सारस्वत बीज का जप करता है, उसकी कविता प्रायः लोकमान्य होती है।।४६-४७।।

नीलसरस्वतीसाधनम्

अथातो वाममार्गस्थां वक्ष्ये नीलसरस्वतीम्।
तारो लक्ष्मीश्च हृल्लेखा हसावोङ्कारसंयुतौ ।।४८।।
हुम्फट् नीलसरस्वत्यै स्वाहान्तो मनुवर्णकः ।
ऋष्याद्या ब्रह्मगायत्र्यौ तथा नीलसरस्वती ।।४९।।
नेत्रचन्द्रेन्दुनेत्राङ्गनेत्रार्णैरङ्गकल्पनम् ।
मन्त्रोत्थितैरथो ध्यायेद्देवीं सर्वेष्टसिद्धिदाम् ।।५०।।
घण्टां शिरः शूलमसिं कराब्जैर्दधतीं भजे।
पोथयन्तीं पादतले पशुं चन्द्रकलाधराम् ।।५१।।
जपपूजादिकं सर्वमस्यास्तारावदाचरेत् ।
विशेषाज्जयदा वादे विद्येयं साधिता नृभिः ।।५२।।

नीलसरस्वती-साधन—अब मैं वाममार्ग में स्थित नीलसरस्वती की साधना को कहता हूँ। नीलसरस्वती का चौदह अक्षरों का मन्त्र है—ॐ श्री ह्रीं ह्सौं हुं फट् नीलसरस्वत्यै स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री एवं देवता नीलसरस्वती कही गई हैं।

मन्त्र के दो, एक, एक, दो, छः एवं दो वर्णों अर्थात् ॐ श्री, ह्रीं, ह्सौं, हुं फट्, नीलसरस्वत्यै एवं स्वाहा से हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र एवं अस्त्रन्यास करने के उपरान्त समस्त अभीष्टों की सिद्धि प्रदान करने वाली देवी का इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—करकमलों द्वारा घण्टा शिर त्रिशूल एवं खड्ग को धारण की हुई, पैरों के नीचे पशु को लिटाई हुई तथा चन्द्रकला को धारण करने वाली देवी का मैं आराधन करता हूँ। इसका जप-पूजन आदि सबकुछ तारा के समान करना चाहिये। मनुष्यों द्वारा साधित यह विद्या विशेषतया विवाद में जय प्रदान करने वाली होती है।।४८-५२।।

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि तारं च भुवनेश्वरीम्।
श्रीमदेकजटे नीलसरस्वतिपदं वदेत् ।।५३।।
महोग्रतारे देवीति खेखः सर्वपदं वदेत्।
भूतपिशाचराक्षसान् ग्रसयुग्मं ममेति च ।।५४।।
जाड्यं छेदय युग्मं च श्रींह्रींफट् वह्निगेहिनी।
द्विपञ्चाशल्लिपिश्चायं ध्यानपूजादिपूर्ववत् ।।५५।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि त्रिवर्णं मन्त्रनायकम्।
ह्रींश्रींहुमिति मुन्याद्यं यथा त्रिपुरभैरवी ॥५६॥
अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि ब्लूं वं वदयुगं तथा।
त्रींहुंफट् च नवार्णोऽयं ध्यानपूजादि पूर्ववत् ॥५७॥

अब नीलसरस्वती के अन्य मन्त्र को कहता हूँ। बावन अक्षरों वाला वह मन्त्र इस प्रकार है—ॐ ह्रीं श्रीमदेकजटे नीलसरस्वति महोग्रतारे देवि खें खः सर्वभूतपिशाचराक्षसान् ग्रस ग्रस मम जाड्यं छेदय छेदय श्रीं ह्रीं फट् स्वाहा। इस मन्त्र का ध्यान-पूजन आदि पूर्ववत् ही कहा गया है।

अब नीलसरस्वती के तीन अक्षरों वाले मन्त्रराज को कहता हूँ। मन्त्र है—ह्रीं श्रीं हुम्। इस मन्त्र के ऋषि, छन्द, देवता आदि त्रिपुरभैरवी के समान होते हैं।

नीलसरस्वती का एक अन्य नवार्ण (नव वर्णों वाला) मन्त्र है—ब्लूं वं वद वद त्रीं हुं फट्। इसके ध्यान-पूजन आदि पूर्ववत् ही कहे गये हैं।।५३-५७।।

वामाघटसरस्वतीसाधनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वामां घटसरस्वतीम्।
हसखफरवर्णाश्च ऐंकारेण समन्विताः ॥५८॥
तस्याः स्यादादिमं कूटं हसरा औंसमन्विताः।
विसर्गान्ता द्वितीयं स्याद्धसौ फो रफ एव च ॥५९॥
ईकारेण च संयुक्तास्तृतीयं कूटमुच्यते।
वाचं मायां रमां द्रां ह्रीं कामं ब्लूं संस्तथैव च ॥६०॥
ग्रीं बीजं च समुच्चार्य ततो घटसरस्वति।
घटे वदद्वयम्पश्चात्त्वरयुग्मं वदेत्ततः ॥६१॥
रुद्राज्ञया ममाभीति लाषं कुरुयुगं तथा।
स्वाहान्तोऽग्निकृतार्णोऽयं प्राग्वत्पूजादिकं भवेत् ॥६२॥

वाममार्गस्थ घटसरस्वती-साधन—अब मैं वाममार्गस्थ घटसरस्वती को कहता हूँ। चौवालीस अक्षरों वाला इसका मन्त्र है—ह्स्क्रें ह्स्रौं ह्क्रौं स्फ्रौं ऐं ह्रीं श्रीं द्रां ह्रीं क्लीं ब्लूं सः घीं घटसरस्वति घटे वद वद तुर तुर रुद्राज्ञया ममाभिलाषं कुरु कुरु स्वाहा। इसका पूजन आदि पूर्ववत् ही होता है।।५८-६२।।

किनिसरस्वतीसाधनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि विद्यां किनिसरस्वतीम्।
वामाचारेण फलदां वाग्बीजं हैं समुच्चरेत् ॥६३॥

ह्रीमुच्चार्य किनिद्वन्द्वं विद्ये मन्त्रो नवाक्षरः ।
चामुण्डामन्त्रवत्सर्वं जपन्यासादिकं भवेत् ।।६४।।

किनिसरस्वती-साधन—अब मैं किनिसरस्वती विद्या को कहता हूँ, जो वाममार्ग के द्वारा आराधित होने पर फल प्रदान करने वाली है। नव अक्षरों वाली यह विद्या है— ऐं हैं ह्रीं किनि किनि विद्ये। इसके जप-न्यास आदि सबकुछ चामुण्डामन्त्र के समान होते हैं।।६३-६४।।

अन्तरिक्षसरस्वतीसाधनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि ह्यन्तरिक्षसरस्वतीम् ।
वाचं मायामन्तरिक्षसरस्वत्यग्निगेहिनी ।।६५।।
द्वादशार्णो मनुर्जप्तो वर्णलक्षमितो यदा ।
शृणुयादीप्सितां वार्तां दूरस्थामपि साधकः ।।६६।।

अन्तरिक्षसरस्वती-साधन—अब मैं अन्तरिक्षसरस्वती के मन्त्र को कहता हूँ। इनका बारह अक्षरों का मन्त्र है—ऐं ह्रीं अन्तरिक्षसरस्वत्यै स्वाहा। इस मन्त्र का यदि वर्णलक्ष अर्थात् बारह लाख जप किया जाता है तो साधक अत्यन्त दूर-स्थित अभीप्सित वार्त्ता को भी सुनने में समर्थ हो जाता है।।६५-६६।।

महासरस्वतीसाधनम्

महासरस्वतीं वक्ष्ये सर्वकामफलप्रदाम् ।
ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं समुच्चार्य सौंक्लींह्रीं ऐं पुनर्वदेत् ।।६७।।
ब्लूं तु स्त्रीं नीलतारे च सरस्वतिपदं ततः ।
द्रांह्रींक्लींब्लूं स उच्चार्य ऐंह्रींश्रींक्लीं पुनर्वदेत् ।।६८।।
सौःसौःह्रीं वह्निजायान्तो मन्त्रो द्वात्रिंशदर्णकः ।
ब्रह्मानुष्टुप्सरस्वत्यो मुन्याद्याः परिकीर्तिताः ।।६९।।
पञ्चपञ्चाष्टपञ्चेषुयुगार्णैरङ्गकल्पनम् ।
शवासनां सर्पभूषां कर्त्रीं चापि कपालकम् ।।७०।।
चषकं च त्रिशूलं च दधतीं च चतुष्करैः ।
मुण्डमालाधरां त्र्यक्षां भजे नीलसरस्वतीम् ।।७१।।
चतुर्लक्षं जपेद्विद्यां किंशुकैर्मधुरान्वितैः ।
दशांशं जुहुयात्पूजां पीठे कुर्याच्च सोच्यते ।।७२।।

महासरस्वती-साधन—अब मैं समस्त कामनाओं का फल प्रदान करने वाली

महासरस्वती को कहता हूँ। महासरस्वती का बत्तीस अक्षरों का मन्त्र है—ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सौ क्लीं ह्रीं ऐं ब्लूं स्त्रीं नीलतारे सरस्वति द्रां ह्रीं क्लीं ब्लूं सः ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सौः सौः ह्रीं स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता सरस्वती कही गई हैं।

मन्त्र के पाँच, पाँच, आठ, पाँच, सात एवं दो वर्णों से इसका षडङ्गन्यास कहा गया है। इसका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—शवरूपी आसन पर आसीन, सर्पों का आभूषण धारण की हुई, चार हाथों में कैंची कपाल चषक एवं त्रिशूल धारण की हुई, गले में मुण्डों की माला धारण की हुई, तीन नेत्रों वाली नीलसरस्वती का मैं भजन करता हूँ। इस विद्या का चार लाख जप करने के बाद त्रिमधु-प्लुत किंशुक (पलाश) के पुष्पों से कृत जप का दशांश (चालीस हजार) हवन करना चाहिये। अब जिस प्रकार से पीठ पर पूजन किया जाता है, उसे कहता हूँ।।६७-७२।।

आदौ त्रिकोणं षट्कोणमष्टषोडशपत्रकम्।
द्वात्रिंशत्पत्रमन्ते स्याच्चतुःषष्टिदलं तथा।।७३।।
त्रिरेखाढ्यं धरागेहं चतुरस्त्रमतः परम्।
एवं यन्त्रं समालिख्य बाह्यतः पूजनं चरेत्।।७४।।
चतुरस्त्रस्याग्निकोणे विघ्नेशं परिपूजयेत्।
वायुकोणे क्षेत्रपालमैशाने भैरवं तथा।।७५।।
नैर्ऋते योगिनीस्सर्वा वामभागे गुरुं यजेत्।
भूगृहस्याद्यरेखायामणिमा लघिमा तथा।।७६।।
महिमा चेशिता पूज्या वशिता कामरूपिणी।
गरिमा प्राप्तिरित्येताः पूज्याः पूर्वादिदिक्क्रमात्।।७७।।
धरागृहस्य रेखायां द्वितीयायां तु भैरवाः।
भूमिगेहे तृतीयायां रेखायां मातरः पुनः।।७८।।
इत्थमाद्यावृतिं चेष्ट्वा योनिमुद्रां प्रदर्शयेत्।

सर्वप्रथम त्रिकोण, तदनन्तर क्रमशः षट्कोण, अष्टदल, षोडशदल, बत्तीसदल तथा चौंसठदल कमल के पश्चात् त्रिरेखात्मक भूपुर बनाकर इस यन्त्र में बाह्य पूजन करना चाहिये।

भूपुर के बाहर अग्निकोण में गणेश का, वायव्य कोण में क्षेत्रपाल का, ईशान कोण में भैरव का एवं नैर्ऋत्य कोण में समस्त योगिनियों का पूजन करने के बाद यन्त्र के वाम भाग में गुरु का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् भूपुर की प्रथम रेखा में पूर्वादि

दिक्क्रम से अणिमा, लघिमा, महिमा, ईशिता, वशिता, कामरूपिणी, गरिमा एवं प्राप्ति का पूजन करने के बाद भूपुर की द्वितीय रेखा में असिताङ्ग, रुरु, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, कपाली, भीषण और संहारभैरवों का पूजन करना चाहिये।
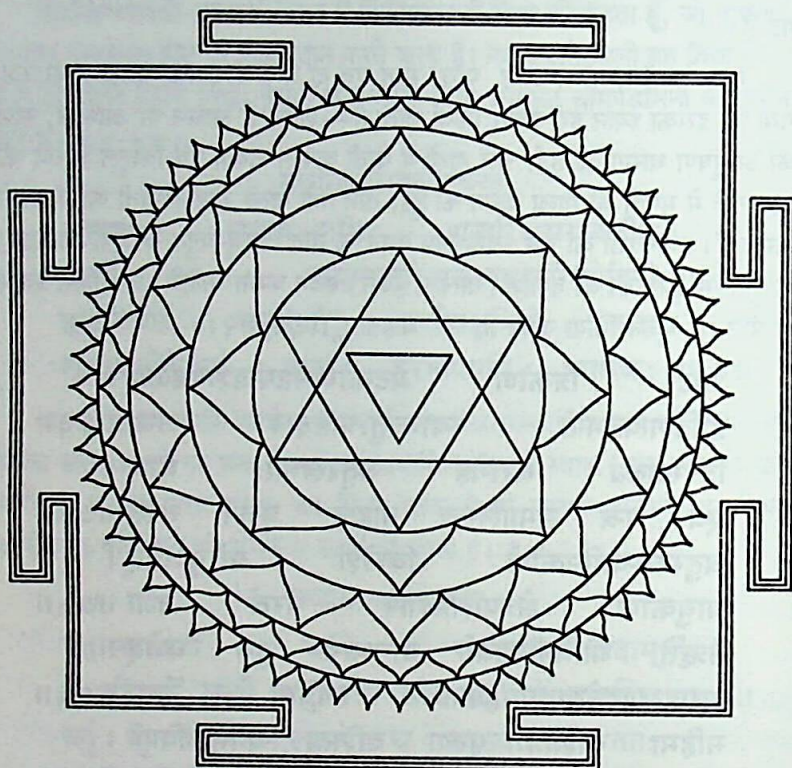
इसके बाद तृतीय रेखा में ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा और महालक्ष्मी—इन आठ मातृकाओं का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार प्रथम आवरण का यजन करने के बाद पुष्पाञ्जलि प्रदान करके योनिमुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिये।।७३-७८।।

चतुःषष्टिदले पद्मे शक्तीरर्च्चेच्च तावतीः ।।७९।।
कुलेशी कुलनन्दा च वागीशा भैरवी तथा।
उमाश्रीशान्तयश्चण्डा धूम्रा काली करालिनी ।।८०।।
महालक्ष्मीश्च कङ्काली रुद्रकाली सरस्वती।
वाग्वादिनी च नकुली भद्रकाली शशिप्रभा ।।८१।।

प्रत्यङ्गिरा सिद्धलक्ष्मीर्ह्यमृतेशी च चण्डिका।
खेचरी भूचरी सिद्धा कामाक्षी हिङ्गुला बला ॥८२॥
जया च विजया चाप्यजिता नित्याऽपराजिता।
विलासिनी तथा घोरा चित्रा मुग्धा धनेश्वरी ॥८३॥
सोमेश्वरी महाचण्डा विद्या हंसी विनायिका।
वेदगर्भा तथा भीमा उग्रा वैद्या च सद्गतिः ॥८४॥
उग्रेश्वरी चन्द्रगर्भा ज्योत्स्ना सत्या यशोवती।
कुलिका मालिनी काम्या ज्ञानवत्यथ डाकिनी ॥८५॥
राकिनी लाकिनी चाथ काकिनी शाकिनी ह्यपि।
हाकिनी च चतुःषष्टिशक्तयः सिद्धिदायिकाः ॥८६॥
दर्शयेत्खेचरीं मुद्रां द्वितीयावरणेऽर्चिते।

तदनन्तर द्वितीय आवरण में चौंसठ दल वाले कमल में सिद्धि प्रदान करने वाली चौसठ योगिनियों का पूजन करना चाहिये। वे योगिनियाँ क्रमशः इस प्रकार हैं— कुलेशी, कुलनन्दा, वागीशा, भैरवी, उमा, श्री, शान्ता, चण्डा, धूम्रा, काली, करालिनी, महालक्ष्मी, कंकाली, रुद्रकाली, सरस्वती, वाग्वादिनी, नकुली, भद्रकाली, शशिप्रभा, प्रत्यङ्गिरा, सिद्धलक्ष्मी, अमृतेशी, चण्डिका, खेचरी, भूचरी, सिद्धा, कामाक्षी, हिङ्गुला, बला, जया, विजया, अजिता, नित्या, अपराजिता, विलासिनी, घोरा, चित्रा, मुग्धा, धनेश्वरी, सोमेश्वरी, महाचण्डा, विद्या, हंसी, विनायिका, वेदगर्भा, भीमा, उग्रा, वैद्या, सद्गति, उग्रेश्वरी, चन्द्रगर्भा, ज्योत्स्ना, सत्या, यशोवती, कुलिका, मालिनी, काम्या, ज्ञानवती, डाकिनी, राकिनी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी एवं हाकिनी। इनका पूजन करने के उपरान्त पुष्पाञ्जलि समर्पित कके प्रणाम करने के पश्चात् खेचरी मुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिये।।७९-८६।।

द्वात्रिंशत्पत्रमध्ये तु पूज्या एतास्तु शक्तयः ॥८७॥
किराता योगिनी वीरा वेताला यक्षिणी हरा।
ऊर्ध्वकेशी च मातङ्गी मोहिनी वंशवर्द्धिनी ॥८८॥
मालिनी ललिता दूती मनोज्ञा पद्मिनी धरा।
शर्वरी छत्रहस्ता च रक्तनेत्रा विचर्चिका ॥८९॥
मातृका दूरदर्शा च क्षेत्रेशी रङ्गिणी नटी।
शान्तिर्वित्या वज्रहस्ता धूम्रा श्वेता सुमङ्गला ॥९०॥
इष्ट्वा तृतीयावरणं बीजमुद्रां प्रदर्शयेत्।

बत्तीस दलों वाले कमल के पत्रों में किराता, योगिनी, वीरा, वेताला, यक्षिणी,

हरा, ऊर्ध्वकेशी, मातङ्गी, मोहिनी, वंशवर्द्धिनी, मालिनी, ललिता, दूती, मनोज्ञा, पद्मिनी, धरा, शर्वरी, छत्रहस्ता, रक्तनेत्रा, विचर्चिका, मातृका, दूरदर्शा, क्षेत्रेशी, रंगिणी, नटी, शान्ति, वित्या, वज्रहस्ता, धूम्रा, श्वेता एवं सुमङ्गला—इन शक्तियों का तृतीय आवरण में पूजन करने के उपरान्त पुष्पाञ्जलि-समर्पण द्वारा प्रणाम काते हुये बीजमुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिये। बीजमुद्रा का स्वरूप इस प्रकार का कहा गया है—

परिवर्त्य करौ स्पृष्ट्वावर्धचन्द्राकृतिं प्रिये।
तज्ज्याङ्गुष्ठयुगलं युगपत्कारयेत्ततः।।
अधः कनिष्ठावष्टब्धे मध्यमे विनियोजयेत्।
तथैव कुटिले योज्यं सर्वाधस्तादनामिके।।
बीमुद्रेयमुदिता सर्वसिद्धिप्रदायनी।।८७-९०।।

ततः षोडशपत्रेषु पूज्याः षोडशशक्तयः ।।९१।।
मुग्धा श्रीः कुरुकुल्ला च त्रिपुरा तु तलक्रिया।
रतिः प्रीतिस्तथा बाला सुमुखी श्यामलाविला ।।९२।।
पिशाची च विदारी च शीतला वज्रयोगिनी।
सर्वेश्वरीति सम्पूज्य सृणिमुद्रां प्रदर्शयेत् ।।९३।।

तदनन्तर षोडश पत्रों में मुग्धा, श्री, कुरुकुल्ला, त्रिपुरा, तलक्रिया, रति, प्रीति, बाला, सुमुखी, श्यामला, आविला, पिशाची, विदारी, शीतला, वज्रयोगिनी एवं सर्वेश्वरी—इन सोलह शक्तियों का चतुर्थ आपरण में पूजन करने के पश्चात् पुष्पाञ्जलि-समर्पण करते हुये प्रणाम करके अंकुशमुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिये।।९१-९३।।

अष्टपत्रे स्वस्वमन्त्रैर्यजेदष्टसरस्वतीः।
नमः पद्मासने पद्मरूपे वाग्भुवनेश्वरी ।।९४।।
कामो वदद्वयं वाग्वादिनि स्वाहा ध्रुवादिकः।
वागीश्वर्या मनुः प्रोक्तश्चतुर्विंशतिवर्णकः।
महाकविर्वर्णलक्षजपात्प्राच्यां च पूजनम् ।।९५।।
हसकलहरायुक्तो ईंकारेण वदद्वयम्।
चित्रेश्वरीति वाग्बीजं स्वाहान्तो द्वादशाक्षरः ।।९६।।
चित्रेश्वर्या मनुर्लक्षजपाच्चित्रकलाप्रदः।
स्त्रीवश्यकृत्तथानेन वह्निकोणे प्रपूजयेत् ।।९७।।
वाग्बीजं कुलजे वाक्च सरस्वत्यनलाङ्गना।
एकादशार्णमन्त्रेण कुलजां दक्षिणेऽर्चयेत् ।।९८।।

वाङ्मायाश्रीं वदद्वन्द्वं कीर्तीश्वर्यनलप्रिया।
त्रयोदशार्णेन यजेन्नैर्ऋत्ये कीर्तिनायिकाम् ॥९९॥
पश्चाद्यजेच्च पूर्वोक्तामन्तरिक्षसरस्वतीम्।
वायव्यकोणे पूर्वोक्तां यजेद् घटसरस्वतीम् ॥१००॥
उदङ्नीलसरस्वत्या नवार्णेन च तां यजेत्।
ईशाने पूजयेत्पूर्वप्रोक्तां किनिसरस्वतीम्।
पञ्चम्यावृत्तिमाराध्य क्षोभमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥१०१॥

अष्टपत्र में आठ सरस्वतियों (वागीश्वरी, चित्रेश्वरी, कुलजा, कीर्तिनायिका, अन्तरिक्षसरस्वती, घटसरस्वती, नीलसरस्वती और किनिसरस्वती) का उनके मन्त्रों से पूजन करना चाहिये। उनमें से वागीश्वरी का चौबीस अक्षरों वाला पूजनमन्त्र इस प्रकार है—ॐ नम: पद्मासने पद्मरूपे ऐं ह्रीं श्रीं वद वद वाग्वादिनि स्वाहा। इस मन्त्र का चौबीस लाख जप करने से साधक महाकवि हो जाता है। इनका पूजन पूर्वदल में करना चाहिये।

चित्रेश्वरी का बारह अक्षरों का पूजन मन्त्र है—हस्क्ल्ह्रीं वद वद चित्रेश्वरि ऐं स्वाहा। इस मन्त्र का एक लाख जप करने से चित्रकला में प्रवीणता के साथ-साथ स्त्री-वशीकरण की शक्ति प्राप्त होती है। इसका पूजन अग्निकोण वाले पत्र में करना चाहिये।

कुलजा का ग्यारह अक्षरों का पूजन मन्त्र है—ऐं कुलजे ऐं सरस्वति स्वाहा। इस मन्त्र से दक्षिणदल में कुलजा का अर्चन करना चाहिये।

कीर्तिनायिका का तेरह अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है—ऐं ह्रीं श्रीं वद-वद कीर्तिश्वरि स्वाहा। इनका पूजन नैर्ऋत्य कोण-स्थित दल में करना चाहिये।

पश्चिमदल में पूर्वोक्त अन्तरिक्षसरस्वती का पूजन करना चाहिये। बारह अक्षरों वाला इनका मन्त्र है—ऐं ह्रीं अन्तरिक्षसरस्वति स्वाहा।

वायव्यकोण-स्थित दल में घटसरस्वती का पूजन करना चाहिये। इनका मन्त्र है—हस्फ्रे ह्स्रौं ह्रौं स्फ्रौं ऐं ह्रीं श्रीं द्रां ह्रीं क्लीं ब्लूं स: घीं घटसरस्वति घटे वद वद तुर तुर रुद्राज्ञया ममाभिलाषं कुरु कुरु स्वाहा।

उत्तर दिक्-स्थित दल में नवार्ण मन्त्र से नीलसरस्वती का पूजन करना चाहिये। नीलसरस्वती का नवार्ण मन्त्र है—ब्लूं वं वद वद त्रीं हुं फट् स्वाहा।

ईशान कोण वाले दल में किनिसरस्वती का पूजन करना चाहिये। इनका नवाक्षर मन्त्र है—ऐं हें ह्रीं किणि किणि विच्चे।

इस प्रकार पञ्चम आवरण का पूजन करने के बाद पुष्पाञ्जलि समर्पित करने के पश्चात् प्रणाम करके क्षोभमुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिये।।९४-१०१।।

तस्य बाह्ये तु षट्कोणे डाकिनी राकिनी तथा।
लाकिनी काकिनी चैव शाकिनी हाकिनी तथा।
दर्शयेद् द्राविणीं मुद्रां षष्ठावरणपूजने ।।१०२।।
त्रिकोणे तद्बहिः पूज्याः परा बाला च भैरवी।
दर्शयेत्कर्षिणीं मुद्रां पूजा चेत्थं प्रकीर्तिता ।।१०३।।
गणेशाय क्षेत्रपाय योगिन्यै भैरवाय च।
तारायै चापि वितरेद्बलिं नित्यं चतुष्पथे ।।१०४।।
परमान्नं च शाकाज्यपायसापूपकादिकान्।
बलिद्रव्यं समाख्यातं येनेष्टं सा प्रयच्छति ।।१०५।।

इसके बाद उसके बाहर षट्कोण के छः कोणों में डाकिनी, राकिनी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी और हाकिनी का षष्ठावरण में पूजन करने के उपरान्त पुष्पाञ्जलि-समर्पण द्वारा प्रणाम करने के बाद द्राविणी मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिये।

तदनन्तर उसके बाहर त्रिकोण के तीनों कोणों में परा, बाला एवं भैरवी का सप्तम आवरण में पूजन करने के बाद आकर्षिणी मुद्रा दिखानी चाहिये। इस प्रकार यह पूजन कहा गया है।

पूजन के बाद प्रतिदिन चौराहे पर गणेश, क्षेत्रपाल, योगिनी, भैरव एवं तारा के लिये बलि प्रदान करनी चाहिये। परमान्न, शाक, आज्य (गोघृत), पायस (खीर), पूआ आदि बलिद्रव्य कहे गये हैं। इनसे बलि प्रदान करने पर वह देवी साधक को उसका अभीष्ट प्रदान करती है।।१०२-१०५।।

अस्या ध्यानं त्रिधा वच्मि सत्त्वादिगुणभेदतः।
श्वेताम्बराढ्यां हंसस्थां मुक्ताभरणभूषिताम्।
चतुर्वक्त्रामष्टभुजैर्दधानां मुद्रिकां भजे ।।१०६।।
वराभये पाशशक्ती ह्यक्षस्त्रक्पुष्पमालिके।
शब्दपाथोनिधौ ध्यायेत्सृष्टिध्यानमुदीरितम् ।।१०७।।
अथ चान्यत्प्रवक्ष्यामि ध्यानं तदवधारय।
रक्ताम्बरां रत्नसिंहासनस्थां हेमभूषिताम् ।।१०८।।
एकवक्त्रां वेदसङ्ख्यैर्भुजैः सम्बिभ्रतीं क्रमात्।

अक्षमालां पानपात्रमभयं वरमुत्तमम्।
श्वेतद्वीपस्थितां ध्यायेत् स्थितिध्यानमितीरितम्॥१०९॥
कृष्णाम्बराढ्यां नौसंस्थामस्थ्याभरणभूषिताम्।
नववक्त्रां भुजैरष्टादशभिर्दधतीं वरम्॥११०॥
अभयं परशुं दर्वीं खड्गं पाशुपतं हलम्।
भिन्दिपालञ्च मुशलं कर्त्रीं शक्तिं त्रिशीर्षकम्॥१११॥
संहारास्त्रं वज्रपाशौ खट्वाङ्गं गदया सह।
रक्ताम्भोधौ स्थितान् ध्यायेत्संहारध्यानमीरितम्॥११२॥
कर्मसु क्रूरसौम्येषु ध्यायेन्मन्त्री तथा तथा।
एवं सिद्धे मनौ मन्त्री गिरा वाचस्पतिर्भवेत्॥११३॥

अब सत्त्व, रज एवं तमरूप गुणभेद से इसके तीन प्रकार के ध्यान को कहता हूँ। श्वेत वस्त्रों से सुशोभित, हंस पर आरूढ़, मोतियों के आभूषण से अलंकृत, चार मुख एवं आठ भुजाओं को धारण करने वाली मुद्रिका को मैं प्रणाम करता हूँ। हाथों में वर अभय पाश शक्ति अक्षमाला एवं पुष्पमाला धारण की हुई देवी का शब्दशास्त्र में ध्यान करना चाहिये। यह सृष्टिध्यान कहलाता है।

अब दूसरे ध्यान को कहता हूँ, सावधान होकर श्रवण करो। रक्त वस्त्र धारण की हुई, रक्त सिंहासन पर विराजमान, स्वर्णाभूषणों से भूषित, एक मुख वाली, चार भुजाओं में क्रमश: अक्षमाला पानपात्र अभय एवं श्रेष्ठ वर धारण की हुई श्वेत द्वीप पर अवस्थित देवी का ध्यान स्थितिध्यान कहलाता है।

कृष्ण वस्त्र से अलंकृत, पोत पर विराजमान, अस्थियों से निर्मित आभरणों से भूषित, नव मुखों वाली, अट्ठारह भुजाओं में वर अभय परशु दर्वी (कलछी) खड्ग पाशुपतास्त्र हल भिन्दिपाल (भाला) मूसल कैंची शक्ति त्रिशीर्षक संहार अस्त्र वज्र पाश खट्वाङ्ग एवं गदा धारण करके रक्तसमुद्र में अवस्थित देवी का ध्यान करना चाहिये। यह संहारध्यान कहलाता है।

मन्त्र-साधक को क्रूर एवं सौम्य कर्मों में उनके अनुरूप ध्यान को करना चाहिये। इस प्रकार से मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर मन्त्रज्ञ साधक अपनी वाणी से वाचस्पति हो जाता है।।१०६-११३।।

दूर्वोत्थया तु लेखन्या रोचनारसयुक्तया।
बालस्याच्छिन्ननालस्य जिह्वायां विलिखेन्मनुम्।
सम्प्राप्ते सोऽष्टमे वर्षे सर्वशास्त्रज्ञतामियात्॥११४॥

अयुतमन्त्रसञ्जप्तां वचां बालस्य कण्ठतः ।
बध्नीयात्पूर्वसम्प्रोक्तं बलिं दत्त्वा विधानतः ।
द्वादशे वत्सरे प्राप्ते भक्षिता सा कवित्वकृत् ॥११५॥
ज्योतिष्मतीभवं तैलं कर्षमात्रं सुमन्त्रितम् ।
उपरागे जलस्थो योऽश्नीयाद्वाचस्पतिर्भवेत् ॥११६॥
चतुष्पथे श्मशाने वा हित्वा लज्जां भयन्तथा ।
जपेच्छवं समारुह्य विद्यां तत्परमानसः ॥११७॥
श्रृणोत्यसावमुं शब्दं निशीथे जपतत्परः ।
पारगो भव विद्यानां सर्वसिद्धिमवाप्नुहि ॥११८॥
विद्वत्कुलसमुद्भूतमष्टवर्षं शिशुद्वयम् ।
उपविश्य तयोर्मूर्ध्नि करौ दत्त्वा जपेन्मनुम् ॥११९॥
वेदान्तन्यायसंयुक्त्या विवदेते उभावपि ।
यः कौतुकी स आश्चर्यं विद्यायाः पश्यतु ध्रुवम् ॥१२०॥
विधाय वेदिकां रम्यां विजने कदलीवने ।
तत्रासीनो जपेद्विद्यामर्कलक्षं विधानतः ॥१२१॥
दासीचालितदोलायामारूढां सुस्मिताननाम् ।
पुन्नागचम्पकाशोकरम्भाविपिनसंस्थिताम् ॥१२२॥
एवं ध्यात्वा भगवतीं बलिं दद्याज्जपान्ततः ।
एवं कुर्वन्नरः सर्वमभीष्टं लभते ध्रुवम् ॥१२३॥
निर्वासा विशिखः प्रेतभूमिस्थो यो जपेन्मनुम् ।
अयुतं कृष्णभूताहे स वाक्सिद्धिमवाप्नुयात् ॥१२४॥
विद्यां सौख्यं धनं पुष्टिमायुः कीर्तिं बलं श्रियम् ।
रूपं कामयमानेन सेव्येयं तु सरस्वती ॥१२५॥

नालच्छेदन किये गये बालक की जिह्वा पर दूर्वा की लेखनी द्वारा गोरोचन के रस से मन्त्र का लेखन करने से आठ वर्ष की अवस्था प्राप्त होने पर वह बालक समस्त शास्त्रों का ज्ञाता हो जाता है।

दस हजार मन्त्रजप से अभिमन्त्रित वच को बालक के कण्ठ में बाँधने के पश्चात् सविधि पूर्वोक्त बलि प्रदान करने के बाद बारह वर्ष की अवस्था प्राप्त हो जाने पर उस बालक द्वारा उक्त वच का भक्षण करने से वह बालक कवि हो जाता है।

ज्योतिष्मती के पन्द्रह ग्राम तेल को ग्रहणकाल में जल में स्थित होकर अभिमन्त्रित करके जो साधक भक्षण करता है, वह वाचस्पति हो जाता है।

जो साधक लज्जा एवं भय का त्याग करके रात्रि में चौराहे पर अथवा श्मशान में जाकर शव पर आरूढ़ होकर मन्त्रमय होकर मन्त्र-जप करता है, उसे 'विद्याओं के पारगामी बनो एवं समस्त सिद्धियों को प्राप्त करो' यह शब्द सुनाई देता है।

विद्वान् के कुल में उत्पन्न आठ वर्ष के दो बालकों को बिंठाकर उनके शिरों पर हाथ रखकर मन्त्रजप करने से वे दोनों बालक आपस में वेदान्त और न्याय-सम्बन्धी शास्त्रार्थ करने लगते हैं। विद्या (मन्त्र) का यह आवेग निश्चय ही आश्चर्योत्पादक है।

केले के निर्जन वन में सुन्दर वेदी का निर्माण करके उसी पर बैठकर विधिपूर्वक इस विद्या का बारह लाख जप करने के बाद दासी द्वारा चालित दोला (झूला) पर सवार होकर पुन्नाग चम्पक अशोक एवं केले के जंगल में विद्यमान मुस्कान-युक्त मुख वाली देवी का ध्यान करके बलि प्रदान करने से मनुष्य निश्चित ही समस्त अभीष्ट को प्राप्त कर लेता है।

जो मनुष्य कृष्णपक्ष की रात्रि में वस्त्र एवं शिखा-रहित होकर श्मशान में बैठकर मन्त्र का दस हजार जप करता है, वह वाक्सिद्धि को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार विद्या, सुख, धन, पुष्टि, आयु, कीर्ति, बल, श्री एवं रूप की कामना वाले को इस सरस्वती की आराधना करनी चाहिये।।११४-१२५।।

त्रिकूटासरस्वतीसाधनम्

अथ लोकेश्वरीं वक्ष्ये त्रिकूटाख्यां सरस्वतीम्।
श्रींह्रींक्लीमिति मन्त्रोऽस्यास्त्रिबीजः परिकीर्तितः ।।१२६।।
मुनयस्त्वस्य सम्प्रोक्ता भृगुसम्मोहनादयः।
छन्दो निवृच्च गायत्री देवी लोकेश्वरी मता ।।१२७।।
ह्रींबीजं क्लीं च शक्तिः स्याद् द्विमन्त्रार्णैः षडङ्गकम्।
ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि नानारत्नचये स्थितः ।।१२८।।
सुवर्णजः कल्पतरुर्मणिकुट्टिमभूमिगः।
तस्याधस्ताद्रत्नमये स्थितां सिंहासनोपरि ।।१२९।।
श्वेतपद्मे समासीनां मणिकुण्डलभूषिताम्।
केयूरहारमुकुटरसनानूपुरान्विताम् ।।१३०।।
पद्मद्वयं पाशवरौ चाङ्कुशेक्षुशरासने।
अभीतिं पुष्पबाणांश्च दधानां करपल्लवैः ।।१३१।।

हेमाभां सप्तदूतीभिस्तरुणीभिः समावृताम्।
चामरादर्शकरकताम्बूलकरचारुभिः ॥१३२॥
प्रसन्नदृष्ट्या पश्यन्ती साधकं त्विति चिन्तयेत्।
सूर्यलक्षं जपेन्मन्त्रं हुनेत्त्रिमधुरान्वितैः ॥१३३॥
राजवृक्षसमिद्भिश्च तद्दशांशं प्रहोमयेत्।
षट्कोणमध्ये देवेशीं कोणेष्वङ्गानि पूजयेत् ॥१३४॥
लक्ष्मीं हरिं पार्वतीं च शङ्करं च रतिं स्मरम्।
पार्श्वद्वये शङ्खपद्मनिधी पूज्यौ तदनन्तरम् ॥१३५॥
ब्रह्मादिभिस्तृतीयं स्यात् स्त्रीरूपैर्लोकपालकैः।
चतुर्थं पञ्चमन्तेषामायुधैरिति पूजनम् ॥१३६॥
ततः काम्यानि कुर्वीत जपेत्सूर्यसहस्त्रकम्।
तावद्धुनेद्बिल्वफलैः सम्पत्तिः परमा भवेत् ॥१३७॥
राजवृक्षसमिद्धोमात् काङ्क्षिताकर्षणं भवेत्।
जपाकुसुमहोमस्तु समस्तजनवश्यकृत् ॥१३८॥
पलाशपुष्पहोमेनात्युत्कृष्टकविता भवेत्।

त्रिकूटा सरस्वती-साधन—अब मैं लोकाधीश्वरी त्रिकूटा सरस्वती को कहता हूँ। इसका त्रिबीजात्मक मन्त्र है—श्रीं ह्रीं क्लीं। इस मन्त्र के ऋषि भृगु-सम्मोहन आदि, छन्द निवृद् गायत्री एवं देवता लोकेश्वरी सरस्वती कहीर गई हैं। इसका बीज ह्रीं एवं शक्ति क्लीं है। तीन बीजों की दो आवृत्ति से इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार किया जाता है—श्रीं हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा, क्लीं शिखायै वषट्, श्रीं कवचाय हुं, ह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्, क्लीं अस्त्राय फट्।

अब इसके ध्यान को कहता हूँ। मणि-जटित भूमि पर अनेक प्रकार के रत्नों के मध्य में सुवर्ण से उत्पन्न कल्पवृक्ष के नीचे रत्नमय सिंहासन पर स्थित श्वेत कमल पर विराजमान देवी मणिमय कुण्डल से भूषित हैं। वे अपने शरीर के तत्तत् स्थानों पर केयूर, हार, मुकुट, काञ्ची एवं नूपुर धारण की हुई हैं। वे अपने कोमल करों में दो कमल, पाश, वर, अंकुश, इक्षुधनुष, अभय, पुष्पबाण ली हुई हैं। सुन्दर हाथों में चँवर, आदर्श (दर्पण), कमण्डलु, ताम्बूल ली हुई सुवर्ण-सदृश आभा वाली सात तरुणी दूतियों से सम्यक् रूप से आवृत हैं और प्रसन्न दृष्टि से साधक को देख रही हैं—इस प्रकार का चिन्तन करते हुये मन्त्र का बारह लाख जप करना चाहिये।

तत्पश्चात् त्रिमधु-सिक्त राजवृक्ष की समिधाओं से कृत जप का दशांश (एक लाख

बीस हजार) हवन करने के बाद षट्कोण के मध्य में देवेशी का पूजन करके कोणों में लक्ष्मी, विष्णु, पार्वती, शंकर, रति एवं कामदेव का पूजन करने के बाद दोनों पार्श्वों में शङ्खनिधि और पद्मनिधि का पूजन करना चाहिये।
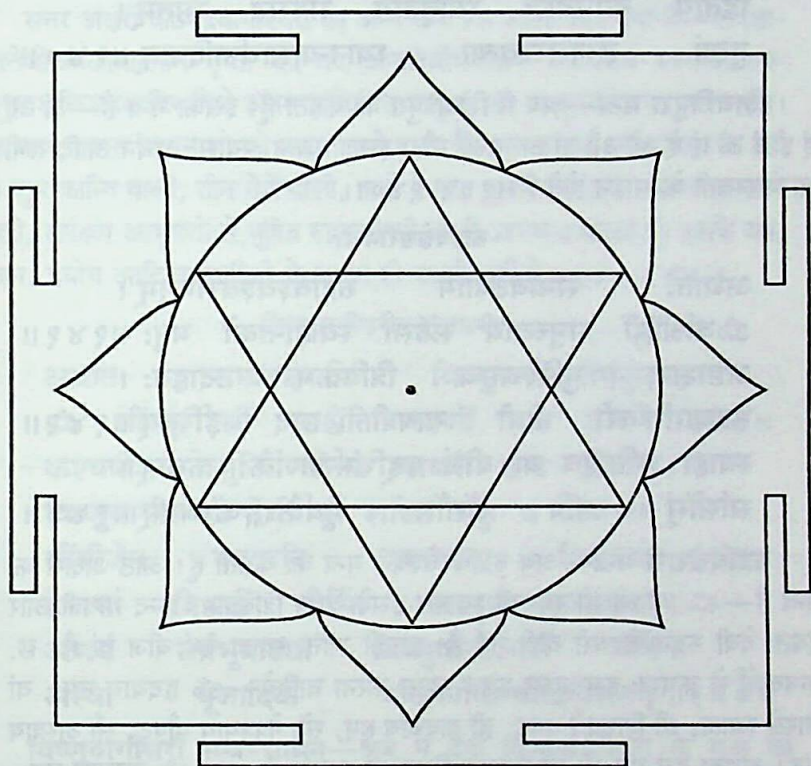
इसके बाद अष्टदल में ब्राह्मी, माहेश्वरी आदि आठ मातृकाओं का पूजन तृतीय आवरण में करके चतुर्थ आवरण में भूपुर में लोकपालों का और पञ्चम आवरण में उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर काम्य कर्मों का सम्पादन करना चाहिये।

मन्त्र का बारह हजार जप करके उतनी ही संख्या में बिल्वफल की आहुतियों द्वारा हवन करने से महती सम्पत्ति की प्राप्ति होती है। राजवृक्ष की समिधा से हवन करने पर इच्छित व्यक्ति का आकर्षण होता है। अड़हुल पुष्प से किया गया हवन समस्त लोगों को वशीभूत करने वाला होता है। पलाशपुष्पों के हवन से उत्कृष्ट कवित्व शक्ति की प्राप्ति होती है।।१२६-१३८।।

शिवत्रिपुरामन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि त्रिपुरां शिवसञ्ज्ञिताम् ।।१३९।।
सबिन्दवो द्वादशैव स्वराः प्रथमबीजकम् ।
द्वितीयं कामबीजं स्यात्तृतीयं सौरिति स्मृतम् ।
तुल्यं ज्ञानसरस्वत्या ध्यानन्यासार्चनादिकम् ।।१४०।।

शिवत्रिपुरा मन्त्र—अब मैं शिवत्रिपुरा को कहता हूँ। इसका मन्त्र है—अं आं इं ईं उं ऊं एं ऐं ओं औं अं अः क्लीं सौः। इसका ध्यान, न्यास, अर्चन आदि सभी ज्ञानसरस्वती के समान होते हैं।।१३९-१४०।।

रुद्रविश्वेश्वरीमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि रुद्रविश्वेश्वरीमनुम् ।
ॐवांश्रींह्रीं समुच्चार्य स्क्रेंसौं स्वाहान्तको मनुः ।।१४१।।
अष्टाक्षरो मुनिश्चास्य त्रिविक्रम उदाहृतः ।
रुद्रवागीश्वरी देवी गायत्री छन्द ईरितम् ।।१४२।।
स्वाहा शक्तिश्च वां बीजं षड्भिर्मन्त्रार्णकैः क्रमात् ।
सांसींसूं चापि सैंसौंसः पूर्वकैरङ्गकल्पनम् ।।१४३।।

रुद्रविश्वेश्वरी मन्त्र—अब रुद्रविश्वेश्वरी मन्त्र को कहता हूँ। आठ अक्षरों का मन्त्र है—ॐ वां श्रीं ह्रीं स्क्रें सौं स्वाहा। इसके ऋषि त्रिविक्रम, छन्द गायत्री और देवता देवी रुद्रवागीश्वरी कही गई हैं। इसकी शक्ति स्वाहा एवं बीज वां है। छ. मन्त्रवर्णों से क्रमशः इस प्रकार षडङ्ग न्यास करना चाहिये—ॐ हृदयाय नमः, वां शिरसे स्वाहा, श्रीं शिखायै वषट्, ह्रीं कवचाय हुम्, स्क्रें नेत्रत्रयाय वौषट्, सौं अस्त्राय फट्। अथवा इस प्रार भी षडङ्गन्यास किया जा सकता है—सां ॐ हृदयाय नमः, सीं वां शिरसे स्वाहा, सूं श्रीं शिखायै वषट्, सैं ह्रीं कवचाय हुम्, सौं स्क्रें नेत्रत्रयाय वौषट्, सः सौं अस्त्राय फट्।।१४३।।

सर्वज्ञामृततेजोज्वालामालिनि तदुत्तरम् ।
तृप्तेत्युक्त्वा वद वद अनादिबोधवज्रिणे ।।१४४।।
वज्रधराय स्वतन्त्रनित्यमलुप्तशक्ति च ।
सहजातिरूपिणे चानन्तशक्तिबलिं वदेत् ।।१४५।।
पशुं हुं फट् पाशुपतास्त्रायेति पदमुच्चरेत् ।
सहस्राक्षायेति मन्त्रः प्रोक्तः सप्ततिवर्णकः ।
सर्वकामप्रदश्चैवं ध्यानमस्या निरूप्यते ।।१४६।।

शुभ्राभां त्रीक्षणां दोर्भिर्बिभ्रतीं फलपुस्तके।
वराभये सर्पभूषां रुद्रवागीश्वरीं भजे।
जपपूजाप्रयोगादि ज्ञेयं वाग्वादिनीसमम्।।१४७।।

सत्तर अक्षरों का रुद्रवागीश्वरी का अन्य मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—सर्वज्ञामृततेजोज्वालामालिनि तृप्ता वद वद अनादिबोधवज्रिणे वज्रधराय स्वतन्त्रनित्यमलुप्तशक्तिसहजातिरूपिणे अनन्तशक्तिंबलिं पशुं हुं फट् पाशुपतास्त्राय सहस्राक्षाय। यह मन्त्र समस्त कामनाओं को प्रदान करने वाला है। अब इसका ध्यान कहा जा रहा है। शुभ्र कान्ति वाली, तीन नेत्रों वाली, हाथों में फल पुस्तक वर एवं भय धारण करने वाली, सर्परूप आभूषणों से भूषित रुद्रवागीश्वरी की मैं आराधना करता हूँ। इसके जप, पूजन, प्रयोग आदि वाग्वादिनी के समान ही जानने चाहिये।।१४४-१४७।।

विष्णुवागीश्वरीमन्त्रसाधनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि विष्णुवागीश्वरीमनुम्।
ॐ श्रीस्फुं श्रीं नमश्चेति षडर्णो मन्त्र उच्यते।।१४८।।
कश्यपोऽस्य मुनिः प्रोक्तो गायत्री छन्द ईरितम्।
विष्णुवागीश्वरी देवी श्रीं शक्तिः स्फुं च बीजकम्।
श्रींबीजेन षडङ्गानि ध्यानमस्या निरूप्यते।।१४९।।
हेमाभां बिभ्रतीं दोर्भिः फलपुस्तककुम्भकान्।
अभयं सर्पभूषाढ्यां विष्णुवागीश्वरीं भजे।
अस्या पूजादिकं षष्ठवर्णवाग्वादिनीसमम्।।१५०।।

विष्णुवागीश्वरी मन्त्र-साधन—अब मैं देवी विष्णुवागीश्वरी के मन्त्र को कहता हूँ। छः अक्षरों का मन्त्र है—ॐ श्रीं स्फुं श्रीं नमः। इस मन्त्र के ऋषि कश्यप, छन्द गायत्री, देवी विष्णुवागीश्वरी, शक्ति श्रीं और बीज स्फुं कहे गये हैं। श्रीं बीज के छः दीर्घ स्वरूपों से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। ध्यान इस प्रकार किया जाता है—स्वर्ण-सदृश कान्तिमान, हाथों में फल पुस्तक कलश एवं अभय धारण की हुई, सर्परूपी आभूषण से अलंकृत देवी विष्णुवागीश्वरी की मैं आराधना करता हूँ। इसका पूजन आदि षडक्षर वाग्वादिनी मन्त्र के समान होता है।।१४८-१५०।।

मुख्यवागीश्वरीमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मुख्यवागीश्वरीमनुम्।
ह्रीं वाचस्पते अमृतप्लूः प्लूंह्रींसौं च संवदेत्।।१५१।।

द्वादशार्णो मन्त्र उक्तो मुनिः कण्ठः प्रकीर्तितः।
विष्णुवागीश्वरी देवी विराट् छन्दः प्रकीर्तितम्॥१५२॥
प्लुः शक्तिर्वाक्च बीजं स्याद्धृत्तु वाचस्पते इति।
अमृतेति शिरः प्रोक्तं प्लूः शिखा प्लूं च वर्मकम्।
वाचस्पते अमृतेति नेत्रं प्लूः प्लूं तथास्त्रकम्॥१५३॥
ध्यानपूजादिकं प्राग्वत्प्रयोगः कथ्यतेऽधुना।
संवत्सरं हविष्याशी सहस्रं प्रत्यहञ्जपेत्॥१५४॥
जपान्ते दशवारञ्च जप्त्वा तेनोदकं पिबेत्।
तेन लोकोत्तरा मेधा जायते नात्र संशयः॥१५५॥
जपेद् गोमूत्रपक्वाशी तिथिलक्षं मनुं त्विमम्।
साज्यकोलसमिद्भिस्तु हुनेदष्टसहस्रकम्।
भूतं भव्यं वर्तमानं सर्वं जानाति साधकः॥१५६॥
कपिलाज्ययुतं ब्राह्मीरसम्प्रातस्तु यः पिबेत्।
चुलुकैकं मन्त्रितं तु दशवारं मलत्रयम्॥१५७॥
धारयेद्वेदशास्त्रादि प्रोक्तञ्च त्वेकवारकम्।
सकृच्छ्रुतन्तु यत्तेन न च विस्मर्यते क्वचित्॥१५८॥

मुख्यवागीश्वरी मन्त्र-साधन—अब मैं मुख्यवागीश्वरी मन्त्र को कहता हूँ। बारह अक्षरों का मुख्यवागीश्वरी का मन्त्र है—ह्रीं वाचस्पते अमृतप्लूः प्लूं ह्रीं सौं। इस मन्त्र के ऋषि कण्ठ, छन्द विराट् एवं देवता विष्णुवागीश्वरी कही गई हैं। शक्ति प्लुः एवं बीज वाक् है। इसका षडङ्ग न्यास इस प्रकार किया जाता है—वाचस्पते हृदयाय नमः, अमृत शिरसे स्वाहा, प्लूः शिखायै वषट्, प्लूं कवचाय हुम्, वाचस्पते अमृत नेत्रत्रयाय वौषट्, प्लूः प्लुं अस्त्राय फट्। इसका ध्यान-पूजन आदि पूर्ववत् ही होता है।

अब प्रयोग को कहता हूँ। एक वर्ष तक हविष्याशी रहकर प्रतिदिन एक हजार मन्त्रजप करने के उपरान्त मन्त्र के दस जप से अभिमन्त्रित जल का पान करने से साधक की धारणा शक्ति लोकोत्तरा हो जाती है; इसमें कोई संशय नहीं है।

गोमूत्र में पाक किये गये अन्न का भोजन करके इस मन्त्र का पन्द्रह लाख जप करने के बाद गोघृताक्त कंकोल की समिधा से आठ हजार हवन करने वाला साधक भूत, भविष्य एवं वर्तमान—तीनों कालों का ज्ञाता हो जाता है।

कपिला गाय के घृत के साथ एक चुल्लू ब्राह्मी रस मिलाकर उसे दस बार मन्त्रजप से अभिमन्त्रित करके जो साधक पान करता है, वह एक बार में ही वेद-

शास्त्र आदि को धारण कर लेता है। वह जो एक बार सुन लेता है, उसे कभी नहीं भूलता।।१५१-१५८।।

पद्मावतीमन्त्र:

अथात: सम्प्रवक्ष्यामि पद्मावत्या मनुं शुभम्।
ह्रीं च पद्मावति स्वाहा सप्तार्ण: परिकीर्तित: ।।१५९।।
ऋषिर्ब्रह्मा च गायत्री छन्द: पद्मावती सुरी।
स्वाहा शक्तिश्च ह्रीं बीजं षड्दीर्घस्वरयुक्तया।
प्रकुर्यान्माययाङ्गानि ध्यानमस्या निरूप्यते ।।१६०।।
रक्तोत्पलकरद्वन्द्वां पद्मस्थां कमलाननाम्।
बन्धूकाभां त्रिनयनां नानाकल्पोज्ज्वलां स्मरेत् ।।१६१।।
शक्तिपीठे यजेद्देवीं पुरोऽङ्गानि च मातृका:।
लोकपालांस्तदस्त्राणि पद्मावत्यर्चनं स्मृतम् ।।१६२।।
लक्षमेकम्पुरश्चर्या दशांशं जुहुयाद्घृतै:।
एवम्मनुं यो भजते सुभग: सर्वयोषिताम्।
पद्मावतीसमान्या तु नास्ति सौभाग्यदा भुवि ।।१६३।

पद्मावती मन्त्र-साधन—अब मैं पद्मावती के शुभ मन्त्र को कहता हूँ। सात अक्षरों का मन्त्र कहा गया है—ह्रीं पद्मावति स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री एवं देवता पद्मावती कही गई हैं। स्वाहा शक्ति एवं ह्रीं बीज है। छ: दीर्घ स्वरों से युक्त मायाबीज (ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्र:) से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये। अब इसका ध्यान कहता हूँ। दोनों हाथों में रक्तकमल धारण की हुई, कमल पर आसीन, कमल-सदृश मुख वाली, बन्धूकपुष्प के समान आभा वाली, तीन नेत्रों वाली, अनेक कल्पों से देदीप्यमान देवी का स्मरण करना चाहिये।

तत्पश्चात् शक्तिपीठ पर देवी का पूजन करने के पश्चात् षडङ्ग-पूजन करके ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं का पूजन करना चाहिये। इसके बाद लोकपालों एवं उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार पद्मावती का पूजन कहा गया है। पूजन यन्त्र में षट्कोण, अष्टदल और भूपुर होते हैं।

इस मन्त्र के पुरश्चरण-हेतु एक लाख मन्त्रजप करके घृत से कृत जप का दशांश (दस हजार) हवन करना चाहिये। जो साधक इस प्रकार इस मन्त्र की आराधना करता है, वह सभी अङ्गनाओं का प्रिय हो जाता है। पद्मावती के समान सौभाग्य प्रदान करने वाली दूसरी कोई देवी नहीं है।।१५९-१६३।।

अश्वारूढामन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि ह्यश्वारूढां महामनुम्।
तारमुक्त्वा तथा चैहि परमेश्वर्यग्निगेहिनीम्॥१६४॥
दशार्णोऽयं मुनिर्ब्रह्मा विराट् छन्दश्च देवता।
अश्वारूढा षडङ्गानि ताराद्यैस्त्रिपदैर्द्विधा॥१६५॥
अश्वारूढां चन्द्रभालां त्र्यक्षां पाशेन साध्यकम्।
बध्वानयन्तीं वामेन दक्षे कनकवेत्रिकाम्॥१६६॥

अश्वारूढा मन्त्र-साधन—अब मैं अश्वारूढ़ा के महामन्त्र को करता हूँ। दस अक्षरों का मन्त्र है—ॐ एहि परमेश्वरि स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द विराट् और देवता अश्वारूढ़ा हैं। ॐ आदि तीन पदों की दो आवृत्ति से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। तदनन्तर अश्व पर सवार, मस्तक पर चन्द्रमा को धारण करने वाली, तीन नेत्रों वाली, साध्य को पाश से बाँधकर बाँयें हाथ से लाती हुई, दाहिने हाथ में सुवर्णदण्ड धारण की हुई देवी का ध्यान करना चाहिये।।१६४-१६६।।

शक्तिपीठे यजेद्देवीं पुरोऽङ्गानि प्रपूजयेत्।
मातृरिन्द्रादिदिग्बाह्ये तदस्त्राणि ततो बहिः॥१६७॥
जपेदयुतसङ्ख्याकं दशांशं जुहुयाद्घृतः।
तर्पणादि ततः कुर्यात्पूर्वोक्तविधिना सुधीः।
इत्थं ध्यात्वैव सकलं विश्वं वशयतेऽचिरात्॥१६८॥
आज्यान्नं जुहुयान्मन्त्री लभते वाञ्छितं फलम्।
त्रिमध्वक्तैस्तथा लोनैर्वश्या भूपा हुनेत्तु यः॥१६९॥
पूर्वोक्तेन विधानेन वश्याः स्युर्वनिता अपि।
अनया विद्यया सर्पिर्होमः काञ्चनदो मतः॥१७०॥
त्रिस्वांदुभिः सहस्रं च हुनेत्स्त्रीवशसिद्धये।
पूर्वोक्तेनैव होमेन नारीमाकर्षयेद् ध्रुवम्॥१७१॥

तत्पश्चात् शक्तिपीठ पर देवी का यजन करने के बाद षडङ्ग-पूजन करना चाहिये। उसके बाद ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं का अष्टदल में पूजन करने के बाद उसके बाहर भूपुर में लोकपालों का यजन करके उसके बाहर उनके आयुधों का अर्चन करना चाहिये। पूजन-यन्त्र में षट्कोण, अष्टदल और भूपुर होते हैं।

पूजन के अनन्तर विद्वान् साधक को मन्त्र का दस हजार जप करके कृत जप का दशांश (एक हज़ार) घृत से हवन करना चाहिये। इसके बाद पूर्वोक्त विधि से तर्पण

आदि करना चाहिये। ऐसा करके साधक सम्पूर्ण विश्व को शीघ्र ही वशीभूत कर लेता है।

गोघृत एवं अन्न के हवन से साधक वाञ्छित फल प्राप्त करता है। त्रिमधु-सिक्त नमक के हवन से राजा वशीभूत होते हैं। जो साधक पूर्वोक्त विधान से हवन करता हैं, वनितायें भी उसके वशीभूत हो जाती हैं। इस विद्या द्वारा गोघृत से किया गया हवन सुवर्ण प्रदान करने वाला कहा गया है। स्त्री-वशीकरण की सिद्धि के लिये त्रिमधु (मधु, गुड़ और घी) से एक हजार हवन करना चाहिये। इस हवन से नारियों का आकर्षण भी होता है।।१६७-१७१।।
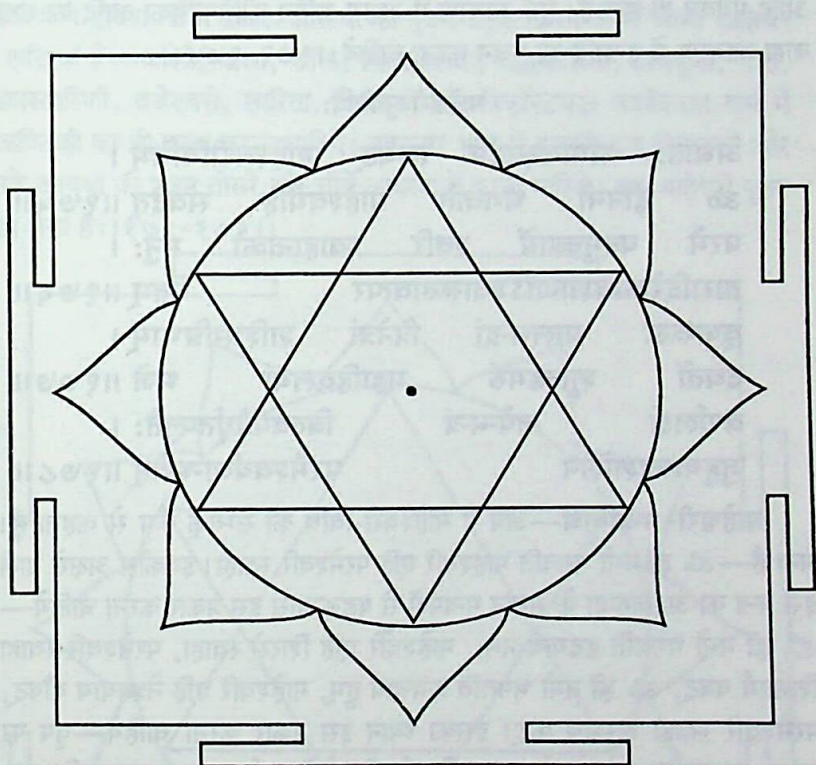
तारादिरथ मायादिरयमेकादशार्णकः।
षड्दीर्घमाययैवास्य षडङ्गविधिरीरितः ।।१७२।।
ॐ ॐ ह्रीं क्रोंपूर्वकोऽयं प्रोक्तो विश्वमितार्णकः।
द्विभूभूत्रीषुयुग्मैश्च षडङ्गविधिरीरितः ।।१७३।।
पञ्चलक्षं पुरश्चर्या पूजाद्यं पूर्ववन्मतम्।

पूर्वे चावरणे प्रोक्ताः साक्षयाः कीर्तिनायिकाः ।
इन्द्रादिबाह्यावरणे प्रोक्तो ब्राह्मया विधिस्त्वयम् ॥१७४॥

ग्यारह अक्षरों का इसका अन्य मन्त्र इस प्रकार है—ॐ ह्रीं एहि परमेश्वरि स्वाहा। मायाबीज के छः दीर्घ स्वरूपों (ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः) से इसका षडङ्गन्यास कहा गया है। चौदह अक्षरों का एक अन्य मन्त्र है—ॐ ॐ ह्रीं क्रों ह्रीं एहि परमेश्वरि स्वाहा। मन्त्र के दो, एक, एक, तीन, पाँच एवं दो वर्णों से इसका षडङ्ग न्यास कहा गया है। पाँच लाख जप से इसका पुरश्चरण किया जाता है। इसके पूजन आदि पूर्ववत् ही होते हैं। पूर्व आवरण में अक्षय-सहित कीर्तिनायिका आदि का तथा बाह्य आवरण में इन्द्रादि का पूजन करना चाहिये।।१७२-१७४।।

माहेश्वरीमन्त्रविधिः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सम्यङ् माहेश्वरीविधिम् ।
ॐ ह्रींनमो भगवति माहेश्वर्येहि संवदेत् ॥१७५॥
परमे पदमुच्चार्ये श्वरि स्वाहान्तको मनुः ।
तारादिरेकविंशार्णोऽश्वारूढावत्परं मतम् ॥१७६॥
वृषारूढां भालचन्द्रां त्रिनेत्रां शशिसन्निभाम् ।
दधतीं शूलडमरुं महाहिवलयां भजे ॥१७७॥
वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं बिल्वपत्रैर्घृतप्लुतैः ।
जुहुयात्तद्दशांशेन परमैश्वर्यवान्भवेत् ॥१७८॥

माहेश्वरी-मन्त्रविधि—अब मैं माहेश्वरी-विधि को सम्यक् रूप से कहता हूँ। मन्त्र है—ॐ ह्रीं नमो भगवति माहेश्वरि एहि परमेश्वरि स्वाहा। इक्कीस अक्षरों वाले इस मन्त्र का अश्वारूढ़ा के समान मन्त्रपदों से षडङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—ॐ ह्रीं नमो भगवति हृदयाय नमः, माहेश्वरि एहि शिरसे स्वाहा, परमेश्वरि स्वाहा शिखायै वषट्, ॐ ह्रीं नमो भगवति कवचाय हुम्, माहेश्वरि एहि नेत्रत्रयाय वौषट्, परमेश्वरि स्वाहा अस्त्राय फट्। इसका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—वृष पर सवार, मस्तक पर चन्द्रमा को धारण की हुई, तीन नेत्रों वाली, चन्द्र-सदृश कान्तिमान, हाथों में त्रिशूल एवं डमरु धारण की हुई, नागराज का वलय (कंकण) धारण की हुई देवी की मैं आराधना करता हूँ।

इस मन्त्र का वर्णलक्ष (इक्कीस लाख) जप करके घृताक्त बेलपत्रों से कृत जप का दशांश (दो लाख दस हजार) हवन करना चाहिये। ऐसा करने से साधक महान् ऐश्वर्यशाली हो जाता है।।१७५-१७८।।

आदावङ्गानि सम्पूज्य राशिपत्रे ततो यजेत्।
आदौ बालां तथा शक्तिं नित्यक्लिन्नाग्निवासिनीम् ॥१७९॥
अन्नपूर्णां तथा गौरीं वज्रप्रस्तारिणीमपि।
वज्रेश्वरीं च त्वरितां शिवदूतीं त्रिकण्टिकाम् ॥१८०॥
वश्ये त्रिकण्टिकीं चापि स्वस्वमन्त्रैः समर्चयेत्।
ततो दिक्पांस्तदस्त्राणि चेत्थं माहेश्वरी मता ॥१८१॥

सर्वप्रथम प्रथम आवरण में षट्कोण में षडङ्गपूजन करने के उपरान्त द्वितीय आवरण में द्वादशपत्रों में द्वादश शक्तियों का पूजन उनके नाममन्त्रों से करना चाहिये। वे शक्तियाँ हैं—काली, बाला, शक्ति, नित्यक्लिन्ना, वह्निवासिनी, अन्नपूर्णा, गौरी, वज्रप्रस्तारिणी, वज्रेश्वरी, त्वरिता, शिवदूती और त्रिकण्टिका। वशीकरण कर्म में त्रिकण्टिकी का भी पूजन करना चाहिये। तदनन्तर भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन तीसरे और चौथे आवरण में करना चाहिये। यही माहेश्वरी पूजन कहा गया है।।१७९-१८१।।

बालामन्त्राणां निरूपणम्
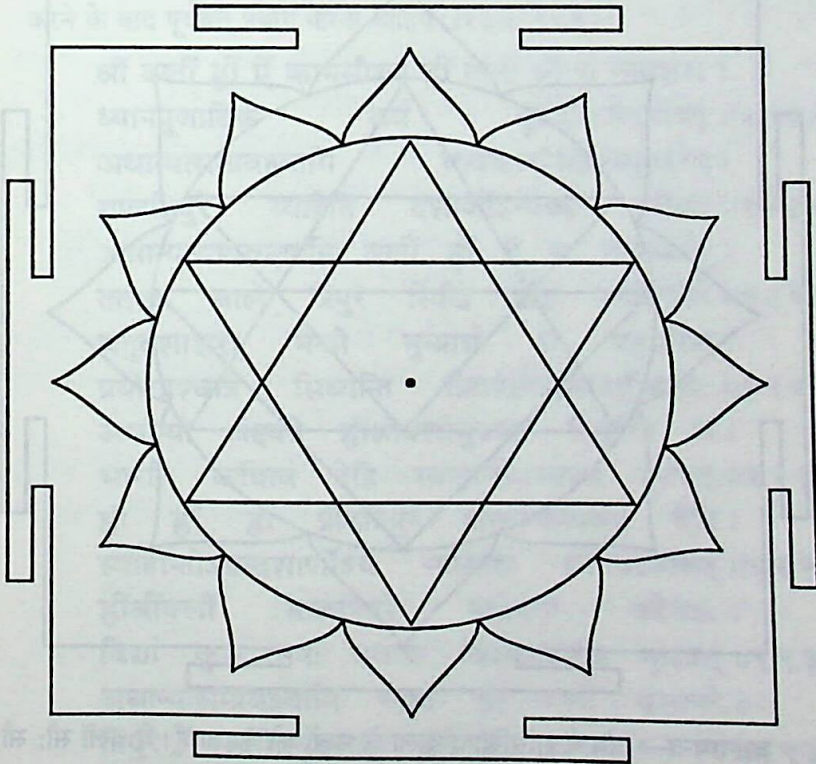
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि बालामन्त्रान् सुसिद्धिदान्।
वाक्कामसौस्त्रिबीजानि सौः क्लींऐं च पुनः पठेत् ॥१८२॥
षडर्णोऽयं मनुः प्रोक्तो दक्षिणामूर्तिको मुनिः।
गायत्री छन्द उद्दिष्टं देवी त्रिपुरबालिका ॥१८३॥
पाशाङ्कुशौ पुस्तकाक्षसूत्रे च दधती करैः।
रक्ता त्र्यक्षा चन्द्रभाला ध्येया बाला सुरार्चिता ॥१८४॥
न्यासानत्र प्रकुर्वीत षडङ्गान्मातृकासमान्।
जपेल्लक्षं दशांशेन होमः पुष्पैर्हयारिजैः ॥१८५॥
पूजा पूर्वोदिते पीठेऽनङ्गे रत्यादिसायकैः।
प्रभादिभिर्दिगीशास्त्रैः प्रयोगः पूर्ववन्मतः ॥१८६॥
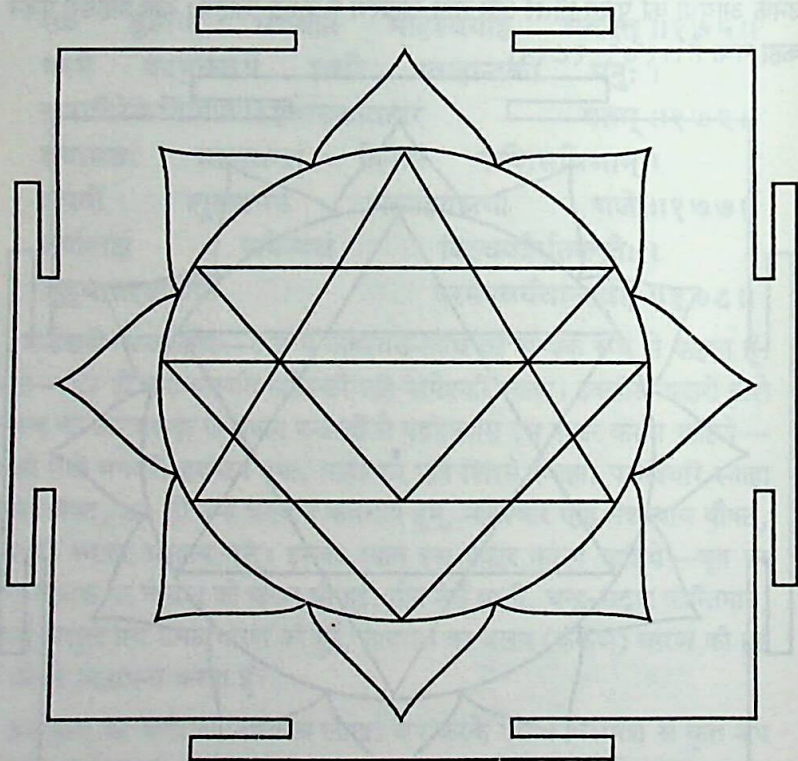
बालामन्त्र—अब मैं सुसिद्धिप्रद बाला के मन्त्रों को कहता हूँ। ऐं क्लीं सौः सौः

क्लीं ऐं—यह छः अक्षरों का मन्त्र कहा गया है। इसके ऋषि दक्षिणामूर्ति, छन्द गायत्री एवं देवता त्रिपुरबालिका कही गई हैं। हाथों में पाश अंकुश पुस्तक एवं अक्षसूत्र धारण की हुई, रक्त वर्ण वाली, तीन नेत्रों वाली, मस्तक पर चन्द्रमा से अलंकृत, देवताओं द्वारा पूजित बाला का ध्यान करना चाहिये।

मन्त्र के छः वर्णों से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् एक लाख मन्त्रजप करने के बाद कनैल के पुष्पों से कृत जप का दशांश (दस हजार) हवन करना चाहिये।

पूर्वोक्त अनङ्गपीठ पर मध्य त्रिकोण में रति, प्रीति, मनोभवा का पूजन करके आग्नेयादि चार कोणों, मध्य और दिशाओं में षडङ्ग-पूजन करना चाहिये। मध्ययोनि के बाहर दिशाओं में तथा आगे काम, मन्मथ, कन्दर्प, मकरध्वज एवं मीनकेतु का पूजन करके इन्हीं स्थानों में बाणदेवियों—द्राविणी, क्षोभिणी, वशीकरिणी, आकर्षिणी एवं सम्मोहिनी का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर आठ त्रिकोणों में सुभगा, भगा, भगसर्पिणी, भगमालिनी, अनङ्गा, अनङ्गकुसुमा, अनङ्गमेखला एवं अनङ्गमदना का पूजन करने के उपरान्त भूपुर में इन्द्रादि दस दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन करने के बाद पूर्ववत् प्रयोग करना चाहिये।।१८२-१८६।।

श्रीं क्लीं ह्लीं ऐं कामसौश्च ह्लीं क्लीं श्रीं च नवाक्षरः।
ध्यानपूजादिकं सर्वं पूर्वप्रोक्तषडर्णवत् ।।१८७।।
अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि वाक्कामौसौस्समुच्चरेत्।
बालत्रिपुरे स्वाहेति दशार्णोऽन्यच्च पूर्ववत् ।।१८८।।
अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि क्लीं ह्लीं ऐं च समुच्चरेत्।
ततश्च बाले त्रिपुरे सिद्धिं देहि नमस्त्विति ।।१८९।।
चतुर्दशाक्षरो मन्त्रो मुन्याद्यं च षडर्णवत्।
प्रयोगाश्चात्र सिध्यन्ति त्रिवर्णोक्तास्तथाखिलाः ।।१९०।।
अथान्यो वक्ष्यते ह्लींश्रीक्लीमुक्त्वा त्रिपुरेति च।
भारति कवित्वं देहि स्वाहान्तोऽन्यच्च पूर्ववत् ।।१९१।।
ह्लीं ह्लीं ह्लीं प्रौढत्रिपुरे ह्यारोग्यमैश्वर्यं देहि।
स्वाहान्तोऽष्टादशार्णोऽयं न्यासाद्यं स्यात्षडर्णवत् ।।१९२।।
ह्लींश्रींक्लीं बालत्रिपुरे मदायत्तां वदेत्ततः।
विद्यां कुरु नमः स्वाहा विंशत्यर्णश्च पूर्ववत् ।।१९३।।
अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि मायां श्रीं क्लीं परात्परे।
त्रिपुरे सर्वमित्युक्त्वा ईप्सितं साधयेति च ।।१९४।।

स्वाहा विंशतिवर्णोऽयं मुन्याद्यन्तु षडर्णवत्।
सिद्धे मन्त्रे लक्षजपादभीष्टं सिध्यति ध्रुवम् ॥१९५॥
अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि क्लीं क्लीं श्रीं च ह्रींद्वयम्।
त्रिपुरे ललिते प्रोच्य मदीप्सितां च योषितम् ॥१९६॥
देहि वाञ्छितमित्युक्त्वा कुरु ज्वलनकामिनीम्।
अष्टाविंशतिवर्णोऽयं श्रीदः सर्वन्तु पूर्ववत् ॥१९७॥

नव अक्षरों का अन्य मन्त्र है—श्रीं क्लीं ह्रीं ऐं क्लीं सौः ह्रीं क्लीं श्रीं। इस मन्त्र के ध्यान-पूजन आदि सबकुछ पूर्वोक्त षडर्ण मन्त्र के समान होते हैं।

अब अन्य मन्त्र को कहता हूँ। दशाक्षर मन्त्र है—ऐं क्लीं सौः बालत्रिपुरे स्वाहा। इसके ध्यान आदि अन्य समस्त विधान पूर्ववत् ही होते हैं।

चौदह अक्षरों का अन्य मन्त्र है—क्लीं ह्रीं ऐं बाले त्रिपुरे सिद्धिं देहि नमः। इस मन्त्र के ऋषि आदि षडक्षर मन्त्र के समान ही कहे गये हैं। त्र्यक्षर मन्त्र में कथित समस्त प्रयोग इस मन्त्र से सिद्ध होते हैं।

सोलह अक्षरों का अन्य मन्त्र है—ह्रीं श्रीं क्लीं त्रिपुरे भारति कवित्वं देहि स्वाहा। इसके न्यास-ध्यान-ऋषि आदि सबकुछ पूर्ववत् होते हैं।

अट्ठारह अक्षरों का अन्य मन्त्र है—ह्रीं ह्रीं ह्रीं प्रौढ़त्रिपुरे आरोग्यमैश्वर्य्यं देहि स्वाहा। इसके न्यास आदि षडक्षर मन्त्र के समान होते हैं।

बीस वर्णों का अन्य मन्त्र है—ह्रीं श्रीं क्लीं बालत्रिपुरे मदायत्तां विद्यां कुरु नमः स्वाहा। इसके भी न्यासादि पूर्ववत् ही होते हैं।

बीस अक्षरों वाला अन्य मन्त्र है—ह्रीं श्रीं क्लीं परात्परे त्रिपुरे सर्वमीप्सितं साधय स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि आदि षडक्षर मन्त्र के समान कहे गये हैं। एक लाख जप द्वारा मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर निश्चित ही अभीष्टसिद्धि होती है।

अट्ठाईस अक्षरों का अन्य मन्त्र है—ॐ क्लीं क्लीं श्रीं ह्रीं ह्रीं त्रिपुरे ललिते मदीप्सितां योषितं देहि वाञ्छितं कुरु स्वाहा। इस श्रीप्रद मन्त्र के ऋषि-न्यासादि सबकुछ पूर्ववत् ही होते हैं।।१८७-१९७।।

अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि शक्तेरष्टाक्षरं मनुम्।
आं श्रीं ह्रीं क्लींक्लीं च ह्रीं च श्रीममष्टाक्षरो मनुः ॥१९८॥
अजो मुनिश्च गायत्री छन्दः शक्तिश्च देवता।
स्त्रीवश्याकर्षणादौ च विनियोग उदाहृतः ॥१९९॥

षड्दीर्घमाययाङ्गानि सर्वैरष्टाङ्गमीरितम्।
हृच्छिरश्च शिखा वर्म नेत्रास्त्रोदरपृष्ठकम्।
अष्टाङ्गं विन्यसेन्मन्त्रं मूलेन व्यापकं चरेत्॥२००॥
आनन्दरूपिणीं देवीं पाशाङ्कुशधनुःशरान्।
बिभ्रतीं दोर्भिररुणां कुचाढ्यां हृदि भावयेत्॥२०१॥
शाक्ते पीठे यजेद्देवीं हृल्लेखादिभिरङ्गकैः।
मातृभिर्लोकपालैश्च वज्राद्यैः पञ्चमावृतिः॥२०२॥
अष्टलक्षं जपेत्साज्यैर्दशांशं जुहुयात्तिलैः।

अब शक्ति के अन्य अष्टाक्षर मन्त्र को कहता हूँ। अष्टाक्षर मन्त्र है—आं श्रीं ह्रीं क्लीं क्लीं ह्रीं श्रीं अं। इस मन्त्र के ऋषि अज, छन्द गायत्री और देवता शक्ति कहे गये हैं। स्त्री-वशीकरण, आकर्षण आदि के लिये इसका विनियोग कहा गया है। मायाबीज (ह्रीं) के छः दीर्घ स्वरूपों (ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः) से इसका षडङ्गन्यास करने के पश्चात् मन्त्र के प्रत्येक आठ वर्णों का हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र, अस्त्र, उदर, पीठ—इन आठ अङ्गों में न्यास करने के बाद मूल मन्त्र से व्यापक न्यास करना चाहिये। तदनन्तर हृदय में हाथों में पाश अंकुश धनुष बाण धारण की हुई, स्तनों से सुशोभित, रक्त वर्ण वाली आनन्दस्वरूपिणी देवी का ध्यान करना चाहिये।

शाक्त पीठ पर देवी का अर्चन करके ह्रीं आदि से षडङ्ग-पूजन करने के पश्चात् अष्टमातृकाओं, दिक्पालों एवं उनके वज्रादि आयुधों का पूजन पाँच आवरणों में करना चाहिये। इस मन्त्र का आठ लाख जप करके कृत जप का दशांश (अस्सी हजार) हवन आज्य-मिश्रित तिल से करना चाहिये।।१९८-२०२।।

नित्यक्लिन्नामथो वच्मि नित्यक्लिन्ने मदद्रवे॥२०३॥
नमश्चेति दशार्णोऽयं मुनिरत्रिः प्रकीर्तितः।
नित्यक्लिन्ना देवता च त्रिष्टुप् छन्द उदाहृतम्॥२०४॥
नित्याद्यैर्हृदयं स्वाहा साम्नायैः शिर ईरितम्।
क्लिन्ने स्वाहा शिखा नित्यक्लिन्ने च कवचं मतम्॥२०५॥
नित्यक्लिन्ने नमश्चास्त्रं ध्यानं पूर्ववदाचरेत्।
पूजादिकमथो मन्त्री पूर्ववत्परिकल्पयेत्॥२०६॥
एकलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं हुनेत्तिलैः।
तर्पणादि ततः कुर्यात्पूर्वोक्तविधिना सुधीः।
प्राग्वत्प्रयोगाः सेव्येयं दारिद्र्ये सुखकारिणी॥२०७॥

नित्यक्लिन्ना मन्त्र—अब नित्यक्लिन्ना को कहता हूँ। नित्यक्लिन्ना का दशाक्षर मन्त्र है—नित्यक्लिन्ने मदद्रवे नमः। इस मन्त्र के ऋषि अत्रि, छन्द त्रिष्टुप् एवं देवता नित्यक्लिन्ना कही गई हैं।

इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार किया जाता है—नित्यक्लिन्ने हृदयाय नमः, स्वाहा शिरसे स्वाहा, क्लिन्ने स्वाहा शिखायै वषट्, नित्यक्लिन्ने कवचाय हुम्, नित्यक्लिन्ने नमः अस्त्राय फट्। पूर्ववत् इसका ध्यान करना चाहिये। मन्त्रज्ञ साधक को पूजन आदि भी पूर्ववत् करना चाहिये।

मन्त्र का एक लाख जप करके उसका दशांश तिलों से हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् विद्वान् साधक को पूर्वोक्त विधि से तर्पण आदि करने के बाद प्रयोगादि भी पूर्ववत् करना चाहिये। उपासना करने पर यह विद्या दरिद्रता में भी सुखकारिणी होती है।।२०३-२०७।।

अथातो वह्निवासिन्या नवार्णो मनुरुच्यते।
ॐ ह्रीं च वह्निवासिन्यै नमश्चेति मुनिर्मतः ॥२०८॥
वसिष्ठश्च तथा छन्दो गायत्री देवता त्वियम्।
शक्तिबीजन्तु शक्तिः स्यात्कीलकं मध्यमेरितम् ॥२०९॥
विद्याद् द्वितीयबीजेन दीर्घस्वरयुता सुधीः।
मायान्तेन षडङ्गानि कुर्यान्मन्त्री कराङ्गयोः ॥२१०॥
नेत्रयोः कर्णयोर्नासाकपोलास्यध्वजे गुदे।
मन्त्राक्षराणि विन्यस्य सर्वेण व्यापकं चरेत् ॥२११॥
तप्तकाञ्चनसङ्काशां नवयौवनसुन्दरीम्।
चारुस्मेरमुखाम्भोजां विलसन्नयनत्रयाम् ॥२१२॥
अष्टभिर्बाहुभिर्युक्तां माणिक्याभरणोज्ज्वलाम्।
वामहस्तेषु रत्नाब्जं शङ्खं पुण्ड्रेक्षुजं धनुः ॥२१३॥
ग्लौमण्डलं दक्षिणेषु कह्लारं हेमशृङ्गकम्।
पुष्पेष्टं मातुलुङ्गं च स्वसमानसखीवृताम् ॥२१४॥

वह्निवासिनी-मन्त्र—अब देवी वह्निवासिनी के नवार्ण मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—ॐ ह्रीं वह्निवासिन्यै नमः। इस मन्त्र के ऋषि वशिष्ठ, छन्द गायत्री, देवता वह्निवासिनी, शक्ति शक्तिबीज एवं कीलक ह्वां कहा गया है। विद्वान् साधक को ह्रीं वीज के दीर्घ स्वरयुक्त छः स्वरूपों (ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः) के अन्त में मायाबीज (ह्रह) लगाकर इस प्रकार कराङ्गन्यास करना चाहिये—ह्रां ह्रीं अंगुष्ठाभ्यां नमः हृदयाय नमः;

ह्रीं ह्रीं तर्जनीभ्यां नम: शिरसे स्वाहा; ह्रूं ह्रीं मध्यमाभ्यां नम: शिखायै वषट्; ह्रैं ह्रीं अनामिकाभ्यां नम: कवचाय हुम्; ह्रौं ह्रीं कनिष्ठाभ्यां नम: नेत्रत्रयाय वौषट्; ह्र: ह्रीं करतलकरपृष्ठाभ्यां नम: अस्त्राय फट्। तदनन्तर मन्त्र के एक-एक अक्षरों का क्रमश: दोनों नेत्र, दोनों कर्ण, दोनों नासाछिद्र, कपोल, मुख एवं गुदा में न्यास करने के बाद सम्पूर्ण मन्त्र से व्यापक न्यास करना चाहिये।

तप्त सुवर्ण-सदृश कान्तिमान, युवावस्थापन्न सुन्दरी, मनोहर मुस्कानयुक्त मुखकमल वाली, तीन नेत्रों से विलास करने वाली, आठ भुजाओं वाली, माणिक्य-निर्मित आभूषणों से दीप्तिमान, बाँयें हाथों में रत्नकमल शंख इक्षुधनुष एवं चन्द्रमण्डल को तथा दाहिने हाथ में कह्लारपुष्प स्वर्णशृङ्ग इष्टपुष्प एवं मातुलुङ्ग धारण की हुई, अपने ही समान सखियों से चारो ओर से घिरी देवी का ध्यान करना चाहिये।।२०८-२१४।।

नवकोणे कर्णिकायामादावङ्गानि चार्चयेत्।
अष्टयोनिषु सम्पूज्यास्तदग्रास्तु प्रदक्षिणम्।।२१५।।
ज्वालिनी विश्वलिङ्ग्यन्या मङ्गला च मनोहरा।
कमला कितवा विश्वा विविधा चेति शक्तय:।।२१६।।
तद्बहिर्द्वादशदले सम्पूज्या राशिशक्तय:।
मेषा वृषा च मिथुना कर्कटाद्याश्च ता मता:।।२१७।।
दशदिक्षु तथा चाग्रे दशशक्ती: प्रपूजयेत्।
घस्मरां सर्वभक्षां च विश्वाख्यां विविधोद्भवाम्।।२१८।।
चित्ररूपां निस्सपत्नां निरातङ्कां च पावनीम्।
अचिन्त्यां वै भवस्तुतां तदग्रे लोकपालकान्।।२१९।।
तदस्त्राणीति पूजोक्ता देव्या: सर्वसमृद्धिदा।
एकलक्षं जपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयाद्घृतै:।।२२०।।
तर्पणं मार्जनं कृत्वा ब्राह्मणाराधनं तथा।
सिद्धमन्त्र: प्रकुर्वीत प्रयोगान्निजवाञ्छितान्।।२२१।।

छ: आवरणों में इनका पूजन किया जाता है। कर्णिका के मध्य बिन्दु में देवी का पूजन करने के बाद उसके अग्नि, ईशान, नैर्ऋत्य, वायव्य, पूर्व और पश्चिम में षडङ्ग-पूजन करना चाहिये। तदनन्तर आठ त्रिकोणों में पूर्वादि प्रदक्षिणक्रम से ज्वालिनी, विश्वलिङ्गिनी, मङ्गला, मनोहरा, कमला, कितवा, विश्वा एवं विविधा—इन आठ शक्तियों का पूजन करना चाहिये। फिर उसके बाहर द्वादशदल में बारह शक्तियों का पूजन करना चाहिये; वे हैं—मेषशक्ति, वृषशक्ति, मिथुनशक्ति, कर्कशक्ति,

सिंहशक्ति, कन्याशक्ति, तुलाशक्ति, वृश्चिकशक्ति, धनुशक्ति, मकरशक्ति, कुम्भशक्ति, मीनशक्ति। इसके बाद द्वादशदल और भूपुर के अन्तराल की दशो दिशाओं में इन दस शक्तियों का पूजन करना चाहिये—घस्मरा, सर्वभक्षा, विश्वा, विविधोद्भवा, चित्ररूपा, निस्सपत्ना, निरातङ्का, पावनी, अचिन्त्या एवं भवस्तुता। इसके बाद भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों और उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार से देवी का पूजन करने पर वे समस्त समृद्धियाँ प्रदान करती हैं।
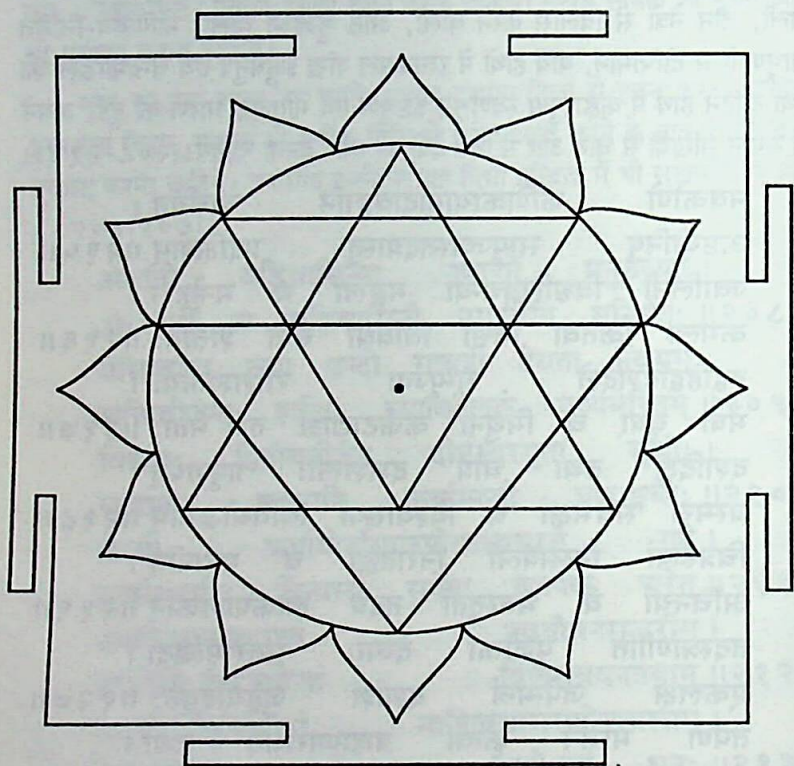
पूजनोपरान्त मन्त्र का एक लाख जप करने के बाद घृत से कृत जप का दशांश (दश हजार) हवन करना चाहिये। इसके बाद तर्पण एवं मार्जन करके ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये। इस प्रकार के सिद्ध मन्त्र से अपने अभीष्ट प्रयोगों का साधन करना चाहिये।।२१५-२२१।।

काम्यहोमविधिं वक्ष्ये सम्यग्वाञ्छितदायकम्।
शालितण्डुलमादाय प्रस्थं भाण्डे नवे क्षिपेत्॥२२२॥

तत्फूत्कृत्य सुसंस्कृत्य विद्ययाष्टोत्तरं शतम्।
जप्त्वा होमो विधातव्यो महालक्ष्मीकरो भवेत्॥२२३॥
नित्यमष्टोत्तरशतं पञ्चम्यां प्रतिपद्यपि।
शुक्ले सहस्राण्यष्टौ च वर्षमेवं समाचरेत्॥२२४॥
तदा नृपसमानः स्याद्धनधान्यादिभिर्महान्।
घृतहोमादवाप्नोति सकलं वाञ्छितं फलम्॥२२५॥
पञ्चमीषु विशेषेण पूजां कुर्याद् व्रती भवेत्।

अब अभीष्ट-प्रदायक काम्य हवनविधि को सम्यक् रूप से कहता हूँ। एक किलोग्राम शालि चावल को नये भाण्ड में रखकर मन्त्र के एक सौ आठ जप से उस भाण्ड में फूँक मारकर उसे संस्कृत करने के उपरान्त उस चावल से हवन करने पर महालक्ष्मी की प्राप्ति होती हैं।

एक वर्ष तक प्रतिदिन एक सौ आठ बार एवं शुक्लपक्ष की प्रतिपदा तथा पञ्चमी को एक हजार आठ बार मन्त्रजप करने वाला साधक धन-धान्य आदि से युक्त होकर राजा के समान महान् हो जाता है। घृत के हवन से साधक समस्त वाञ्छित फलों को प्राप्त करता है। विशेषतया शुक्ल पक्ष की पञ्चमी तिथि को व्रतनिष्ठ होकर पूजन करना चाहिये।।२२२-२२५।।

अन्नपूर्णेश्वरीमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि ह्यन्नपूर्णेश्वरीमनुम्॥२२६॥
ॐश्रींह्रींक्लीं नमश्चोक्त्वा भगवतिपदं वदेत्।
माहेश्वरि चान्नपूर्णे स्वाहा विंशतिवर्णकः॥२२७॥
छन्दस्त्रिष्टुप् मुनिर्ब्रह्मा ह्यन्नपूर्णा च देवता।
ह्रींबीजं चापि शक्तिः श्रीं कीलकं क्लीं प्रकीर्तितम्॥२२८॥
षड्दीर्घयुक्तहृल्लेखा षडङ्गेषु प्रकीर्तिता।
ब्रह्मरन्ध्रे च सीमन्ते भाले भ्रूमध्ययोर्नसि॥२२९॥
वक्त्रे कण्ठे च हृदये कुक्षिनाभ्योश्च लिङ्गके।
आधारे स्फिग्द्वये बाहुद्वये जानुद्वये तथा॥२३०॥
पादयोश्च नवद्वारे पदन्यास उदाहृतः।
पुनर्मूर्धनि भाले च भ्रूमध्ये च मुखे गले॥२३१॥
हृन्नाभिलिङ्गे पदयोः पदानि क्रमतो न्यसेत्।
व्युत्क्रमेण पुनः पायुलिङ्गनाभ्यादिषु न्यसेत्॥२३२॥

ब्रह्मरन्ध्रास्यहृदयं मूलाधारेषु विन्यसेत्।
चतुर्बीजानि शेषांस्तु मातृकोक्तस्वरस्थले।
व्यापकं च ततः कुर्यात्सर्वमन्त्रेण साधकः॥२३३॥

अन्नपूर्णेश्वरी-मन्त्र—अब अन्नपूर्णेश्वरी के मन्त्र को सम्यक् रूप से कहता हूँ। बीस अक्षरों का मन्त्र है—ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द त्रिष्टुप्, देवता अन्नपूर्णा, बीज ह्रीं, शक्ति श्रीं और कीलक क्लीं कहे गये हैं।

ह्रां ह्रीं, ह्रीं ह्रीं, ह्रूं ह्रीं, ह्रैं ह्रीं, ह्रौं ह्रीं, ह्रः ह्रीं से क्रमशः हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र एवं अस्त्ररूप षडङ्गन्यास कहा गया है। बीस मन्त्र वर्णों का न्यास ब्रह्मरन्ध्र, सीमन्त (मांग), भाल, भ्रूमध्य, नाक, मुख, कण्ठ, हृदय, कुक्षि, नाभि, लिङ्ग, मूलाधार, नितम्बद्वय, बाहुद्वय, जानुद्वय तथा पादद्वय में करना चाहिये।

मन्त्र के नव पदों—ॐ, श्रीं, ह्रीं, क्लीं, नमो, भगवति, माहेश्वरि, अन्नपूर्णे एवं स्वाहा का न्यास शरीर के नव द्वारों—दो आँख, दो नासाछिद्र, दो कान, मुख, लिङ्ग और गुदा में करना चाहिये। इसके बाद पुनः मूर्धा, भाल, भ्रूमध्य, मुख, गला, हृदय, नाभि, लिङ्ग एवं दोनों पैरों में नवों पदों का क्रमशः न्यास करना चाहिये। पुनः उन्हीं नव पदों का व्युत्क्रम से पायु, लिङ्ग, नाभि आदि में न्यास करना चाहिये। मन्त्र के चार बीजों (ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं) का न्यास ब्रह्मरन्ध्र, मुख, हृदय एवं मूलाधार में तथा शेष चार पदों का न्यास मातृकोक्त स्वरस्थल (मुख, नेत्र, नाक, कान) में करना चाहिये। इसके बाद साधक को सम्पूर्ण मन्त्र से व्यापक न्यास करना चाहिये।।२२६-२३३।।

तप्तकाञ्चनसङ्काशां बालेन्दुकृतशेखराम्।
नवरत्नप्रभादीप्तमुकुटां कुङ्कुमारुणाम्॥२३४॥
चित्रवस्त्रपरीधानां मीनाक्षीं कमलस्तनीम्।
नृत्यन्तीमीशमनिशं दृष्ट्वानन्दमयीं पराम्॥२३५॥
सानन्दमुखलोलाक्षीं मेखलाढ्यनितम्बिनीम्।
अन्नदानरतां नित्यां भूमिश्रीभ्यां नमस्कृताम्॥२३६॥
दुग्धान्नभरितं पात्रं सरत्नं वामहस्तके।
दक्षिणे तु करे देव्या दर्वीं ध्यायेत्सुवर्णजाम्॥२३७॥

इसके बाद देवी अन्नपूर्णेश्वरी का इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—देवी विशुद्ध काञ्चन के समान देदीप्यमान हैं, मस्तक पर बालचन्द्र को धारण की हुई हैं, अनेक प्रकार के रत्नों की कान्ति से उद्दीप्त उनका मुकुट है, कुमकुम के सदृश अरुण वर्ण

वाली हैं, विविध रंग वाले वस्त्र धारण की हुई हैं, उनकी आँखें मत्स्य के सदृश एवं न कमल के सदृश हैं, अपने स्वामी को देखकर अतिशय आनन्दित होकर नृत्य कर रही हैं, प्रसन्न मुख पर सुन्दर आँखों वाली हैं, मेखला से सुशोभित उनका नितम्ब है, हर समय अन्न का दान करती रहती हैं, पृथिवी एवं लक्ष्मी के द्वारा नमस्कृत हैं, बाँयें हाथ में रत्न-सहित दुग्धान्न से पूरित पात्र एवं दाहिने हाथ में सुवर्ण-निर्मित कैंची ली हुई हैं।।२३४-२३७।।

त्रिकोणं च चतुष्पत्रवसुपत्रं ततः परम्।
कलापत्रं च भूबिम्बं चतुरस्त्रत्रयावृतम् ॥२३८॥
आदावङ्गानि सम्पूज्य त्रिकोणाग्रे शिवं यजेत्।
ॐ ह्रां शिवायेति पूजामन्त्रोऽयं वै नगाक्षरः ॥२३९॥
अनेन पूजयेद्देवं ध्यानं तस्य निरूप्यते।
गोक्षीरधामधवलं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ॥२४०॥
प्रसन्नवदनं शान्तं नीलकण्ठविराजितम्।
कपर्द्दिनं स्फुरत्सर्पभूषणं मल्लसन्निभम्।
नृत्यन्तमीश्वरं देवं त्रिकोणाग्रे सुरेश्वरम् ॥२४१॥
वामभागे त्रिकोणस्य वराहं परिपूजयेत्।
तारो नमो भगवते वराहपदमुच्चरेत् ॥२४२॥
रूपाय भूर्भुव इति स्वःपतये च कीर्त्तयेत्।
भूपतित्वं मे देहीति प्रदापय शिखिप्रियाम्।
वराहपूजने प्रोक्तो मन्त्रो रामाग्निवर्णकः ॥२४३॥
नारायणं दक्षकोणे नमो नारायणाय च।
ताराद्येनाष्टवर्णेन मन्त्रेण परिपूजयेत्।
वामदक्षिणयोः पूज्ये भूश्रियौ स्वस्वमन्त्रतः ॥२४४॥
अन्नं मह्यमन्नमिति देहीत्युक्त्वा पुनर्वदेत्।
अन्नाधिपतये चेति ममान्नं च प्रदापय ॥२४५॥
स्वाहान्त आकृत्यर्णोऽयं ग्लौंपुटो भूमिपूजने।
श्रीपूजने श्रीपुटः स्याच्चतुष्पत्रे ततोऽर्चयेत् ॥२४६॥
पश्चिमादिक्रमेणैव परविद्यां ध्रुवेण च।
भुवनेशी स्वबीजेन रमया कमला तथा ॥२४७॥
सुभगां कामबीजेन ब्राह्म्याद्यास्त्वष्टपत्रके।
चन्द्रमण्डलरूपिण्यः पश्चिमादिक्रमेण च ॥२४८॥

कलाः षोडश सम्पूज्या ह्यन्नपूर्णायै संवदेत्।
तन्नामान्ते नमश्चोक्त्वा इति मन्त्रेण पूजयेत् ॥२४९॥
अमृता मानदा तुष्टिः पुष्टिः प्रीती रतिश्च ह्रीः।
श्रीश्च स्वाहा स्वधा ज्योत्स्ना ततो हैमवती भवेत् ॥२५०॥
छाया च पूर्णिमा नित्या अमावस्येति षोडश।
भूपुरे लोकपालाश्च तदस्त्राणि तदग्रतः ॥२५१॥

तीन चतुरस्त्र से आवृत भूपुर से समन्वित त्रिकोण, चतुर्दल, अष्टदल, षोडशदल से इनका पूजनयन्त्र बनता है। यन्त्र का स्वरूप इस प्रकार का होता है—
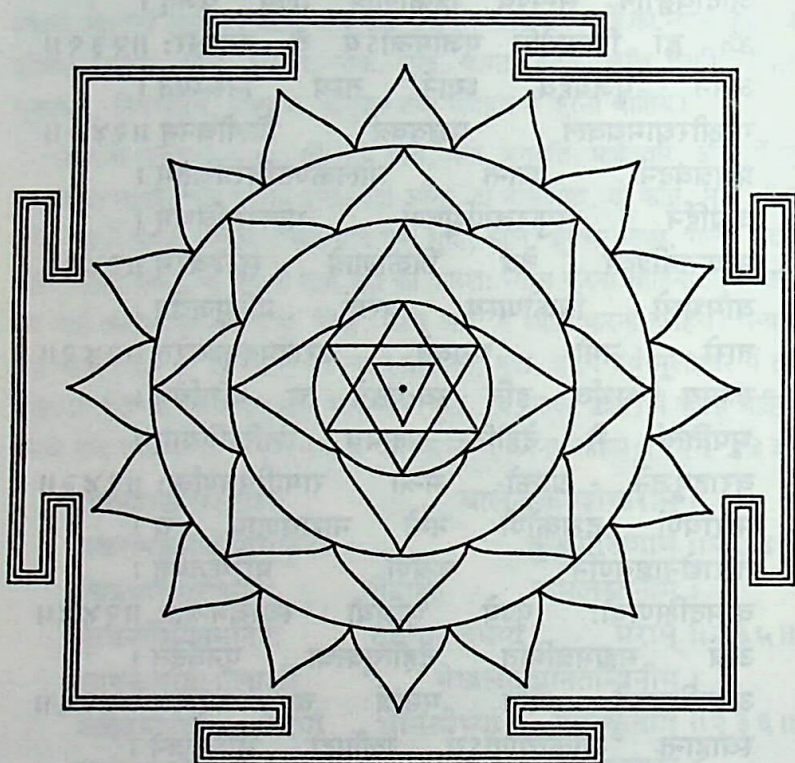
सर्वप्रथम षडङ्ग-पूजन करने के बाद त्रिकोण के आगे सात अक्षरों वाले 'ॐ ह्रां नमः शिवाय' इस पूजनमन्त्र से शिव का पूजन करना चाहिये। शिव का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—गोदुग्धागार के समान धवल, पाँच मुख एवं तीन नेत्र वाले, शान्त एवं प्रसन्न मुख वाले, नीलकण्ठ से सुशोभित, जटा धारण करने वाले,

फुफकारते सर्पों के आभूषण वाले, मल्ल के सदृश, नृत्य करते हुये ईश्वर का ध्यान करना चाहिये।

त्रिकोण के आगे (अग्निकोण में) इन्द्र का पूजन करने के बाद त्रिकोण के वाम भाग (वायुकोण) में तैंतीस अक्षरों वाले 'ॐ नमो भगवते वराहरूपाय भूर्भुव:स्व:पतये भूपतित्वं मे देहि प्रदापय स्वाहा' इस पूजनमन्त्र से वराह का पूजन करना चाहिये। ईशानकोण में आठ अक्षरों वाले 'ॐ नमो नारायणाय' मन्त्र से नारायण का पूजन करना चाहिये। वाम एवं दक्षिण भाग में अपने-अपने मन्त्र से भूमि एवं श्री का पूजन करना चाहिये। 'अन्नं मह्यमन्नं देह्यन्नाधिपतये ममान्नं प्रदापय स्वाहा' इस बाईस अक्षरों वाले मन्त्र को 'ग्लौं' से पुटित करने पर भूमिपूजन मन्त्र एवं 'श्रीं' से पुटित करने पर श्रीपूजन मन्त्र बनता है।

इसके बाद चतुर्दल में पश्चिमादिक्रम से 'ॐ' से परा विद्या का, 'ह्रीं' बीज से भुवनेशी का, 'श्रीं' बीज से कमला का एवं 'क्लीं' बीज से सुभगा का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् अष्टदल में ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर षोडशदल में पश्चिमादिक्रम से चन्द्रमण्डलरूपिणी षोड़श कलाओं का उनके चतुर्थ्यन्त नाम के पूर्व 'अन्नपूर्णायै' एवं पश्चात् 'नम:' लगाकर पूजन करना चाहिये। वे सोलह कलायें इस प्रकार हैं—अमृता, मानदा, तुष्टि, पुष्टि, प्रीति, रति, ह्रीं, श्रीं, स्वधा, स्वाहा, ज्योत्स्ना, हैमवती, छाया, पूर्णिमा, नित्या एवं अमावस्या। इसके बाद भूपुर में लोकपालों का पूजन करके उनके आगे दिक्पालों के अस्त्रों का पूजन करना चाहिये।।२३८-२५१।।

लक्षं जपेत्सनियमो दशांशेन च होमयेत्।
रम्यपायससर्पिर्भ्यां सिद्धिदा भवति ध्रुवम्।।२५२।।
तर्पणादि तत: कुर्यात्पूर्वोक्तविधिना सुधी:।
अन्नपूर्णेश्वरी देवी पूजितान्नसुवर्णदा।।२५३।।

नियमपूर्वक मन्त्र का एक लाख जप करके गोघृत एवं पायस से कृत जप का दशांश (दश हजार) हवन करने से देवी निश्चित रूप से सिद्धि प्रदान करती है। तदनन्तर विद्वान् साधक को पूर्वोक्त विधि से तर्पण आदि करना चाहिये। पूजित होने पर देवी अन्नपूर्णेश्वरी अन्न और सुवर्ण प्रदान करती हैं।।२५२-२५३।।

बीजहीनेयमेव स्यात्षोडशार्णा तथा परा।
मायाद्या चाथ ताराद्या मता सप्तदशाक्षरा।
मायातारादिका चान्या गदिताष्टादशाक्षरा।।२५४।।

मुन्याद्याः पूर्वमुदिता माययाङ्गक्रिया मता ।
अष्टनागेन्द्रवज्राद्यैः साधयेत्पूर्ववच्च ताः ॥२५५॥

पूर्वोक्त अन्नपूर्णेश्वरी के विंशाक्षर मन्त्र को बीजों से रहित कर देने पर यही मन्त्र सोलह अक्षरों का हो जाता है; मन्त्र का स्वरूप होता है—नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा। इस षोडशाक्षर मन्त्र के प्रारम्भ में मायाबीज (ह्रीं) संयुक्त करने पर सत्रह अक्षरों का मन्त्र बनता है एवं षोडशाक्षर के प्रारम्भ में 'ह्रीं ॐ' लगाने से अट्‌ठारह अक्षरों का मन्त्र कहा गया है। इन मन्त्रों के ऋषि आदि पूर्ववत् ही होते हैं। मायाबीज के छः दीर्घ स्वरूपों से इसका षडङ्गन्यास कहा गया है। आठ दिग्गजों एवं वज्र आदि का पूर्ववत् पूजन करके उपर्युक्त विद्याओं का साधन करना चाहिये।।२५४-२५५।।

अन्नप्रदाख्यमन्त्रस्य पूर्वोक्तस्योच्यते विधिः ।
ऋषिर्ब्रह्माकृतिश्छन्दो देवते भूश्रियौ मते ॥२५६॥
पञ्चाङ्गानि मनोर्वर्णैर्वेदेष्वृत्वङ्गवायुभिः ।
क्षीराब्धौ स्वर्णरजतद्रवद्वीपे सुरान्विते ॥२५७॥
शुभकल्पद्रुमावृत्तिशोभिते मणिकुट्टिमे ।
वित्तपस्याग्रतस्तत्र स्वासीने वसुधाश्रियौ ॥२५८॥
धनौघान् संसृजन्त्यौ च भक्तार्थं प्रति चिन्तयेत् ।
आवाह्य वैष्णवे पीठे देव्या गन्धादिभिर्यजेत् ॥२५९॥
पूर्वमङ्गानि सम्पूज्य पूजयेच्च दलाष्टके ।
दिग्दलेषु क्रमात्खं च वायुमग्निं तथा जलम् ॥२६०॥
विदिग्दले निवृत्तिं च प्रतिष्ठामीशकोणतः ।
विद्यां शान्तिं ततो बाह्येऽष्टदले चाष्ट शक्तयः ॥२६१॥
एकाक्षरं श्रियः प्रोच्य बलाकाद्याः समर्चयेत् ।
इन्द्रादयस्तदस्त्राणि पूजा चैवं समीरिता ॥२६२॥
लक्षं जपेदाज्यपक्वेनान्नेन जुहुयात्तथा ।
तर्पणादि ततः कृत्वा विप्रान् सम्भोजयेत्ततः ।
गुरुं सन्तोष्य यत्नेन मन्त्रसिद्धिमवाप्नुयात् ॥२६३॥
दिनादौ प्रजपेन्मन्त्रमष्टोत्तरशतं बुधः ।
छत्रधान्यान्नरत्नौघसमृद्धो भवति ध्रुवम् ॥२६४॥

अब पूर्वोक्त अन्नप्रदा मन्त्र की साधन-विधि को कहता हूँ। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द आकृति एवं देवता भू तथा श्री कहे गये हैं। मन्त्र है—ॐ अन्नं मह्यमन्नं मे

देह्यन्नाधिपतये ममान्नं प्रदापय स्वाहा। इसमें चौबीस अक्षर होते हैं। मन्त्र के क्रमश: चार, पाँच, छ:, छ: एवं चार वर्णों से इसका पञ्चाङ्ग न्यास किया जाता है। तदनन्तर क्षीरसमुद्र में देवताओं से समन्वित सुवर्ण एवं रजत् के द्रवीभूत द्वीप पर मनोहर कल्पवृक्षों से सुशोभित मणि-जटित फर्श पर कुबेर के आगे अपने आसन पर विराजमान होकर भक्तों के लिये धन के ढ़ेरों की रचना करती हुई वसुधा एवं श्री का ध्यान करते हुये वैष्णवपीठ पर देवी का आवाहन करके गन्ध आदि से पूजन करना चाहिये।
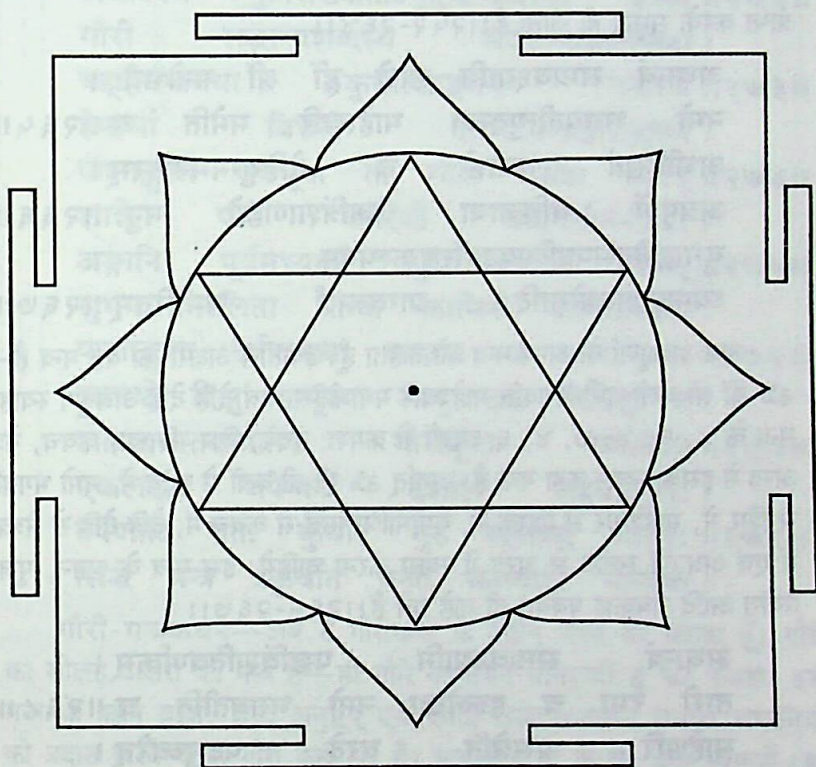
तदनन्तर सर्वप्रथत षडङ्ग-पूजन करने के पश्चात् अष्टदल के पूर्व, दक्षिण, पश्चिम एवं उत्तर में क्रमश: आकाश, वायु, अग्नि एवं जल का पूजन करना चाहिये। अनन्तर ईशानकोण से आरम्भ कर चारो कोणों में क्रमश: निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या एवं शान्ति का अर्चन करना चाहिये। उसके बाहर अष्टदल के अग्रभाग में एकाक्षर श्रीं मन्त्र का उच्चारण करके बलाका आदि (बलाका, विमला, कमला, वनमाला, विभीषा, मालिका, शाङ्करी, वसुमालिका) आठ शक्तियों का पूजन करना चाहिये। इसके बाद

भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों और उनके आयुधों के पूजन से इनकी पूजा सम्पन्न हो जाती है।

पूजन के उपरान्त मन्त्र का एक लाख जप करने के पश्चात् गोघृत में पाक किये गये अन्न से कृत जप का दशांश हवन करने के बाद तर्पण-मार्जन आदि करके ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। इसके बाद यत्नपूर्वक गुरु को सन्तुष्ट करने वाला साधक मन्त्रसिद्धि को प्राप्त कर लेता है। मन्त्रसिद्ध विद्वान् साधक प्रात:काल मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करके निश्चित ही छत्र, धान्य, अन्न एवं विविध प्रकार के रत्नों को प्राप्त करके समृद्ध हो जाता है।।२५२-२६४।।

अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि तारो ह्रीं श्रीं मनोभवः।
नमो भगवतीत्युक्त्वा माहेश्वरि ममेति च।।२६५।।
अभीप्सितं तथान्नं च देहियुग्ममनन्तरम्।
अन्नपूर्णे वह्निजाया चैकत्रिंशार्णको मनुः।।२६६।।
युगाङ्गवेदसप्ताब्धिषडर्णैरङ्गकल्पनम्।
ध्यानपूजाप्रयोगादि प्राग्वत्सर्वं समीरितम्।।२६७।।

अब अन्नपूर्णा के अन्य मन्त्र को कहता हूँ। इकतीस अक्षरों का वह मन्त्र है— ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नमो भगवति माहेश्वरि ममाभीप्सितमन्नं देहि देहि अन्नपूर्णे स्वाहा। मन्त्र के ४, ६, ४, ७, ४, ६ अक्षरों से क्रमश: हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र, अस्त्र में इसका न्यास कहा गया है। अर्थात् ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं से हृदय में, नमो भगवति से शिर में, माहेश्वरि से शिखा में, ममाभीप्सितमन्नं से कवच में, देहि देहि से नेत्रत्रय में एवं अन्नपूर्णे स्वाहा से अस्त्र में न्यास करना चाहिये। इस मन्त्र के ध्यान, पूजा, प्रयोग आदि सबकुछ पूर्ववत् ही कहे गये हैं।।२६५-२६७।।

अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि पञ्चविंशतिवर्णकम्।
तारो रमा च हृल्लेखा नमो भगवतीति च।।२६८।।
माहेश्वरि प्रसन्नेति वरदे पदमुच्चरेत्।
अन्नपूर्णेऽग्निजायान्तो मन्वर्णैरङ्गकल्पनम्।।२६९।।
त्रिषड्वेदर्त्तुवेदाक्षिवर्णैर्ध्यानजपादिकम्।
सर्वं प्राग्वत्परिज्ञेयं विशिष्टं जपतः फलम्।।२७०।।

अब अन्नपूर्णा के अन्य पच्चीस अक्षरों वाले मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—ॐ श्रीं ह्रीं नमो भगवति माहेश्वरि प्रसन्नवरदे अन्नपूर्णे स्वाहा। मन्त्र के तीन, छः, चार, छः, चार एवं दो अक्षरों से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये। इसका ध्यान-जप आदि

सबकुछ पूर्ववत् ही जानना चाहिये। इस मन्त्र के जप से विशिष्ट फल की प्राप्ति कही गई है।।२६८-२७०।।

गौरीमन्त्राः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि गौरीमन्त्रान्महाफलान्।
ह्रीं गौरिरुद्रदयिते योगेश्वरिपदं वदेत्॥२७१॥
हुंफट् स्वाहा षोडशार्णो गौरीमन्त्र उदाहृतः।
अजोऽस्य मुनिराख्यातोऽनुष्टुप्छन्दोऽस्ति देवता॥२७२॥
गौरी सद्भाग्यशब्दस्य सर्वसम्पत्प्रदायिका।
षड्दीर्घमायया कुर्यात्षडङ्गानि मनोरथ॥२७३॥
हेमाभां बिभ्रतीं दोर्भिर्दर्पणाञ्जनसाधने।
पाशाङ्कुशौ सर्वभूषां तां गौरीं सर्वदा स्मरेत्॥२७४॥
शाक्ते पीठे यजेद्देवीं चन्दनाद्यैर्मनोहरैः।
अङ्गानि पूर्वमभ्यर्च्य सुभगाद्यास्ततो यजेत्॥२७५॥
सुभगा ललिता चान्या कामिनी काममालिनी।
पाशाङ्कुशा दर्पणाख्या चाञ्जना च शलाकिका॥२७६॥
शक्तयो दिक्षु सम्पूज्या आयुधाख्या विदिक्षु च।
शक्रादयस्तदस्त्राणि गौरीपूजा समीरिता॥२७७॥
एकलक्षं जपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयाद्घृतैः।
तर्पणादि ततः कुर्याद् गुरुं सन्तोष्य यत्नतः॥२७८॥
सिद्धे मन्त्रे प्रकुर्वीत मन्त्री काम्यानि नान्यथा।

गौरी-मन्त्रकथन—अब मैं गौरीमन्त्रों के महान् फलों को कहता हूँ। गौरी का सोलह अक्षरों का मन्त्र है—ह्रीं गौरि रुद्रदयिते योगेश्वरि हुं फट् स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता सद्भाग्यस्वरूप समस्त सम्पत्तियों को प्रदान करने वाली गौरी कही गई हैं। मायाबीज ह्रीं के छः दीर्घ स्वरूपों (ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः) से इस मन्त्र का षडङ्गन्यास किया जाता है। सुवर्ण-सदृश कान्तिमान, हाथों में दर्पण अञ्जनशलाका पाश एवं अंकुश धारण की हुई तथा समस्त आभूषणों से विभूषित गौरी का सर्वदा स्मरण करना चाहिये।

इस प्रकार से ध्यान करने के उपरान्त शक्तिपीठ पर मनोहर चन्दनादि से देवी का यजन करने के पश्चात् सर्वप्रथम षडङ्ग-पूजन करने के बाद सुभगा, ललिता, कामिनी, काममालिनी का पूजन पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तरदल में करके पाश, अङ्कुश, दर्पण

एवं अञ्जनशलाका का पूजन अग्नि, नैर्ऋत्य, वायव्य एवं ईशान कोण-स्थित दलों में करना चाहिये। तत्पश्चात् इन्द्रादि दश दिक्पालों और उनके आयुधों के पूजन को ही गौरीपूजन कहा गया है।
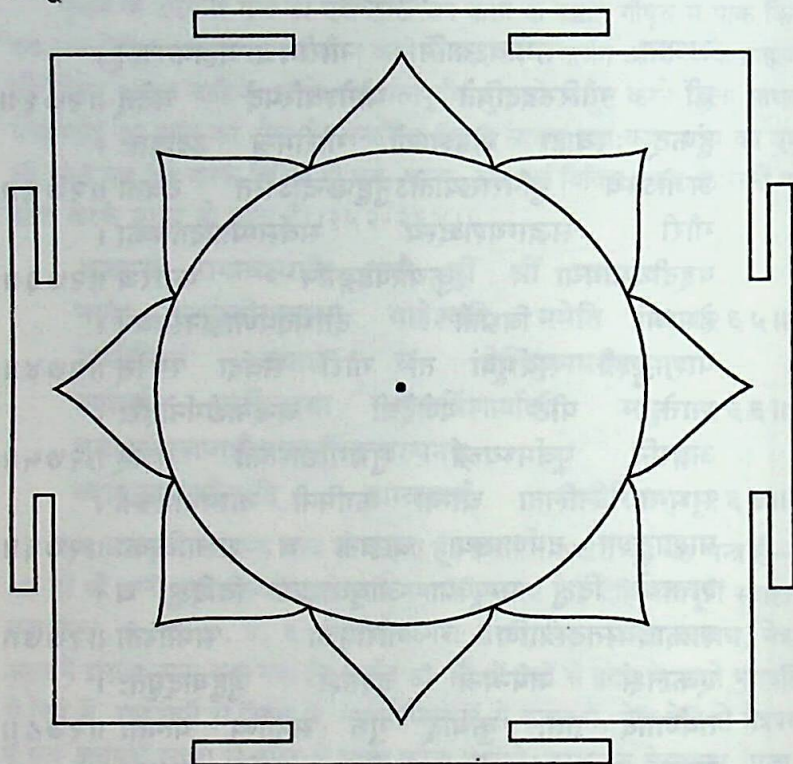
तत्पश्चात् मन्त्र का एक लाख जप करने के बाद घृत से कृत जप का दशांश (दस हजार) हवन करना चाहिये। तदनन्तर तर्पण, मार्जन आदि करने के पश्चात् यत्नपूर्वक गुरु को सन्तुष्ट करके मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर मन्त्रज्ञ साधक को काम्य प्रयोगों का साधन करना चाहिये। मन्त्रसिद्धि प्राप्त किये विना काम्य प्रयोगों का साधन नहीं करना चाहिये।।२७१-२७८।।

वामाक्षीणामक्षिमध्या वामोरौ सुलिखेन्मनुम् ।।२७९।।
आच्छादयन् वामदोष्णा तन्मनाः प्रजपेन्मनुम् ।
शतं सहस्रं लोलाक्षीमानयेत्काममोहिताम् ।।२८०।।
एतन्मन्त्रेण जपितं गन्धपुष्पफलादिकम् ।
दत्तं संसेवितं सर्वजनतावश्यकारकम् ।।२८१।।

सुन्दर नेत्रों वाली स्त्री के काजल से वाम ऊरु पर सुन्दर रूप से मन्त्र को लिखने के बाद उसे बाँयें हाथ से आच्छादित करके अभीप्सित कामिनी का चिन्तन करते हुये मन्त्र का एक सौ अथवा एक हजार जप करने पर वह चञ्चलाक्षी काममोहित होकर साधक के पास आ जाती है।

इस मन्त्र के जप से अभिमन्त्रित गन्ध, पुष्प, फल आदि को जिसे भी दिया जाता है अथवा जिसके द्वारा उनका सेवन किये जाता है, वे सभी साधक के वशीभूत हो जाते हैं।।२७९-२८१।।

अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि सर्वस्त्रीवश्यकारकम्।
काङ्क्षितस्त्रीवशङ्करि सुभगे च पृथग्द्वयम्।।२८२।।
स्त्रीस्वाहेत्यूनविंशार्णो न्यासः प्राग्वत्समीरितः।
गौं गौरीमूर्त्तये हृच्च पीठमन्त्र उदाहृतः।।२८३।।
सुभगायै विद्महे काममालिन्यै धीमहि।
तन्नो गौरी प्रचोदयात्।।२८४।।
गायत्र्या त्वनया सर्वानुपचारान् प्रकल्पयेत्।
अङ्गानि पूर्वमभ्यर्च्य सुभगाद्यास्ततो यजेत्।।२८५।।
तदग्रेऽष्टदले पूज्या मध्यान्तं स्वाग्रतः क्रमात्।
दीर्घाष्टकोपेतमेवं प्रथमं योजितं च वै।
सबिन्दुङेऽन्तं तन्नाम नमोऽन्तं तन्मनुर्मतः।।२८६।।
प्रभा ज्ञाना च वाग्वागीश्वरी स्याज्ज्वालिनी ततः।
वामा ज्येष्ठा च रौद्री च गुह्यशक्तिः क्रमादिमाः।।२८७।।
लोकपालास्तदस्त्राणि होमाद्यं पूर्ववन्मतम्।
अस्याद्यवर्णतस्त्वर्वाक् साध्याय च प्रयोजयेत्।
जपेन्मन्त्रं शतं चापि स वश्यो भवति ध्रुवम्।।२८८।।

अब समस्त स्त्रियों को वशीभूत करने वाले गौरी के अन्य मन्त्र को कहता हूँ। उन्नीस अक्षरों वाला वह मन्त्र है—कांक्षितस्त्रीवशङ्करि सुभगे पृथक्पृथक् स्त्री स्वाहा। इसका न्यास पूर्ववत् कहा गया है। पीठपूजन करने के लिये 'गौं गौरीमूर्त्तये नमः' इसका पीठमन्त्र कहा गया है। 'सुभगायै विद्महे काममालिन्यै धीमहि तन्नो गौरी प्रचोदयात्' इस गौरीगायत्री मन्त्र से देवी के पूजन-हेतु समस्त उपचार समर्पित करने चाहिये।

सर्वप्रथम अङ्गपूजन करने के उपरान्त सुभगा, ललिता आदि का पूजन करना

चाहिये। फिर उसके आगे अष्टदल के अग्रभाग में अपने आगे से आरम्भ कर क्रमशः आठ शक्तियों—प्रभा, ज्ञाना, वाग्वागीश्वरी, ज्वालिनी, वामा, ज्येष्ठा, रौद्री एवं गुह्यशक्ति का पूजन दीर्घ स्वर-समन्वित उनके चतुर्थ्यन्त नाम के पश्चात् 'नमः' लगाकर बनाये गये मन्त्र से करना चाहिये। तदनन्तर लोकपालों एवं उनके अस्त्रों का पूजन करना चाहिये। इसके होम आदि पूर्ववत् ही कहे गये हैं। प्रयोग के समय इस मन्त्र में 'कांक्षित' पद के बाद साध्य का चतुर्थ्यन्त नाम संयुक्त करके मन्त्र का एक सौ जप करने से वह साध्य निश्चित ही साधक के वशीभूत हो जाता है।।२८२-२८८।।

ब्रह्मश्रीनामिकां गौरीमथ वक्ष्ये समासतः।
माया नमश्च ब्रह्मश्रीराजिते राजपूजिते ॥२८९॥
जये च विजये गौरी गान्धारी त्रिभुवेति च।
नवशङ्करि चेत्युक्त्वा सर्वलोकवशङ्करि ॥२९०॥
सर्वस्त्रीपुरुषेत्युक्त्वा सर्वलोकवशङ्करि।
पदं वदेत्सुदु द्वे द्वे ह्रीं स्वाहा भूरसार्णवान्।
ऋषिर्ब्रह्मा निवृच्छन्दो गौरी देवी प्रकीर्तिता ॥१९१॥
स्वाहा शक्तिश्च बीजं ह्रीं मन्त्रार्णैः स्यात्षडङ्गकम्।
इन्द्रदिग्वसुहस्ताशारुद्रार्णैर्ध्यानमुच्यते ॥२९२॥
पूर्णचन्द्रलसन्मौलिं बन्धुजीवारुणाङ्गिकाम्।
पाशाङ्कुशधरां त्र्यक्षां शुकपुष्पविराजिताम्।
शोणलेपां जगद्वन्द्यां कुसुम्भारुणवस्त्रिकाम् ।२९३॥
आदावङ्गानि सम्पूज्य मातृकावेष्टनं ततः।
लोकपालांस्तदस्त्राणि पूजाक्रम उदाहृतः ॥२९४॥
अयुतं च जपः कार्यः पायसैर्जुहुयात्ततः।
मधुरत्रयसंयुक्तैर्होमः स्यात्तिलतण्डुलैः ॥२९५॥
रक्तोत्पलैर्वा लवणैरथ वा मधुरैः फलैः।
दिनत्रयं सहस्रं तु शीघ्रं वश्यकरः स्मृतः ॥२९६॥
प्रातःकाले तु सूर्यस्य मण्डलस्थां च देवताम्।
ध्यात्वा चाष्टोत्तरशतं जपेत्सर्वजगद्वशम् ॥२९७॥

अब संक्षेप में 'ब्रह्मश्री' नाम्नी गौरी को कहता हूँ। इसका इकसठ अक्षरों का मन्त्र है—ह्रीं नमः ब्रह्मश्रीराजिते राजपूजिते जये विजये गौरि गान्धारि त्रिभुवनवशङ्करि सर्वलोकवशङ्करि सर्वस्त्रीपुरुषसर्वलोकवशङ्करि सुदु सुदु ह्रीं स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि

ब्रह्मा, छन्द निवृत् एवं देवता गौरी कही गई हैं। शक्ति स्वाहा एवं बीज ह्रीं है। मन्त्र के क्रमशः चौदह, दस, आठ, आठ, दस एवं ग्यारह वर्णों से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये।

अब इसके ध्यान को कहता हूँ। पूर्ण चन्द्रमा से शोभायमान मस्तक वाली, बन्धुजीव (गुलदुहरिया) के पुष्प-सदृश अरुणवर्ण शरीर वाली, पाश एवं अंकुश धारण करने वाली, तीन आँखों वाली, शुकपुष्प (अगस्त्यवृक्ष) के नीचे बैठी हुई, रक्त अंगराग का लेप लगाई हुई, निखिल जगत् द्वारा पूजनीया, कुसुम्भपुष्प-सदृश लाल रंग का वस्त्र धारण की हुई देवी का ध्यान करना चाहिये।

सर्वप्रथम षडङ्ग-पूजन करने के बाद अष्टदल में प्रभा, ज्ञाना आदि पूर्वोक्त आठ देवियों का पूजन करके भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन ही इनका पूजन कहा गया है। पूजनोपरान्त मन्त्र का दस हजार जप करना चाहिये। इसके बाद मधुरत्रय-संयुक्त पायस से हवन करना चाहिये।

तिल-तण्डुल, रक्तकमल, लवण अथवा मीठे फलों से तीन दिनों तक प्रतिदिन एक हजार हवन करने से शीघ्र वशीकरण होता है। प्रातःकाल सूर्यमण्डल में स्थित देवता का ध्यान करके मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करने से समस्त संसार वशीभूत होता है।।२८९-२९७।।

अथ राजमुखीं गौरीं वक्ष्ये सप्ताब्धिवर्णिकाम्।
ॐ राजमुखि राजाधिमुखि वश्यमुखीति च ।।२९८।।
शक्तिश्रीकामबीजानि देविदेवि समुच्चरेत्।
महादेवीति देवाधिदेवि सर्वजनस्य च ।।२९९।।
मुखं मम वशं चेति कुरुयुग्माग्निगेहिनी।
मन्त्रवर्णस्तु हृदयं त्रिंशद्भिः शिर ईरितम् ।।३००।।
मन्त्रारम्भात्पुनः सप्तदशभिस्तु शिखा स्मृता।
वर्माष्टभिः शरैर्नेत्रं मेघैरस्त्रं प्रकीर्तितम् ।।३०१।।
ऋष्यादि ध्यानपूजादि प्राग्वद्वक्ष्ये प्रयोगकम्।
सर्वजनपदस्थाने साध्यनाम नियोजयेत् ।।३०२।।
जपहोमतर्पणादिकरणे परमं वशम्।
मधुरत्रयसंयुक्तमष्टोत्तरशतं हुनेत् ।।३०३।।
सपुष्पासहदेव्यास्तु समिधः सप्तरात्रकम्।
तद्भस्मना प्रयोगस्तु समस्तजनवश्यकृत् ।।३०४।।

राजमुखी गौरीमन्त्र-साधन—अब राजमुखी गौरी के सैंतालीस अक्षरों वाले मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—ॐ राजमुखि राजाधिमुखि वश्यमुखि ह्रीं श्रीं क्लीं देविदेवि महादेवि देवाधिदेवि सर्वजनस्य मुखं मम वशं कुरु कुरु स्वाहा। सम्पूर्ण मन्त्र का हृदय में, मन्त्र के आरम्भिक तीस वर्णों का शिर में, आरम्भ से लेकर सत्रह वर्णों का शिखा में, आठ वर्णों का कवच में, छ; वर्णों का नेत्र में एवं सम्पूर्ण मन्त्रवर्णों का अस्त्र में न्यास कहा गया है। इस मन्त्र के ऋषि आदि एवं ध्यान-पूजन आदि पूर्ववत् ही कहे गये हैं।

अब प्रयोगों को कहता हूँ। मन्त्र में 'सर्वजन' पद के स्थान पर साध्यनाम का नियोजन करके जप, होम, तर्पण आदि करने से श्रेष्ठ वशीकरण होता है। मधुरत्रय-समन्वित पुष्प-सहित सहदेई की समिधा से सात रात्रियों में प्रतिरात्रि एक सौ आठ बार हवन करके उसके भस्म के प्रयोग से साधक द्वारा सभी लोगों को वशीभूत किया जा सकता है।।२९८-३०४।।

अथास्य भेदं वक्ष्यामि हसरा वाग्भवान्विताः।
आद्यकूटं द्वितीयं स्याद्राजमुख्यादि पूर्ववत्।
अष्टचत्वारिंशदर्णो मन्त्रस्तद्वत्समीरितः ।।३०५।।
यो विशेषस्तं तु वक्ष्ये भवर्घ्यब्ध्यब्धिसायकैः।
मेघैश्चापि मनोर्वर्णैः षडङ्गविधिरीरितः ।।३०६।।
जपहोमादिकं प्राग्वत्प्रयोग इह तूच्यते।
सुसम्पन्नं घृतं हुत्वा सहस्रं सप्तवारकम्।
सम्पाताज्यन्तु साध्यस्य प्राणिनां वशकारकम् ।।३०७।।
साध्यनक्षत्रवृक्षेण कुर्यात्साध्याकृतिं शुभाम्।
तस्या मनुं प्रतिष्ठाप्य प्राङ्गणे निखनेच्च ताम् ।।३०८।।
तत्रानलं समाधाय रक्तचन्दनसंयुतैः।
जपापुष्पैर्निशीथिन्यां जुहुयात्सप्त वासरान् ।।३०९।।
सहस्रं प्रत्यहं पश्चात्तां निष्कास्य सरित्तटे।
निखनेत्साधकस्तस्य साध्यो दासो भवेद् ध्रुवम् ।।३१०।।

अब इस मन्त्र के अन्य भेद को कहता हूँ। पूर्व में 'ह्स्रैं' कूट लगाने से यह मन्त्र अड़तालीस अक्षरों का हो जाता है। मन्त्र होगा—ह्स्रैं ॐ राजमुखि राजाधिमुखि वश्यमुखि ह्रीं श्रीं क्लीं देविदेवि महादेवि देवाधिदेवि सर्वजनस्य मुखं मम वशं कुरु कुरु स्वाहा। इस मन्त्र की समस्त विधियाँ पूर्ववत् ही होती हैं। वैशिष्ट्य केवल इतना

है कि मन्त्र के क्रमश: ग्यारह, सात, चार, चार, पाँच एवं सत्रह वर्णों से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। जप-हवन आदि पूर्ववत् ही होते हैं।

अब यहाँ इसके प्रयोगों को कहा जा रहा है। संस्कारित घृत से सात हजार हवन करने के समय सम्पतित घृत साध्य लोगों को वशीकृत करन वाला होता है।

साध्यनक्षत्रवृक्ष की लकड़ी से साध्य की सुन्दर प्रतिमा बनाकर उसे मन्त्र से प्रतिष्ठित करके आँगन में गाड़ने के बाद उसके ऊपर आग जलाकर रक्तचन्दनाक्त अड़हुल के पुष्पों से सात दिनों तक रात्रि में प्रतिरात्रि एक हजार हवन करने के पश्चात् उस प्रतिमा को आँगन से निकालकर नदी के किनारे गाड़ देने से साध्य निश्चित ही साधक का दास हो जाता है।।३०५-३१०।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वज्रप्रस्तारिणीमनुम्।
वाग्बीजं चापि हल्लेखा नित्यक्लिन्ने मदद्रवे ।।३११।।
स्वाहान्तो द्वादशार्णोऽयमङ्गिरास्तु मुनिर्मतः।
त्रिष्टुप्छन्दो देवता च वज्रप्रस्तारिणी मता ।।३१२।।
बीजेनाद्येन चाङ्गानि षट् च दीर्घान्वितेन च।
अस्या पूजादिकं सर्वं नित्यक्लिन्नावदाचरेत् ।।३१३।।

वज्रप्रस्तारिणी मन्त्र—अब मैं देवी वज्रप्रस्तारिणी के मन्त्र को कहता हूँ। बारह अक्षरों का इसका मन्त्र है—ऐं ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि अंगिरा, छन्द त्रिष्टुप् एवं देवता वज्रप्रस्तारिणी कही गई हैं। मन्त्र के प्रथम बीज (ऐं) के छ: दीर्घ स्वरूपों (आं ईं ऊं ऐं औं अ:) से इसका षडङ्ग न्यास किया जाता है। इस देवी का ध्यान-पूजन आदि सबकुछ (सप्तदश प्रकाश में पठित) नित्यक्लिन्ना के समान करना चाहिये।।३११-३१३।।

वज्रेश्वरीमहामन्त्रनिरूपणम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वज्रेश्वर्या महामनुम्।
ह्रीं क्लीं क्लिन्ने तथा क्रों च पश्चान्नित्यमदद्रवे ।।३१४।।
ह्रीं चेति द्वादशार्णोऽयं बीजं शक्तिश्च ह्रीं मता।
ऋषिर्ब्रह्मा च गायत्री छन्दो वज्रेश्वरी सुरी ।।३१५।।
आद्यो माया भवेद्बीजं चान्तिमा शक्तिरुच्यते।
वाग्भवं कीलकं ज्ञेयं ह्रीं क्लीं ह्रीं च हृन्मनुः ।।३१६।।
ह्रीं क्लीं शिरः शिखा ह्रीं क्रों ह्रीमथ कवचं भवेत्।
ह्रीं नित्यक्लिन्ने ह्रीं नेत्रं ह्रीं मदे ह्रीमितीरितम् ।।३१७।।

ह्रीं द्रवे ह्रीमिदं चास्त्रं वर्णन्यासक्रमं ब्रुवे।
इत्येवं शक्तिपुटितान्मन्त्रार्णान् दश विन्यसेत्॥३१८॥
श्रोत्रनासाकपोलाक्षिनाभिगुह्येषु च क्रमात्।
ततः सञ्चिन्तयेद्देवीं सर्वसौख्यप्रदायिनीम्॥३१९॥
रक्तां रक्ताम्बरां रक्तगन्धमाल्यविभूषिताम्।
चतुर्भुजां त्रिनयनां माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम्॥३२०॥
पाशाङ्कुशाविक्षुचापदाडिमीपुष्पसायकान्।
दधानां बाहुभिर्नेत्रैर्दर्पणामोदशीतलैः॥३२१॥
पश्यन्तीं साधकं त्र्यस्रे षट्कोणाढ्यमहीपुरे।
चक्रमध्ये सुखासीनां स्मेरवक्त्रसरोरुहाम्॥३२२॥
शक्तिभिः स्वस्वरूपाभिरावृतां पोतमध्यगाम्।
सिंहासनेऽभितः प्रेङ्खत्पोतस्थाभिश्च शक्तिभिः॥३२३॥
वृतान्ताभिर्विनोदाप्तां यातायातादिभिस्तथा।
शोणाब्धौ हेमपोते च सिंहासनमनन्तरम्।
तत्र चक्रं तत्र देवीं सम्यगावाह्य पूजयेत्॥३२४॥
त्रिकोणस्याग्रमारभ्य चेच्छां ज्ञानां क्रियाभिधाम्।
शक्तिं सम्पूज्य देव्यास्तु वामकोणादितोऽर्चयेत्॥३२५॥
शक्तिषट्कं च षट्कोणे डाकिनीं राकिनीं तथा।
लाकिनीं काकिनीं चैव शाकिनीं हाकिनीं तथा॥३२६॥
बहिर्द्वादशपत्रे च देव्यग्रात्सव्यतो यजेत्।
हृल्लेखां क्लेदिनीं क्लिन्नां क्षोभिणीं मदनातुराम्॥३२७॥
निरञ्जनीं रागवतीं तथैव मदनावतीम्।
मेखला द्राविणीं वेगवतीं द्वादशशक्तिकाः॥३२८॥
तद्बहिः षोडशदले कमलां कामिनीं यजेत्।
कृत्यां कान्तां च कलितां कौताख्यां च किरातिकाम्॥३२९॥
कलां च कलनां चैव कौशिकीं कम्बुवादिनीम्।
कातरां ककटां कीर्तिं कुमारीं कुङ्कुमामपि॥३३०॥
चतुरस्रे तु देव्यग्रे द्वारदक्षिणपार्श्वतः।
क्रमाद्यजेद्द्वारयोर्द्वे कोणे कोणे तथैकिकाम्॥३३१॥
भगिनीं वेगिनीं नागां चपलां पेशलां सतीम्।

रतिं श्रद्धां भोगलोलां मन्दां मत्तां मनस्विनीम्।
यजेदाशाधिपान् बाह्ये तदर्णास्त्रि ततो बहिः ॥३३२॥
एवं सम्पूजयन्मर्त्यो दारिद्र्यान्मुच्यतेऽचिरात्।
रोगापमृत्युदौर्भाग्यजराशोकादिविच्युतः ॥३३३॥

वज्रेश्वरी महामन्त्र-साधन—अब मैं वज्रेश्वरी के महामन्त्र को कहता हूँ। बारह अक्षरों का यह महामन्त्र है—ह्रीं क्लीं क्लिन्ने क्रों नित्यमदद्रवे ह्रीं। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री, देवी वज्रेश्वरी, शक्ति ह्रीं, बीज ह्रीं एवं कीलक ऐं है। ह्रीं क्लीं ह्रीं से हृदय, ह्रीं क्लीं ह्रीं से शिर, ह्रीं क्रों ह्रीं से शिखा, ह्रीं नित्यक्लिन्ने ह्रीं से कवच, ह्रीं मदे ह्रीं से त्रिनेत्र, ह्रीं द्रवे ह्रीं से अस्त्रन्यास करना चाहिये। वर्णन्यास के क्रम में शक्ति (ह्रीं) से पुटित दश वर्णों का क्रमशः श्रोत्र, नासिका, कपोल, अक्षि, नाभि एवं गुह्य—इन दश अङ्गों में इस प्रकार न्यास करना चाहिये—ह्रीं क्लीं ह्रीं दक्षश्रोत्रे, ह्रीं क्लि ह्रीं वामश्रोत्रे, ह्रीं न्ने ह्रीं दक्षनासापुटे, ह्रीं क्रों ह्रीं वामनासापुटे, ह्रीं नि ह्रीं दक्षकपोले, ह्रीं त्य ह्रीं वामकपोले, ह्रीं म ह्रीं दक्षनेत्रे, ह्रीं द ह्रीं वामनेत्रे, ह्री द्र ह्रीं नाभौ, ह्रीं वे ह्रीं गुह्ये।
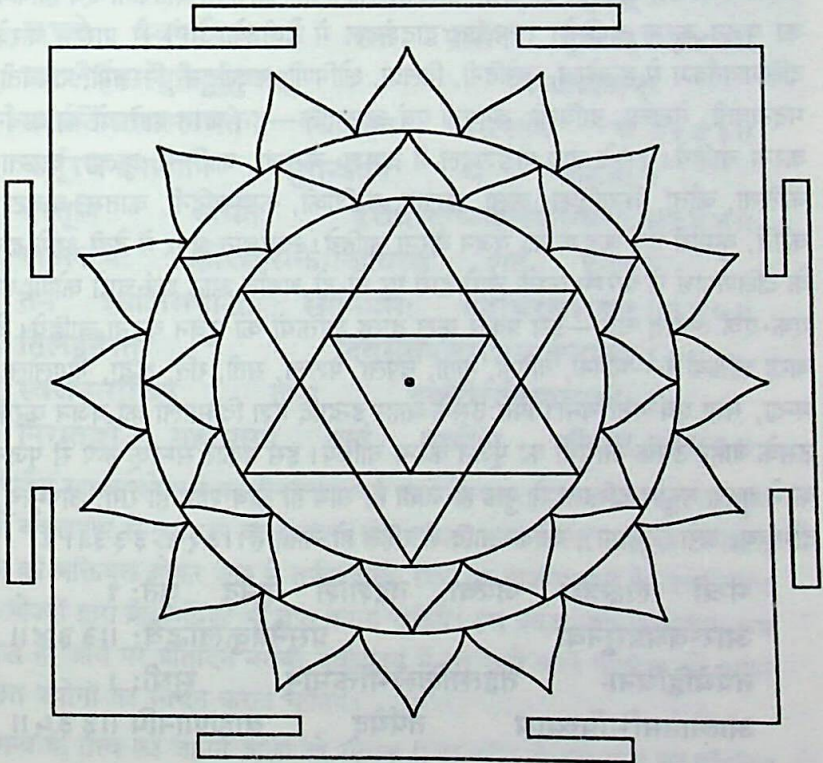
इसके पश्चात् समस्त सुखों को देने वाली देवी का इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—देवी वज्रेश्वरी रक्त वर्ण वाली हैं, रक्त वस्त्र धारण की हुई हैं एवं रक्त गन्ध तथा रक्तमाला से विभूषित हैं। उनकी चार भुजायें तथा तीन नेत्र हैं। माथे पर मणियों से निर्मित उज्ज्वल मुकुट शोभायमान है। वे अपने चार हाथों में पाश, अंकुश, इक्षुधनुष एवं दाड़िमपुष्परूपी बाण धारण कह हुई हैं। गर्वान्वित एवं विलासपूर्ण शीतल नेत्रों से वे साधक को देख रही हैं। त्रिकोण एवं षट्कोण से सुशोभित भूपुर पर चक्रमध्य में प्रफुल्लित मुखकमल वाली वे देवी आराम से बैठी हैं। पोत के मध्य में अवस्थित अपने ही समान स्वरूप वाली शक्तियों से घिरी हुई हैं। सिंहासन के चारो ओर इधर-उधर भ्रमण करते पोतों पर विराजमान शक्तियों द्वारा घिरी हुई तथा आती-जाती शक्तियों से वे आनन्दित हो रही हैं।

रक्तसमुद्र में सुवर्ण-निर्मित पोत पर स्थित सिंहासनस्थ चक्र पर देवी का सम्यक् रूप से आवाहन करके पूजन करना चाहिये। तदनन्तर त्रिकोण के अग्रकोण से प्रारम्भ करके तीनों कोणों में इच्छा, ज्ञान एवं क्रियाशक्ति का पूजन करना चाहिये। इसके बाद षट्कोण के छः कोणों में डाकिनी, राकिनी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी एवं हाकिनी का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् द्वादशदल में देवी के आगे से प्रारम्भ करके दक्षिणावर्तक्रम से हल्लेखा, क्लेदिनी, क्लिन्ना, क्षोभिणी, मदनातुरा, निरञ्जनी, रागवती, मदनावती, मेखला, द्राविणी, वेगवती एवं अक्षशक्ति—इन बारह शक्तियों का अर्चन करना चाहिये। इसके बाद षोड़शदल में क्रमशः कमला, कामिनी, कृत्या, कान्ता, कलिता, कौता, किरातिका, कला, कलना, कौशिकी, कम्बुवादिनी, कातरा, ककटा, कीर्ति, कुमारी एवं कुङ्कुमा का यजन करना चाहिये। तत्पश्चात् भूपुर में देवी आगे द्वार के दक्षिणपार्श्व से प्रारम्भ करके चारो द्वारों पर दो-दो अर्थात् आठ एवं चारो कोणों पर एक-एक अर्थात् चार—इस प्रकार कुल बारह शक्तियों का पूजन करना चाहिये। वे बारह शक्तियाँ हैं—भगिनी, वेगिनी, नागा, चपला, पेशला, सती, रति, श्रद्धा, भोगलोला, मन्दा, मत्ता एवं मनस्विनी। फिर उसके बाहर इन्द्रादि दश दिक्पालों का यजन करके उसके बाहर उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार सम्यक् रूप से पूजन करने वाला मनुष्य दरिद्रता से मुक्त हो जाता है; साथ ही साथ शीघ्र ही रोग, अपमृत्यु, दौर्भाग्य, जरा (बुढ़ापा), शोक आदि से रहित हो जाता है।।३१४-३३३।।

मन्त्री लक्षत्रयं जप्त्वा तद्दशांशं हुनेद् घृतैः।
आरग्वधप्रसूनैर्वा प्रसूनैर्बकुलोद्भवैः ।।३३४।।
तर्पयेद्विधिना तद्वत्सलिलैर्भक्तिमान् सुधीः।
आत्मानमभिषिच्याथ तर्पयेद् ब्राह्मणानपि ।।३३५।।

एवं संसिद्धमन्त्रस्तु नित्यार्चानिरतः सदा।
गुरुभक्तः प्रकुर्वीत प्रयोगान्निजवाञ्छितान् ॥३३६॥
सहस्रजापी स्थितधीर्मन्त्रवीर्यविदात्मवान्।
यः सोऽपि काम्यान्कुर्वीत प्रयोगान्निजवाञ्छितान् ॥३३७॥
यदज्ञानेन मोहेन चापलेनाथ वा चरेत्।
अनर्थक्लेशरोगादिपीडाः प्राप्नोति निश्चितम् ॥३३८॥
अरुणैः पङ्कजैर्होमं कुर्यात्त्रिमधुरप्लुतैः।
षण्मासाल्लभते लक्ष्मीं महतीं श्लाघ्यविग्रहाम् ॥३३९॥
कह्लारैः क्षौद्रसंयुक्तैः पूर्णाब्दं तद्दिनावधि।
जुहुयान्नित्यशो भक्त्या सहस्रं विकचैः शुभैः ॥३४०॥
तद्दिनेषु च पूर्वोक्तान् भोजयेदुक्तरूपतः।
तावज्जपेच्च होमान्ते यावत्सङ्ख्यं हुतं कृतम् ॥३४१॥
चम्पकैः क्षौद्रसंसिक्तैः सहस्रहवनाद् ध्रुवम्।
लभते स्वर्णनिष्काणां शतं मासेन पूर्ववत् ॥३४२॥
पाटलैर्घृतसंयुक्तैर्जुहुयात् त्रिसहस्रकम्।
दर्शादिमासाल्लभते चित्राणि वसनानि च ॥३४३॥
कर्पूरचन्दनादीनि सुगन्धीनि च मासतः।
वस्तूनि लभते हृद्यैर्वस्तुभिर्भागयोगिभिः ॥३४४॥
शालिभिः क्षीरसंसिक्तैर्मन्त्रविच्च शतं हुनेत्।
तेन शालिसमृद्धिः स्यान्मासैः षड्भिरसंशयम् ॥३४५॥
तिलैर्हुतैस्तु दिवसैर्वर्षादारोग्यमाप्नुयात्।
स्वजन्मसूचिषु तथा दूर्वाभिर्जुहुयात्सुधीः।
निरातङ्को महाभागो शतं वर्षाणि जीवति ॥३४६॥

मन्त्रज्ञ साधक को मन्त्र का तीन लाख जप करने के पश्चात् घृत अथवा आरग्वधपुष्प अथवा बकुलपुष्प से कृत जप का दशांश (तीस हजार) हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् विद्वान् को भक्तियुक्त होकर जल से तर्पण करके स्वयं का मार्जन करने के बाद विविध भक्ष्य-भोज्यों द्वारा ब्राह्मणों को भी तृप्त करना चाहिये। इस प्रकार मन्त्र के सम्यक् रूप से सिद्ध हो जाने पर प्रतिदिन बराबर देवीपूजन में रत रहने वाले गुरुभक्त को अपने वाञ्छित प्रयोगों का साधन करना चाहिये।

मन्त्र के तत्त्व को जानने वाला जो साधक स्थिर बुद्धि से इस मन्त्र का प्रतिदिन

एक हजार जप करता है, वह भी अपने वाञ्छित काम्य प्रयोगों को करने में समर्थ होता है। जो मनुष्य अज्ञानतावश, मोहवश अथवा चपलता के कारण कोई प्रयोग करता है तो उसे निश्चित ही अनर्थ, क्लेश, रोगादि-जनित पीड़ा की प्राप्ति होती है। छः महीने तक त्रिमधुराक्त लाल कमलों से हवन करने पर साधक को अतिशय प्रशंसनीय लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

वर्षसमाप्ति के दिन से आरम्भ कर आगामी वर्ष की समाप्ति-पर्यन्त प्रतिदिन मधुयुक्त कल्हारपुष्पों से भक्तिपूर्वक एक हजार हवन करने के बाद पुन: एक हजार मन्त्रजप करके हवन का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश मार्जन एवं मार्जन का दशांश ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये।

एक मास-पर्यन्त मधुसिक्त चम्पा के फूलों से प्रतिदिन एक हजार हवन करने से एक सौ स्वर्णसिक्कों की प्राप्ति होती है। अमावस्या से आरम्भ का मास-पर्यन्त घृत से समन्वित पाटलपुष्पों से प्रतिदिन तीन हजार हवन करने से रंग-बिरंगे वस्त्रों की प्राप्ति होती है। हृद्य वस्तुओं को मिलाकर एक मास-पर्यन्त हवन करने से कपूर-चन्दनादि सुगन्धित वस्तुओं की प्राप्ति होती है। छः मास-पर्यन्त दुग्ध-संसिक्त चावल से प्रतिदिन एक सौ आहुति प्रदान करने से मन्त्रज्ञ साधक निश्चित रूप से चावल से समृद्ध हो जाता है। वर्ष-पर्यन्त प्रतिदिन तिल से हवन करने पर आरोग्य की प्राप्ति होती है। अपने प्रत्येक जन्मदिवस पर दूब से हवन करने पर साधक आतंक-रहित एवं अतिशय भाग्यवान होकर सौ वर्षों तक जीवित रहता है।।३३४-३४६।।

गुडूचीतिलदूर्वाभिः स्वजन्मसु सदा हुनेत्।
चिरायुः श्रीयशोभाग्यपुण्यदृष्ट्यादिभाग्भवेत् ।।३४७।।
घृतपायसदुग्धैश्च हुनेत्तेषु त्रिषु क्रमात्।
आयुरारोग्यविभवैर्जनमान्यो भवेत्तदा ।।३४८।।
सप्तम्यां कदलीहोमात्सौभाग्यं लभते ध्रुवम्।
दूर्वात्रिकैस्तु प्रादेशमात्रैस्त्रिस्वादुसंयुतैः।
षण्मासादब्दतो वापि रोगमुक्तः सुखी भवेत् ।।३४९।।
तद्दिनेषु जपेद्विद्यां नित्यशः सलिलं स्पृशन्।
सहस्रवारं तैस्तोयैः स्नानं पानं समाचरेत्।
पाकाद्यमपि तेनैव कुर्याद्रोगविमुक्तये ।।३५०।।
साध्यर्क्षवृक्षसञ्चूर्णं त्र्यूषणं सर्षपास्तिलाः।
पिष्टं च साध्यपादोत्थरजसा च समन्वितम्।
कृत्वा पुत्तलिकान्तैस्तु हृदयेन च संयुताम् ।।३५१।।

प्राग्वच्छित्त्वायसैः शस्त्रैस्तीक्ष्णैः पुत्तलिकां हुनेत् ।
त्रिसहस्त्रं त्रियामायां सर्षपैस्तद्रसप्लुतैः ।
शतयोजनदूरादप्यानयेद्वनिता बलात् ॥३५२॥
तान्तु पुत्तलिकां मद्यमधूच्छिष्टसमन्वितम् ।
कृतप्राणप्रतिष्ठां च श्मशाने निखनेन्निशि ।
क्लेशैस्तैः स विनिर्मुक्तः सुखी जीवति भूतले ॥३५३॥
साध्यवृक्षेण कृत्वा तां सर्षपाढ्येन चेप्सिताम् ।
तोयमध्ये निधायैतां क्वाथयेद्युतवासरे ।
वैरी घोरज्वरेणार्त्तः कृते प्राग्वत्सुखी भवेत् ॥३५४॥
तथैव चण्डिकागेहे यथाविधियुतो यजेत् ।
साध्यो वशः स्यान्नृपतिर्भास्करायतने तथा ।
तद्विधानेन . सहिते शत्रुरुन्मादवान्भवेत् ॥३५५॥

अपने जन्मदिन पर बराबर गुरुच, तिल और दूर्वा से हवन करना चाहिये। ऐसा करने वाला साधक दीर्घायु होकर श्री, यश, भाग्य, पुण्यदृष्टि आदि का भागी होता है। घी, पायस और दूध से अलग-अलग क्रमवार हवन करने से आयु, आरोग्य, वैभव और लोकमान्यता प्राप्त होती है।

सप्तमी तिथि को केले के हवन से निश्चित ही सौभाग्य-प्राप्ति होती है। एक बीत्ता लम्बे दूर्वा के तीन टुकड़ों को त्रिमधुराक्त करके छः मास-पर्यन्त अथवा वर्ष-पर्यन्त हवन करने से मनुष्य रोगमुक्त होकर सुखी होता है। रोगविमुक्ति के लिये उन दिनों में प्रतिदिन जलस्पर्श करते हुये मन्त्र का एक हजार जप करना चाहिये एवं उसी जल से स्नान करना चाहिये तथा उसी जल का पान भी करना चाहिये। साथ ही भोजन आदि भी उसी जल से बनाना चाहिये।

साध्यनक्षत्रवृक्ष के चूर्ण के साथ नागर, पिप्पली, मरिच, सरसों, तिलपिष्ट और साध्य के पदरज मिलाकर पुत्तली बनाकर उसमें प्राणसञ्चार करके तेज धार वाले लोहे के हथियार से पूर्ववत् पुत्तली को टुकड़े-टुकड़े करके उनसे हवन करने के पश्चात् रात्रि में सरसों को उसी के रस से प्लुत करके तीन हजार हवन करने से सौ योजन दूर विद्यमान स्त्री भी हठात् साधक के पास आ जाती है। उसकी प्रतिमा को उच्छिष्ट मद्य एवं मधु से बनाकर उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करके रात में श्मशान में गाड़ देने वाला साधक क्लेशों से मुक्त होकर पृथ्वी पर सुखी जीवन व्यतीत करता है।

प्रचुर सर्षप एवं साध्य वृक्ष के चूर्ण से ईप्सित साध्य की प्रतिमा बनाकर साध्य

के जन्मदिन पर उसे जल में डालकर उसका क्वाथ बनाने से शत्रु घोर ज्वर से व्याकुल हो जाता है और साधक पूर्ववत् सुखी होता है। इसी प्रकार चण्डी-मन्दिर में विधिवत् पूजन करने से राजा अथवा सूर्य के महल में रहने वाला साध्य भी वशीभूत हो जाता है। इस विधान से शत्रु उन्मादग्रस्त हो जाता है।।३४७-३५५।।

त्वरितादेवीमन्त्रसाधनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि त्वरितामन्त्रमुत्तमम्।
ॐ ह्रीं हूंखेंचेंक्षैंक्षः श्रींहूंक्षेंह्रींफट्मनुर्भवेत् ।।३५६।।
त्वरिताया द्वादशार्णो मुनिरर्जुन ईरितः।
विराट् छन्दश्च ॐ बीजं ह्रीं शक्तिस्त्वरिता सुरी ।।३५७।।
ॐ ह्रीं हूं हृदयं प्रोक्तं शिरः खें चें समीरितम्।
क्षैं क्षः शिखा च वर्म श्रीं हूं क्षें नेत्रम्प्रकीर्तितम् ।।३५८।।
ह्रींफडस्त्रं षडङ्गानि कृत्वा वर्णांस्ततो न्यसेत्।
कपालकण्ठहृन्नाभिगुह्योरुषु सजानुषु।
जङ्घयोः पादयोर्मन्त्री सर्वेण व्यापकञ्चरेत् ।।३५९।।
लसच्छ्यामतनुं रक्तपङ्कजोद्यत्पदाम्बुजाम्।
ताटङ्कातङ्कविद्योतिरशनानूपुरात्मकैः ।।३६०।।
विप्रक्षत्रियविट्शूद्रजातिभिर्भीमविग्रहैः।
द्विद्विक्रमादष्टनागैः कल्पितोद्यत्सुभूषणाम् ।।३६१।।
पल्लवाङ्कुशसंवीतशिखिपुच्छकृतैः शुभैः।
वलयैर्भूषितभुजां माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम्।।३६२।।
बर्हिबर्हकृतापीडां छत्रान्तां तत्पताकिनीम्।
गुञ्जाफललसद्धारविलसत्कुचमण्डलाम् ।।३६३।।
त्रिनेत्रां चारुवदनां मन्दस्मितमुखाम्बुजाम्।
वराभयकरां गण्डद्वयां मुकुटशोभिताम् ।।३६४।।
फणासहस्रसंयुक्तावथ तक्षकवासुकी।
शङ्खपालः स्वर्णवर्णः फणाष्टकशतावृतः।
आसने हेमरचिते त्वष्टसिंहवृतेऽभितः ।।३६५।।

त्वरिता मन्त्र-साधन—अब मैं त्वरिता के उत्तम मन्त्र को कहता हूँ। त्वरिता का द्वादशाक्षर मन्त्र है—ॐ ह्रीं हूं खें चें क्षैं क्षः श्रीं हूं क्षें ह्रीं फट्। इस मन्त्र के ऋषि अर्जुन, छन्द विराट्, बीज ॐ, शक्ति ह्रीं एवं देवी त्वरिता कही गई हैं।

इसका षडङ्ग न्यास इस प्रकार करना चाहिये—ॐ ह्रीं हूं हृदयाय नमः, खें चें शिरसे स्वाहा, क्षें क्षः शिखायै वषट्, श्रीं हूं कवचाय हुम्, क्षें नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्रीं फट् अस्त्राय फट्। इसके बाद मन्त्र के बारह वर्णों का कपाल, कण्ठ, हृदय, नाभि, गुह्य, ऊरु, दोनों जानु, दोनों जङ्घा एवं दोनों पैर में करना चाहिये। इसके बाद सम्पूर्ण मन्त्र से व्यापक न्यास करना चाहिये।

तत्पश्चात् इस प्रकार देवी त्वरिता का ध्यान करना चाहिये—उनका श्यामवर्ण शरीर शोभायमान है, दोनों चरणकमल रक्तपद्म के समान हैं। वे शब्दायमान ताटङ्क (कर्णाभूषण) दीप्तिमान काञ्ची एवं नूपुर से सुशोभित हैं, दो-दो के क्रम से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य एवं शूद्र जातियों के भयंकर शरीर वाले आठ नागों से बने आभूषणों से दमक रही हैं, छोटे-छोटे पल्लवों से आच्छादित मयूरपुच्छ-निर्मित सुन्दर वलयों को भुजा में धारण की हुई हैं, उनके माथे पर माणिक्य-जटित मुकुट चमक रहा है, मयूरपुच्छ-निर्मित शिरोवस्त्र छत्र एवं पताका धारण की हुई हैं, गुंजाफलों के शोभायमान हार उनके स्तनों पर विलास कर रहा है, उनके मुख पर तीन नेत्र हैं, मुखकमल मन्द मुस्कान से युक्त है, हाथों में वर एवं अभय धारण की हुई हैं, दोनों गण्डस्थल मुकुट से सुशोभित हैं, हजार फणों से युक्त तक्षक एवं वासुकी तथा स्वर्णवर्ण शंखपाल के आठ सौ फणों से वे घिरी हुई हैं एवं चारो ओर से आठ सिंहों से घिरे स्वर्णरचित आसन पर विराजमान हैं।।३५६-३६५।।

आदौ तु पीठमन्त्रेण देवीपीठं प्रपूजयेत्।
क्षंहुंहंवज्रदेहेति क्षिं चोक्त्वाथ कुरुद्वयम् ।।३६६।।
गर्ज्जद्वयं तथा हुंहुंछां च पञ्चाननाय च।
नमः षड्विंशदर्णोऽयं कुर्यादष्टदलं ततः ।।३६७।।
कर्णिकायाञ्च पूर्वादिकेशरेष्वष्टसु क्रमात्।
षडङ्गानि प्रणीतां च तद्गायत्रीक्रमाद्यजेत् ।।३६८।।
हुं कालीं खेचरीं चण्डां छेदिनीं क्षेपिणीं स्त्रियम्।
हूंकारीं वा शचीं क्षेमकरीं पूर्वादिपत्रके ।।३६९।।
तद्बहिर्भूपुरद्वन्द्वं पश्चिमद्वारसंयुतम्।
फट्कारीं पूजयेद् द्वारमध्ये देव्यास्तु किङ्करीम् ।।३७०।।
कृष्णां कर्बुरकेशीं च हस्ततालवतीं जयेत्।
जयां च विजयां द्वारपार्श्वयोर्वेत्रधारिणीम् ।।३७१।।
तयोरग्रे किङ्करं च गदाहस्तं प्रपूजयेत्।
किङ्कराय रक्ष रक्ष त्वरिताज्ञास्थिरो भव ।।३७२।।

हुंफडष्टादशार्णोऽयं मन्त्रः किङ्करपूजने।
तदग्रे लोकपालांश्च तदस्त्राणि ततो यजेत्।
गायत्र्यृचा च सम्पूज्य देवसान्निध्यकारिणीम् ॥३७३॥
त्वरितादेवि विद्महे तुणिविद्यायै धीमहि।
तन्नो देवी प्रचोदयात् ॥३७४॥

सर्वप्रथम पीठमन्त्र से देवीपीठ का पूजन करना चाहिये। छब्बीस अक्षरों का पीठमन्त्र इस प्रकार है—क्षं ह्वुं हं वज्रदेह क्षिं कुरु कुरु गर्ज गर्ज हुं हुं छां पञ्चाननाय नमः।
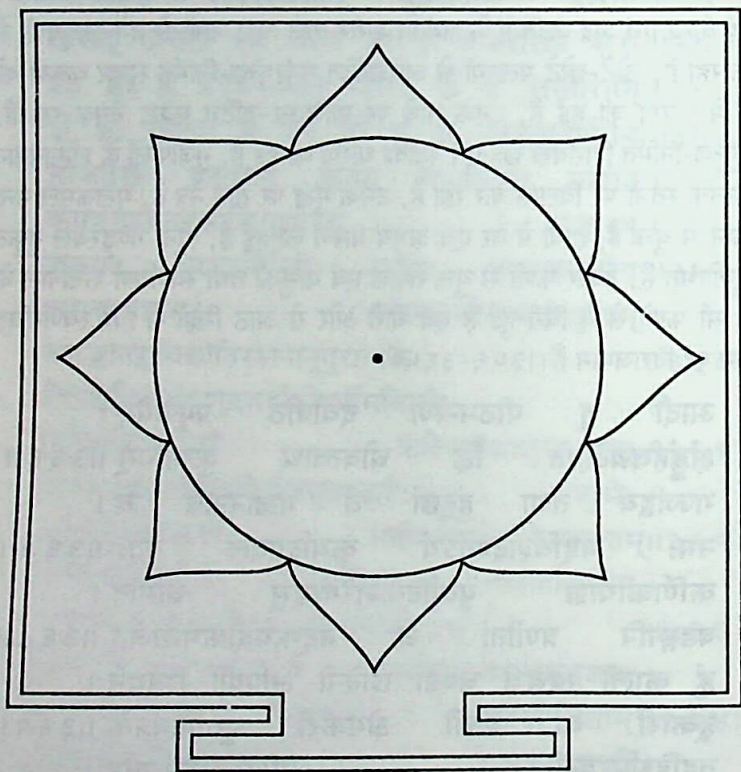
तदनन्तर अष्टदल कमल बनाकर यन्त्र के कर्णिकाविन्दु की आठों दिशाओं में क्रमशः हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र, अस्त्र, प्रणीता और गायत्री का पूजन करना चाहिये। अष्टदल में पूर्व से प्रारम्भ करके ह्वुंकाली, खेंचरी, चण्डा, छेदिनी, क्षेपिणी, हूंकारी, शची एव क्षेमकरी—इन आठ शक्तियों का पूजन करना चाहिये। फिर उसके बाहर पश्चिम द्वार वाले द्विरेखात्मक भूपुर के द्वार के मध्य में देवी की दासी फट्कारी

का पूजन करना चाहिये। द्वार के दोनों पार्श्वों में देवी की कृष्ण वर्ण एवं भूरे बालों वाली, हाथों से ताली बजाने वाली वेत्रधारिणी किंकरियों जया एवं विजया का तथा उनके आगे हाथ में गदा लिये हुये किङ्कर (दास) का पूजन करना चाहिये। अट्ठारह अक्षरों का किङ्करपूजन मन्त्र इस प्रकार है—किङ्कराय रक्ष रक्ष त्वरिताज्ञास्थिरो भव हुं फट्। उसके आगे इन्द्रादि दश दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये। देवता का सान्निध्य प्रदान करने वाली त्वरिता का उनके गायत्री मन्त्र से पूजन करना चाहिये। त्वरिता की गायत्री इस प्रकार है—त्वरितादेवि विद्महे तुणिविद्यायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्।।३६६-३७४।।

प्रणवेन विना मन्त्रो भवार्णः परिकीर्तितः।
मोहनः सर्वलोकानां तेन मोहननामकः ।।३७५।।
प्रणवानां तु नवकमादौ च स्यान्नखार्णवान्।
सर्वसिद्धिप्रदातृत्वात् सर्वसिद्धीश्वरो मतः ।।३७६।।
आरक्तैर्वनसम्भूतैर्मनोज्ञैश्च सुगन्धिभिः।
धूपदीपादिभिर्नृत्यगीतैः सम्पूजयेच्छिवाम् ।।३७७।।
एवं पूजां विधायाग्रे यजेद्विद्यां सहस्रकम्।
शतं वा कृतहोमस्तु प्राग्वत्पूजां समापयेत् ।।३७८।।
एवं संस्मृत्य लक्षैकं प्रजपेन्मनुमुत्तमम्।
मध्वक्तबिल्वसमिधो जुहुयात्तद्दशांशतः ।।३७९।।
सुगन्धिसलिलैश्चैव तर्पयेत्त्वरितां पराम्।
आत्मानमभिषिच्याथ ब्राह्मणानपि भोजयेत् ।।३८०।।
एवं सिद्धे मनौ तस्मै नरनारीनराधिपाः।
नमस्क्रियां प्रकुर्वन्ति नात्र कार्या विचारणा ।।३८१।।
देवदानवगन्धर्वयक्षचारणयोषितः।
सिद्धविद्याधराणां च योषितोऽप्सरसस्तथा ।।३८२।।
विस्पष्टजघनोरस्काः पृष्ठदोर्मूलमञ्जुलाः।
प्रस्खलत्पदविन्यासाः संस्फुरद्दशनांशुकाः ।।३८३।।
प्रलोभयन्ति चागत्य मन्त्रिणं ताभिरन्तिके।
प्रलोभ्यमानो मन्त्रज्ञो यदा विक्रियते न सः।
तदैव वाञ्छितं तस्मै ददाति त्वरिताखिलम् ।।३८४।।
सञ्जप्य कर्णयोर्विद्यां पद्भ्यां च जपसिद्धये।
सन्ताड्य शीर्षे सहसा मृतमुत्थापयेदसौ ।।३८५।।

प्रणव के विना वही मन्त्र (ॐ ह्रीं ह्रूं खें चें क्षैं क्षः श्रीं ह्रूं क्षें ह्रीं फट्) ग्यारह अक्षरों का कहा गया है। तीनों लोकों को मोहित करने वाला होने के कारण यह एकादशाक्षर मन्त्र 'मोहनमन्त्र' कहा जाता है। इसके नवों बीजों के पूर्व ॐ लगाने से यही मन्त्र बीस अक्षरों का हो जाता है—ॐ ह्रीं ॐ ह्रूं ॐ खें ॐ चें ॐ क्षैं ॐ क्षः ॐ श्रीं ॐ ह्रूं ॐ क्षें ह्रीं फट्। यह विंशाक्षर मन्त्र समस्त सिद्धियों का प्रदाता होने के कारण सर्वसिद्धीश्वर कहा जाता है। वनोद्भूत मनोज्ञ सुगन्धित रक्त द्रव्य, धूप, दीप, नृत्य, गीत आदि से शिवा का पूजन करके उनके आगे बैठकर मन्त्र का एक हजार अथवा एक सौ जप करने के पश्चात् पूर्ववत् हवन करके पूजा का समापन करना चाहिये।

इस प्रकार स्मरण करके श्रेष्ठ मन्त्र का एक लाख जप करने के उपरान्त मधु-सिक्त बेल की समिधाओं से कृत जप का दशांश (दश हजार) हवन करना चाहिये। तदनन्तर सुगन्धित जल से त्वरिता का तर्पण करने के बाद स्वयं का अभिषेक करके ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। इस प्रकार मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर उस मन्त्रज्ञ साधक को नर-नारी और राजा प्रणाम करते हैं; इसमें कोई संशय नहीं है।

अर्धनग्न जंघाओं एवं सुन्दर पृष्ठभाग तथा भुजाओं वाली देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, चारण, सिद्धविद्याधरों की स्त्रियाँ तथा अप्सरायें उस मन्त्रज्ञ साधक के पास आकर अपने लड़खड़ाते कदमों एवं मुस्कुराते होठों से उसे प्रलोभित करने का प्रयास करती हैं। उस समय साधक यदि उनके प्रति लुब्ध नहीं होता तो उसी समय त्वरिता उसके पास आकर उसका समस्त अभीष्ट प्रदान करती हैं। इस सिद्ध विद्या का मृतक के दोनों कानों में सम्यक् रूप से जप करके मृतक के सिर पर पैरों से प्रहार करने पर अकस्मात् ही वह मृतक उठ खड़ा होता है।।३७५-३८५।।

काम्यहोमविधिं वक्ष्ये यथाविधि विधानवित्।
कृत्वा योनिं कुण्डमध्ये समाधायाग्निमत्र वै ।।३८६।।
सम्पूज्य पूर्वविधिना देवतां विधिवत्सुधीः।
तिलसर्षपगोधूमशालिधान्ययवैर्हुनेत् ।।३८७।।
त्रिमध्वक्तैरेकशो वा समेतैर्वा समृद्धये।
बकुलैश्चम्पकै रक्तैः कह्लारैररुणोत्पलैः ।।३८८।।
कैरवैर्मल्लिकाकुन्दमधुकैरिन्दिराप्तये ।
अशोकैः पाटलैर्बिल्वैस्तत्तदाप्नोति निश्चितम् ।।३८९।।
दूर्वां गुडूचीमश्वत्थं वटमारग्वधं तथा।
सिताज्यलक्षकं हुत्वा रोगान्मुक्तो नरोऽचिरात् ।।३९०।।

इक्षुजम्बूनारिकेरमोचागुडसिता हुनेत्।
अचलां लभते लक्ष्मीं भोक्ता च भवति ध्रुवम्॥३९१॥
एतैरुदीरितैराज्यमधुक्षीरप्लुतैर्हुनेत्।
एकैकैर्वनिता वश्या यावज्जीवं धनादिभिः॥३९२॥
एतैराज्यप्लुतैर्भूयो वश्याः स्युर्हवनात्तथा।
क्षीराक्तैस्तैर्हुनेन्मर्त्यो वशे तिष्ठन्त्यशेषतः॥३९३॥

काम्य होमविधि—अब काम्य हवनविधि का वर्णन करता हूँ। विधिज्ञ साधक को कुण्ड के मध्य मे यथाविधि योनि का निर्माण करके वहीं पर अग्नि का स्थापन करना चाहिये।

समृद्धि-प्राप्ति के लिये विद्वान् साधक को पूर्वोक्त विधि से सम्यक् रूप से देवता का पूजन करके त्रिमधु-सिक्त तिल, सरसों, गेहूँ, शालिधान्य एवं यव—इनसे अलग-अलग अथवा एक साथ हवन करना चाहिये। लक्ष्मी-प्राप्ति के लिये बकुल, चम्पा, लाल कल्हार, लाल कमल, कुमुद, मल्लिका, कुन्द और महुआ के फूलों से हवन करना चाहिये। अशोकपुष्प, पाटलपुष्प एवं बिल्वपुष्प से हवन करके साधक निश्चित रूप से समृद्धि एवं लक्ष्मी को प्राप्त करता है।

मिश्री एवं गोघृत-मिश्रित दूर्वा, गुरुच, पीपल, वट एवं अमलतास से एक लाख हवन करने पर थोड़े ही दिनों में मनुष्य रोगमुक्त हो जाता है।

ईख, जामुन, नारियल, मोचा (केला), गुड़ एवं शर्करा के हवन से अचला लक्ष्मी की प्राप्ति होती है और साधक अवश्यमेव उसका भोग करने वाला होता है।

गोघृत, मधु एवं गोदुग्ध से सिक्त ईख, जामुन, नारियल, मोचा, गुड़ एवं शर्करा द्वारा अलग-अलग हवन करने से अपने धनादि-सहित स्त्रियाँ आजीवन साधक के वशीभूत हो जाती हैं। पूर्वोक्त द्रव्यों को गोघृत-सिक्त करके हवन करने से भी वनितायें वशीभूत होती हैं; साथ ही इन्हीं वस्तुओं को दुग्ध से सिक्त करके हवन करने पर समस्त मनुष्य साधक के वश में रहते हैं।।३८६-३९३।।

सर्षपाज्यैर्हुनेन्मृत्युकाष्ठाग्नौ वैरिमृत्यवे।
तदुक्तवैरिणो नित्यं माषैरपि च तत्कृते॥३९४॥
यक्षेन्धनाग्नौ यो नित्यं क्षतजोत्पादितं चरुम्।
कारस्करघृतोपेतं फणिशीर्षस्त्रुचा हुनेत्॥३९५॥
कृष्णांशुकशिरोवेष्टः खड्गपाणिश्च रोषवान्।
निशायां जुहुयात्सद्यो निहन्तुं वैरिणं हठात्॥३९६॥

मृत्युकाष्ठानले तस्य फलैः पत्रैश्च होमतः।
सप्तरात्रादरातेस्तु गजाश्वा रोगमाप्नुयुः ॥३९७॥
चतुरङ्गुलजे होमे चतुरङ्गबलैर्नृपः।
सप्ताहाद्रोगमाप्नोति दुःखार्त्तो नैव संशयः ॥३९८॥
मन्त्रजप्तोदकैः सेकाद्रोगशान्तिर्भविष्यति।
तज्जप्तमष्टधा तावद्यज्जलं चुलुकोदकात् ॥३९९॥
होमसङ्ख्या यावती स्याज्जपसङ्ख्या च तावती।
तत्कर्णरन्ध्रजापाच्च नश्येयुश्च विषग्रहाः ॥४००॥
तद्यन्त्रस्थापनं चैव विषभूतारिनाशनम्।

शत्रु की मृत्यु के लिये गोघृत-मिश्रित सरसों से मृत्युकाष्ठ की अग्नि में हवन करना चाहिये। मृत्युकाष्ठ की प्रज्वलित अग्नि में ही गोघृताक्त उड़द के हवन से भी वैरियों की मृत्यु होती है। जो साधक प्रतिदिन रात्रि में काले वस्त्र को शिर में लपेटकर तथा हाथ में खड्ग लेकर क्रोधपूर्वक सर्पशीर्षाकार स्रुचा द्वारा कारस्करघृत-समन्वित पिष्ट-निर्मित चरु (हव्यान्न) से वटकाष्ठ की प्रज्वलित अग्नि में हवन करता है, उसके शत्रु की सद्यः ही अचानक मृत्यु हो जाती है।

सात रात्रियों तक मृत्युकाष्ठ की अग्नि में मृत्युवृक्ष के फल और पत्ते से हवन करने से शत्रु के हाथी-घोड़े रोगी हो जाते हैं। सात दिनों तक हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकों के केश के हवन से चतुरंगिणी सेना-सहित राजा रोगग्रस्त होकर दुःख से व्याकुल हो जाता है; इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिये।

ऐसी परिस्थिति में इस मन्त्र के आठ जप से अभिमन्त्रित आठ चुल्लू जल द्वारा अभिषेक करने पर रोगशान्ति होती है। जितनी संख्या में हवन किया गया हो, उतनी ही संख्या में उस राजा के कान में इस मन्त्र का जप करने से विषग्रहों का नाश हो जाता है। इसके यन्त्र को स्थापित करने से भी विष, भूत और शत्रुओं का नाश होता है।।३९४-४००।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शिवदूतीमनुम्परम् ॥४०१॥
माया च शिवदूत्यै हृत्सप्तार्णोऽयं मनुर्मतः।
ऋषी रुद्रोऽस्य गायत्री छन्दः स्याद्देवता शिवा ॥४०२॥
ह्रीं बीजं च नमः शक्तिः शिवदूत्यै च कीलकम्।
षड्दीर्घयुक्तमनुना षडङ्गविधिरीरितः ॥४०३॥
तेनैव पुटितैरङ्गे मन्त्रार्णैर्विन्यसेत्तनौ।

श्रोत्रनासाकपोलाक्षिनाभिषु क्रमतः सुधीः।
पृष्ठे मनसि विन्यस्य व्यापकं विद्यया चरेत् ॥४०४॥
निदाघकालमध्याह्नदिवाकरसमप्रभाम् ।
नवरत्नकिरीटां च त्रीक्षणामरुणाम्बराम् ॥४०५॥
नानाभरणसम्भिन्नदेहकान्तिविराजिताम् ।
शुचिस्मितामष्टभुजां स्तूयमानां महर्षिभिः ॥४०६॥
पाशं खेटङ्गदां रत्नचषकं वामबाहुभिः।
दक्षिणैरङ्कुशं खड्गकुठारं कमलं तथा ॥४०७॥
दधानां साधकाभीष्टदानोद्यमसमन्विताम् ।
ध्यात्वैवं पूजयेद्देवीं दूतीं दुरितनाशिनीम् ॥४०८॥

शिवदूती-मन्त्र—अब मैं शिवदूती के श्रेष्ठ मन्त्र को कहता हूँ। सात अक्षरों का यह मन्त्र है—ह्रीं शिवदूत्यै नमः। इस मन्त्र के ऋषि रुद्र, छन्द गायत्री और देवता शिवा कही गई हैं। इसका बीज 'ह्रीं', शक्ति 'नमः' एवं कीलक 'शिवदूत्यै' है। इसका षडङ्ग न्यास इस प्रकार करना चाहिये—ह्रां शिवदूत्यै नमः हृदयाय नमः, ह्रीं शिवदूत्यै नमः शिरसे स्वाहा, ह्रूं शिवदूत्यै नमः शिखायै वषट्, ह्रैं शिवदूत्यै नमः कवचाय हुम्, ह्रौं शिवदूत्यै नमः नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्रः शिवदूत्यै नमः अस्त्राय फट्। साधक को ह्रीं से ही पुटित मन्त्रवर्णों का शरीर के श्रोत्र, नासिका, कपोल, नेत्र, नाभि, पृष्ठ एवं हृदय में क्रमशः न्यास करना चाहिये। इसके बाद सम्पूर्ण मन्त्र से व्यापक न्यास करना चाहिये।

ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्नकालीन सूर्य के सदृश दीप्तिमान, नव रत्न-जटित किरीट धारण की हुई, तीन नेत्रों वाली, रक्त वस्त्र धारण की हुई, नाना प्रकार के आभूषणों के कारण मिश्रित देहकान्ति वाली, पवित्र मुस्कान-युक्त, आठ भुजाओं वाली, महर्षियों द्वारा स्तुति की जाती हुई, बाँयें हाथों में पाश खेट (मूसल) गदा एवं रत्नपात्र तथा दाहिने हाथों में अंकुश खड्ग कुठार एवं कमल धारण की हुई, साधक को उसकी अभीष्ट प्रदान करने-हेतु प्रयत्नशील, पापनाशिनी देवी शिवदूती का ध्यान करके पूजन करना चाहिये।।४०१-४०८।।

वृत्तद्वयं बहिष्कुर्यादन्तरालेऽङ्गषट्ककम् ।
त्रिकोणस्याग्रकोणादिप्रादक्षिण्येन तद्बहिः ।
इच्छाज्ञानक्रियाशक्तीस्त्रिषु कोणेषु पूजयेत् ॥४०९॥
तद्बाह्ये कोणषट्के तु स्वाग्रतः पूजयेदिमाः ।
सिद्धा वाणी पूर्णसिद्धाग्रे विग्रहवती तथा ॥४१०॥

नादा मनोन्मनी चेति तद्बहिश्चापि षड्दले ।
डाकिन्याद्यास्तदग्रे तु यजेदष्टदलाम्बुजे ॥४११॥
शिवदूतीसमाकारवर्णायुधसमन्विताः ।
सुमुखीं सुन्दरीं सारां सुमनां च सरस्वतीम् ॥४१२॥
समयां सर्वगां सिद्धां तद्बाह्येऽष्टदले यजेत् ।
वागीशां वरदां विश्वां विनदां विघ्नकारिणीम् ॥४१३॥
वीरां विघ्नहरां विद्यां तदग्रे भूपुरे यजेत् ।
द्वारस्य दक्षिणं भागं समारभ्य प्रदक्षिणम् ॥४१४॥
विह्वलां कर्षिणीं लोलां नित्यां मदनमालिनीम् ।
प्रमोदां कौतुकां पुण्यां लोकेशास्त्राणि तद्बहिः ॥४१५॥
लक्षञ्जपेत्प्रयत्नेन घृताक्तेन च होमयेत् ।
तर्पयेद् गन्धसलिलैरात्मानमभिषेचयेत् ॥४१६॥
ब्राह्मणान् भोजयेच्चापि गुरुं यत्नेन तोषयेत् ।
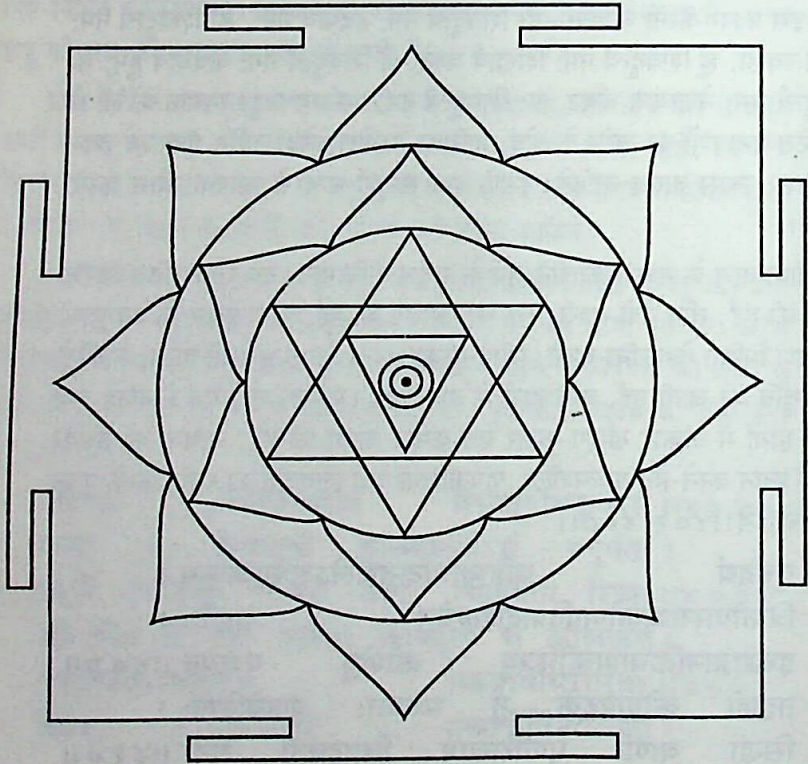
यन्त्र के मध्य में दो वृत्तों के आवरण में षडङ्ग-पूजन करके त्रिकोण के तीनों कोणों में इच्छा, ज्ञान और क्रिया का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर षट्कोणों में अपने आगे से आरम्भ कर क्रमश: सिद्धा, वाणी, पूर्णसिद्धा, विग्रहवती, नादा एवं मनोन्मनी का पूजन करने के बाद उसके बाहर षड्दलों में डाकिनी, राकिनी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी एवं हाकिनी का पूजन करना चाहिये। फिर उसके आगे अष्टदलों में शिवदूती के समान ही आकृति, वर्ण एवं आयुध वाली सुमुखी, सुन्दरी, सारा, सुमना, सरस्वती, समया, सर्वगा तथा सिद्धा का पूजन करना चाहिये। फिर अष्टदलों के बाहर प्रत्येक दलों के सामने वागीशा, वरदा, विश्वा, विनदा, विघ्नकारिणी, वीरा, विघ्नहरा एवं विद्या का पूजन करना चाहिये।

तदनन्तर भूपुर में द्वार के दक्षिण भाग से प्रारम्भ करके प्रदक्षिणक्रम से विह्वला, कर्षिणी, लोला, नित्या, मदनमालिनी, प्रमोदा, कौतुका एवं पुण्या का पूजन करने के उपरान्त उसके बाहर इन्द्रादि दश दिक्पालों का एवं पुन: उनके आगे वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिये।

तत्पश्चात् यत्नपूर्वक मन्त्र का एक लाख जप करने के बाद घृताक्त हविष्य से कृत जप का दशांश हवन एवं हवन का दशांश सुगन्धित जल से तर्पण करने के पश्चात् स्वयं का अभिषेक करके ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। इसके बाद अपने गुरु को भी यत्न-पूर्वक सन्तुष्ट करना चाहिये।।४०९-४१६।।

वशयेद्वनिता होमात् कौशिकैर्मधुमिश्रितै:।
नारिकेलफलोपेतैर्गुडैर्लक्ष्मीमवाप्नुयात् ।।४१७।।
तथाज्यसिक्तै: कह्लारै: क्षीराक्तैररुणोत्पलै:।
त्रिमध्वक्तैश्चम्पकैश्च प्रसूनैर्बकुलोद्भवै: ।।४१८।।
मधूकजै: प्रसूनैश्च होमात्कन्यामवाप्नुयात्।
पुन्नागजैर्हुतैर्वस्त्राण्याज्यैरिष्टमवाप्नुयात् ।।४१९।।
महिषीर्माहिषैराज्यैरजागव्यैश्च गास्तथा।
अवाप्नोति हुतैराज्यैरम्लै रत्नादि साधक: ।।४२०।।
शालिपिष्टमयीं कृत्वा पुत्तलीं च सितायुताम्।
हृद्देशे न्यस्य साध्याख्यां पचेत्तैलाज्ययोर्निशि ।।४२१।।
रात्रिन्दिवं तु तां मन्त्री विद्याजप्तां तु भक्षयेत्।
सप्तरात्रप्रयोगेण नरो नारी नृपोऽथ वा।
दासवच्च समायाति प्रियं प्राणादि चार्पयेत् ।।४२२।।

हयारिपुष्पैररुणैः सितैर्वा जुहुयात्ततः।
त्रिसप्तरात्रान्महतीमवाप्नोति श्रियं नरः ॥४२३॥
छागमांसैस्त्रिमध्वक्तैर्होमात् स्वर्णमवाप्नुयात्।
क्षीराक्तैः सस्यसम्पन्नां भुवमाप्नोति मण्डलात्।
पद्माक्षैर्जुहुयाल्लक्ष्मीमवाप्नोति त्रिभिर्दिनैः ॥४२४॥
समस्तापत्तारणीयं मोहिनी विश्वमोहिनी।
श्रीकरा शिवरूपाह्वा प्रोक्ता सर्वसमृद्धिदा ॥४२५॥

मधुमिश्रित गुग्गुल के हवन से स्त्री वशीभूत होती है। नारियलफल और गुड़ के हवन से लक्ष्मी प्राप्त होती है। आज्यसिक्त कल्हार, क्षीराक्त लाल कमल तथा त्रिमधु-सिक्त चम्पा, बकुल एवं महुआ के पुष्पों द्वारा हवन करने से (विवाहहेतु) कन्या की प्राप्ति होती है। पुन्नाग के हवन से वस्त्र और गोघृत के हवन से इष्ट-प्राप्ति होती है। भैंस के घी से हवन करने पर भैंस एवं गोघृत के हवन से गौ की प्राप्ति होती है। शुद्ध गोघृत के हवन से साधक को रत्नादि प्राप्त होते हैं।

शक्कर-मिश्रित शालिपिष्ट से प्रतिमा का निर्माण करके उसके हृदय में साध्य का नाम लिखकर रात्रि में तैल एवं गोघृत में उसका पाक करके अहर्निश मन्त्रजप द्वारा उस पाक को अभिमन्त्रित करने के पश्चात् उसका भक्षण करना चाहिये। सात रात्रियों तक इस प्रयोग को करने से नर-नारी अथवा राजा दास के समान साधक के समक्ष उपस्थित हो जाते हैं एवं उसके लिये अपने प्रियों और प्राणों को भी समर्पित कर देते हैं।

जो मनुष्य तीन अथवा सात रात्रियों में रक्त अथवा श्वेत कनैल के पुष्पों से हवन करता है, वह प्रचुर लक्ष्मी को प्राप्त करता है।

चालीस दिनों तक त्रिमधु-सिक्त छाग (बकरा) के मांस से हवन करने पर सुवर्ण की प्राप्ति होती है एवं दुग्धसिक्त छागमांस के हवन से सस्य-सम्पन्न भूमि की प्राप्ति होती है। तीन दिनों तक कमलगट्टे के हवन से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

मोहिनी, विश्वमोहिनी, श्रीकरा, शिवरूपा—इन अभिधानों से अभिहित की जाने वाली यह देवी समस्त आपत्तियों से उद्धार करने वाली तथा समस्त समृद्धियाँ प्रदान करने वाली कही गई है।।४१७-४२५।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि त्रिवर्णान्तु त्रिकण्टिकाम्।
हुंखेंक्षः फट् चेति मन्त्र ऋष्यादि त्वरितासमम् ॥४२६॥
षडङ्गन्तु द्विरुक्तार्णैर्ध्यानमस्या निरूप्यते।
पादादिनाभिपर्यन्तमरुणां नाभितो गलम् ॥४२७॥

नीलां गलाद् ब्रह्मरन्ध्रं श्वेतां च चतुराननाम्।
हस्तेषु शङ्खचक्रे च दीपौ चन्द्रार्धशेखराम् ॥४२८॥
अर्चयेत्त्वरितापीठे प्रयोगाद्यन्तथैव च।
वर्णलक्षं जपेदन्ते दशांशेन घृतैर्हुनेत् ॥४२९॥
आत्मानं देवतारूपं ध्यात्वा कृत्वा करद्वये।
शूलमुद्रां ग्रहग्रस्तां दृष्ट्वेमं प्रजपेन्मनुम् ॥४३०॥
आशुग्रहात्प्रमुच्येत नरो मन्त्रप्रभावतः।
नातः परतरा विद्या ग्रहनिर्वापणक्षमा ॥४३१॥
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि विद्यां वश्यत्रिकण्टिकाम्।
खेंस्त्रींक्षें त्र्यर्णमन्त्रोऽयं निखिलं त्वरितासमम् ॥४३२॥

त्रिकण्टिका-मन्त्र—अब तीन वर्णों वाली त्रिकण्टिका के मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—हुं खें क्षः फट्। इसके ऋषि आदि त्वरिता के ही समान होते हैं। दो बार उच्चरित बीजमन्त्रों की दो आवृत्ति से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये। अब इसके ध्यान को कहा जा रहा है। पैरों से नाभि-पर्यन्त रक्तवर्ण, नाभि से कण्ठ-पर्यन्त नीलवर्ण एवं कण्ठ से ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्त श्वेत वर्ण वाली, चार मुखों वाली, हाथों में शंख चक्र एवं दो दीपक धारण की हुई तथा मस्तक पर अर्धचन्द्र धारण की हुई देवी त्रिकण्टिका का ध्यान करते हुये त्वरितापीठ पर उनका अर्चन करना चाहिये। इसके प्रयोग आदि भी त्वरिता के समान ही होते हैं।

पूजन के उपरान्त त्रिकण्टिका मन्त्र का वर्णलक्ष अर्थात् चार लाख जप करने के बाद घृत से कृत जप का दशांश (चालीस हजार) हवन करना चाहिये।

अपने को देवतारूप मानकर दोनों हाथों से शूलमुद्रा बनाकर ग्रहग्रस्त साध्य को देखते हुये इस मन्त्र का जप करने से मन्त्र के प्रभाव से ग्रहग्रस्त व्यक्ति शीघ्र ही ग्रहमुक्त हो जाता है। ग्रहनिवारण के लिये इससे श्रेष्ठ कोई दूसरी विद्या नहीं है।

अब मैं वश्यत्रिकण्टिका विद्या को कहता हूँ। तीन अक्षरों वाली यह विद्या है—खें स्त्रीं क्षें। इसकी समस्त क्रियायें त्वरिता के समान ही होती हैं।।४२६-४३२।।

कौमारीविधिकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कौमार्या विधिमुत्तमम्।
कौं कौमार्यै नम इति षडर्णो मन्त्र ईरितः ॥४३३॥
मुनिर्ब्रह्मा च गायत्री छन्दः कौमारिका भवेत्।
देवता कौमिदं बीजं कौमार्यै शक्तिरुच्यते ॥४३४॥

मन्त्रवर्णैः षडङ्गानि हृदि ध्यायेच्च देवताम्।
शक्त्यक्षस्त्रग्वराभीतिकरां बन्धूकसन्निभाम् ॥४३५॥
मयूरध्वजिनीं चैव रक्तामौदुम्बरस्थिताम्।
हरित्कञ्चुकिकां रम्यां नानालङ्कारभूषिताम् ॥४३६॥
आदावङ्गानि चाभ्यर्च्य पञ्चकोणे यजेत्पुनः।
अहल्यां द्रौपदीं सीतां तारां मन्दोदरीमपि ॥४३७॥
ब्राह्म्यादिका अष्टदले दिक्पतीनायुधानि तु।
मुख्या पूजा भवेदस्याः कुमार्या एव नान्यतः ॥४३८॥
कुमार्यभावेऽन्यदेशे पूजेयं तु समीरिता।
लक्षषट्कञ्जपः प्रोक्तः पञ्चखाद्यैस्तथा हुनेत् ॥४३९॥
मधुरत्रयसंयुक्तैः सिद्धमन्त्रस्ततो भवेत्।
तर्पणं मार्जनं कृत्वा कुमारीरपि भोजयेत् ॥४४०॥

कौमारी-पूजनविधि—अब मैं उत्तम कौमारी विधि को सम्यक् रूप से कहता हूँ। छः अक्षरों का कौमारी मन्त्र है—कौं कौमार्यै नमः। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री, बीज कौं, शक्ति कौमार्यै एवं देवता कौमारिका कही गई हैं। मन्त्र के छः वर्णों से इसका षडङ्गन्यास करके हाथों में शक्ति, अक्षमाला, वर एवं अभय धारण करने वाली, बन्धूकपुष्प के समान कान्तिमती, मयूरध्वज वाली, गूलर से निर्मित रक्त आसन पर विराजमान, हरे रंग की मनोज्ञ कञ्चुकी धारण की हुई अनेक प्रकार के अलंकारों से आभूषित देवता का अपने हृदय में ध्यान करना चाहिये।

सर्वप्रथम षडङ्ग-पूजन करके पञ्चकोण में अहल्या, द्रौपदी, सीता, तारा एवं मन्दोदरी का पूजन करना चाहिये। इसके बाद अष्टदल में ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, इन्द्राणी, वाराही, चामुण्डा एवं महालक्ष्मी का पूजन करने के पश्चात् भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये। कुमारी-पूजा ही इसकी मुख्य पूजा होती है। कुमारी के अभाव में अन्य देश में भी इसका पूजन कहा गया है।

पूजन सम्पन्न करने के अनन्तर इस मन्त्र का छः लाख जप करने के बाद त्रिमधुयुक्त पञ्चमेवा से कृत जप का दशांश हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् तर्पण-मार्जन करके कुमारियों को भोजन कराना चाहिये। ऐसा करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है।।४३३-४४०।।

अथ मोटनकं वक्ष्ये देवाविर्भावकारणम्।

पाकक्रिया प्रकर्तव्या चतुर्भक्ष्यसमन्विता ।
भार्यया साधकेन्द्रस्य पातिव्रत्यादियुक्तया ।।४४१।।
अप्रसूता: स्त्रिय: पञ्च आहूय सुकुमारिका: ।
अलंकृता: पवित्रास्ता एकपंक्त्योपवेशयेत् ।।४४२।।
तदादौ विघ्नपस्थानमन्त्रे तु बटुकस्य च ।
ता: सम्पूज्य महत्पात्रं पवित्रं च तथा चरेत् ।।४४३।।
स्वस्वद्विगुणमानेन मध्वाज्यसमितं दधि ।
दुग्धं च निक्षिपेत्तत्र नैवेद्यं तत्र निक्षिपेत् ।।४४४।।
कुमारिकाया हस्तेन मन्थयेयु: स्त्रियश्च तत् ।
तन्मन्थनान्महेशानि देवावेश: प्रजायते ।।४४५।।
देवावेशे जायमाने सुगन्धो वाति मारुत: ।
सर्वं मनोगतं वक्ति देवता सुप्रसीदति ।।४४६।।
सिद्ध्यन्ति सर्वकार्याणि मोटकानां शतेन च ।
नखैर्भवेद्विवाहस्तु पञ्चाशद्भि: सुतास्तथा ।।४४७।।
अशीत्या गतराज्याप्तिर्विंशत्या लभते धनम् ।
अष्टोत्तरशतेनापि साधकेन तु मेलयेत् ।।४४८।।
कौमारिका चेष्टदेवं कुमार्या ईरितो विधि: ।

मोटक-साधन—अब मैं देवताओं के आविर्भाव के कारणस्वरूप मोटक को कहता हूँ। साधकश्रेष्ठ की पतिव्रता पत्नी के द्वारा चार प्रकार के भक्ष्य पदार्थों का पाक करने के पश्चात् अप्रसूता पाँच सुन्दर कुमारियों को बुलाकर उनके हाथ-पैर धुलाकर अलंकारों से अलंकृत करके एक पंक्ति में बैठाकर सर्वप्रथम मन्त्रों से विघ्नेश्वर और बटुक का पूजन करने के बाद उन कुमारियों का पूजन करके एक पवित्र बड़े पात्र में क्रमश: द्विगुण मधु, गोघृत, दधि एवं दुग्ध (मधु का दुगुना गोघृत, उससे दुगुना दधि एवं उससे दुगुना दुग्ध) डालने के पश्चात् उसी में नैवेद्य भी डालकर सभी पाँचों निमन्त्रित कुमारियों एवं स्त्रियों के हाथ से उसका मन्थन करने से हे पार्वति! उनमें देवता का आवेश हो जाता है। देवावेश होने पर सुगन्धित वायु प्रवहमान हो उठती है और वे कुमारियाँ सबके मनोगत भावों को व्यक्त करने लगती हैं। इससे देवता प्रसन्न हो जाती हैं।

एक सौ कुशों से निर्मित मोटकों से सभी कार्य सिद्ध होते हैं। बीस कुशों के मोटक से विवाह होता है। पचास कुशों के मोटक से पुत्र-प्राप्ति होती है। अस्सी कुशों के मोटक से परहस्तगत राज्य की प्राप्ति होती है।

बीस कुशों के मोटक से धन प्राप्त होता है। एक सौ आठ कुशों के मोटक से साधक को कौमारी का सामीप्य प्राप्त होता है। इस प्रकार यह कुमारी-पूजन की विधि कही गई है।।४४१-४४८।।

वैष्णवीमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वैष्णवीमन्त्रमद्भुतम्।
अकचटतपयशैर्वैष्णव्या मन्त्र ईरितः ।।४४९।।
अष्टाक्षरो मुनिश्चास्य नारदोऽनुष्टुबुच्यते।
छन्दस्तु वैष्णवी देवी न्यासः प्रणवपूर्वकः ।।४५०।।
मूलमन्त्राक्षरैः कुर्यात् त्रिभिस्त्रिभिरनुक्रमात्।
विन्यसेदक्षराण्यष्टावोङ्कारं च तथा स्मरेत् ।।४५१।।
शोणपद्मप्रतीकाशां मुक्तामूर्द्धजलम्बिनीम्।
लसत्काञ्चनसम्भूतकुण्डलोज्ज्वलशालिनीम् ।।४५२।।
स्वर्णरत्नसमुन्नद्धकिरीटसूत्रधारिणीम्।
कृष्णशुक्लारुणैर्नेत्रैस्त्रिभिश्चापि विभूषिताम् ।।४५३।।
बन्धूकदन्तरसनाशिरीषसुमनासिकाम्।
कम्बुग्रीवां विशालाक्षीं सूर्यकोटिसमप्रभाम् ।।४५४।।
चतुर्भुजां विवसनां पीनोन्नतपयोधराम्।
दक्षिणाभ्यां कराभ्यां तु खड्गं च जपमालिकाम् ।।४५५।।
बिभ्रतीं वामहस्ताभ्यां त्वभयं च वरं तथा।
अनल्पनागनासोरुं गुप्तगुल्फां सुपल्लिकाम्।
गात्रेण रत्नस्तम्भं च सम्यगालम्ब्य संस्थिताम् ।।४५६।।
किमिच्छसीति वचनं व्याहरन्तीं मुहुर्मुहुः।
पञ्चाननं पुरःसंस्थं निरीक्षन्तीं स्ववाहनम् ।।४५७।।
ईदृशीं चण्डिकां ध्यात्वा नमः फडिति मस्तके।
स्वबीजे सुमनो दद्यात्साहमेवं विचिन्तयेत् ।।४५८।।

वैष्णवी-मन्त्र—अब मैं वैष्णवी के अद्भुत मन्त्र को कहता हूँ। अं कं चं टं तं पं यं शं—इन आठ वर्णों को वैष्णवी का अष्टाक्षर मन्त्र कहा गया हैं। इस अष्टाक्षर मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता वैष्णवी कही गई हैं। मूल मन्त्र के साथ ॐ का योग करके तीन-तीन त्रिकों से इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—अं कं चं हृदयाय नमः, टं तं पं शिरसे स्वाहा, यं शं ॐ शिखायै वषट्, अं कं चं कवचाय हुम्, टं तं चं नेत्रत्रयाय वौषट्, यं शं ॐ अस्त्राय फट्।

रक्तकमल के प्रतिबिम्बस्वरूप, लम्बे जूड़े में मोतियों को गुथी हुई, दमकते स्वर्णकुण्डलों से प्रकाशमान, रत्नग्रथित स्वर्ण-निर्मित किरीटसूत्र को धारण करने वाली, कृष्ण शुक्ल एवं अरुणवर्ण तीन नेत्रों से विभूषित, बन्धूकपुष्प-सदृश दन्तपंक्ति वाली, नासिका पर शिरीषपुष्प को धारण की हुई, शंख-सदृश ग्रीवा वाली, विशाल आँखों वाली, करोड़ों सूर्य-सदृश प्रभा वाली, चार भुजाओं वाली, निर्वस्त्र, स्थूल उन्नत पयोधरों वाली, दाहिने दो हाथों में खड्ग एवं जपमाला तथा बाँयें दो हाथों में अभय एवं वर धारण की हुई, स्थूल जंघाओं एवं पतली गुल्फों वाली, सुन्दर कुटी में रत्नस्तम्भ पर शरीर को टिकाकर बैठी हुई, बार-बार 'क्या चाहते हो?' यह कहती हुई, सामने स्थित पाँच मुखों वाले अपने वाहन को देखती हुई—इस प्रकार की चण्डिका का ध्यान करके 'ह्रीं नमः फट्' का उच्चारण करके अपने मस्तक पर पुष्प रखकर 'वह मैं ही हूँ' इस प्रकार चिन्तन करना चाहिये।।४४९-४५८।।

पञ्चाननं मण्डलस्थं मध्ये वश्यं प्रपूजयेत्।
आवाहनं ततः कुर्याद् गायत्र्या शिरसा सह।।४५९।।
महामायायै विद्महे चण्डिकायै धीमहि।
तन्नो देवी प्रचोदयात्।।४६०।।
ततस्तु मूलमन्त्रेण गन्धं पुष्पं सदीपकम्।
नैवेद्यं च ततो दद्यान्मोदकं पायसं तथा।।४६१।।
पुष्पाञ्जलित्रयं दद्यान्मूलमन्त्रेण शोभनम्।
एवं सम्पूज्य मध्ये तु मन्त्रेणाङ्गानि पूजयेत्।।४६२।।
शैलपुत्रीं चन्द्रघण्टां स्कन्दमातरमेव च।
कालरात्रिं च दिक्पत्रेष्वर्चयेच्चन्दनादिभिः।।४६३।।
चण्डिकामथ कूष्माण्डां तथा कात्यायनीं शुभाम्।
महागौरीं चाग्निकोणनैर्ऋत्यादिषु पूजयेत्।।४६४।।
ततः सम्पूज्य लोकेशीं तदस्त्राणि च मन्त्रवित्।
महामायां नमामीति मूलमन्त्रेण चाष्टधा।।४६५।।
पूजयेत्पद्ममध्ये तु सुमनाञ्जलिभिस्तथा।
अष्टभिश्च महामायां नमामीति च मन्त्रतः।।४६६।।
देव्यै समर्प्य धूपादि सर्वं प्रागवत्समापयेत्।
लक्षद्वयं भवेदस्य पुरश्चरणकर्म तु।।४६७।।
दशांशो होम आज्येन कर्तव्यं तर्पणादिकम्।
अशुचिर्न महामायां पूजयेत्तु कदाचन।।४६८।।

ध्यान करने के अनन्तर यन्त्रमध्य में मण्डलस्थ पञ्चानन वश्य का पूजन करना चाहिये। शीर्ष-सहित 'महामायायै विद्महे चण्डिकायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्' इस गायत्री मन्त्र के द्वारा देवी का आवाहन करना चाहिये। तदनन्तर मूल मन्त्र से गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा मोदक एवं पायसरूप नैवेद्य प्रदान करने के उपरान्त मूल मन्त्र से तीन पुष्पाञ्जलि प्रदान करनी चाहिये। इस प्रकार मध्य में पूजन करके षट्कोण में मन्त्र से षडङ्ग-पूजन करना चाहिये।
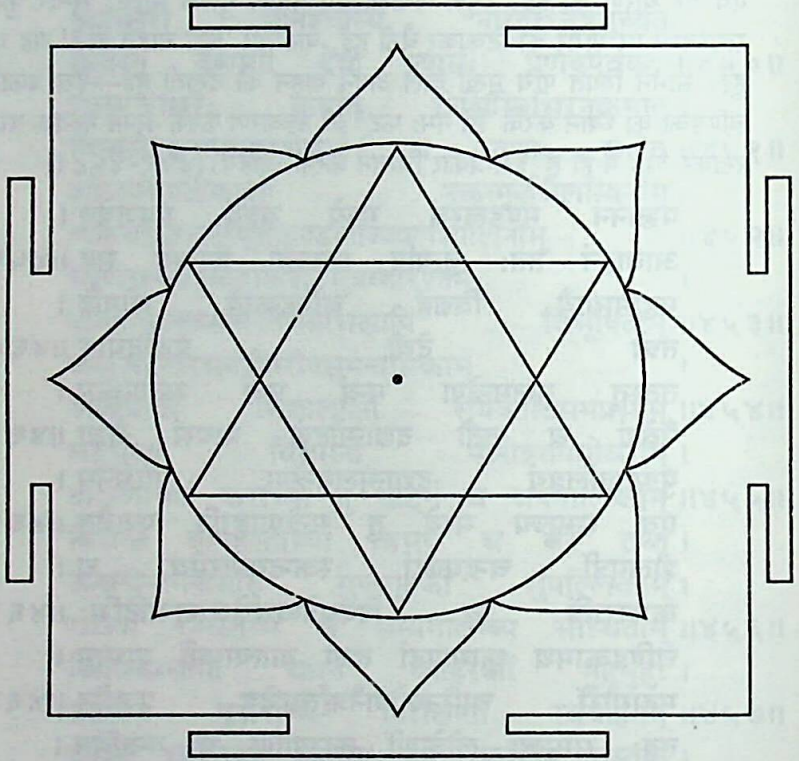
तदनन्तर अष्टपत्र के पूर्व-दक्षिण-पश्चिम-उत्तर-स्थित दलों में चन्दनादि से शैलपुत्री, चन्द्रघण्टा, स्कन्दमाता एवं कालरात्रि का तथा अग्नि-नैर्ऋत्य-वायव्य-ईशान-स्थित पत्रों में चण्डिका, कूष्माण्डा, कात्यायनी एवं महागौरी का पूजन करना चाहिये। इसके बाद भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन करने के बाद मन्त्रज्ञ साधक को पद्ममध्य में आठ बार मूल मन्त्र के साथ 'महामायां नमामि' का उच्चारण करते हुये पूजन करना चाहिये। साथ ही उक्त प्रकार से ही मूल मन्त्र के साथ 'महामायां नमामि' का आठ बार उच्चारण करके पुष्पाञ्जलि प्रदान करनी चाहिये। इसके बाद देवी

के लिये धूप आदि सबकुछ पूर्ववत् समर्पित करके पूजा का समापन करना चाहिये।

मन्त्र के दो लाख जप से इसका पुरश्चरण सम्पन्न होता है। जप पूर्ण करने के पश्चात् गोघृत से दशांश (बीस हजार) हवन करने के बाद तर्पण, मार्जन आदि करना चाहिये। अपवित्र अवस्था में कभी भी महामाया का पूजन नहीं करना चाहिये।।४५९-४६८।।

अवश्यं तु स्मरेन्मन्त्रं योऽतिभक्तियुतो भवेत्।
दन्तरक्ते समुत्पन्ने स्मरणं न च विद्यते ।।४६९।।
दु:खान्नेत्रजले जाते क्रोधादिक्षुद्रकर्मणि।
धूमोद्गारे मैथुने च सूतके मृतके च वै ।।४७०।।
जलौकादर्शने सर्पकृन्निभूनागदर्शने।
कामाज्जातेऽङ्गनास्पर्शे मृते पितरि वत्सरम् ।।४७१।।
आसेव्ये गुरुविप्राणां क्षीणे वीर्ये च्युते तथा।
आकर्षे मातृमरणे षण्मासं च गुरौ मृते ।।४७२।।
भार्यामृतौ त्रिमासं च मासमेकं तु राजनि।
न स्मरेच्च महामायां शुचितापत्यसिद्धिदाम् ।।४७३।।

जो इस मन्त्र का स्मरण करता है, वह अवश्य ही महामाया की अतिशय भक्ति से युक्त होता है। दाँत से रक्त निकलने पर इस मन्त्र का स्मरण नहीं करना चाहिये। दु:ख से आँखों में आँसू आने पर, क्रोधादि क्षुद्र कर्म के समय, डकार आने पर, मैथुन के समय, मरणाशौच में, जलौका देखने पर, साँप-कीड़ा एवं नाग का दर्शन होने पर, कामोत्तेजित होने पर, रमणी का स्पर्श करने पर तथा पिता की मृत्यु होने पर एक वर्ष तक महामाया का स्मरण नहीं करना चाहिये। गुरु एवं विप्रों की सेवा के समय, वीर्य क्षीण या च्युत होने पर, आकर्षण में एवं माता तथा गुरु की मृत्यु होने पर छ: मास तक महामाया का स्मरण नहीं करना चाहिये। भार्या की मृत्यु पर तीन मास तक एवं राजा की मृत्यु होने पर एक मास तक शुचितापत्य-सिद्धि प्रदान करने वाली महामाया का स्मरण नहीं करना चाहिये।।४६९-४७३।।

ॐ नमोऽन्ते महामायायै मनुर्वसुवर्णक:।
प्राग्वन्मुन्यादिकं प्रोक्तं पूजाजपमखं तथा ।।४७४।।
ॐ नमोऽन्ते च वैष्णव्यै मन्त्र: प्रोक्त: षडक्षर:।
मन्त्रार्णैरत्र चाङ्गानि शेषं पूर्ववदाचरेत् ।।४७५।।

महामाया का अष्टाक्षर मन्त्र है—ॐ महामायायै नम:। इस मन्त्र के ऋषि आदि तथा पूजा, जप, हवन आदि पूर्ववत् कहे गये हैं। षडक्षर मन्त्र है—ॐ वैष्णव्यै नम:।

इसके मन्त्रवर्णों से षडङ्गन्यास किया जाता है। शेष समस्त विधियाँ पूर्ववत् ही होती हैं।।४७४-४७५।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सर्वसिद्धिप्रदं मनुम्।
नमस्ते चास्तु ह्यभये त्वनघे पूजिते वदेत्।
अमिते पदमुच्चार्य तदग्रे चापराजिते ।।४७६।।
ततश्च सिद्धकथिते साधकपदमुच्चरेत्।
सिद्धस्मृते महाविद्ये अनेकांसे उमे ध्रुवे ।।४७७।।
अरुन्धती च सावित्रि गायत्रि जातवेदसि।
मानस्तोके सरस्वति रमणी रामणीति च ।।४७८।।
धरणी धारणी चेति सौदामिनि तथादिति।
दितीति विनते चेति गौरि गन्धारि संवदेत् ।।४७९।।
मातङ्गि कृष्णयशोदे सत्यवादिनि संवदेत्।
ब्रह्मवादिनि कालीति कपालिनि करालि च ।।४८०।।
नेत्रसद्यो मातरिति ततः स्थलगतं वदेत्।
अन्तरिक्षगतं चेति जलगतं वदेत्पुनः ।।४८१।।
वामपादान्ते रक्षयुग्मं सर्वभूतपदं वदेत्।
सर्वोपद्रवेषु स्वाहा ताराद्यन्तो मनुर्मतः ।।४८२।।
मुनिर्नारद आख्यातो गाथा छन्दः प्रकीर्तितम्।
अघोरवैष्णवी देवी चायुतं जप ईरितः ।।४८३।।
प्राग्वत्पूजादिकं सर्वं फलमस्य निरूप्यते।

अघोरवैष्णवी मन्त्र—अब समस्त सिद्धियाँ प्रदान करने वाले मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—ॐ नमस्तेऽस्त्वभयेऽनघे पूजितेऽमितेऽपराजिते सिद्धकथिते साधकसिद्धस्मृते महाविद्येऽनेकांसे उमे ध्रुवे अरुन्धति सावित्र गायत्रि जातवेदसि मानस्तोके सरस्वति रमणि रामणि धरणि धारणि सौदामिनि अदिति दिति विनते गौरि गन्धारि मातङ्गि कृष्णयशोदे सत्यवादिनि ब्रह्मवादिनि कालि कपालिनि करालि नेत्रसद्योमातः स्थलगतमन्तरिक्षगतं जलगतं वामपादरक्ष रक्ष सर्वभूतसर्वोपद्रवेषु स्वाहा ॐ। इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द गाथा एवं देवता अघोरवैष्णवी कही गई हैं। इसका दस हजार जप कहा गया है। इसका पूजन आदि सबकुछ पूर्ववत् ही किया जाता है। अब इसके फल को कहता हूँ।।४७६-४८३।।

यस्याः प्रणश्येत्पुष्पं हि गर्भश्चापि पतेद्यदि ।।४८४।।

म्रियते बालको यस्याः काकवन्ध्या च या भवेत्।
भूर्ज्जपत्रे त्विमां विद्यां लिखित्वा धारयेद्यदि ॥४८५॥
एतैर्दोषैर्न लिम्पेत सुभगा पुत्रिणी भवेत्।
पुमांश्च धारयेद्यश्च सोऽभीष्टं फलमाप्नुयात् ॥४८६॥
रणे राजकुले द्यूते संग्रामे शत्रुसङ्कटे।
अग्निचौरभये घोरे नित्यं तस्य जयो भवेत् ॥४८७॥
नित्यं निवारयेत्तस्य समरे काण्डधारिणी।
गुल्मशूलाक्षिरोगाणां क्षिप्रं नाशयति व्यथाम्।
शिरोरोगज्वराणां च नाशनं सर्वदेहिनाम् ॥४८८॥

जिस स्त्री का रजोधर्म नष्ट हो जाता हो, गर्भपात हो जाता हो, जिसका बालक जन्म लेते ही मर जाता हो और जो काकवन्ध्या हो, उसे इस मन्त्र को भोजपत्र पर लिखकर धारण करने से ये सभी दोष समाप्त हो जाते हैं और वह सौभाग्यवती स्त्री पुत्रवती हो जाती है।

जो पुरुष इसे धारण करते हैं, वे अपने अभीष्ट फल को प्राप्त करते हैं। युद्ध में, राजदरबार में, द्यूत में, संग्राम में, शत्रुसंकट में, अग्नि एवं चोरों के घोर भय में सदैव उनकी विजय होती है। काण्डधारिणी देवी युद्ध में उस मन्त्रधारी व्यक्ति के संकटों का सदैव निवारण करती है।

यह गुल्म, शूल एवं अक्षिरोगों की व्यथा का शीघ्र नाश करती है। समस्त प्राणियों के शिरोरोग एवं ज्वरों का यह विनाश करने वाली है।।४८४-४८८।।

त्रैलोक्यविजयामन्त्रविधिः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि त्रैलोक्यविजयाभिधाम्।
वैष्णवीं चन्द्रवेदाग्निवर्णां साधकसिद्धिदाम् ॥४८९॥
एकाहिकद्व्याहिकत्र्याहिकचातुर्थिकेति च।
मासिकद्विमासिकेति वातिकपैत्तिकेषु च ॥४९०॥
श्लैष्मिके सान्निपातिके सततज्वरसम्भवे।
विषज्वरग्रहर्क्षादिसर्वदोषान्तकारिणि ॥४९१॥
कालि सरयुगं गौरी धमयुग्मं वदेत्तथा।
विद्याशाले तालमाले रुद्ररूपे पचद्वयम् ॥४९२॥
विघ्नं नाशय पापं च हर दुस्स्वप्नमित्यपि।

विनाशिनि पदं ब्रूयात्ततश्च कमलासने ।
रजनी सन्ध्ये दुन्दुभिनादे मानस इत्यपि ॥४९३॥
वेगे शङ्खिनि चक्रिणि वज्रिणी गदिनीति च ।
ततश्च शूलिनि वदेदपमृत्युविनाशिनि ।
विश्वेश्वरी द्राविडीति वदेद् द्रविडिकेशि च ॥४९४॥
र्दायतेऽतः पशुपतेर्मे दुःखेति पदं वदेत् ।
विमर्द्दिनि पदं पश्चाद्वदेत्साधकसत्तमः ॥४९५॥
मोदयुक्ता शर्वरीति किराततिनि पदं वदेत् ।
मातङ्गी प्रणवं ह्रांह्रींह्रूंक्षौं कुरुयुगं तथा ॥४९६॥
ये मां द्विषन्ति प्रत्यक्षं परोक्षं वेति तान्वदेत् ।
सर्वान् हनयुगं चोक्त्वा दमयुग्मं पचद्वयम् ॥४९७॥
मर्दयद्वितयं चापि तापयद्वयमेव च ।
द्विःशोषयोत्सादय द्विर्ब्रह्माणीति च संवदेत् ॥४९८॥
माहेश्वरीति वाराहि वैनायकि परैन्द्रि च ।
आग्नेयीति च चामुण्डे वारुणी वायवी तथा ॥४९९॥
रक्षयुग्मं च चण्डेति इन्द्रोपेन्द्रभगिन्यपि ।
जये च विजये शान्ति स्वस्तिपुष्टि धृतीति च ॥५००॥
विवर्धिनी कामुकी च कामदुघे परं वदेत् ।
सर्वकाम फलेत्युक्त्वा प्रदे सर्वपदं वदेत् ॥५०१॥
भूतेषु मां प्रियं चेति कुरुद्वन्द्वाग्निवल्लभे ।
ध्यानपूजादिकं प्राग्वत्पुरश्चर्यायुतद्वयम् ।
प्राग्वद्धोमफलं चास्य साधकः सात्त्विको भवेत् ॥५०२॥
मानयन्ति च भूपास्तं स शापानुग्रहक्षमः ।
सन्तत्या चापि सम्पत्त्या भवेत्कीर्त्त्या समन्वितः ।
दर्शनादेव नश्यन्ति भूताद्या भैरवा अपि ॥५०३॥

त्रैलोक्य-विजयप्रदा वैष्णवी मन्त्र—अब मैं साधक को सिद्धि प्रदान करने वाली 'त्रैलोक्यविजया'-नाम्नी वैष्णवी के तीन सौ इकतालीस अक्षरों वाले मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—एकाहिक-द्व्याहिक-त्र्याहिक-चातुर्थिक-मासिक-द्विमासिक-वातिक-पैत्तिक-श्लैष्मिक-सान्निपातिक-सततज्वरसम्भव-विषज्वर-ग्रहर्क्षादि-सर्वदोषान्तकारिणि कालि सर सर गौरि धम धम विद्याशाले तालमाले रुद्ररूपे पच पच विघ्नं नाशय पापं

हर दुःस्वप्नविनाशिनि कमलासने रजनि सन्ध्ये दुन्दुभिनादे मानसवेगे शङ्खिनि चक्रिणि वज्रिणि गदिनि शूलिनि अपमृत्युविनाशिनि विश्वेश्वरि द्राविडि द्रविडिकेशि पशुपतिदयिते मे दुःखविमर्दिनि मोदशर्वरि किरातिनि मातङ्गि ॐ ह्लां ह्लीं हूं क्षौं कुरु कुरु ये मां प्रत्यक्षं द्विषन्ति ये मां परोक्षं द्विषन्ति तान् सर्वान् हन हन दम दम पच पच मर्दय मर्दय तापय तापय शोषय शोषय उत्सादयोत्सादय ब्रह्माणि माहेश्वरि वाराहि वैनायकि ऐन्द्रि आग्नेयि चामुण्डे वारुणि वायवि रक्ष रक्ष चण्डे इन्द्रोपेन्द्रभगिनि जये विजये शान्ति-स्वस्ति-पुष्टि-धृतिविवर्धिनि कामुकि कामदुघे सर्वकामफलप्रदे सर्वभूतेषु मां प्रियं कुरु कुरु स्वाहा।

इस मन्त्र के ध्यान, पूजन आदि पूर्ववत् ही कहे गये हैं। बीस हजार मन्त्रजप से इसका पुरश्चरग होता है। इसके हवन का फल भी पूर्वमन्त्रवत् ही है।

इस मन्त्र का साधक सात्विक होता है एवं राजा लोग उसका आदर करते हैं। वह शापानुग्रह करने में सक्षम होता है। वह साधक सन्तति, सम्पत्ति और कीर्त्ति से युक्त होता है। उसके दर्शनमात्र से ही भूत आदि के साथ-साथ भैरव भी नष्ट हो जाते हैं।।४८९-५०३।।

अपराजितावैष्णवीमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वैष्णवीमपराजिताम्।
तारमाकर्षिणिपदं आवेशिनिपदं वदेत् ।।५०४।।
ज्वालामालिनि रमणी रामणी धरणीति च।
धारिणी तपनीत्युक्त्वा तापिनि मदोन्मादिनि ।।५०५।।
शोषिणीतिपदं चोक्त्वा ततः सम्मोहिनीति च।
तथा नीलपताकेति महानीले महाप्रिये ।।५०६।।
महाग्नेयि महाचण्डे महारौद्रि महेति च।
वज्रिणीति तथादित्याद्ये च जाह्नवि संवदेत् ।।५०७।।
यमघण्टे किलिकिलि चिन्तामणिपदं वदेत्।
सुरभि सुरोत्पन्ने च सरस्वति पदं ततः ।।५०८।।
सर्वकामदुघे प्रोच्य यथा मम मनीषितम्।
कार्यं तन्मम सिद्ध्यत्विति स्वाहान्तोऽयं मनुर्मतः ।।५०९।।
षड्द्वादशार्णो मुन्यादिप्राग्वत्सौख्यप्रदो मनुः।
जपेद्वर्णशतं होमादिकं पूर्ववदाचरेत् ।।५१०।।

अपराजिता वैष्णवी-मन्त्र—अब मैं अपराजिता वैष्णवी का कहता हूँ। इनका मन्त्र है—ॐ आकर्षिणि आवेशिनि ज्वालामालिनि रमणि रामणि धरणि धारिणि तपनि तापिनि मदोन्मादिनि शोषिणि सम्मोहिनि नीलपताके महानीले महाप्रिये महाग्नेयि

महाचण्डे महारौद्रि महावज्रिणि आदित्याद्ये जाह्नवि यमघण्टे किलि किलि चिन्तामणि सुरभि सुरोत्पन्ने सरस्वति सर्वकामदुघे यथा मम मनीषितं कार्यं तन्मम सिद्ध्यतु स्वाहा।

सुख-प्रदायक एक सौ छब्बीस अक्षरों वाले इस मन्त्र के ऋषि आदि पूर्ववत् ही होते हैं। इस मन्त्र का बारह हजार छ: सौ जप करके पूर्ववत् हवन आदि करना चाहिये।।५०४-५१०।।

असिद्धसाधिनीवैष्णवीमन्त्रः

असिद्धसाधिनीं देवीं प्रवक्ष्याम्यथ वैष्णवीम्।
ताराद्या वह्निजायान्ता पृथक्च षड्युगं वदेत्।।५११।।
तिस्रो व्याहृतयः श्लोकः स्वधास्वाहावसानकः।
यत एवागतं पापं तत्रैव प्रतिगच्छतु।।५१२।।
ॐ बले अबले महाबले असिद्धसाधिनि।
स्वाहान्तः षड्बाणवर्णो लक्षमेकं जपः स्मृतः।।५१३।।
तृतीया व्याहृतिश्चात्र स्वरित्येषा प्रकीर्तिता।
होमपूजादिकं प्राग्वद्येन सिद्ध्यति देवता।।५१४।।
स्वाहान्तैर्मन्त्रखण्डैस्तु हुनेदष्टसहस्रकम्।
वसुदेवसहस्राणि चावदानानि तत्र तु।।५१५।।
देवकल्पोदितैर्द्रव्यैस्तदा सा देवता वशा।
प्राक्कर्मप्रतिबद्धापि वैष्णवीत्रासतस्तु सा।।५१६।।
साधकस्य मनोऽभीष्टं कामं यच्छति सत्वरम्।
इयं देवी मया पूर्वं ललिता वश्यकामदा।
उपासिता तदा जप्ता ललिता ललिता च सा।।५१७।।
त्रयास्त्रिंशत्कोटिदेवनायिका ललिता तु या।
बलात्कारेण कामस्य वशीकृत्य यया पुनः।।५१८।।
चेटीवन्मदधीना तु स्थापिता त्वं वरानने।
यस्य कस्यापि देवस्य होमद्रव्यं विलोक्य च।
मन्त्रेणानेन जुहुयात्तत्तत्कर्म प्रसिद्ध्यति।।५१९।।
इयं होमप्रिया देवी भुक्तिमुक्तिप्रदायिका।
मारणोच्चाटने चापि न प्रयोज्या कदाचन।।५२०।।

असिद्ध-साधिनी वैष्णवी मन्त्र—अब मैं असिद्धसाधिनी देवी वैष्णवी को कहता हूँ। छप्पन अक्षरों का मन्त्र है—ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ भूर्भुवः स्वः यत

एवागतं पापं तत्रैव प्रतिगच्छतु ॐ बले अबले महाबले असिद्धसाधिनि स्वधा स्वाहा स्वाहा स्वाहा स्वाहा स्वाहा स्वाहा। एक लाख मन्त्रजप से इसका पुरश्चरण कहा गया है। यहाँ पर तीसरी व्याहृति 'स्व:' कही गई है। देवता को सिद्ध करने के लिये पूर्ववत् ही इसके हवन-पूजन आदि करने चाहिये।

स्वाहा-पर्यन्त मन्त्रखण्ड से आठ हजार हवन करना चाहिये। वहाँ पर तीन सौ अड़तीस हजार अवदान होते हैं। तब देवकल्पोक्त द्रव्यों से वह देवता वशीभूत होती है। पूर्वजन्म के कर्मों से प्रतिबद्ध होती हुई भी वैष्णवी के भय से वह साधक के मन को अभीष्ट कामनाओं को शीघ्र प्रदान करती है।

इस देवी की उपासना पहले मैंने वश्यकामदा ललिता के रूप में की थी। उस समय ललिता का जप करने से वह ललिता हो गई। जो ललिता तैंतीस करोड़ देवताओं की नायिका है और जिसके द्वारा बलपूर्वक काम को वश में कर लिया गया था, हे वरानने! वही तुम्हारे द्वारा दासी के समान मेरे अधीन की गई है।

जिस-किसी भी देवता के हवनीय द्रव्य को देखकर इस मन्त्र से हवन करने पर तत्तत् कर्मों की सिद्धि होती है। होम ही जिसको प्रिय है, ऐसी यह देवी भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाली है। कभी भी मारण एवं उच्चाटन कर्म में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये।।५११-५२०।।

अथ वार्त्तालिकां वक्ष्ये वाराहीं शत्रुघातिनीम्।
ऐंलौंठंठंठमिति हुंस्वाहान्तोऽष्टाक्षरो मनुः ।।५२१।।
छन्दोऽनुष्टुप् च कपिलो मुनिर्वार्त्तालिका सुरी।
वाराह्यत्र षडङ्गानि क्रमाद्द्वीन्दुमूकभिः ।।५२२।।
द्वाभ्यां ध्यायेत्ततो देवीं विद्युद्भासां कराम्बुजैः।
दधानामङ्कुशं पाशं मुद्गरं शक्तिमेव च ।।५२३।।
विद्युद्भासां त्रिनेत्रां च नाशयन्तीं तथा रिपून्।
अङ्गषट्कदिशाधीशायुधानीत्यावृतित्रयम् ।।५२४।।
वसुलक्षं जपित्वान्ते बिल्वपत्रैर्हयारिजैः।
धात्रीफलैर्भृङ्गराजैः कशैश्चापि दशांशतः ।।५२५।।
होमः कार्यस्तर्पणादि कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम्।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगान्कर्त्तुमर्हति ।।५२६।।

वार्त्ताली-साधन—अब शत्रुघातिनी वराहरूपिणी वार्त्ताली को कहता हूँ। इसका अष्टाक्षर मन्त्र है—ऐं लौं ठं ठं ठं हुं स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि कपिल, छन्द अनुष्टुप्

एवं देवता वराहरूपिणी वार्ताली कही गई हैं। षडङ्गन्यास में ऐं लौं का हृदय में, ठं का शिर में, ठं का शिखा में, ठं का कवच में, हुं का नेत्र में एवं स्वाहा का अस्त्र में न्यास करना चाहिये।

तदनन्तर विद्युत् के समान प्रकाशमान, करकमलों में अंकुश पाश मुद्गर एवं शक्ति धारण की हुई, विद्युत् के सदृश चमकते तीन नेत्रों वाली एवं शत्रुओं का नाश करती हुई देवी का ध्यान करना चाहिये। इसका पूजन षडङ्ग-दिक्पाल एवं दिक्पालायुध-पूजनरूप तीन आवरणों वाला होता है। मन्त्र का आठ लाख जप करने के बाद बेलपत्र, कनैलपुष्प, आँवला, भृङ्गराज एवं कुशों से कृत जप का दशांश (एक लाख) हवन करना चाहिये। तदनन्तर तर्पण आदि करने के पश्चात् ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये। इस प्रकार से मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर मन्त्रज्ञ साधक प्रयोगों को करने में समर्थ हो जाता है।।५२१-५२६।।

अङ्कुशेनारिमानीय बद्ध्वा पाशेन तं दृढम्।
मुद्गरेण घ्नतीं मूर्ध्नि तां स्मरन्नयुतं जपेत्।।५२७।।
वन्योपलैः प्रजुहुयादयुतं भस्म तत्क्षिपेत्।
वापीकूपतडागादौ तत्पानीयस्य पानतः।।५२८।।
म्रियन्ते रिपवस्तस्य वा हिंसन्ति परस्परम्।
स्थानं त्यक्त्वा च गच्छन्ति नात्र कार्या विचारणा।।५२९।।

शत्रु को अपने अंकुश द्वारा लाकर उसे पाश से दृढ़ता-पूर्वक बाँधकर उसके मस्तक पर मुद्गर से प्रहार करती हुई देवी का ध्यान करते हुये मन्त्र का दस हजार जप करने के पश्चात् जंगली उपलों के द्वारा दस हजार हवन करके उसके भस्म को बावली (छोटा जलाशय), कूप, तड़ाग (तालाब) आदि में ड़ाल देना चाहिये। उन बावली आदि के जल का पान करने वाले साधक के शत्रु या तो मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं अथवा आपस में ही एक-दूसरे को मारने लगते हैं; साथ ही उस स्थान को छोड़कर अन्यत्र चले जाते हैं, इसमें कोई विचार नहीं करना चाहिये।।५२७-५२९।।

अथास्याः सम्प्रवक्ष्यामि मालामन्त्रं सुसिद्धिदम्।
ॐ ऐं ग्लौं ऐं नमश्चोक्त्वा ततो भगवतीति च।।५३०।।
वाराहि वाराहि युगं वराहमुखि वाग्भवम्।
ग्लौं ऐं अन्धे अन्धिनीति नमो रुन्धे च रुन्धिनि।।५३१।।
नमो जृम्भे जृम्भिणीति नमो मोहे च मोहिनि।
नमः स्तम्भे स्तम्भिनीति नम ऐं ग्लौं च वाग्भवम्।।५३२।।

सर्वदुष्टप्रदुष्टानां सर्वेषां सर्ववाग्वदेत्।
चित्तचक्षुर्मुखगलजिह्वास्तम्भं कुरुद्वयम् ॥५३३॥
शीघ्रं वश्यं कुरु कुरु ऐं ग्लौमैं ठचतुष्टयम्।
हुं फट् स्वाहेति मन्त्रोऽयं वेदरुद्राक्षरः स्मृतः ॥५३४॥
मुनिः शिवोऽस्य जगती छन्दो वार्तालिका सुरी।
वाराह्यस्य षडङ्गानि वार्त्ताली हृदयं स्मृतम् ॥५३५॥
वाराहीति शिरः प्रोक्तं शिखा वाराहमुख्यपि।
अन्धे अन्धिनि वर्मोक्तं रुन्धे रुन्धिनि नेत्रकम् ॥५३६॥
जृम्भे जृम्भिणि चास्त्रं स्यात्ततो ध्यायेच्च देवताम्।
रक्ताब्जकर्णिकायान्तु शवासनसमास्थिताम् ॥५३७॥
मुण्डमालालसत्कण्ठां नीलाभां दधतीं करैः।
अभयं मुसलञ्चापि फलञ्चापि वरन्तथा ॥५३८॥
वराहास्यां तुङ्गकुचां त्रिनेत्रामरुणाम्बराम्।

वार्त्ताली का मालामन्त्र—अब सुन्दर सिद्धि प्रदान करने वाले वार्त्ताली के मालामन्त्र को कहता हूँ। एक सौ ग्यारह अक्षरों का यह मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—ॐ ऐं ग्लौं ऐं नमः भगवति वाराहि वाराहि वराहमुखि ऐं ग्लौं ऐं अन्धे अन्धिनि नमः रुन्धे रुन्धिनि नमः जृम्भे जृम्भिणि नमः मोहे मोहिनि नमः स्तम्भे स्तम्भिनि नमः ऐं ग्लौं ऐं सर्वदुष्टप्रदुष्टानां सर्वेषां सर्ववाक्चित्तचक्षुर्मुखगलजिह्वास्तम्भं कुरु कुरु शीघ्रं वश्यं कुरु कुरु ऐं ग्लौं ऐं ठः ठः ठः ठः हुं फट् स्वाहा।

इस मन्त्र के ऋषि शिव, छन्द जगती एवं देवी वार्तालिका वाराही कही गई हैं। इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार किया जाता है—वार्तालि हृदयाय नमः, वाराहि शिरसे स्वाहा, वराहमुखि शिखायै वषट्, अन्धे अन्धिनि कवचाय हुम्, रुन्धे रुन्धिनि नेत्रत्रयाय वौषट्, जृम्भे जृम्भिणि अस्त्राय फट्। इसके बाद रक्तकमल की कर्णिका में शवासन पर विराजमान, मुण्डमाला से सुशोभित गले वाली, नीली आभा वाली, हाथों में अभय मूसल फल एवं वर धारण की हुई, उन्नत स्तनों वाली, रक्त वस्त्र धारण की हुई, तीन नेत्रों वाली वराहमुखी देवता का ध्यान करना चाहिये।।५३०-५३८।।

जपेन्मन्त्रं सहस्राणि बन्धूककुसुमैस्तिलैः ॥५३९॥
हुनेत्समधुरैः पूजा जयादिनवशक्तिके।
पीठे स्वर्णमये रौप्ये ताम्रे भूर्जेऽथ वारुणे ॥५४०॥
लिखेद् गोरोचनारात्रिचन्दनागुरुकुङ्कुमैः।
योनिपञ्चास्त्रषट्कोणाष्टपत्रशतपत्रकम् ॥५४१॥

सहस्त्रदलभूबिम्बं संवीतं द्वारशोभितम् ।
कैलासाचलमध्यस्थं पीठमेतद्विचिन्तयेत् ॥५४२॥
तत्रावाह्य यजेद्देवीमुपचारैर्मनोहरैः ।
त्रिकोणमध्ये देवेशीं षडङ्गान्यपि तत्र तु ॥५४३॥
वार्त्ताल्यर्च्या च वाराही त्र्यस्त्रे वाराहमुख्यपि ।
जृम्भिणी मोहिनी चैव स्तम्भिनी पञ्चकोणके ॥५४४॥
पूजयित्वा तथा चेमाः षट्कोणेषु ततो यजेत् ।
डाकिन्याद्याः पार्श्वयोश्च स्तम्भिनीं क्रोधिनीमपि ॥५४५॥
षट्कोणाग्रे यजेच्चण्डं छत्रन्तस्याः सुतोत्तमम् ।
शूलं मुण्डञ्च डमरुं कपालं दधतं करैः ॥५४६॥
इन्द्रनीलनिभं नग्नं जटाभारविराजितम् ।
अष्टपत्रे तु वार्त्तालीमुखं देव्यष्टकं यजेत् ॥५४७॥
शतपत्रे तु सम्पूज्या रुद्रार्कवसवोऽश्विनौ ।
शतकोणाग्रतः सिंहः पूज्यो महिषसंयुतः ॥५४८॥
सहस्त्रपत्रे वाराहीं पूजयेच्च सहस्त्रशः ।
क्रों वाराह्यै नम इति पूजामन्त्रः षडक्षरः ॥५४९॥
भूपुरद्वारदेशे तु बटुकं क्षेत्रपालकम् ।
योगिनीं गणनाथञ्च तत्तन्मन्त्रैः प्रपूजयेत् ॥५५०॥
बं बटुकाय हृदयं सप्तार्णो बटुकार्चने ।
क्षें क्षेत्रपालाय नमोऽष्टार्णः क्षेत्रपपूजने ॥५५१॥
यों योगिनीभ्यो हृदयं सप्तार्णोऽयं तदर्चने ।
गं गणपतये नमोऽष्टवर्णोऽयं गणेशितुः ॥५५२॥
दिक्पालानायुधैर्युक्तान् दिक्षु सम्पूजयेत्ततः ।
पूजान्ते बटुकादिभ्यो बलिमन्त्रैर्बलिं हरेत् ॥५५३॥

मन्त्र का एक हजार जप करने के बाद त्रिमधु-समन्वित बन्धूकपुष्प एवं तिल से हवन करना चाहिये। तदनन्तर जया आदि नव शक्तियों से समन्वित पीठ पर पूजन करना चाहिये।

स्वर्णपत्र, रजतपत्र, ताम्रपत्र, भोजपत्र अथवा वारुण पत्र (वरुणवृक्ष की छाल) पर गोरोचन, हल्दी, चन्दन, अगर एवं कुमकुम को मिलाकर त्रिकोण, पञ्चकोण, षट्कोण, अष्टपत्र, शतपत्र, सहस्त्रपत्र एवं द्वारयुक्त भूपुर से समन्वित पीठ का निर्माण

करके उसके कैलास पर्वत के मध्यभाग पर अवस्थित होने का चिन्तन करना चाहिये। उस पीठ पर त्रिकोण के मध्य में देवेशी का आवाहन करके मनोहर उपचारों से पूजन करने के बाद वहीं पर षडङ्ग-पूजन भी करना चाहिये। तदनन्तर त्रिकोण के तीनों कोणों में वार्ताली, वाराही एवं वराहमुखी का अर्चन करके पंचकोण के पाँच कोणों में अन्धिनी, रुन्धिनी, जृम्भिणी, मोहिनी एवं स्तम्भिनी का पूजन करना चाहिये।
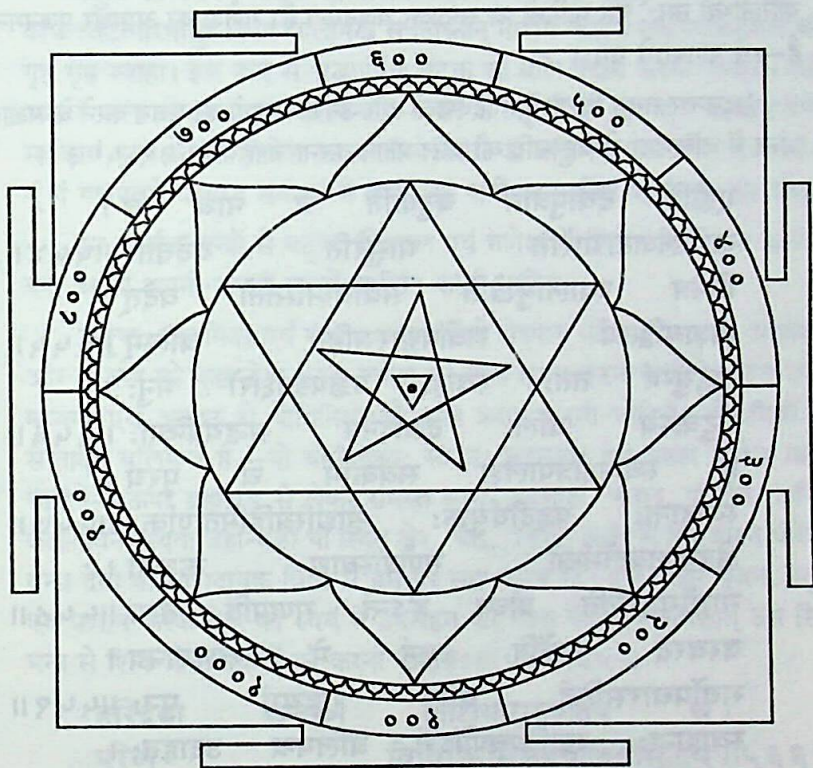
तत्पश्चात् षट्कोणे के छ: कोणों में डाकिनी, राकिनी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी एवं हाकिनी का पूजन करके षट्कोण के दोनों पार्श्वों में स्तम्भिनी और क्रोधिनी का तथा अग्रभाग में हाथों में छत्र, शूल, मुण्ड, डमरु एवं कपाल धारण किये हुये, जटाजूट से सुशोभित, नग्न स्वरूप वाले, इन्द्रनील-सदृश देवी के पुत्र चण्ड का पूजन करना चाहिये।

तत्पश्चात् अष्टदल में वार्ताली, वाराही, वराहमुखी, अन्धिनी, रुन्धिनी, जृम्भिनी, मोहिनी एवं स्तम्भिनी—इन आठ देवियों का पूजन करने के बाद शतदल में वीरभद्र आदि ग्यारह रुद्र, धात्रादि बारह सूर्य, आठ वसु एवं अश्विनीकुमारों का पूजन करना

चाहिये। शतपत्र के अग्रकोण में महिष-संयुक्त सिंह का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् सहस्रदल में 'क्रौं वाराह्यै नमः' इस पूजामन्त्र से एक हजार बार वाराही का पूजन करना चाहिये। इसके बाद भूपुर के चार द्वारों पर बटुक, क्षेत्रपाल, योगिनी एवं गणेश का उनके मन्त्रों से पूजन करना चाहिये। सात अक्षरों वाला 'बं बटुकाय नमः' वटुक का पूजनमन्त्र है। क्षेत्रपाल का आठ अक्षरों का पूजनमन्त्र है—क्षें क्षेत्रपालाय नमः। 'यों योगिनीभ्यो नमः' यह योगिनी का सप्ताक्षर यजनमन्त्र है। गणेश का अष्टाक्षर पूजनमन्त्र है—गं गणपतये नमः।

तदनन्तर तत्तत् दिशाओं में दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन करने के पश्चात् अन्त में बलिमन्त्र से वटुकादि को बलि प्रदान करना चाहिये।।५३९-५५३।।

एह्येहि देवीपुत्रेति बटुकेति च नाथ च।
कपिलजटाभारेति भासुरेति वदेत्ततः ।।५५४।।
त्रिनेत्र ज्वालामुखेति सर्वविघ्नांस्ततो वदेत्।
नाशयद्वितयं सर्वोपचारसहितं बलिम् ।।५५५।।
गृह्णयुग्मं ततः स्वाहा पञ्चपञ्चाक्षरो मनुः।
बटुकस्य बलिं दद्यादनेन श्रद्धयान्वितः ।।५५६।।
हूं स्थानक्षेत्रपालेश सर्वकामं च पूरय।
स्वाहान्तः षड्दीर्घयुक्तः क्षाद्यस्त्रिर्द्विमितार्णकः ।।५५७।।
क्षेत्रपालबलेर्मन्त्रो गणेशस्याथ कथ्यते।
गाङ्गीगूङ्गमिति प्रोच्य ङेऽन्तं गणपतिं तथा ।।५५८।।
वरवरद सर्वेति जनं मे वशमानय।
सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्णयुगं पुनः ।।५५९।।
स्वाहान्तः खाब्धिवर्णोऽयं बलिमन्त्र उदाहृतः।
एवं तेभ्यो बलिं दत्त्वा स्वस्वमुद्राः प्रदर्शयेत् ।।५६०।।
अङ्गुष्ठानामिके मध्यानामे क्षेत्रबलौ मते।
किञ्चिद्वक्रीकृता मध्या गणनाथबलौ स्मृता ।।५६१।।
अनामामध्यमाङ्गुष्ठा योगिनीनां बलौ पुनः।
योगिनीनां बलेर्मन्त्रं साधनान्ते पठेदिमम् ।।५६२।।
यों योगिनीभ्यः स्वाहेति सप्तार्णः स्रग्धरा त्वियम् ।।५६३।।
ऊर्ध्वं ब्रह्माण्डतो वा दिवि गगनतले भूतले निष्कले वा
पाताले वाऽनले वा सलिलपवनयोर्यत्र कुत्र स्थिता वा।

क्षेत्रे पीठोपपीठादिषु च कृतपदा धूपदीपादिकेन
प्रीता देव्यः सदा नः शुभयुतविधिना यान्तु वीरेन्द्रवन्द्याः ।।५६४।।
एवं सम्पूज्य संस्तूय नत्वात्मन्युपसंहरेत् ।
सिद्धमन्त्रः प्रकुर्वीत प्रयोगाच्छिवभाषितान् ।।५६५।।

बटुक का पचपन अक्षरों का बलिमन्त्र इस प्रकार है—एह्येहि देवीपुत्र बटुकनाथ कपिलजटाभारभासुर त्रिनेत्रज्वालामुख सर्वविघ्नान् नाशय नाशय सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा। इस मन्त्र से श्रद्धापूर्वक बटुक को बलि प्रदान करनी चाहिये। तेईस अक्षरों वाला क्षेत्रपाल का बलिमन्त्र है—क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः हूं स्थानक्षेत्रपालेश सर्वकामं पूरय स्वाहा। गणेश का चालीस अक्षरों का बलिमन्त्र इस प्रकार है—गां गीं गूं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा।

इन उपर्युक्त मन्त्रों से बटुक, क्षेत्रपाल एवं गणेश के लिये बलि प्रदान करने के बाद उनकी अपनी-अपनी मुद्रायें प्रदर्शित करनी चाहिये।

अङ्गुष्ठ, अनामिका एवं मध्यमा अंगुलियों से क्षेत्रपाल को तथा अङ्गुष्ठ, अनामिका और मध्यमा को कुछ टेढ़ा करके गणेश को बलि प्रदान करनी चाहिये। अनामिका, मध्यमा एवं अङ्गुष्ठ से योगिनियों को बलि प्रदान करनी चाहिये। योगिनियों का सप्ताक्षर वलिमन्त्र है—यों योगिनीभ्यः स्वाहा। तदनन्तर इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—ऊपर ब्रह्माण्ड से लेकर समस्त स्वर्ग, आकाश, भूतल, पाताल, अग्नि-जल-पवन अथवा जहाँ-कहीं भी स्थित क्षेत्र, पीठ, उपपीठ आदि में विराजमान वीरेन्द्र-वन्द्य देवी कल्याणदायक विधि से हम पर सदा प्रसन्न रहें। इस प्रकार पूजन, स्तुति एवं प्रणाम करके देवी को स्वयं में उपसंहृत कर लेना चाहिये। तत्पश्चात् उस सिद्ध मन्त्र से शिव-प्रोक्त प्रयोगों को करना चाहिये।।५५४-५६५।।

हरिद्रया चन्दनेन लाक्षयागुरुणापि च ।
पूरेण विविधैर्मांसैर्जुहुयादिष्टसिद्धये ।।५६६।।
हरिद्रामालया कुर्याज्जपं स्तम्भनकर्मणि ।
स्फाटिकैः पद्मबीजैश्च रुद्राक्षैः शुभकर्मणि ।।५६७।।
स्वर्णादिपात्रे सुरया बन्धूककुसुमैस्तिलैः ।
वाराहीं तर्पयेत्सर्वकामं सम्पूरयेन्नरः ।।५६८।।
चतुश्शतन्तु तापिच्छैर्जुहुयात् स्तम्भनेच्छया ।
लाजचूर्णतिलैः कुर्याद्वरमेषासृगन्वितैः ।।५६९।।
पिण्डं मनोहरं तं तु पूरयेत्तर्पयेदपि ।
सम्पन्नमदनं साङ्गमेतस्यै विनिवेदयेत् ।।५७०।।

कुण्डे पिण्डं विधायामुं जुहुयात्तत्र वायुतम् ।
एकविंशतिरात्रीषु लाजै रक्तसमन्वितैः ॥५७१॥
एवं कृते वैरिवृन्दं भक्ष्यते योगिनीगणैः ।
एवं वार्त्तालिकायास्तु साधनं वाममार्गतः ॥५७२॥

इष्टसिद्धि के लिये हल्दी, चन्दन, लाक्षा, अगुरु, दाहागुरु एवं विविध प्रकार के मांसों से हवन करना चाहिये। स्तम्भनकर्म में हल्दी की माला से तथा शुभ कर्मों में स्फटिक, कमलाक्ष अथवा रुद्राक्ष की माला से जप करना चाहिये। सुवर्ण आदि के पात्र में सुरा, बन्धूकपुष्प एवं तिल ड़ालकर वाराही का तर्पण करके मनुष्य समस्त कामनाओं को सिद्ध कर लेता है। स्तम्भन करने की कामना से तापिच्छ (तमाल)-पुष्पों से चार सौ हवन करना चाहिये।

लावाचूर्ण एवं तिल के साथ भेंड़ का रक्त मिलाकर मनोहर पिण्ड़ बनाकर उसको पूरित करके तर्पण करना चाहिये। फिर उसे अङ्गसहित मशालों से युक्त करके देवी के लिये निवेदित करने के पश्चात् उस पिण्ड को कुण्ड में रखकर इक्कीस रात्रियों तक रक्त-समन्वित लाजा से दश हजार की संख्या में हवन करना चाहिये। ऐसा करने से योगिनियाँ शत्रुसमूहों का भक्षण कर जाती हैं। इस प्रकार वाममार्ग से वार्तालि की साधना कही गई है।।५६६-५७२।।

स्वप्नवाराहीमन्त्रविधिः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वाराहीं स्वप्नसञ्ज्ञिताम् ।
ॐ ह्रीं नमश्च वाराहि घोरे स्वप्नं विसर्गयुक् ॥५७३॥
ठद्वयं वह्निजायान्तो मन्त्रः पञ्चदशाक्षरः ।
ईश्वरोऽस्य मुनिः प्रोक्तो जगती छन्द ईरितम् ॥५७४॥
देवता स्वप्नवाराही बीजं तारः प्रकीर्तितः ।
हृल्लेखाशक्तिरुद्दिष्टा ठद्वयं कीलकं मतम् ॥५७५॥
द्विपञ्चनेत्रदस्राक्षियुग्मार्णैश्चाङ्गकं मनोः ।
पादयोर्व्यञ्जने कट्योः कण्ठे गण्डद्वये तथा ॥५७६॥
नेत्रयोः कर्णयोर्नासाद्वयमन्त्रार्णकान्न्यसेत् ।
ततो ध्यायेद् घनश्यामां त्रिनेत्रामुन्नतस्तनीम् ॥५७७॥
कोलास्यां चन्द्रभालाञ्च दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धराम् ।
खड्गाङ्कुशौ दक्षिणयोर्वामयोश्चर्मपाशकौ ।
अश्वारूढां च कोलास्यां नानालङ्कारभूषिताम् ॥५७८॥

स्वप्नवाराही मन्त्र—अब मैं स्वप्नवाराही को कहता हूँ। पन्द्रह अक्षरों का मन्त्र है—ॐ ह्रीं नमो वाराहि घोरे स्वप्नं ठः ठः स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि ईश्वर, छन्द जगती, देवता स्वप्नवाराही, बीज ॐ, शक्ति ह्रीं तथा कीलक ठः ठः कहे गये हैं।

मन्त्र के दो, पाँच, दो, दो, दो एवं दो अक्षरों से क्रमशः षडङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—ॐ ह्रीं हृदयाय नमः, नमो वाराहि शिरसे स्वाहा, घोरे शिखायै वषट्, स्वप्नं कवचाय हुं, ठः ठः नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट्। इसके बाद मन्त्र के प्रत्येक वर्णों का क्रमशः दक्ष-वाम पाद, लिङ्ग, दक्ष-वाम कटि, कण्ठ, दक्ष-वाम गण्डस्थल, दक्ष-वाम नेत्र, दक्ष-वाम कर्ण, दक्ष-वाम नासाच्छिद्र एवं मूर्धा में न्यास इस प्रकार करना चाहिये—ॐ नमः दक्षपादे, ह्रीं नमः वामपादे, नं नमः लिङ्गे, मः नमः दक्षकट्याम्, वां नमः वामकट्याम्, रां नमः कण्ठे, हिं नमः दक्षगण्डे, घों नमः वामगण्डे, रें नमः दक्षनेत्रे, स्वं नमः वामनेत्रे, प्नं नमः दक्षकर्णे, ठः नमः वामकर्णे, ठः नमः दक्षनासायाम्, स्वां नमः वामनासायाम्, हां नमः मूर्ध्नि।

तदनन्तर मेघ-सदृश श्याम वर्ण वाली, तीन नेत्रों एवं उन्नत स्तनों वाली, वराह-सदृश मुख वाली, मस्तक पर चन्द्रमा को धारण की हुई, दाढ़ पर पृथिवी को धारण की हुई, दाहिने हाथों में खड्ग एवं अंकुश तथा बाँयें हाथों में चर्म एवं पाश धारण की हुई, अश्व पर आरूढ़, विविध अलंकारों से विभूषित देवी स्वप्नवाराही का ध्यान करना चाहिये।।५७३-५७८।।

त्रिकोणे तां समाराध्य षट्कोणेष्वङ्गदेवताः ।
षोडशारे यजेच्छक्तीर्वक्ष्यमाणाश्च षोडश ।।५७९।।
उच्चाटनी तदीशी च शोषिणी शोषिणीश्वरी ।
मारणी मारिणीशी च भीषणी भीषणीश्वरी ।।५८०।।
त्रासिनी त्रासिनीशी च कम्पिनी कम्पिनीश्वरी ।
आशाविवर्तिनी पश्चादाशाविवर्त्तिनीश्वरी ।।५८१।।
वस्तुजातेश्वरी पश्चात्सर्वसम्पादिनीश्वरी ।
एताः पूज्याश्चतुर्थ्यन्ताः प्रणवाद्या नमोऽन्तकाः ।।५८२।।
यजेदष्टदले पद्मे मातृभैरवसंयुताः ।
लोकपालान्दशदले द्वितये हेतिसंयुतान् ।।५८३।।
लक्षं जपेद्दशांशेन नीलपद्मैस्तिलैर्हुनेत् ।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री काम्यकर्माणि साधयेत् ।।५८४।।
तर्पयेन्नारिकेरोत्थैर्जलैस्तीर्थोद्भवैरपि ।
आनयेत्तरुणीं वर्षात्सर्वकामसमृद्धये ।।५८५।।

त्रिकोण में देवी स्वप्नवाराही का पूजन करके षट्कोण में षडङ्ग-पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् षोडश दलों में इन षोडश शक्तियों का उनके चतुर्थ्यन्त नाम के पूर्व प्रणव (ॐ) एवं अन्त में 'नमः' लगाकर पूजन करना चाहिये—उच्चाटनी, उच्चाटनीश्वरी, शोषणी, शोषणीश्वरी, मारणी, मारणीश्वरी, भीषणी, भीषणीश्वरी, त्रासनी, त्रासनीश्वरी, कम्पिनी, कम्पिनीश्वरी, आज्ञाविवर्तनी, आज्ञाविवर्तनीश्वरी, वस्तुजातेश्वरी एवं सर्वसम्पादनीश्वरी।
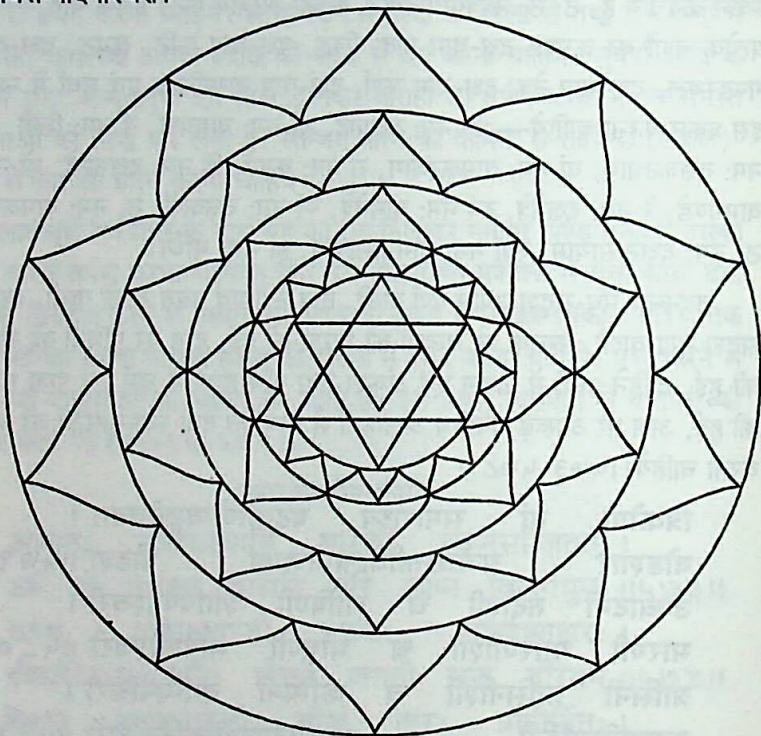
तदनन्तर कमल के अष्टदलों में पूर्वादि क्रम से असितांगादि आठ भैरवों के साथ ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं का पूजन करना चाहिये। इसके बाद दश दल में अपनी-अपनी दिशाओं में इन्द्र आदि दस लोकपालों का पूजन करके उनके अंस्त्रों का पूजन करना चाहिये।

इस प्रकार पूजन सम्पन्न करने के उपरान्त मन्त्र का एक लाख जप करने के बाद नीलकमल एवं तिल से कृत जप का दशांश (दस हजार) हवन करके सिद्ध मन्त्र से मन्त्रज्ञ साधक को काम्य कर्मों का साधन करना चाहिये।

एक वर्ष तक नारियलजल से अथवा तीर्थजल से तर्पण करने से देवी तरुणी

स्त्री को साधक के समक्ष ला देती है एवं उस साधक की समस्त कामनायें पूर्ण होती हैं।।५७९-५८५।।

कृष्णपक्षे विश्वघस्त्रे भूताहे वा कृतव्रतः।
चतुष्पथान्नदीकूलद्वयात्कुलालवेश्मनः ।।५८६।।
मृदमानीय धत्तूररसैः संयुक्तयानया।
रचयेत्पुत्तलीं रम्यां साध्यासुस्थापनान्विताम् ।।५८७।।
ततः प्रेताम्बरे यन्त्रं नृमार्ज्जारासजा लिखेत्।
पीताङ्गारयुजा योनिं षट्कोणं भूपुरान्वितम् ।।५८८।।
तदन्तर्मन्त्रमालिख्य वेष्टयेन्मनुनामुना।
साध्यमुच्चाटययुगं शोषयद्वितयं ततः।
सहस्त्रं चाष्टकं भूयः पूजयेत्तां समाहितः ।।५८९।।
एवं कृते नरा नार्यो राजानो राजवल्लभाः।
सिंहा गजा मृगाः क्रूरा भवेयुर्वशगा ध्रुवम् ।।५९०।।
चित्ते ध्यात्वा निजं कार्यं शयीत विजने वृती।
यथा भावि तथा देवी स्वप्ने वदति मन्त्रिणे ।।५९१।।

कृष्णपक्ष की द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, अमावस्या को व्रत करके चौराहे की, नदी के दोनों तट की या कुम्हार के घर की मिट्टी लाकर उसे धत्तूर के रस से सानकर साध्य स्त्री अथवा पुरुष की मनोहर प्रतिमा बनाकर उसमें प्राणप्रतिष्ठा करने के पश्चात् प्रेतवस्त्र (कफन) पर बिलाव के खून से जलते हुये अंगार से भूपुर से समन्वित त्रिकोण एवं षट्कोण का लेखन करके उस यन्त्र के मध्य में मन्त्र लिखकर उसे अग्रलिखित मन्त्र को एक हजार आठ बार लिखकर वेष्टित करना चाहिये—'अमुकमुच्चाटयोच्चाटय शोषय शोषय।' तत्पश्चात् एकाग्र मन से उसका पूजन करना चाहिये। ऐसा करने से नर-नारी, राजा-रानी एवं सिंह, हाथी, मृग आदि क्रूर जन्तु साधक के वशीभूत हो जाते हैं।

मन में अपने कार्य का चिन्तन करते हुये जनशून्य स्थान में छिपकर शयन करने पर स्वप्न में देवी साधक को भावी बातों को बतला देती हैं।।५८६-५९१।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि इन्द्राणीमिष्टराज्यदाम्।
इं इन्द्राण्यै नम इति मन्त्रः प्रोक्तः षडक्षरः ।।५९२।।
गुरुर्मुनिश्च गायत्री छन्दो देवीन्द्रवल्लभा।
इं बीजं शक्तिरिन्द्राणी नमः कीलकमुच्यते ।।५९३।।
वज्रपाशवराभीतिहस्तां श्यामाम्बरां वराम्।
चतुर्दन्तगजानल्पच्छायासंस्थां हिरण्यभाम् ।।५९४।।

कोणषट्केष्वङ्गपूजा तद्बाह्येऽष्टदले यजेत्।
बगलां छिन्नमस्तां च तारां दक्षिणकालिकाम् ॥५९५॥
धूमावतीं भद्रकालीं महाकालीं प्रतिक्रियाम्।
तत्तन्मन्त्रैस्तु तद्बाह्ये लोकेशानायुधान्यपि ॥५९६॥
लक्षषट्कं जपेन्मन्त्रं मालतीकुसुमैर्हुनेत्।
त्रिमध्वक्तैस्तावदेव राज्यार्थं राजवृक्षजैः ॥५९७॥

इन्द्राणी-मन्त्र—अब मैं साधक के अभीष्ट राज्य को प्रदान करने वाली इन्द्राणी को कहता हूँ। इन्द्राणी का षडक्षर मन्त्र है—इं इन्द्राण्यै नमः। इस मन्त्र के ऋषि बृहस्पति, छन्द गायत्री, देवी इन्द्राणी, बीज इं, शक्ति इन्द्राणी एवं कीलक नमः कहे गये हैं। हाथों में वज्र पाश वर एवं अभय धारण की हुई, कृष्ण वर्ण वस्त्र धारण की हुई, ार दाँतों वाले ऐरावत हाथी की प्रभूत छाया में विराजमान स्वर्ण-सदृश कान्ति वाली देवी इन्द्राणी का ध्यान करना चाहिये।

षट्कोण, अष्टदल एवं भूपुर वाले पूजनयन्त्र के षट्कोण में षडङ्ग-पूजन करने के बाद उसके बाहर अष्टदल में बगला, छिन्नमस्ता, तारा, दक्षिणकालिका, धूमावती, भद्रकाली, महाकाली और प्रतिक्रिया का उनके मन्त्रों से पूजन करना चाहिये। इसके बाद भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन करने के अनन्तर मन्त्र का छः लाख जप करना चाहिये। पश्चात् त्रिमधु-सिक्त मालतीपुष्पों से उतना ही (छः लाख) हवन करना चाहिये। राज्य-प्राप्ति के लिये राजवृक्ष की समिधा से हवन करना चाहिये।।५९२-५९७।।

बगलामुखीसाधनविधिः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि स्तम्भिनीं बगलामुखीम्।
तारं मायां समुच्चार्य वदेच्च बगलामुखि ॥५९८॥
तदग्रे सर्वदुष्टानां ततो वाचं मुखं पदम्।
स्तम्भयेतिपदं जिह्वां कीलयेति ततः परम् ॥५९९॥
बुद्धिं विनाशय ह्रीं ॐ स्वाहा वेदाग्निवर्णकः।
नारायणो मुनिस्त्रिष्टुप्छन्दश्च बगलामुखी ॥६००॥
देवीबीजन्तु हल्लेखा स्वाहा शक्तिः समीरिता।
विनियोगोऽस्य विख्यातः पुरुषार्थचतुष्टये ॥६०१॥
हल्लेखा हृदयम्प्रोक्तं शिरश्च बगलामुखि।
शिखा तु सर्वदुष्टानां ततो वाचम्मुखम्पदम् ॥६०२॥

स्तम्भयेति च वर्म्मोक्तं जिह्वां कीलय नेत्रकम्।
बुद्धिं विनाशयास्त्रं स्यात्षडङ्गन्यास ईरितः ॥६०३॥
मूर्ध्नि भाले भ्रुवोर्मध्ये नेत्रयोः श्रोत्रयोर्नसोः।
गण्डद्वये तथा चोष्ठेऽधरास्यचिबुकेषु च ॥६०४॥
गले च दक्षदोर्मूले तन्मध्ये मणिबन्धके।
अङ्गुलीनान्तथा मूले हस्ताग्रे चैवमेव हि ॥६०५॥
न्यसेद्वामभुजादौ च दक्षोरुमूलके ततः।
दक्षजानुनि गुल्फे चाङ्गुलिमूले पदाग्रतः ॥६०६॥
गम्भीराञ्च मदोन्मत्तां तप्तकाञ्चनसन्निभाम्।
चतुर्भुजां त्रिनयनां कमलासनसंस्थिताम् ॥६०७॥
मुद्गरं दक्षिणे पाशं वामे जिह्वां च वज्रकम्।
पीताम्बरधरां सान्द्रवृत्तपीनपयोधराम् ॥६०८॥
हेमकुण्डलभूषां च पीतचन्द्रार्धशेखराम्।
पीतभूषणभूषाञ्च स्वर्णसिंहासनस्थिताम् ॥६०९॥
एवं ध्यात्वा च देवेशीं शत्रुस्तम्भनकारिणीम्।
भूप्रदेशे मनोरम्ये पुष्पामोदसुधूपिते ॥६१०॥
गोमयेनाथ संलिप्ते मण्डले त्वासनं चरेत्।
सौवर्णे वाथ रौप्ये वा पैत्तले वापि भूर्ज्जके ॥६११॥
कर्पूरागरुकस्तूरीश्रीखण्डकुङ्कुमैरपि।
लिखेद्यन्त्रं प्रयत्नेन लेखन्या हेमतारयोः ॥६१२॥
मध्ये योनिं समालिख्य तद्बाह्ये तु षडस्त्रकम्।
तद्बाह्येऽष्टदलं पद्मं तद्बाह्ये षोडशच्छदम्।
चतुरस्त्रत्रयं बाह्ये चतुर्द्वारोपशोभितम् ॥६१३॥

बगलामुखी-साधनविधि—अब मैं स्तम्भन करने वाली बगलामुखी को कहता हूँ। बगलामुखी का चौंतीस अक्षरों का मन्त्र है—ॐ ह्लीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं स्तम्भय जिह्वां कीलय बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि नारायण, छन्द त्रिष्टुप्, देवी बगलामुखी, बीज ह्लीं एवं शक्ति स्वाहा कही गई है। पुरुषार्थ-चतुष्टय की प्राप्ति के लिये इसका विनियोग कहा गया है। इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार कहा गया है—ॐ ह्लीं हृदयाय नमः, बगलामुखि शिरसे स्वाहा, सर्वदुष्टानां शिखायै वषट्, वाचं मुखं स्तम्भय कवचाय हुम्, जिह्वां कीलय नेत्रत्रयाय वौषट्, बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा अस्त्राय फट्।

मूर्धा, भाल (ललाट), भ्रूमध्य, दक्ष-वाम नेत्र, दक्ष-वाम श्रोत्र, दक्ष-वाम नासाच्छिद्र, दक्ष-वाम गण्ड़स्थल, ऊर्ध्वोष्ठ, अधरोष्ठ, मुख, चिबुक, गला, दक्षभुजमूल, दक्षकूर्पर, दक्षमणिबन्ध, दक्षकराङ्गुलिमूल, दक्षकराङ्गुल्यग्र, वामभुजमूल, वामकूर्पर, वाममणिबन्ध, वामकराङ्गुलिमूल, वामकराङ्गुल्यग्र, दक्ष ऊरुमूल, दक्षजानु, दक्षगुल्फ, दक्षपादाङ्गुलिमूल, दक्षपादाङ्गुल्यग्र, वाम ऊरुमूल, वामजानु, वामगुल्फ, वामपादाङ्गुलिमूल एवं वामपादाङ्गुल्यग्र में क्रमश: मन्त्रवर्णों का न्यास करना चाहिये।
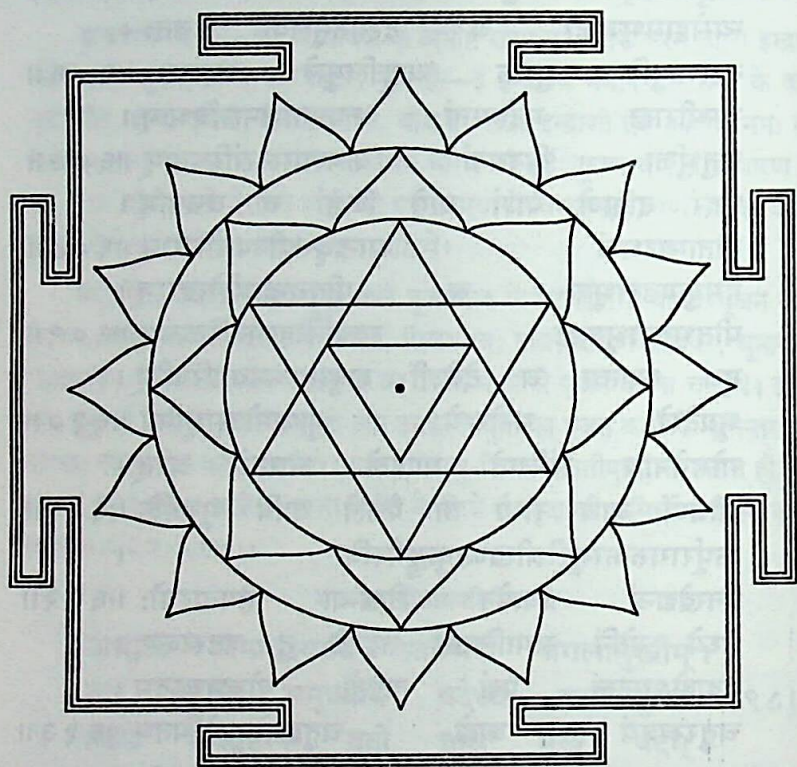
तदनन्तर गम्भीर एवं मदोन्मत्त, तप्त सुवर्ण-सदृश, चार भुजा एवं तीन नेत्रों वाली, दाहिने दो हाथों में मुद्गर एवं पाश तथा बाँयें दो हाथों में जिह्वा एवं वज्र धारण की हुई, पीले वस्त्र धारण की हुई, घने गोल एवं स्थूल पयोधरों वाली, कानों में स्वर्णकुण्ड़ल से विभूषित, शीर्ष पर पीले अर्धचन्द्र को धारण की हुई, पीले आभूषणों से भूषित, स्वर्णसिंहासन पर स्थित कमल के आसन पर विराजमान शत्रुओं को स्तम्भित करने वाली देवेशी बगलामुखी का ध्यान करके पुष्प-धूप से सुगन्धित एवं गोबर से लिप्त मनोरम भूतल पर मण्डल बनाकर आसन प्रदान कर उसपर सोने, चाँदी

या पीतल या भोजपत्र पर कपूर, अगर, कस्तूरी, श्रीखण्ड चन्दन एवं कुमकुम मिलाकर सोने की शलाका से सावधानी-पूर्वक यन्त्र का लेखन करना चाहिये।

मध्य में त्रिकोण बनाकर उसके बाहर षट्कोण, उसके बाहर अष्टदल कमल, उसके बाहर षोड़शदल कमल एवं उसके बाहर चार द्वारों से सुशोभित त्रिरेखान्वित भूपुर का लेखन करने से यन्त्र का स्वरूप बन जाता हैं।।५९८-६१३।।

यत्र नोक्तन्देवतायाः पीठं वा पीठशक्तयः।
तत्र मायोदितं पीठं ज्ञेयास्ता एव शक्तयः ।।६१४।।
तद्बीजेन यजेत्पीठं यद्वा मायाणुनाथ वा।
तत्रावाह्य यजेद्देवीं सुपीतैरुपचारकैः ।।६१५।।

जहाँ पर पीठदेवता और पीठशक्तियों का कथन न किया गया हो, वहाँ पर शक्तिपीठ को ही पीठ एवं उन शक्तियों को ही पीठशक्ति समझना चाहिये। उक्त पीठ पर देवी बगला के बीज अथवा मायाबीज से पीठपूजन करके उसी पीठ पर देवी का आवाहन करके पीले उपचारों से पूजन करना चाहिये।।६१४-६१५।।

यजेदङ्गानि षट्कोणे पूर्वद्वारादिषु क्रमात्।
गणेशं बटुकं चापि योगिनीः क्षेत्रपालकम् ।।६१६।।
ईशानादिनिर्ऋत्यन्तं गुरुपंक्तिं समर्चयेत्।
बगलां पूर्वपत्रे तु स्तम्भिनीं च ततः परम् ।।६१७।।
जृम्भिनीं मोहिनीं चैव प्रगल्भामचलां जयाम्।
दुर्धर्षाकल्मषाधीराकल्याण्याकालकर्षिणीः ।
भ्रामिकां मन्दगमनां भोग्याख्यां चैव योगिकाम् ।।६१८।।
एताः षोडशपत्रेषु गन्धपुष्पाक्षतैर्यजेत्।
षोडशस्वरसंयुक्ताः सम्प्रदायात्कुलागमे ।।६१९।।
यजेत्तु पत्रमध्येषु कल्पिते चाष्टपत्रके।
पूर्वाद् ब्राह्म्यादिका अष्टौ वाहनायुधसंयुताः ।।६२०।।
लोकेशांश्च तदस्त्राणि पूजयेद्वाह्यतस्तथा।
योनिमध्ये मूलदेवीं त्रिरञ्जलिभिरर्चयेत् ।।६२१।।
धूपदीपसुनैवेद्यैर्गन्धताम्बूलदीपकैः ।
नीराज्यं विधिवत्पश्चाद्यथासङ्ख्यं निवेदयेत् ।।६२२।।
पवित्रारोपणं कार्यं दमनेन तु पूजयेत्।
देयं चापि सितान्नेन प्रत्यहं बलिपञ्चकम् ।।६२३।।

हरिद्राग्रन्थिजा माला पीताम्बरधरः स्वयम् ।
पीतासनः स्मरेत्पीतं चायुतं जपमाचरेत् ।।६२४।।
दशांशेन कृते होमे पीतद्रव्यैः प्रतर्पयेत् ।
सर्वपीतोपचारेण मन्त्रः सिद्ध्यति मन्त्रिणः ।।६२५।।

त्रिकोण के तीन कोणों में सतोगुण, रजोगुण एवं तमोगुण का अर्चन करके षट्कोण में षडङ्ग-पूजन करने के उपरान्त चार द्वारों पर पूर्वादि क्रम से गणेश, बटुक योगिनी एवं क्षेत्रपाल का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर ईशान कोण से नैर्ऋत्य कोण तक चार कोणों में गुरुपंक्ति का पूजन करना चाहिये। षोडशदल में क्रमशः बगला, स्तम्भिनी, जृम्भिनी, मोहिनी, प्रगल्भा, अचला, जया, दुर्धर्षा, कल्मषा, धीरा, कल्याणी, कालंकर्षिणी, भ्रामिका, मन्दगमना, भोग्या एवं योगिका का सोलह स्वरों से संयुक्त उनके नाममन्त्रों से गन्ध-पुष्प-अक्षत से पूजन करना चाहिये। अष्टदल में पूर्वादि क्रम से भैरवों सहित अष्टमातृकाओं का उनके वाहन एवं आयुधों के सहित पूजन करना चाहिये। फिर उसके बाहर तीन रेखाओं से बने भूपुर के दो अन्तरालों में से पहले अन्तराल में इन्द्र आदि लोकपालों का एवं दूसरे अन्तराल में उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिये। त्रिकोण के मध्य में धूप-दीप-नैवेद्य-गन्ध-ताम्बूल-दीपक एवं तीन पुष्पाञ्जलि प्रदान करते हुये मूल देवी का अर्चन करना चाहिये। तत्पश्चात् विधिवत् नीराजन निवेदित करना चाहिये।

अनन्तर पवित्रारोपण करके सावधान होकर उसका पूजन करना चाहिये एवं प्रतिदिन गुड़ान्न से पाँच बलि प्रदान करनी चाहिये। तदनन्तर साधक को स्वयं पीला वस्त्र पहन कर हल्दी की माला से पीले आसन पर बैठकर बगला का स्मरण करते हुये मन्त्र का दश हजार जप करना चाहिये। इसके बाद पीले द्रव्यों से कृत जप का दशांश हवन करके पीले जल से ही तर्पण करना चाहिये। समस्त पीले उपचारों से पूजन करने पर मन्त्रज्ञ साधक को मन्त्रसिद्धि प्राप्त होती है।।६१६-६२५।।

साध्यसञ्ज्ञां समुच्चार्य स्तम्भयेति ततः परम् ।
गतिस्तम्भकरी विद्या अरिस्तम्भनकारिणी ।।६२६।।
मेधां प्रज्ञां च शास्त्रादीन् देवदानवपन्नगान् ।
स्तम्भयेच्च महाविद्या सत्यं सत्यं न संशयः ।
एकान्ते परमे रम्ये शुचौ देशेऽथ वा गृहे ।।६२७।।
कुण्डं सलक्षणं कृत्वा मेखलात्रयशोभितम् ।
योनिर्वितस्तिमात्रा तु षट्कर्माण्यत्र साधयेत् ।
तथाकर्षणकामस्तु लोणं त्रिमधुरान्वितम् ।।६२८।।

निम्बपत्रं तैलयुक्तं विद्वेषणकरं परम्।
हरितालं हरिद्रां च लवणेन च संयुताम्।
स्तम्भने होमयेद्देवीं प्रज्ञायाश्च गतेर्मतेः ॥६२९॥
आसुर्याश्चापि तैलेन महिषीरुधिरेण च।
रिपूणां मारणार्थन्तु श्मशानाग्नौ हुनेन्निशि।
गृध्राणामपि काकानां गृहधूमयुतेन वै ॥६३०॥
पक्षेण जुहुयाद्देवि शत्रोरुच्चाटनाय वै।
पूर्वा कुलालमृत्तावत्येरण्डश्चतुरङ्गुलः ॥६३१॥
लाजास्त्रिमधुयुक्ताश्च सर्वरोगोपशान्तये।

साध्यनाम का उच्चारण करके 'स्तम्भय स्तम्भय' लगाकर मन्त्रजप करने से यह विद्या शत्रु को स्तम्भित करने वाली होती है। यह महाविद्या मेधा, प्रज्ञा, शास्त्र आदि के साथ-साथ देवों, दानवों एवं सर्पों को भी स्तम्भित कर देती है; इसमें कोई संशय नहीं है।

एकान्त में परम पवित्र सुरम्य स्थान में अथवा अपने गृह में सुन्दर लक्षणों से युक्त तीन मेखला एवं वितस्तिमात्र'लम्बी-चौड़ी योनि वाला त्रिकोण कुण्ड बनाकर उसमें षट्कर्मों का साधन करना चाहिये।

आकर्षण की कामना वाले को उस कुण्ड में त्रिमधुरान्वित लवण से हवन करना चाहिये। तिलयुक्त नीम के पत्रों के हवन से विद्वेषण होता है। बुद्धि, प्रज्ञा एवं गति के स्तम्भन-हेतु हरिताल एवं हल्दी के साथ लवण मिलाकर हवन करना चाहिये।

शत्रुवध के लिये राई के तेल एवं महिषी (भैंस) के रक्त से रात्रि में श्मशानाग्नि में हवन करना चाहिये। हे देवि! शत्रुओं के उच्चाटन के लिये गृहधूम से समन्वित गीध और कौए के पंखों से हवन करना चाहिये। समस्त रोगों की शान्ति के लिये कुम्हार की मिट्टी से समन्वित चार अंगुल लम्बे एरण्ड के टुकड़ों एवं लावा को त्रिमधुरान्वित करके हवन करना चाहिये।।६२६-६३१।।

लक्षमेकं जपेद्देवि ब्रह्मचारी दृढव्रतः ॥६३२॥
पर्वताग्रे महारण्ये सिद्धे शैवालये गृहे।
सङ्गमे च महानद्योर्निशायामपि साधयेत् ॥६३३॥
श्वेतब्रह्मतरोर्मूले पादुकाञ्चैव कारयेत्।
अलक्तकस्य च रागेण रञ्जिताञ्च हरिद्रया ॥६३४॥
अनया विद्यया चापि लक्षैकेन च मन्त्रिताम्।
शतयोजनमात्रन्तु स गच्छेच्चिन्तिते पथि ॥६३५॥

रसं मनःशिला तालं माक्षिकेण समन्वितम्।
पिष्ट्वाभिमन्त्र्य लक्षैकं सर्वाङ्गे लेपने कृते ॥६३६॥
अदृश्यकारकं तत्स्याल्लोके च महदद्भुसम्।
सुरभेरेकवर्णाया धारोत्थं क्षीरमाहरेत् ॥६३७॥
शर्करामधुसंयुक्तं त्रिशतैर्मन्त्रितं प्रिये।
पाययित्वा तु हरते विषं स्थावरजङ्गमम् ॥६३८॥
दारिद्र्यमोचनं चैव लक्षमेकञ्जपेत्ततः।
दशांशेन कृते होमे एभिर्द्रव्यैः पृथक्पृथक् ॥६३९॥

हे देवि! साधक को दृढ़ता-पूर्वक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुये मन्त्र का एक लाख की संख्या में जप करना चाहिये। यह साधना पर्वतशिखर पर, घोर जंगल में, सिद्धपीठ पर, शिवालय में, घर में अथवा महानदियों के संगम में रात्रि में भी करनी चाहिये।

श्वेत पलाश की जड़ का खड़ाऊँ बनाकर उसे आलता और हल्दी से रंग कर इस विद्या के एक लाख जप से अभिमन्त्रित करके उस खड़ाऊँ को पहन कर साधक अपने इच्छित मार्ग पर एक सौ योजन (एक हजार दो सौ किलोमीटर) भी क्षणमात्र में जा सकता है।

पारा, मैनसिल एवं हरिताल को मधु में पीस कर उसे एक लाख जप से अभिमन्त्रित करके अपने समस्त अङ्गों में लेप करने से साधक इस संसार में आश्चर्यजनक रूप से अदृश्य हो जाता है।

एक वर्ण वाली गाय के धारोष्ण दूध में शक्कर एवं मधु मिलाकर उसे तीन सौ जप से अभिमन्त्रित करके उसका पान कराकर स्थावर एवं जंगम विष को नष्ट किया जा सकता है।

इस मन्त्र का एक लाख जप करके एकवर्णा गाय के दूध, शक्कर और मधु से अलग-अलग कृत जप का दशांश हवन करने से दरिद्रता नष्ट हो जाती है।।६३२-६३९।।

छिन्नमस्तादेवतासाधनविधिः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वाममार्गेण सिद्धिदाम्।
इन्द्राण्याः परमां शक्तिं छिन्नमस्तां महेश्वरीम् ॥६४०॥
प्रणवश्च रमा लज्जाबीजद्वन्द्वञ्च वाग्भवम्।
वज्रवैरोचनीये ह्रींह्रींफट् स्वाहा घनाक्षरः ॥६४१॥

भैरवोऽस्य मुनिः प्रोक्तो विराट् छन्द उदाहृतम्।
छिन्नमस्ता भवेद्देवी वाममार्गेण सिद्धिदा ॥६४२॥
आं खड्गाय हृदाख्यातमीं सुखड्गाय मस्तकम्।
ऊं वज्राय शिखा प्रोक्ता ऐं पाशाय तनुच्छदम् ॥६४३॥
औं अङ्कुशाय नेत्रं स्यादस्त्रासरक्षकाय च।
हूंहूं नवार्णोऽस्त्रमन्त्रः सर्वे स्युः प्रणवादिकाः।
स्वाहान्ता सर्व एवैते ततो ध्यानं समाचरेत् ॥६४४॥
भास्वन्मण्डलमध्यस्थां विपरीतरते स्थिताम्।
रतिकामसमारूढां विकीर्णसकलालकाम् ॥६४५॥
वामे करे निजशिरश्छिन्नं सन्दधतीं पुनः।
गलान्निर्गतरक्तञ्च पिबन्तीं तन्मुखेन च।
डाकिनीवर्णिनीभ्याञ्च सखीभ्यां परिधारिताम् ॥६४६॥

छिन्नमस्तिका-साधनविधि—अब मैं वाममार्ग मे सिद्धि प्रदान करने वाली इन्द्राणी की परमा शक्ति और छिन्नमस्ता महेश्वरी को कहता हूँ। छिन्नमस्ता का सत्रह अक्षरों का मन्त्र है—ॐ श्रीं ह्लीं ह्लीं ऐं वज्रवैरोचनीये ह्लीं ह्लीं फट् स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि भैरव, छन्द विराट् एवं देवी छिन्नमस्ता कही गई है। यह वाममार्ग से सिद्धि प्रदान करने वाली है।

षडङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—ॐ आं खड्गाय स्वाहा हृदयाय नमः, ॐ ईं सुखड्गाय स्वाहा शिरसे स्वाहा, ॐ ऊं वज्राय स्वाहा शिखायै वषट्, ॐ ऐं पाशाय कवचाय हुम्, ॐ अं अंकुशाय स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ अः त्रासरक्षकाय हूं हूं अस्त्राय फट्। इसके बाद इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—प्रकाशमान मण्डल के मध्य में विपरीतरति में वर्त्तमान रति काम के ऊपर आरूढ़ हैं, उनके केश बिखरे हुये हैं, बाँयें अपने शिर को काटकर ली हुई हैं एवं उसी शिर के मुख से अपने गले से निःसृत रक्त का पान कर रही हैं, उनके दोनों ओर से डाकिनी एवं वर्णिनी नाम वाली सखियाँ पकड़ी हुई हैं।।६४०-६४७।।

आधारशक्तिमारभ्य परतत्त्वान्तपूजिते।
पीठे जयाख्या विजया अजिता चापराजिता ॥६४७॥
नित्या विलासिनी षष्ठी दोग्ध्री घोरा च मङ्गला।
दिक्षु मध्ये च सम्पूज्या नवपीठस्य शक्तयः ॥६४८॥
सर्वबुद्धिप्रदे वर्णनीये सर्वपदं ततः।
सिद्धिप्रदे डाकिनीये प्रणवं वज्रवै वदेत् ॥६४९॥

रोचनीये तथैह्येहि नमोऽन्तः प्रणवादिकः ।
पीठमन्त्रो वेदवह्निवर्णः पीठार्चने मतः ॥६५०॥
त्रिकोणं रसकोणञ्चाष्टदलं भूपुरन्ततः ।
बाह्यावरणमारभ्य पूजयेत्प्रतिलोमतः ॥६५१॥
भूपुराद् बाह्यभागेषु वज्रादीनि प्रपूजयेत् ।
तदन्तः सुरराजादीन् द्वारेषु द्वारपान् यजेत् ॥६५२॥
करालं विकरालञ्चातिकालं महाकालकम् ।
एकलिङ्गां योगिनीञ्च डाकिनीं भैरवीं तथा ॥६५३॥
महाभैरविकेन्द्राक्ष्यावसिताङ्गीञ्च हारिणीम् ॥६५४॥
षट्कोणेषु षडङ्गानि त्रिकोणे छिन्नमस्तकाम् ।
डाकिनी वर्णिनी तारवाग्भ्यां तत्पार्श्वयोर्यजेत् ॥६५५॥
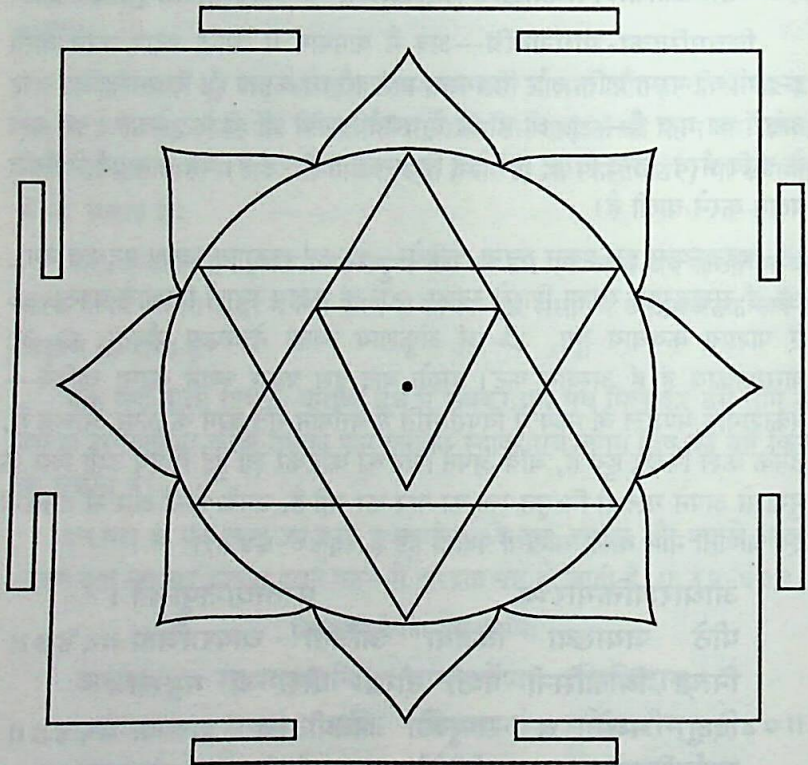
आधारशक्ति से आरम्भ कर परतत्त्वान्त तक पूजित पीठ की आठ दिशाओं एवं

मध्य में नव पीठशक्तियों का पूजन करना चाहिये; वे पीठशक्तियाँ हैं—जया, विजया, अजिता, अपराजिता, नित्या, विलासिनी, षष्ठी, दोग्ध्री, घोरा, मङ्गला। पीठपूजन का चौंतीस अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—ॐ सर्वबुद्धिप्रदे वर्णनीये सर्वसिद्धिप्रदे डाकिनीये ॐ वज्रवैरोचनीये एह्येहि नमः।

त्रिकोण, षट्कोण, अष्टदल और भूपुर से समन्वित यन्त्र का निर्माण करके उसके बाह्यावरण से आरम्भ करते हुये प्रतिलोमक्रम से पूजन करना चाहिये।

भूपुर से बाह्य भागों में वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अंकुश, गदा, त्रिशूल, पद्म एवं चक्र—इन दश आयुधों का पूजन करके उसके भीतर भूपुर में इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा और अनन्त का पूजन करना चाहिये। द्वारों पर कराल, विकराल, अतिकाल एवं महाकाल—इन चार द्वारपालों का पूजन करना चाहिये। अष्टदल में आठ शक्तियों का पूजन करना चाहिये। वे आठ शक्तियाँ हैं—एकलिङ्गा, योगिनी, डाकिनी, भैरवी, महाभैरवी, इन्द्राक्षी, असिताङ्गी और संहारिणी। षट्कोणों में षडङ्ग-पूजन करने के पश्चात् त्रिकोण के केन्द्र में देवी छिन्नमस्तिका का पूजन करके उनके दोनों पार्श्वों में डाकिनी और वर्णिनी का पूजन क्रमशः 'ॐ ऐं डाकिन्यै नमः, ॐ ऐं वर्णिन्यै नमः' मन्त्रों से करना चाहिये।।६४७-६५५।।

एवं पूजा प्रकर्तव्या जपेल्लक्षचतुष्टयम्।
पालाशबिल्वजैर्वापि जुहुयात्कुसुमैः फलैः ।।६५६।।
तर्पणादि ततः कुर्यादेवं सिद्धो भवेन्मनुः।
श्रीपुष्पैर्लभते लक्ष्मीं तत्फलैश्च समीहितम् ।।६५७।।
वाक्सिद्धिं मालतीपुष्पैश्चम्पकैर्हवनात्सुखम्।
घृताक्तं छागमांसं यो जुहुयात्प्रत्यहं शतम्।
मासमेकन्तु वशगास्तस्य स्युः सर्वपार्थिवाः ।।६५८।।
हयारिकुसुमैः श्वेतैर्लक्षसङ्ख्यं जुहोति यः।
रोगजालं पराभूय सुखी जीवेच्छतं समाः ।।६५९।।
रक्तैस्तत्सङ्ख्यया हुत्वा वशयेन्मन्त्रिणो नृपान्।
फलैर्हुत्वाप्नुयाल्लक्ष्मीमुदुम्बरपलाशजैः ।।६६०।।
गोमायुमांसैस्तामेव विवाहं पायसान्धसा।
बन्धूककुसमैर्भाग्यं कर्णिकारैः समीहितम् ।।६६१।।
तिलतण्डुलहोमेन वशयेन्निखिलाञ्जनान्।
नारीरजोभिराकृष्टं मृगमांसैः समीहितम् ।।६६२।।

स्तम्भनं माहिषैर्मांसैः पङ्कजैः सघृतैरपि ।
चिताग्नौ परभृत्पक्षैर्जुहुयादरिमृत्यवे ।
उन्मत्तकाष्ठदीप्तेऽग्नौ तत्फलं वायसच्छदैः ।।६६३।।

इस प्रकार पूजन सम्पन्न करके मन्त्र का चार लाख जप करने के पश्चात् पलाश अथवा बिल्वपुष्पों एवं उनके फलों से हवन करना चाहिये। इसके बाद तर्पण एवं मार्जन करके ब्राह्मणभोजन कराने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

श्रीपुष्प एवं उसके फल से हवन करने पर लक्ष्मी की प्राप्ति होती हैं। मालतीपुष्प के हवन से वाक्सिद्धि होती है। चम्पकपुष्प के हवन से सुख-प्राप्ति होती है। जो साधक एक मास तक प्रतिदिन घृत-सिक्त छागमांस से एक सौ बार हवन करता है, समस्त जीव उसके वशीभूत हो जाते हैं। जो मनुष्य कनैल के श्वेत पुष्पों से एक लाख हवन करता है, वह समस्त रोगों को पराभूत करके सौ वर्षों तक सुखी जीवन व्यतीत करता है। कनैल के रक्त पुष्पों से एक लाख हवन करके मनुष्य मन्त्रियों एवं राजाओं को वशीभूत कर लेता है। गूलर एवं पलाश के फलों से हवन करके मनुष्य लक्ष्मी प्राप्त करता है। शृगाल के मांस से हवन करने पर भी लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। खीर के हवन से विवाह होता है। बन्धूकपुष्पों एवं कर्णिकारपुष्पों के हवन से भाग्योदय होता है। तिल एवं चावल के हवन से सभी लोग वशीभूत होते हैं। स्त्रियों के स्रवित रज के हवन से आकर्षण होता है एवं मृग के मांस से हवन करने पर अभीष्ट-प्राप्ति होती है। भैंसे के मांस एवं घृत-सिक्त कमल के हवन से स्तम्भन होता है। शत्रुओं की मृत्यु के लिये चिताग्नि में परभृत् (तोता) के पंखों से हवन करना चाहिये। उन्मत्त काष्ठ की प्रज्वलित अग्नि में कौवे के पंखों से हवन करने पर भी शत्रु की मृत्यु होती है।।६५६-६६३।।

द्यूते वने नवद्वारे समरे वैरिसङ्कटे ।
विजयं लभते मन्त्री ध्यायेद्देवीं जपन्मनुम् ।।६६४।।
भुक्तौ मुक्तौ सितां ध्यायेदुच्चाटे नीलरोचिषम् ।
रक्तां वश्ये मतौ धूम्रां स्तम्भने कनकप्रभाम् ।।६६५।।
निशि दद्याद्बलिं तस्यै सिद्धये मदिरादिना ।

देवी का ध्यान करते हुये मन्त्र का जप करने से द्यूत, वन, राजदरबार, युद्ध एवं शत्रुओं का संकट उपस्थित होने पर साधक विजय प्राप्त करता है। भोग एवं मोक्ष-प्राप्ति के लिये किये जाने वाले जप के समय श्वेत वर्ण वाली देवी का ध्यान करना चाहिये। इसी प्रकार उच्चाटन कर्म में नीले वर्ण वाली, वशीकरण में रक्त वर्ण वाली,

मारणकर्म में धूम्र वर्ण वाली एवं स्तम्भनकर्म में स्वर्णवर्ण वाली देवी का ध्यान करना चाहिये। सिद्धि-प्राप्ति के लिये रात्रि में मदिरा आदि से देवी को बलि प्रदान करनी चाहिये।।६६४-६६५।।

गोपनीय: प्रयोगोऽथ प्रोच्यते सर्वसिद्धिद: ।।६६६।।
भूताहे कृष्णपक्षस्य मध्यरात्रे ततो गते।
स्नात्वा रक्ताम्बरधरो रक्तमाल्यानुलेपन: ।।६६७।।
आनीय पूजयेन्नारीं छिन्नमस्तास्वरूपिणीम्।
सुन्दरीं यौवनाक्रान्तां नरपञ्चकगामिनीम् ।।६६८।।
सस्मितां मुक्तकबरीं भूषादानप्रतोषिताम्।
विवस्त्रां पूजयित्वैनां चायुतं प्रजपेन्मनुम् ।।६६९।।
बलिं दत्त्वा निशां नीत्वा सम्प्रेक्ष्य धनतोषिताम्।
भोजयेद्विविधैरन्नैर्ब्राह्मणान् देवताधिया ।।६७०।।
अनेन विधिना लक्ष्मीं पुत्रान् पौत्रान् यश: सुखम्।
नारीमायुश्चिरं धर्ममिष्टमन्यदवाप्नुयात् ।।६७१।।
तस्यां रात्रौ व्रतं कार्यं विद्याकामेन मन्त्रिणा।
मनोरथेषु चान्येषु गच्छेत्तां प्रजपेन्मनुम् ।।६७२।।
किं बहूक्तेन विद्याया अस्या विज्ञानमात्रत:।
शास्त्रज्ञानं पापनाश: सर्वसौख्यं लभेद् ध्रुवम् ।।६७३।।

अब समस्त प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाले गोपनीय प्रयोगों को कहा जा रहा है। कृष्ण पक्ष के चतुर्दशी की अर्धरात्रि में स्नान करके रक्त वस्त्र एवं रक्त माला धारण करने के बाद रक्त गन्ध का अनुलेप लगाकर छिन्नमस्ता-स्वरूपिणी स्त्री को लाकर उसका पूजन करना चाहिये। वह सुन्दरी स्त्री यौवन के भार से आक्रान्त, पाँच पुरुषों के साथ गमन करने वाली (वेश्या), मुस्कान-युक्त, खुले केश वाली, आभूषण देकर सन्तुष्ट की गई एवं निर्वस्त्र होनी चाहिये। ऐसी स्त्री का पूजन करने के बाद उसके सामने बैठकर मन्त्र का दश हजार जप करना चाहिये। जप पूर्ण करने के पश्चात् बलि प्रदान करके रात्रि की समाप्ति होने पर प्रभूत धन-प्राप्ति से सन्तुष्ट उस स्त्री को विदा करने के बाद विविध प्रकार के पक्वान्नों से देवतास्वरूप ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। इस विधि से जप करने वाला साधक लक्ष्मी, पुत्र, पौत्र, यश, सुख, स्त्री, दीर्घायु, धर्म एवं अन्य अभीप्सित वस्तुओं को प्राप्त करता है।

मन्त्रज्ञ साधक को विद्या-सिद्धि की कामना से उस रात्रि को व्रताचरण करना

चाहिये। अन्य मनोरथों की प्राप्ति-हेतु भी उस स्त्री के पास बैठकर मन्त्रजप करना चाहिये। अधिक कहने से क्या लाभ? इस विद्या के ज्ञानमात्र से निश्चित ही साधक को समस्त शास्त्रों का ज्ञान हो जाता है, समस्त पापों का नाश हो जाता है एवं समस्त सुखों की प्राप्ति होती है।।६६६-६७३।।

उषस्युत्थाय शय्यायामुपविश्य जपेच्छतम्।
अङ्गमासान्तरे मन्त्री कवित्वेन जयेत्कविम्।।६७४।।
शिवेन कीलिता विद्या तदुत्कीलनमुच्यते।
माया तारपटां मन्त्रे जपेदष्टोत्तरं शतम्।।६७५।।
मन्त्रस्यादौ तथैवान्ते भवेत्सिद्धिप्रदा तु सा।
एष नूनं विधिर्गोप्यः सिद्धिकामेन मन्त्रिणा।।६७६।।
उदिता छिन्नमस्तेयं मार्गेऽस्मिन्नतिसिद्धिदा।

छः मास तक प्रतिदिन उषःकाल में निद्रा का त्याग करके शय्या पर बैठकर मन्त्र का एक सौ बार जप करने वाला साधक अपनी कवित्वशक्ति से अन्य कवियों को पराभूत कर देता है।

इस विद्या के शिव द्वारा कीलित होने के कारण अब इसके उत्कीलन की विधि को कहता हूँ। मन्त्र को ॐ एवं ह्रीं से आच्छादित (सम्पुटित) करके एक सौ आठ बार जप करने से इसका उत्कीलन हो जाता है। इसी प्रकार मन्त्र के आदि और अन्त में ॐ ह्रीं लगाकर जप करने से यह विद्या सिद्धि प्रदान करने वाली हो जाती हैं। सिद्धि की कामना वाले मन्त्रज्ञ साधक को यत्नपूर्वक इस विधि को गोपनीय रखना चाहिये। यह जागृत छिन्नमस्ता विद्या इस वाममार्ग में अत्यन्त सिद्धि प्रदान करने वाली होती है।।६७४-६७६।।

च्छिन्नमस्ताविद्यायाश्चतुर्भेदाः

अथ वक्ष्ये षोडशार्णं चतुर्भेदं मनूत्तमम्।।६७७।।
श्रींह्रींह्रूंऐं वज्रवैरोचनीये ह्रीं च ह्रूं प्रिया।
दहनस्य तिथिर्वर्णो लक्ष्मीबीजादिको धने।।६७८।।
लज्जाबीजादिको वश्ये ह्रूमाद्येनाघनाशनम्।
वाग्बीजाद्येन मोक्षः स्याच्चत्वारः प्रणवादिकाः।।६७९।।
भवन्ति षोडशार्णाश्च चतुर्मुखमुखेरिताः।
उपास्याश्चतुराम्नायैर्मुनिर्ब्रह्मा समीरितः।।६८०।।
न्यासपूजादिकं प्राग्वत्किञ्चित्काम्यमिहोच्यते।

गुरवे दक्षिणां दद्याद्वस्त्राणि विविधानि च।
धर्मार्थकाममोक्षाणां गुरुरेव समाश्रयः ॥६८१॥

अब इस मन्त्र के सोलह अक्षरों वाले चार भेदों को कहता हूँ। पन्द्रह अक्षरों का मन्त्र है—श्रीं ह्रीं ह्रूं ऐं वज्रवैरोचनीये ह्रीं ह्रूं स्वाहा। धन-प्राप्ति के लिये इस मन्त्र के आदि में लक्ष्मीबीज (श्रीं) का संयोजन करना चाहिये। वशीकरण के लिये मन्त्र के आदि में लज्जाबीज (ह्रीं) का संयोजन करना चाहिये (ह्रीं श्रीं ह्रूं ऐं वज्रवैरोचनीये ह्रीं ह्रूं स्वाहा)। पाप-नाश के लिये इसके आदि में 'ह्रूं' लगाना चाहिये (ह्रूं श्रीं ह्रीं ऐं वज्रवैरोचनीये ह्रीं ह्रूं स्वाहा)। मोक्ष-प्राप्ति के लिये इसके आदि में वाग्बीज (ऐं) सम्बद्ध करना चाहिये (ऐं श्रीं ह्रीं ह्रूं वज्रवैरोचनीये ह्रीं ह्रूं स्वाहा)। ये चारो मन्त्र आदि में प्रणव (ॐ) से समन्वित होने पर षोडशाक्षर हो जाते हैं। ब्रह्मा के मुख से निकले ये चारो मन्त्र चारो आम्नायों द्वारा उपासना करने योग्य हैं। इनके ऋषि ब्रह्मा कहे गये हैं। इन चारो मन्त्रों के न्यास-पूजन आदि पूर्ववत् ही होते हैं।

अब इनके कुछ काम्य प्रयोगों को कहता हूँ। गुरु को दक्षिणा एवं विविध प्रकार का वस्त्र प्रदान करना चाहिये; क्योंकि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का गुरु ही आश्रय होता है।।६७७-६८१।।

साधितोऽयं महामन्त्रः सर्वसिद्धिप्रदायकः।
ददात्यष्टौ महासिद्धीः किम्पुनः क्षुल्लकाः प्रियाः ॥६८२॥
भुक्तौ मुक्तौ च शान्तौ च श्वेतपुष्पं विनिर्दिशेत्।
काम्यकर्मणि सर्वत्र ध्यानं स्यात्पुष्पवर्णकम् ॥६८३॥
जाग्रच्छयान उत्तिष्ठन्भुञ्जानः संयमन्नपि।
सदाकालं जपेन्मन्त्रमापत्तस्य न विद्यते ॥६८४॥
संलिख्य स्वकरे मन्त्रं मुष्टिबन्धं समाचरेत्।
स्तम्भयेत्पशुशस्त्राणि यावन्मुष्टिं न मुञ्चति ॥६८५॥
लिखित्वा स्वकरे मन्त्रमातुरं संस्पृशञ्जपेत्।
विमुच्यते हठाद्रोगान्मुक्तरोगः सुखी भवेत् ॥६८६॥

साधना किया हुआ यह महामन्त्र समस्त सिद्धियों को देने वाला होता है। यह आठो महासिद्धियाँ प्रदान करता है; फिर अन्य क्षुद्र सिद्धियों से क्या प्रयोजन है?

भोग, मोक्ष और शान्ति के लिये श्वेत पुष्पों का निर्देश करना चाहिये। काम्य कर्मों में सर्वत्र पुष्पवर्ण के समान ध्यान करना चाहिये। जागते हुये, सोते हुये, खड़े होते हुये, भोजन करते हुये, संयमन करते हुये भी—सदैव जो इन मन्त्रों का जप करता है, उसके ऊपर किसी प्रकार की आपत्ति नहीं आती।

अपनी हथेली पर मन्त्र को लिख कर मुट्ठी बाँध लेने से साधक तबतक के लिये पाशविक शस्त्रों को स्तम्भित कर देता है, जबतक कि मुट्ठी नहीं खोलता। अपनी हथेली पर मन्त्र को लिखकर उससे आतुर का स्पर्श करते हुये मन्त्रजप करने से आतुर अकस्मात् ही रोग से मुक्त होकर सुखी हो जाता है।।६८२-६८६।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि विश्ववर्णं महामनुम्।
वज्रवैरोचनीये हूंह्रींश्रींस्वाहा ध्रुवादिकः।
ध्यानपूजादिकं प्राग्वत्किञ्चित्काम्यमुदीर्यते ।।६८७।।
शुक्लेन ध्यानमात्रेण मन्त्रमेनं जपेच्च यः।
महोरगशतैर्दष्टं मृतमुत्थापयेन्नरः ।।६८८।।
रक्तेन वशमायान्ति सर्वभूतलवासिनः।
पीतेन स्तम्भयेन्नित्यं नौकावाजिगजादिकम् ।।६८९।।
लिखित्वा स्वकरे मन्त्रं यावन्मुष्टिं न मुञ्चति।
कृतेन ध्यानमात्रेण रिपूनुच्चाटयेन्नरः।
मारयेदप्ययत्नेन कृष्णध्यानान्न संशयः ।।६९०।।

अब मैं तेरह अक्षरों वाले महामन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—ॐ वज्रवैरोचनीये हूं ह्रीं श्रीं स्वाहा। इस मन्त्र के ध्यान, पूजन आदि पूर्ववत् ही होते हैं। किञ्चित् काम्य प्रयोगों को यहाँ कहा जा रहा है।

शुक्लवर्ण वाली देवी का ध्यान करते हुये जो साधक इस मन्त्र का जप करता है, वह सैकड़ों महासर्पों के द्वारा काटने के कारण मृत मनुष्य को भी उठा देता है अर्थात् जीवित कर देता है। रक्तवर्ण की देवी का ध्यान-सहित मन्त्रजप करने से सम्पूर्ण पृथिवीवासी वशीभूत हो जाते हैं। पीले वर्ण की देवी का ध्यान करते हुये जप करने से नौका, घोड़े, हाथी आदि स्तम्भित हो जाते हैं।

इस मन्त्र को अपनी हथेली पर लिखकर मनुष्य जबतक मुट्ठी नहीं खोलता है, तबतक ध्यानमात्र से ही शत्रुओं को उच्चाटित कर देता है। इसी प्रकार कृष्णवर्ण की देवी का ध्यान करके अनायास ही शत्रुओं का वध कर देता है; इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिये।।६८७-६९०।।

तर्पणं च प्रकुर्वीत पयसा पायसेन च।
घृतेन मधुना वापि सुरया तत्र साधकः ।।६९१।।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चेति यथाक्रमम्।
तर्पणस्य विधानेन हठात्सिद्धः प्रजायते ।।६९२।।

ततो होमं प्रकुर्वीत समिद्भिः कुसुमैस्तथा ।
श्रीफलानां च होमेन तथैवोदुम्बरस्य च ॥६९३॥
सर्वसिद्धिप्रदो होमो विधातव्यः प्रयत्नतः ।
शतमष्टोत्तरं कृत्वा जुहुयात्तर्पणोत्तरम् ॥६९४॥

उक्त काम्य कर्मों में साधक को जल और दुग्ध, घृत, मधु अथवा सुरा (मद्य) से तर्पण करना चाहिये। वह तर्पण यथाक्रम ब्राह्मण साधक को जल अथवा दुग्ध से, क्षत्रिय साधक को घृत से, वैश्य साधक को मधु से और शूद्र साधक को सुरा से करना चाहिये। विधि-पूर्वक तर्पण करने से अचानक ही मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

इसके बाद साधक को समिधाओं एवं पुष्पों से हवन करना चाहिये। एक सौ आठ बार तर्पण करने के पश्चात् बेल और गूलर की समिधाओं से यत्न-पूर्वक एक सौ आठ बार हवन करने से समस्त सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।।६९१-६९४।।

पुष्पहोमविधिः

पुष्पहोमविधिं वक्ष्ये सर्वकामसमृद्धिदम् ।
नित्यमष्टोत्तरशतं मासषट्कं समाचरेत् ॥६९५॥
अथवा लक्षमात्रन्तु कुर्यात्सिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ।
आज्ययुक्तः सामिषश्च होमान्ते प्रत्यहं बलिः ॥६९६॥
श्वेताश्वमारकुसुमैर्जीवयेत्कालदष्टकम् ।
मध्वक्ततिलपुष्पैस्तु भवेत्सम्पत्तिरुत्तमा ॥६९७॥
कर्णिकारैश्च सतिलैः सहस्रैः सुन्दरीं लभेत् ।
साज्यैर्बन्धूककुसुमैरयुतैः सुभगो भवेत् ॥६९८॥
बन्धूकपुष्पैः सतिलैस्तण्डुलैश्च विमिश्रितैः ।
रक्तचन्दनरक्ताश्वमारपुष्पैर्नृपो वशः ॥६९९॥

अब सभी मनोरथों के साथ-साथ समृद्धि प्रदान करने वाले पुष्पहोमविधि को कहता हूँ। छः मास-पर्यन्त प्रतिदिन एक सौ आठ बार अथवा एक लाख की संख्या में हवन करने से निश्चित ही सिद्धि प्राप्त होती है। प्रतिदिन हवन के अन्त में आज्य-सहित मांस की बलि भी प्रदान करनी चाहिये।

श्वेत कनैल के फूलों से हवन करके काल द्वारा दष्ट (सर्पराज द्वारा काटे गये) मनुष्य को भी जीवित किया जा सकता है। मधु-सिक्त तिलपुष्पों के हवन से उत्तम सम्पत्ति की प्राप्ति होती है। तिल-सहित कर्णिकारपुष्पों के हवन से सुन्दरी स्त्री की प्राप्ति होती है। गोघृत-समन्वित बन्धूकपुष्पों के दस हजार हवन से मनुष्य सौभागयशाली

होता है। तिल एवं तण्डुल-मिश्रित बन्धूकपुष्पों के हवन से भी मनुष्य सौभाग्यशाली होता है। रक्त चन्दन-मिश्रित रक्त कनैलपुष्पों के हवन से राजा वशीभूत होता है।

तारामन्त्रसाधनविधिः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि तारामन्त्रान् कवित्वदान्।
सम्यग्गुरुमुखात्प्राप्तान् वामाचारेण साधितान्॥७००॥
यद्यदृष्टवशाल्लाभो मन्त्रस्यास्य प्रजायते।
ज्येष्ठपुत्राय दातव्यो नान्येभ्यश्च कदाचन॥७०१॥
ये मन्त्रा वाममार्गेण उपास्यन्ते तु तेऽखिलाः।
स्वपुत्रादौ प्रदातव्या दक्षिणा न कदाचन॥७०२॥
यो विप्रः स्वकुलं हित्वा दक्षिणाय प्रयच्छति।
वाममार्गोपासनन्तु तौ द्वौ लोकद्वयाच्च्युतौ॥७०३॥

तारामन्त्र-साधनविधि—अब मैं गुरुमुख से सम्यक्तया प्राप्त करके वाममार्ग से साधना करने पर कवित्व-शक्ति प्रदान करने वाले तारामन्त्रों को सम्यक् रूप से कहता हूँ। भाग्यवश यदि इस मन्त्र की प्राप्ति हो जाय तो इसे केवल अपने ज्येष्ठ पुत्र को ही प्रदान करना चाहिये; कभी भी किसी दूसरे को नहीं देना चाहिये।

जो लोग वाममार्ग से इन मन्त्रों की उपासना करते हैं, उन्हें अपने पुत्र आदि को ही इनका उपदेश करना चाहिये; दक्षिणमार्गियों को कभी भी इन मन्त्रों को नहीं प्रदान करना चाहिये। जो विप्र अपने कुल का त्याग करके वाममार्ग की उपासना को दक्षिणमार्गी के लिये प्रदान करता है, ऐसा करने वाला वह वाममार्गी विप्र तथा मन्त्र प्राप्त करने वाला दक्षिणमार्गी शिष्य—दोनों ही दोनों लोकों (इहलोक एवं परलोक) से पतित हो जाते हैं।।७००-७०३।।

पञ्चाक्षरतारामन्त्रः

ॐ मायात्रीं हुम्फडिति पञ्चवर्णो मनुर्मतः।
मुनिरक्षोभ्यसंज्ञोऽस्य बृहती छन्द ईरितम्॥७०४॥
तारा देवी ह्रीं च बीजं हुं शक्तिश्चात्र कीर्तिता।
षड्दीर्घयुग्लज्जयात्र षडङ्गविधिरीरितः॥७०५॥
न्यासषट्कं ततः कुर्यात्तारायाः सर्वसिद्धिदम्।
तत्रादौ प्रथमो न्यासः श्रीकण्ठादिः पुरोदितः॥७०६॥
मातृकाक्षरमुच्चार्य ह्रींत्रींहुंपूर्वकं वदेत्।
श्रीकण्ठादिसपत्नीकं नमोऽन्तं मातृकास्थले॥७०७॥

विन्यस्य च चतुर्थ्यन्तं न्यासोऽयं प्रथमः स्मृतः।
अस्मिन्न्यासे क्रियमाणे देवीमेवंविधा स्मरेत्॥७०८॥
शवपीठसमासीनां नीलकान्तिं त्रिलोचनाम्।
अर्धेन्दुशेखरां नानाभूषणाढ्यां चतुर्भुजाम्॥७०९॥

ॐ ह्रीं त्रीं हुं फट्—यह पाँच अक्षरों का मन्त्र कहा गया है। इस मन्त्र के ऋषि अक्षोभ्य, छन्द वृहती, देवी तारा, बीज ह्रीं एवं शक्ति हुं कही गई है। छ: दीर्घ स्वरूपों वाले लज्जाबीज (ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः) से इसका षडङ्ग-न्यास कहा गया है।

इसके बाद समस्त प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाले तारा के छ: प्रकार के न्यासों को करना चाहिये। उन छ: न्यासों में सर्वप्रथम श्रीकण्ठदिमातृका न्यास कहा गया है। एतदर्थ मातृकाक्षर का उच्चारण करने के बाद ह्रीं-त्रीं-हुंपूर्वक चतुर्थ्यन्त सपत्नीक श्रीकण्ठादि को कहने के बाद नम: का उच्चारण करके मातृकास्थान में न्यास करना चाहिये। यह प्रथम न्यास होता है। इस न्यास को करते समय शव के ऊपर विराजमान, नीले वर्ण वाली, तीन नेत्रों वाली, शीर्ष पर अर्धचन्द्र को धारण की हुई, विविध प्रकार के आभूषणों से विभूषित; चार भुजाओं वाली देवी का ध्यान करना चाहिये।।७०४-७०९।।

द्वितीयन्तु ग्रहन्यासं कुर्यात्तां समनुस्मरन्।
त्रिबीजस्वरपूर्वं तु रक्तं सूर्यं हृदि न्यसेत्॥७१०॥
तथा ह्यवर्गपूर्वं तु सोमं शुक्लं भ्रुवोर्द्वयोः।
एवं मन्त्रविधानज्ञः कवर्गाद्यञ्च मङ्गलम्॥७११॥
त्रये चापि चवर्गाद्यं च वक्षसि।
बुधं श्यामं न्यसेत्पीतं टवर्गाद्यं गले गुरुम्॥७१२॥
तवर्गाद्यं श्वेतवर्णं घण्टिकायान्तु भार्गवम्।
नीलवर्णं पवर्गाद्यं नाभिदेशे शनैश्चरम्॥७१३॥
शवर्गाद्यं धूम्रवर्णं ध्यात्वा राहुं न्यसेन्मुखे।
ळक्षाद्यं धूम्रवर्णाभं केतुं नाभौ पुनर्न्यसेत्॥७१४॥

द्वितीय ग्रहन्यास होता है। मन्त्रविधि के ज्ञाता साधक को ग्रहों का न्यास करते समय सर्वप्रथम तीनों बीजों (ह्रीं त्रीं हुं) का उच्चारण करने के बाद क्रमश: स्वर-पूर्वक रक्तवर्ण सूर्य का हृदय में, अवर्ग-पूर्वक शुक्लवर्ण सोम का दोनों भौंहों में, कवर्ग-पूर्वक रक्तवर्ण मङ्गल का त्रिनेत्र में, चवर्ग-पूर्वक श्यामवर्ण बुध का वक्ष:स्थल में, टवर्ग-पूर्वक पीतवर्ण गुरु का गले में, तवर्ग-पूर्वक श्वेतवर्ण शुक्र का घण्टिका में,

पवर्ग-पूर्वक नीलवर्ण शनि का नाभि में, शवर्ग-पूर्वक धूम्रवर्ण राहु का मुख में एवं ळ-क्षपूर्वक धूम्रवर्ण केतु का पुनः नाभि में न्यास करना चाहिये।।७१०-७१४।।

न्यासं तृतीयं वक्ष्यामि बीजत्रितयपूर्वकम्।
समानवर्णानुच्चार्य प्रागिन्द्राय नमोऽस्तु ते।।७१५।।
दीर्घस्वरसमायुक्तं चाग्नेय्यामग्नये नमः।
दक्षिणे यमाय नमः कवर्गाद्यं ललाटके।।७१६।।
चवर्गाद्यं च नैर्ऋत्यां नैर्ऋत्याय नमो मुखे।
टवर्गाद्यं गले पश्चाद्वरुणाय नमस्त्विति।।७१७।।
न्यसेद्धृदि तवर्गाद्यं वायव्यां वायवे नमः।
पवर्गाद्यं कुबेराय नमो वै दक्षिणे करे।।७१८।।
वामहस्ते यवर्गादीशाने रुद्राय हृद्भवेत्।
शवर्गाद्यूर्ध्वकामाय नमो नाभौ तु विन्यसेत्।
हुं ळक्षाद्यं पृथिव्यै हृत्पादयोरिति विन्यसेत्।।७१९।।

अब तृतीय न्यास को कहता हूँ। वह इस प्रकार किया जाता है—ह्रीं त्रीं हुं अं इं ऋं लृं एं ओं अं मूर्ध्नि पूर्वे इन्द्राय नमः, ह्रीं त्रीं हुं आं ईं ऊं ॠं ॡं ऐं औं अः मूर्ध्न्याग्नेय्यामग्नये नमः, ह्रीं त्रीं हुं कं खं गं घं ङं दक्षिणे यमाय नमः ललाटे, ह्रीं त्रीं हुं चं छं जं झं ञं नैर्ऋत्यां निर्ऋतये नमः मुखे, ह्रीं त्रीं हुं टं ठं डं ढं णं पश्चिमे वरुणाय नमः गले, ह्रीं त्रीं हुं तं थं दं धं नं वायव्यां वायवे नमः हृदये, ह्रीं त्रीं हुं पं फं बं भं मं कुबेराय नमः दक्षकरे, ह्रीं त्रीं हुं यं रं लं वं ईशाने रुद्राय नमः वामकरे, ह्रीं त्रीं हुं शं षं सं ऊर्ध्वकामाय नमः नाभौ, ह्रीं त्रीं हुं ळं क्षं पृथिव्यै नमः पादयोः।

शिवशक्त्याभिधो न्यासश्चतुर्थः कथ्यतेऽधुना।
ह्रींत्रींहुंपूर्वकः कार्यं इन्द्रियाघहरः परः।।७२०।।
ब्रह्माणं डाकिनीयुक्तं बादिसान्तार्णपूर्वकम्।
मूलाधारे न्यसेच्चैव चतुर्दलसमन्विते।।७२१।।
श्रीविष्णुं राकिनीयुक्तं वादिलान्तार्णपूर्वकम्।
स्वाधिष्ठानाभिधे चक्रे लिङ्गस्थे षड्दले न्यसेत्।।७२२।।
रुद्रन्तु लाकिनीयुक्तं डादिफान्तार्णपूर्वकम्।
न्यसेच्चक्रे दशदले नाभिस्थे मणिपूरके।।७२३।।
ईश्वरं कादिठान्तार्णपूर्वकं काकिनीयुतम्।
विन्यसेद् द्वादशदले हृदयस्थे त्वनाहते।।७२४।।

सदाशिवं शाकिनीं च षोडशस्वरसंयुताम्।
कण्ठस्थे षोडशदले विशुद्धाख्ये प्रविन्यसेत् ॥७२५॥
आज्ञाचक्रे परशिवं हाकिनीसंयुतं तथा।
हक्षार्णपूर्वं भ्रूमध्यसंस्थितेऽतिमनोहरे ॥७२६॥

अब चतुर्थ शिव-शक्ति न्यास को कहा जा रहा है। इन्द्रिय-कृत पापों का हरण करने वाले इस न्यास को त्रिबीज(ह्लीं-त्रीं-हुं)पूर्वक इस प्रकार करना चाहिये—'ह्लीं त्रीं हुं वं शं षं सं डाकिनीयुक्तब्रह्मणे नमः' कहकर डाकिनी-युक्त ब्रह्मा का चार दलों से समन्वित मूलाधारचक्र में, 'ह्लीं त्रीं हुं बं भं मं यं रं लं राकिनीयुक्तविष्णवे नमः' कहकर राकिनी-युक्त विष्णु का लिङ्ग-स्थित छः दलों वाले स्वाधिष्ठानचक्र में, 'ह्लीं त्रीं हुं डं ढ़ं णं तं थं दं धं नं पं फं लाकिनीयुक्तरुद्राय नमः' कहकर लाकिनी-युक्त रुद्र का नाभि-स्थित दस दलों वाले मणिपूरक चक्र में, 'ह्लीं त्रीं हुं कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं काकिनीयुक्तमीश्वराय नमः' कहकर काकिनी-युक्त ईश्वर का हृदय-स्थित द्वादश दल वाले अनाहत चक्र में, 'ह्लीं त्रीं हुं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं अं अः शाकिनीयुतसदाशिवाय नमः' कहकर शाकिनी-युक्त सदाशिव का कण्ठ-स्थित षोड़श दल वाले विशुद्धि चक्र में तथा 'ह्लीं त्रीं हुं हं क्षं हाकिनीयुतपरशिवाय नमः' कहकर हाकिनी-युक्त परशिव का भ्रूमध्य-स्थित आज्ञाचक्र में न्यास करना चाहिये।

वक्ष्येऽथ पञ्चमं न्यासं समस्तारिष्टनाशनम्।
अंआंकवर्गं ह्लींत्रींहुं तारायै नम उच्यते ॥७२७॥
विन्यसेद् ब्रह्मरन्ध्रेऽथ इंईं चापि चवर्गकम्।
ह्लींत्रींहुं नम उग्रायै ललाटे चापि विन्यसेत् ॥७२८॥
उंऊं टवर्गं ह्लींत्रींहुं महोग्रायै नमो भवेत्।
विन्यसेच्च भ्रुवोर्मध्ये कण्ठे ऋंॠं तवर्गकम्।
ह्लींत्रींहुं च वज्रायै नमोऽन्तं सकलेष्वपि ॥७२९॥
ऌंॡं पवर्गं ह्लींत्रींहुं नमः काल्यै हृदि न्यसेत्।
एंऐं यवर्गं ह्लींत्रींहुं सरस्वत्यै च नाभिके।
ओंऔं सवर्गं ह्लींत्रींहुं कामेश्वर्यै च लिङ्गके ॥७३०॥
अंअः ळक्षौ च ह्लींत्रींहुं चामुण्डायै नमो न्यसेत्।
मूलाधारे न्यसेत्पश्चात्पीठन्यासं समाचरेत् ॥७३१॥
आधारे कामरूपाख्यं बीजह्रस्वार्णपूर्वकम्।
हृदि जालन्धरं पीठं दीर्घपूर्वं प्रविन्यसेत् ॥७३२॥

ललाटे पूर्णगिर्याख्यं कवर्गाद्यं न्यसेत्सुधीः ।
उड्डियानं चवर्गाद्यं केशसन्धौ प्रविन्यसेत् ॥७३३॥
भ्रुवोर्वाराणसीपीठं टवर्गाद्यं समाहितम् ।
तवर्गपूर्विकां न्यस्येदवन्तीं नयनद्वये ॥७३४॥
पवर्गपूर्वकं मायापुरीपीठं मुखे न्यसेत् ।
कण्ठे तु मथुरापीठं यवर्गाद्यं प्रविन्यसेत् ॥७३५॥
नाभावयोध्यापीठन्तु शवर्गाद्यं प्रविन्यसेत् ।
कटौ काञ्चीपुरीपीठं दशमन्तु प्रविन्यसेत् ॥७३६॥
षोढा न्यासस्तु तारायाः प्रोक्तोऽभीष्टप्रदायकः ।

अब समस्त अरिष्टों का नाश करने वाले पञ्चम तारादि न्यास को कहता हूँ। वह इस प्रकार किया जाता है—ह्रीं त्रीं हुं अं आं कं खं गं घं ङं तारायै नमः ब्रह्मरन्ध्रे, ह्रीं त्रीं हुं इं ईं चं छं जं झं ञं उग्रायै नमः ललाटे, ह्रीं त्रीं हुं उं ऊं टं ठं डं ढं णं महोग्रायै नमः भ्रूमध्ये, ह्रीं त्रीं हुं ऋं ॠं तं थं दं धं नं वज्रायै नमः कण्ठे, ह्रीं त्रीं हुं लृं लॄं पं फं बं भं मं महाकाल्यै नमः हृदि, ह्रीं त्रीं हुं एं ऐं यं रं लं वं सरस्वत्यै नमः नाभौ, ह्रीं त्रीं हुं ओं औं शं षं सं हं कामेश्वर्यै नमः लिङ्गमूले, ह्रीं त्रीं हुं अं अः ळं क्षं चामुण्डायै नमः मूलाधारे।

इसके पश्चात् छठा पीठन्यास इस प्रकार करना चाहिये—ह्रीं त्रीं हुं अं इं उं ऋं लृं एं ओं अं कामरूपपीठाय नमः आधारे, ह्रीं त्रीं हुं आं ईं ऊं ॠं लॄं ऐं औं अः जालन्धरपीठाय नमः हृदि, ह्रीं त्रीं हुं कं खं गं घं ङं पूर्णगिरिपीठाय नमः ललाटे, ह्रीं त्रीं हुं चं छं जं झं ञं उड्डियानपीठाय नमः केशसन्धौ, ह्रीं त्रीं हुं टं ठं डं ढं णं वाराणसीपीठाय नमः भ्रुवोर्मध्ये, ह्रीं त्रीं हुं तं थं दं धं नं अवन्तीपीठाय नमः नेत्रयोः, ह्रीं त्रीं हुं पं फं बं भं मं मायापुरीपीठाय नमः मुखे, ह्रीं त्रीं हुं यं रं लं वं मथुरापीठाय नमः कण्ठे, ह्रीं त्रीं हुं शं षं सं हं अयोध्यापीठाय नमः नाभौ, ह्रीं त्रीं हुं ळं क्षं काञ्चीपुरीपीठाय नमः कटौ। इस प्रकार साधक के अभीष्ट को प्रदान करने वाले तारा के उपर्युक्त छः न्यासों को कहा गया।।७२७-७३६।।

महाप्रलयपानीये लसच्छ्वेताम्बुजस्थिताम् ॥७३७॥
कर्त्रीं खड्गं नीलपद्मं कपालं दधतीं करैः ।
सर्पकाञ्चीं सर्पकरां सर्पकङ्कणकुण्डलाम् ॥७३८॥
सर्पकेयूरमञ्जीरां नीलाभां रक्तलोचनाम् ।
पिङ्गोग्रैकजटां त्र्यक्षां व्याघ्रत्वक्परिधायिनीम् ॥७३९॥

दंष्ट्राकरालवदनां ललज्जिह्वां स्मिताननाम्।
नरास्थिपट्टं बध्नन्तीं भालेऽक्षोभ्यमुनीश्वराम्॥७४०॥
स्थापयन्तीं च तदधो ध्यायेच्छवहृदासनाम्।

महाप्रलय के जल में शोभायमान श्वेत कमल पर विराजमान होकर चारो हाथों में कैंची खड्ग नीलकमल एवं कपाल धारण की हुई, सर्प की करधनी पहनी हुई, हाथों में सर्प लपेटी हुई, सर्प का कङ्कण-कुण्डल एवं सर्प का ही बाजूबन्द तथा नूपुर धारण की हुई, नीलवर्णा, रक्तवर्ण तीन नेत्रों वाली, पीलापन लिये हुये भूरे रंग की भयंकर एकमात्र जटा वाली, नितम्बभाग पर व्याघ्रचर्म लपेटी हुई, भयंकर दाढ़युक्त मुख वाली, जिह्वा को बाहर निकाली हुई, किञ्चित् मुकानयुक्त मुख वाली, ललाट पर नरास्थि-पट्ट को बाँधी हुई एवं अपने नीचे ऋषिश्रेष्ठ अक्षोभ्य को बैठायी हुई शव के हृदयरूप आसन वाली देवी तारा का ध्यान करना चाहिये।।७३७-७४०।।

नानाप्रकारपूजाऽस्यास्तन्त्रे तन्त्रे प्रकाशिता॥७४१॥
जपात्सिद्धिरवश्यं स्यात्सा पूजात्र निगद्यते।
संस्कारा वैदिका यस्य तस्मै विद्या न सिध्यति॥७४२॥
लोभाद्वा मोहतो दद्याद् गृह्णीयाद्यदि वैदिक:।
उभयो: कुलनाश: स्याद्दरिद्रो जन्मजन्मनि॥७४३॥

तन्त्रशास्त्र में इस देवी तारा की पूजा के अनेक प्रकार कहे गये हैं; लेकिन इसके मन्त्रजप से अवश्य ही इसकी सिद्धि प्राप्त होती है; अत: वही पूजा यहाँ कही जा रही है। जो मनुष्य वैदिक संस्कारों से संस्कृत होता है, उसे यह विद्या (मन्त्र) सिद्ध नहीं होती।

लोभ अथवा मोहवश मन्त्रज्ञ गुरु इस विद्या को यदि किसी वैदिक को प्रदान करता है और वह वैदिक यदि ग्रहण करता है तो मन्त्रप्रदाता एवं ग्रहीता—दोनों के ही कुल का विनाश हो जाता है और वे दोनों ही प्रत्येक जन्म में दरिद्र होते हैं।।७४१-७४३।।

शक्रे तु वैभवोन्मत्ते ब्रह्मविष्णुमहेश्वरै:।
साधिता वाममार्गेण देवानां विजयाय च॥७४४॥
जनयित्वा वारणादीन् मानयित्वा सुरेश्वरम्।
स्वविक्रमं ख्यापयित्वा शक्रो देवपति: कृत:॥७४५॥
उत्कर्षकारिणी तस्माद्वाममार्गेण साधिता।

वैभव के कारण इन्द्र के उन्मत्त हो जाने पर देवों की विजय-प्राप्ति के लिये ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर के द्वारा वाममार्ग से इस विद्या की साधना करके विविध रक्षाकवचों

को उत्पन्न करके देवेश्वर को सम्मान प्रदान करते हुये अपने-अपने पराक्रम को स्थापित करके इन्द्र को देवताओं का अधिपति बनाया गया था। इसलिये वाममार्ग से साधित किये जाने पर यह विद्या उत्कर्ष प्रदान करने वाली होती है।।७४४-७४५।।

कृत्वा तु तान्त्रिकस्नानं पूजार्थं जलमाहरेत् ।।७४६।।
तारं वज्रोदके हुं फट् सप्तार्णोऽयं जलग्रहे।
उपानत्पादुके त्यक्त्वा पूजको जलमाहरेत् ।।७४७।।
त्रिधा चाचमनं पश्चादनेन मनुना चरेत्।
तारं मायां सुविशुद्धधर्मसर्वपदं वदेत् ।।७४८।।
पापानि शाम्याशेषेति विकल्पानयनेति च।
यः स्वाहेति च षड्विंशदर्ण आचमने मनुः ।।७४९।।
ततः कुर्याच्छिखाबन्धं मन्त्रेणानेन ॐमणि।
धरि वज्रिणि शिखरिणि च सर्ववशङ्करि ।।७५०।।
णि हुंफट् वह्निजायान्तस्त्रयोविंशतिवर्णकः।
भूमिशुद्धिं नवार्णेन ततः कुर्यात्तु साधकः ।।७५१।।
ॐ रक्ष रक्ष हुं चास्त्रं स्वाहा मन्त्रो नवाक्षरः।
त्रयोदशार्णमन्त्रेण विघ्नानुत्सारयेत्ततः ।।७५२।।
ॐ (ह्रीं?) सर्वविघ्नानुत्सारय हुं फट् ज्वलनप्रिया ।।७५३।।
मायाबीजं जपापुष्पनिभं नाभौ विचिन्तयेत्।
तदुत्थेनाग्निना देहं दहेत्सार्द्धं स्वपाप्मना ।।७५४।।
त्रीं बीजन्तु सुवर्णाभं चिन्तयेद्धृदि मन्त्रवित्।
पवनेन तदुत्थेन पापभस्म क्षिपेद् भुवि ।।७५५।।
हुं बीजमिन्दुकुन्दाभं भाले ध्यायेच्च भावतः।
अनया भूतशुद्ध्या तु देवीसादृश्यमाप्नुयात् ।।७५६।।

पूजक को सर्वप्रथम तान्त्रिक स्नान करने के पश्चात् पूजा के लिये जूता-खड़ाऊँ का त्याग करके अर्थात् नग्न पैर ही जाकर मन्त्रोच्चारण-पूर्वक जल लाना चाहिये। जलाहरण करने का सात अक्षरों का मन्त्र है—ॐ वज्रोदके हुं फट्। तत्पश्चात् छब्बीस अक्षरों वाले 'ॐ ह्रीं सुविशुद्धधर्मसर्वपापानि शाम्याशेषविकल्पानयनाय स्वाहा' इस आचमनमन्त्र से तीन बार आचमन करना चाहिये। तदनन्तर तेईस अक्षरों वाले शिखाबन्धन मन्त्र 'ॐ मणिधरि वज्रिणि शिखरिणि सर्ववशङ्करिणि हुं फट् स्वाहा' से शिखा बाँधनी चाहिये। तत्पश्चात् साधक को 'ॐ रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा' इस

नवार्णमन्त्र से भूमिशुद्धि करने के बाद 'ॐ (ह्रीं) सर्वविघ्नानुत्सारय हुं फट् स्वाहा' इस त्रयोदशाक्षर मन्त्र से विघ्नों का उत्सारण करना चाहिये।

तदनन्तर जपापुष्प-सदृश मायाबीज (ह्रीं) का अपनी नाभि में चिन्तन करते हुये उससे निकली अग्नि के द्वारा अपने पापपूर्ण शरीर का दहन करना चाहिये। इसके बाद मन्त्रवित् साधक को सुवर्ण-सदृश कान्तिमान 'त्रीं' बीज का हृदय में चिन्तन करते हुये उससे उठे वायु से पापभस्म को पृथ्वी पर फेंक देना चाहिये। अनन्तर चन्द्र और कुन्दपुष्प-सदृश आभा वाले 'हुं' बीज का ललाट में चिन्तन करते हुये भूतशुद्धि करनी चाहिये। इस भूतशुद्धि से साधक देवी का सादृश्य प्राप्त कर लेता है।।७४६-७५६।।

ततस्तु देव्याः पूजार्थं मन्त्रयेत्काश्यपी ध्रुवम्।
पवित्रवज्रभूमे हुं स्वाहा मन्त्रो भवाक्षरः ॥७५७॥
द्वादशार्णेन मन्त्रेण भूमौ कुर्याच्च मण्डलम्।
आसुरेखे वज्ररेखे हुं स्वाहा प्रणवादिकः ॥७५८॥
चतुर्दशार्णमनुना कुसुमानि सुशोधयेत्।
यथागताभिषेकेति सामग्री मे पदं वदेत्।
तारादिहुँफट्स्वाहान्तो नृपवर्णो मनुर्मतः ॥७५९॥
ततः संशोधयेच्चित्तं पञ्चार्णेन सुसाधकः।
ॐआंह्रीं वह्निगृहिणी पञ्चार्णश्चित्तशोधने ॥७६०॥

तदनन्तर देवी के पूजन के लिये 'ॐ पवित्रवज्रभूमे हुं फट् स्वाहा' इस द्वादशाक्षर मन्त्र से पृथिवी को अभिमन्त्रित करके 'ॐ आसुरेखे वज्ररेखे हुं स्वाहा' इस द्वादशाक्षर मन्त्र से भूतल पर मण्डल का निर्माण करना चाहिये। फिर 'ॐ यथाभिषेकसामग्री मे हुं फट् स्वाहा'—इस चतुर्दशाक्षर मन्त्र से पुष्पों का शोधन करना चाहिये। इसके बाद श्रेष्ठ साधक को पाँच अक्षरों वाले चित्तशोधन मन्त्र 'ॐ आं ह्रीं स्वाहा' से अपने चित्त का संशोधन करना चाहिये।।७५७-७६०।।

अथार्घ्यस्थापनार्थन्तु लंवं चोक्त्वा प्रमार्जयेत्।
भूमिं पूर्वोक्तमन्त्रेण मण्डलस्य तु मण्डलम् ॥७६१॥
कुर्याद्वृत्तं त्रिकोणं च भूपुरन्तस्य बाह्यतः।
कुर्यात्तत्राधारशक्तिं कूर्मं शेषं च संयजेत् ॥७६२॥
आधारं स्थापयेत्तत्र ॐ ह्रीं फडिति मन्त्रतः।
आधारं पूजयेत्तत्र वं वह्निमण्डलाय च ॥७६३॥

नमोऽन्तेन नवार्णेन ततो नरकपालकम्।
हुंफट्मन्त्रेण संक्षाल्य स्थींबीजेन निवेशयेत् ॥७६४॥
ततोऽर्चयेन्नृकपालं तज्जपेन्मन्त्रचतुष्टयम्।
कालीकपालाय नमो ह्रांह्रींह्रूंपूर्वकं वदेत्।
एकादशाक्षरो मन्त्रस्तेन पूजादिकं मतम् ॥७६५॥
स्त्रांस्त्रींस्त्रूंतारिणीत्युक्त्वा कपालाय नमोऽन्तकः।
द्वादशार्णेनात्र भवेत्कपालार्चा द्वितीयिका ॥७६६॥
ह्रांह्रींह्रूं प्रोच्य नीलकपालाय नम इत्ययम्।
एकादशार्णेनेनोक्त्वा कपालार्च्चा तृतीयिका ॥७६७॥
मायां स्त्रीं हुं स्वर्गकपालाय सर्वापदं वदेत्।
ततो धाराय सर्वाय तथा सर्वोद्भवाय च ॥७६८॥
सर्वशुद्धिमयायेति सर्वासुररुधीति च।
रारुणाय च शुभ्रायेतिसुराभाजनाय च ॥७६९॥
देवीकपालाय नमश्चतुर्थो मन्त्र ईरितः।
षट्पञ्चाशत्कवर्णोऽयं कपालस्य तु पूजने ॥७७०॥
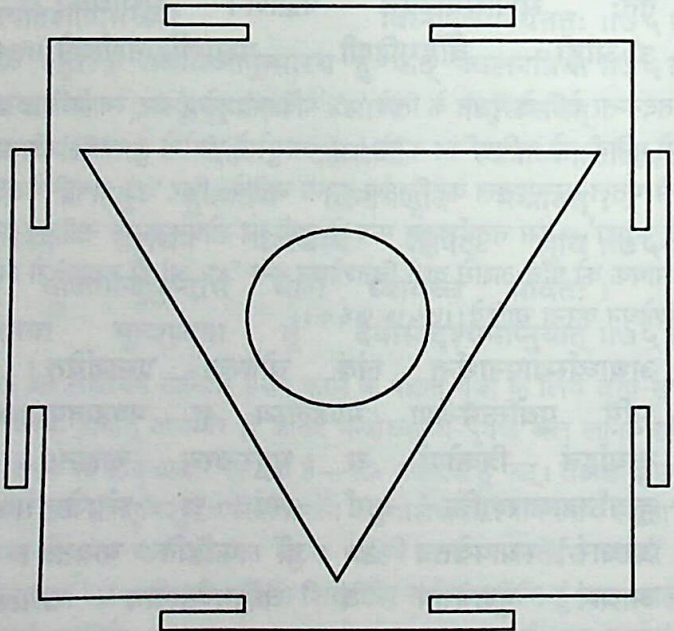
अब इसके बाद अर्घ्य-स्थापन के लिये 'लं वं' का उच्चारण करके भूमि का मार्जन करके 'ॐ आसुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से पूर्वमण्डल के ऊपर पुन: एक मण्डल बनाकर उस पर वृत्त एवं त्रिकोण बनाने के बाद भूपुर का निर्माण करके उस पर आधारशक्ति, कूर्म एवं शेष का सम्यक् रूप से यजन करना चाहिये।

फिर उस मण्डल पर 'ॐ ह्रीं फट्' मन्त्र से आधार का स्थापन करने के पश्चात् 'ॐ वं वह्निमण्डलाय नम:' इस नवाक्षर मन्त्र से वहीं पर आधार का पूजन करना चाहिये। इसके बाद नरकपाल को 'हुं फट्' मन्त्र से प्रक्षालित करके 'स्थीं' बीज का उच्चारण करते हुये उस आधार पर स्थापित करके एकादशाक्षर मन्त्र 'ह्रां ह्रीं ह्रूं कालीक-पालाय नम:', द्वादशाक्षर मन्त्र 'स्त्रां स्त्रीं स्त्रूं तारिणीकपालाय नम:', एकादशाक्षर मन्त्र 'ह्रां ह्रीं ह्रूं नीलाकपालाय नम:' एवं षट्पञ्चाशदक्षर मन्त्र 'ह्रीं स्त्रीं ह्रुं स्वर्गकपालाय सर्वाधाराय सर्वाय सर्वोद्भवाय सर्वशुद्धिमयाय सर्वासुररुधिरारुणाय शुभ्राय सुराभाजनाय देवीकपालाय नम:' इन चार मन्त्रों से क्रमश: उस नरकपाल का पूजन करना चाहिये।

ततस्तस्मिन् कपाले तु पूजयेदर्कमण्डलम्।
ॐ सूर्यमण्डलायेति नमोन्तोऽयं नवाक्षर: ॥७७१॥
सूर्यमण्डलपूजायां नृकपाले मनुर्मत:।
मूलमन्त्रं पठंस्तस्मिन् सुधाबुद्ध्या सुरां क्षिपेत् ॥७७२॥
गन्धपुष्पाक्षतान् क्षिप्त्वा त्रिखण्डाख्यां प्रदर्शयेत्।
मुद्रां सा तु करौ व्यस्तावङ्गुष्ठौ कारयेत्समौ ॥७७३॥
अनामान्तर्गते कृत्वा तर्ज्जन्यौ कुटिलाकृती।
कनिष्ठिके निजस्थाने त्रिखण्डाह्वानकर्मणि ॥७७४॥
ततस्तस्यां सुरायान्तु पूजयेच्चन्द्रमण्डलम्।

तदनन्तर उस नरकपाल में 'ॐ सूर्यमण्डलाय नम:' इस नवाक्षर मन्त्र से सूर्यमण्डल का पूजन के करने उपरान्त मूल मन्त्र 'ॐ ह्रीं श्रीं ह्रुं फट्' का उच्चारण करते हुये उस पर अमृतबुद्धि से सुरा का प्रक्षेप करना चाहिये। इसके बाद गन्ध, पुष्प एवं अक्षत का प्रक्षेप करके त्रिखण्डा मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिये। हथेलियों को आपस में सटाकर दोनों अंगूठों को बराबर करने के बाद दोनों अनामिकाओं को मोड़कर करसम्पुट के अन्दर करने के पश्चात् दोनों मध्यमाओं को बराबर करके मिलाने के साथ-साथ कनिष्ठाओं को भी बराबर करके सटाने से त्रिखण्डा मुद्रा बन जाती है। इसका आवाहन कर्म में प्रयोग किया जाता है। तत्पश्चात् उस सुरा में 'ॐ सोममण्डलाय नम:' इस चन्द्रपूजन मन्त्र से चन्द्रमण्डल का पूजन करना चाहिये।।७७१-७७४।।

एकादशार्णेन ततः शङ्खतोयन्तु मन्त्रयेत् ।।७७५।।
ह्रींश्रींह्रौमों समुच्चार्य ह्रींत्रींहुंफट् समुच्चरेत् ।
ह्सौर्हुमिति वागाद्यो मन्त्र एकादशाक्षरः ।।७७६।।
ह्रींबीजेन ततो मद्यं किञ्चिच्छङ्खाम्बुना क्षिपेत् ।
शङ्खमुद्रां योनिमुद्रां शङ्खतोयाय दर्शयेत् ।।७७७।।

इसके बाद 'ऐं ह्रीं श्रीं ह्रौं ॐ ह्रीं त्रीं हुं फट् ह्सौः हुं' इस एकादशाक्षर मन्त्र से शंखजल को अभिमन्त्रित करना चाहिये। तदनन्तर ह्रीं बीज का उच्चारण करते हुये मद्य की कुछ बूंदों को शङ्खजल में डालने के पश्चात् उस शंखजल के लिये शंखमुद्रा एवं योनिमुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिये।।७७५-७७७।।

तत्र वृत्ताष्टषट्कोणं ध्यात्वा देवीं विचिन्तयेत् ।
पूर्वोक्तां पूजयित्वैनां मूलेनाथ प्रतर्पयेत् ।।७७८।।
तर्जनी मध्यमानामाकनिष्ठाभिर्महेश्वरीम् ।
साङ्गुष्ठाभिश्चतुर्वारं महाशङ्खस्थिते जले ।।७७९।।
पञ्चाक्षराणुना पश्चात् सन्तर्प्यानन्दभैरवम् ।
ॐह्रौंह्सौं च नमोऽन्तोऽयं मन्त्रो भैरवपूजने ।।७८०।।
ततस्तेनार्घ्यतोयेन प्रोक्ष्य पूजनसाधनम् ।
योनिमुद्रां प्रदर्श्याथ प्रणमेद्भवतारिणीम् ।।७८१।।

फिर वहीं पर वृत्त, अष्टकोण एवं षट्कोण का ध्यान करते हुये पूर्वोक्त देवी का चिन्तन करते हुये पूजन करके मूल मन्त्र से तर्जनी, मध्यमा, अनामिका, कनिष्ठा के साथ अंगूठा लगाकर महाशंख-स्थित जल से चार बार महेश्वरी का तर्पण करना चाहिये। तत्पश्चात् 'ॐ ह्रौं ह्सौं नमः' इस भैरवपूजन मन्त्र से आनन्दभैरव का तर्पण करके उस अर्घ्यजल से पूजन-सामग्री का प्रोक्षण करने के उपरान्त योनिमुद्रा दिखाकर देवी भवतारिणी को प्रणाम करना चाहिये।।७७८-७८१।।

ततस्तां पूजयेत्पीठे पद्मे षट्कोणकर्णिके ।
धरागृहावृते पीठमादावर्च्य सशक्तिकम् ।।७८२।।
ऐंक्लौं सरस्वतीत्युक्त्वा योगपीठात्मने नमः ।
चतुर्दशाक्षरो मन्त्रः प्रोक्तः पीठस्य पूजने ।।७८३।।
मेधा प्रज्ञा प्रभा विद्या धीधृतिस्मृतिबुद्धयः ।
विद्येश्वरीति सम्प्रोक्ता पीठस्य नव शक्तयः ।।७८४।।

महीगृहचतुर्दिक्षु गणेशं बटुकन्तथा।
क्षेत्रपालं योगिनीं च ध्यात्वा सम्यक्प्रपूजयेत् ॥७८५॥
पाशाङ्कुशौ त्रिशूलं च कपालं दधतं करैः।
अलङ्कारचयोपेतं गणेशं प्राक्प्रपूजयेत् ॥७८६॥
कपालशूले हस्ताभ्यां दधतं सर्पभूषणम्।
श्वयूथवेष्टितं रम्यं बटुकं दक्षिणेऽर्चयेत् ॥७८७॥
डमर्वसित्रिशूलांश्च कपालं दधतं करैः।
कृष्णं दिगम्बरं क्रूरं क्षेत्रपं पश्चिमे यजेत् ॥७८८॥
डमरुं पाशलिङ्गे च कपालं दधतीं करैः।
रक्तमाल्यां रक्तवस्त्रां योगिनीमुत्तरे यजेत् ॥७८९॥
ततः सम्पूजयेद्देव्या मस्तकेऽक्षोभ्यसंज्ञकम्।
मुनिं द्वादशवर्णेन मनुना स निगद्यते ॥७९०॥
अक्षोभ्य वज्रपुष्पं च प्रतीच्छानलवल्लभा।

तदनन्तर भूपुर से आवृत अष्टदल एवं षट्कोणकर्णिका से युक्त पीठ पर देवी का पूजन करना चाहिये। सर्वप्रथम शक्ति-सहित पीठ का अर्चन करना चाहिये। पीठपूजन-हेतु चौदह अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—ऐं क्रौं सरस्वतीयोगपीठात्मने नमः। मेधा, प्रज्ञा, प्रभा, विद्या, धी, धृति, स्मृति, बुद्धि और विद्येश्वरी—ये नव पीठ की शक्तियाँ कही गई हैं।

तदनन्तर भूपुर की चारो दिशाओं में गणेश, बटुक, क्षेत्रपाल एवं योगिनी का ध्यान करते हुये सम्यक् रूप से पूजन करना चाहिये। हाथों में पाश, अंकुश, त्रिशूल एवं कपाल धारग किये हुये तथा बहुविध अलंकारों से समन्वित गणेश का पूजन पूर्व दिशा में करना चाहिये। हाथ में कपाल एवं शूल लिये हुये तथा कुक्कुरों के झुण्ड़ से चारो आर से घिरे सर्पाभूषणधारी मनोहर बटुक का दक्षिण दिशा में अर्चन करना चाहिये। हाथों में डमरु, तलवार, त्रिशूल एवं कपाल धारण किये हुये, कृष्णवर्ण वाले, निर्वस्त्र एवं क्रूर क्षेत्रपाल का पूजन पश्चिम दिशा में करना चाहिये। हाथों में ड़मरु, पाश, शिवलिङ्ग एवं कपाल धारण की हुई तथा रक्त माला एवं रक्त वस्त्र धारण की हुई योगिनी का पूजन उत्तर दिशा में करना चाहिये। इसके बाद देवी के मस्तक पर अक्षोभ्य-नामक मुनि का पूजन मूलोक्त 'अक्षोभ्य वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा' इस बारह अक्षरों वाले मन्त्र से करना चाहिये।।७८२-७९०।।

अथ सम्पूजयेत्कोणषट्कदेव्या षडङ्गकम् ॥७९१॥

ततश्चाष्टदलाद्दिक्षु यजेद्वैरोचनामितौ ।
पद्मनाभं शङ्खपाण्डुरं पूर्वादौ समर्चयेत् ॥७९२॥
आग्नेयादिकपत्रेषु लामकां मामकान्तथा ।
पाण्डुरां तारकां चापि भूगृहद्वारतोऽर्चयेत् ॥७९३॥
प्रागादिषु क्रमेणैव पद्मान्तकयमान्तकौ ।
विघ्नान्तकं नरान्तं च वक्ष्यन्ते मनवोऽर्चने ॥७९४॥
आदौ प्रणवमुच्चार्य नामबीजं समुच्चरेत् ।
सम्बुद्ध्यन्तं च तन्नाम वज्रपुष्पम्प्रतीच्छ च ॥७९५॥
स्वाहान्तो मनुराख्यातो द्वादशानामयं क्रमः ।
शक्रादींश्चापि वज्रादीन् पूजयेत्तदनन्तरम् ॥७९६॥
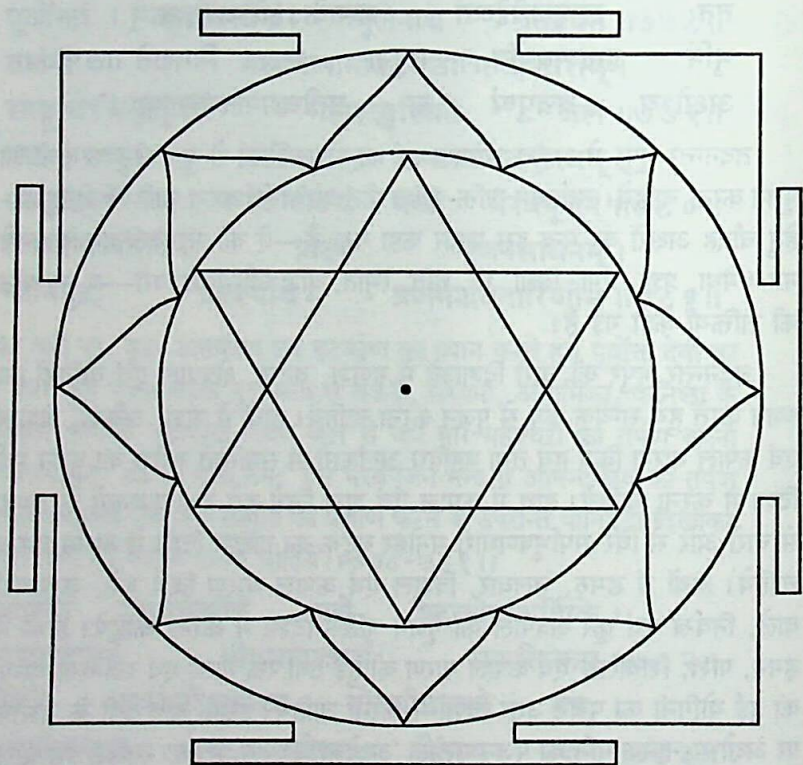
इसके पश्चात् षट्कोण में देवी के षडङ्गों का पूजन करने के बाद अष्टदल की पूर्वादि दिशाओं में क्रमशः वैरोचन, अमित, पद्मनाभ एवं शङ्खपाण्डुर का पूजन इन

मन्त्रों से करना चाहिये—ॐ वैं वैरोचनवज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा, ॐ अं अमितवज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा, ॐ पं पद्मनाभवज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा एवं ॐ शं शङ्खपाण्डुरवज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा।

इसके बाद अष्टदल के आग्नेयादि कोणों वाले पत्रों में क्रमशः लामका, मामका, पाण्डुरा एवं तारका का पूजन इन मन्त्रों से करना चाहिये—ॐ लां लामके वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा, ॐ मां मामके वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा, ॐ पां पाण्डुरे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा एवं ॐ तां तारके वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा।

इसके बाद भूपुर के चार द्वारों पर पूर्वादिक्रम से पद्मान्तक, यमान्तक, विघ्नान्तक एवं नरान्तक का अर्चन उनके नाममन्त्रों से करना चाहिये। वे मन्त्र क्रमशः इस प्रकार हैं—ॐ पं पद्मान्तक वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा, ॐ यं यमान्तक वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा, ॐ विं विघ्नान्तक वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा, ॐ नं नरान्तक वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा।

तत्पश्चात् इन्द्रादि लोकपालों एवं उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिये।

ततश्च नित्यपूजान्तेन्वहं देव्यै बलिं हरेत्।
मद्याम्बुमीनपिशितमुद्रापिष्टं भवेद्यथा ॥७९७॥
तृप्तिः स्वस्य तु तन्मानन्तत्र मन्त्रो निगद्यते।
श्रीमदेकजटे नीलसरस्वति महोग्र च ॥७९८॥
तारे देवि खखेत्युक्त्वा सर्वभूतपिशाचराक्षसान्।
ग्रस ग्रस मम जाड्यं छेदय छेदय ॥७९९॥
श्रीं ह्रीं फड् वह्निजायान्तस्तारमायादिको मनुः।
भवेद् द्विपञ्चाशदर्णः पूजैवेष्टार्णतामियात् ॥८००॥

तदनन्तर प्रतिदिन नित्यपूजा के अन्त में देवी को मद्यबूँद, मछली, मांस, उड़द से बने बड़े से बलि प्रदान करनी चाहिये। इस बल्य द्रव्य का परिमाण उतना होना चाहिये, जितने से स्वयं की तृप्ति हो सके। बावन अक्षरों का बलिमन्त्र इस प्रकार कहा गया है—ॐ ह्रीं श्रीमदेकजटे नीलसरस्वति महोग्रतारे देवि खखसर्वभूतपिशाचराक्षसान् ग्रस ग्रस मम जाड्यं छेदय छेदय श्रीं ह्रीं फट् स्वाहा। इस प्रकार देवी की पूजा पूर्ण हो जाती है।।७९७-८००।।

रतं कुर्वन्नदन्भक्ष्यमनेकन्दधि मध्वपि।
मद्यं मांसं च ताम्बूलञ्जपेल्लक्षचतुष्टयम् ॥८०१॥

दशांशं जुहुयाद्रक्तपद्मैः क्षीराज्यलोलितैः ।
आदौ यन्त्रं पूजयित्वा जपस्थाने जपञ्चरेत् ॥८०२॥
नारीं पश्यन् स्पृशन् गच्छन् महानिशि बलिं हरेत् ।
न कार्यः सुभ्रुवां द्वेषो यत्नतः परिपूजयेत् ॥८०३॥
जपे न कालनियमो न स्थितौ सर्वदा जपेत् ।
श्मशाने शून्यसदने देवागारेऽथ निर्जने ॥८०४॥
पर्वते वनमध्ये वा शवमारुह्य मन्त्रवित् ।
समरे शत्रुनिहतं यथा षण्मासिकं शिशुम् ॥८०५॥
विद्यां संसाधयेच्छीघ्रं साधितैवम्प्रसिद्ध्यति ।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगान् कर्त्तुमर्हति ॥८०६॥

सम्भोग करते हुये, दधि-मधु-मद्य-मांस-ताम्बूल आदि अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थों का भक्षण करते हुये मन्त्र का चार लाख जप करने के पश्चात् दुग्ध एवं गोघृत से सिक्त रक्तकमलों से कृत जप का दशांश (चालीस हजार) हवन करना चाहिये।

सर्वप्रथम यन्त्रपूजन करने के उपरान्त जपस्थान में स्त्री को देखते हुये, उसका स्पर्श करते हुये, उसके साथ चलते हुये जप करना चाहिये। उसके बाद अर्धरात्रि में बलि प्रदान करना चाहिये। रमणियों से कभी भी द्वेष नहीं करना चाहिये; अपितु यत्नपूर्वक उनका पूजन करना चाहिये।

इस मन्त्र के जप में न तो किसी प्रकार का कालनियम है और न ही किसी विशेष स्थिति का विधान है। श्मशान में, शून्य घर में, देवालय में, निर्जन स्थान पर, पर्वत पर, जंगल के मध्य में अथवा शव पर आरूढ़ होकर—किसी भी परिस्थिति में हो, मन्त्रज्ञ साधक को हर समय जप करना चाहिये। इस मन्त्र के प्रभाव से साधक शत्रु का युद्ध में उसी प्रकार वध कर देता है, जैसे कि वह छः मास का बालक हो। इस विद्या का शीघ्र साधन करना चाहिये; क्योंकि यह उक्त प्रकार से साधना करते ही सिद्ध हो जाती है। इस प्रकार सिद्ध किये गये मन्त्र से मन्त्रज्ञ साधक प्रयोगों को करने का अधिकारी हो जाता है।।८०१-८०६।।

जातमात्रस्य बालस्य दिवसत्रितयादधः ।
जिह्वायां स लिखेन्मन्त्रं मध्वाज्याभ्यां शलाकया ॥८०७॥
सुवर्णकृतया यद्वा मन्त्री धवलदूर्वया ।
गतेऽष्टमेऽब्दे बालोऽसौ जायते कविराड् ध्रुवम् ॥८०८॥
सूर्यग्रहे भवेत्काष्ठं पद्मयुक्तं सरोवरे ।
तरच्च जलमध्ये तत्समानीय तटे पुनः ॥८०९॥

दन्तैर्धृत्वा ततः कुर्याल्लेखनीं द्वादशाङ्गुलाम्।
मधुतैलसुराभिश्च संलिखेत्पद्मिनीदले ॥८१०॥
मूलमन्त्रं मातृकार्णैर्मन्त्री सम्यक्प्रवेष्टयेत्।
निखाय तद्दलं कुण्डे चतुरस्रे समेखले ॥८११॥
संस्थाप्य पावकन्तत्र हुनेन्मूलाणुना ततः।
गोदुग्धमदिराक्तन्तु रक्तपद्मसहस्त्रकम् ॥
होमान्ते तेन मनुना पूर्वद्रव्यैर्बलिं हरेत् ॥८१२॥
पद्मे पद्मे महापद्मे पद्मावति च इत्यपि।
स्वाहान्तः प्रणवादिश्च मन्त्रोऽयं षोडशाक्षरः ॥८१३॥
ततो निशीथेऽपि बलिं पूर्वोक्तमनुना हरेत्।
एवंकृते पण्डितानामजेयः कविराड् भवेत्।
निवासो भारतीलक्ष्म्योर्जनतारञ्जनक्षमः ॥८१४॥

वह मन्त्रज्ञ साधक यदि सद्यः उत्पन्न बालक की जिह्वा पर उसके जन्म से तीन दिनों के भीतर सुवर्णशलाका अथवा श्वेत दूर्वा की सहायता से मधु एवं गोघृत से मन्त्र को लिखता है तो आठ वर्ष का होने पर वह बालक निश्चित ही श्रेष्ठ कवि हो जाता है।

मन्त्रज्ञ साधक द्वारा सरोवर में उत्पन्न होकर जलमध्य में तैरते कमल-युक्त कमलनाल को सूर्यग्रहण के समय जल की सहायता से सरोवरतट पर लाकर उसे अपने दाँतों की सहायता से पकड़कर बाहर निकालने के बाद बारह अंगुल की लेखनी बनाकर मधु, तैल एवं सुरा के द्वारा उस कमल के पत्ते पर मातृकाक्षरों से वेष्टित मूल मन्त्र को सम्यक् रूप से लिखकर उस कमलपत्र को मेखलायुक्त चतुरस्र (चौकोर) कुण्ड में मिट्टी के नीचे दबाकर वहीं पर अग्नि का स्थापन करने के पश्चात् गोदुग्ध एवं मदिरा से सिक्त एक हजार रक्तकमलों द्वारा मूल मन्त्र से हवन करने के उपरान्त 'ॐ पद्मे पद्मे महापद्मे पद्मावति च स्वाहा' इस षोडशाक्षर बलिमन्त्र से पूर्वोक्त द्रव्यों से बलि प्रदान करने के बाद रात्रि में भी पुनः उसी षोडशाक्षर बलिमन्त्र से बलि प्रदान करने से वह साधक पण्डितों से अजेय महाकवि होकर सरस्वती एवं लक्ष्मी का आगार-स्वरूप हो जाता है तथा लोगों को आनन्दित करने में समर्थ होता है।

गोरोचनामनेनैव मनुना तु शतञ्जपेत्।
ललाटे तिलकं कृत्वा यं पश्येत्स तु दासवत् ॥८१५॥
श्मशानाङ्गारमाहृत्य शर्वर्यां भौमवासरे।
कृष्णाम्बरेण संवेष्ट्य निबद्धं रक्ततन्तुभिः ॥८१६॥

शताभिजप्तं मूलेन निक्षिपेद्वैरिवेश्मनि।
उच्चाटयति सप्ताहात्सकुटुम्बं न संशयः ॥८१७॥
क्षाराढ्यया निशामन्त्रं लिखित्वा पौरुषेऽस्थिनि।
रविवारे निशीथिन्यां सहस्रमभिमन्त्रयेत् ॥८१८॥
तत्क्षिप्तं शत्रुभवने मण्डलभ्रंशकं भवेत्।
क्षेत्रे क्षिप्तं सस्यहान्यै जवहृत्तुरगालये ॥८१९॥

इस मन्त्र के एक सौ जप से अभिमन्त्रित गोरोचन से ललाट में तिलक लगाकर साधक जिसे जिसे देखता है, वह उसके दास के समान हो जाता है।

मंगलवार की रात्रि को श्मशान के अंगार (ठण्ढ़ा कोयला) को लाकर उसे काले कपड़े से लपेटकर उस पोटली को लाल धागे से बाँधने के बाद मूल मन्त्र के एक सौ जप से अभिमन्त्रित करके शत्रु के घर में फेंक देने से एक सप्ताह के अन्दर उस शत्रु का सपरिवार उच्चाटन हो जाता है; इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिये।

रविवार की अर्धरात्रि में क्षार (जल) से समन्वित हल्दीचूर्ण से पुरुष की हड्डी पर मन्त्र को लिखकर उसे मन्त्र के एक हजार जप से अभिमन्त्रित करके शत्रु के घर में फेंक देने से चालीस दिनों के भीतर उस घर का नाश हो जाता है, धान के खेत में फेंक देने से धान्य का नाश हो जाता है एवं घोड़ों के घुड़साल में फेंक देने से उसमें रहने वाले घोड़ों की गति समाप्त हो जाती है।।८१५-८१९।।

विविधतारामन्त्राः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि दैत्यानां वरसिद्धये।
ब्रह्मणोपासितां तारां बल्यादिभिरुपासिताम्।
ॐ त्रीं ह्रीं हूं समुच्चार्य ह्रींहुंफट् सप्तवर्णकः ॥८२०॥
मुनिर्ब्रह्मा च गायत्री छन्दस्तारा च देवता।
न्यासांस्तु पूर्ववत्कुर्याद्ध्यानमस्या निरूप्यते।
श्वेताम्बरां चन्द्रकान्तिचन्द्रार्धकृतशेखराम् ॥८२१॥
कर्तरीं च कपालं च कराभ्यां दधतीं भजे।
नानालङ्कारशोभाढ्यां त्रीक्षणां पद्मसंस्थिताम् ॥८२२॥
जपपूजादिकं त्वस्याः सर्वं पूर्ववदाचरेत्।
मधुपुष्करपत्रान्नहोमाद्विद्यानिधिर्भवेत् ॥८२३॥
रक्तां वश्ये स्वर्णनिभां स्तम्भने मारणेऽसिताम्।
उच्चाटने धूम्रवर्णां शान्तौ श्वेतां विचिन्तयेत् ॥८२४॥

बलि आदि द्वारा उपासित तारामन्त्र—अब मैं दैत्यों को वर की सिद्धि के लिये बलि आदि द्वारा उपासित ब्रह्मणोपासित तारामन्त्र को कहता हूँ। सात अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ त्रीं ह्रीं ह्रूं ह्रीं हुं फट्। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री एवं देवी तारा कही गई हैं। इसका न्यास पूर्ववत् किया जाता है।

अब इसका ध्यान कहा जा रहा है। श्वेत वस्त्र धारण की हुई देवी चन्द्रमा के समान कान्तिमान हैं, उनके शीर्षभाग पर अर्धचन्द्र सुशोभित है, वे अपने दोनों हाथों में कर्त्तरी (कैंची) एवं कपाल धारण की हुई हैं। अनेक अलंकारों की शोभा से सम्पन्न एवं कमल पर विराजमान तीन नेत्रों वाली उस देवी का मैं स्मरण करता हूँ।

इसका जप-पूजन आदि सबकुछ पूर्ववत् करना चाहिये। मधु, पुष्कर(नीलकमल)पत्र एवं अन्न के हवन से साधक विद्या का आगार हो जाता है। वशीकरण-हेतु रक्त वर्ण वाली, स्तम्भन-हेतु स्वर्ण-सदृश, मारण-हेतु कृष्ण वर्ण वाली, उच्चाटन-हेतु धूम्र वर्ण वाली एवं शान्ति-हेतु श्वेत वर्ण वाली देवी का ध्यान करना चाहिये।।८२०-८२४।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि तारकस्य वराय तु।
ब्रह्मणोपासितां तारां द्वादशार्णां सुदुर्लभाम् ॥८२५॥
वाचं लज्जां रमां कामं ह्सौर्हुं चोग्रमुच्चरेत्।
तारे हुंफडिति प्रोक्तो मन्त्रोऽयं द्वादशाक्षरः ॥८२६॥

अब मैं तारकासुर को वर प्रदान करने के लिये ब्रह्मा द्वारा उपासित अत्यन्त दुर्लभ तारामन्त्र को कहता हूँ। वह द्वादशाक्षर मन्त्र है—ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं ह्सौः हुं उग्रतारे हुं फट्।।८२५-८२६।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा समुपासिताम्।
हिरण्यकशिपोर्दातुं वरं सप्तार्णसम्मिताम् ॥८२७॥
प्रणवं कवचं मायां क्लीं प्राक्कूटं च पञ्चमम्।
हुं फडन्तः सर्वमस्य न्यासाद्यं पूर्ववद्भवेत् ॥८२८॥

अब मैं हिरण्यकशिपु को वर प्रदान करने-हेतु ब्रह्मा द्वारा उपासित सात अक्षरों वाले तारामन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—ॐ हुं ह्रीं क्लीं सौः हुं फट्। इसके न्यास आदि सबकुछ पूर्ववत् ही होते हैं।।८२७-८२८।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि हरिणा या ह्युपासिता।
बौद्धमार्गप्रचारार्थं सिद्धिदा द्वादशाक्षरी ॥८२९॥
उपासिता ब्रह्मणा या तस्याः कूटे तु पञ्चमे।
सौरुक्त्वा साधिता विद्या द्वादशार्णातिबुद्धिदा ॥८३०॥

यत्प्रभावाद्दिवोदासः काश्या उच्चाटितः पुरा ।
तस्यास्तु पूर्ववज्ज्ञेयं न्यासध्यानजपादिकम् ॥८३१॥

बौद्धमार्ग-प्रचारार्थ हरि द्वारा उपासित तारामन्त्र—अब मैं बौद्धमार्ग के प्रचार-हेतु हरि द्वारा जिस विद्या की उपासना की गई थी, उस सिद्धि प्रदान करने वाली द्वादशाक्षरी विद्या को कहता हूँ। ब्रह्मा द्वारा उपासित उस विद्या के पञ्चम कूट में 'सौः' कहकर साधित यह विद्या तीक्ष्ण बुद्धि प्रदान करने वाली है। विद्या का स्वरूप है—ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सौः हुं उग्रतारे हुं फट्। प्राचीन काल में इसी मन्त्र के प्रभाव से दिवोदास को काशी से उच्चाटित किया गया था। इसके न्यास, ध्यान, जप आदि पूर्ववत् जानने चाहिये।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सप्तार्णां रामसेविताम् ।
लक्ष्मीप्रभृतिरासार्थं तया मत्तस्तदा हली ॥८३२॥
ब्रह्मोपासितसप्तार्णमध्ये कूटं तु पञ्चमम् ।
त्यक्त्वा तत्र सौश्चोक्त्वा विद्या रामेण सेविता ॥८३३॥
सर्वसिद्धिकरी चेयं शत्रुसंहारकारिणी ।
ध्यानपूजादिकं प्राग्वत्प्रयोगादिकमेव च ॥८३४॥

बलराम द्वारा उपासित तारामन्त्र—अब मैं बलराम द्वारा उपासित सप्ताक्षर तारामन्त्र को कहता हूँ। रास के समय लक्ष्मी आदि द्वारा विलास-हेतु गुप्त रूप से उन्मत्त किये जाने पर बलराम ने इसकी उपासना की थी। ब्रह्मा द्वारा उपासित सप्ताक्षर मन्त्र 'ॐ त्रीं ह्रीं हूं ह्रीं हुं फट्' के पञ्चम कूट 'ह्रीं' के स्थान पर 'सौः' कहकर (ॐ त्रीं ह्रीं हूं सौः हुं फट्) दाशरथी राम द्वारा सेवित यह विद्या समस्त सिद्धियों को देने वाली होने के साथ-साथ शत्रुओं का संहार करने वाली भी है। इस विद्या का ध्यान, पूजन, प्रयोग आदि पूर्ववत् ही होता है।।८३२-८३४।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि नारायणसुसेविताम् ।
पञ्चार्णां यत्प्रभावेण दैत्यानां कदनं कृतम् ॥८३५॥
त्रीं हुं फट् क्लीं वाग्भवं च पञ्चार्णा सर्वसिद्धिदा ।
एषां त्रयाणां तु मुनिर्विष्णुः प्राग्वज्जपादिकम् ॥८३६॥

नारायण द्वारा उपासित तारामन्त्र—अब मैं नारायण द्वारा उपासित पञ्चाक्षर तारामन्त्र को कहता हूँ, जिसके प्रभाव से नारायण ने दैत्यों का विनाश किया था। मन्त्र है—त्रीं हुं फट् क्लीं ऐं। यह पञ्चाक्षर मन्त्र समस्त सिद्धियों को देने वाला है। इन तीनों मन्त्रों (इस मन्त्र के साथ-साथ उपर्युक्त दो मन्त्र) के ऋषि विष्णु कहे गये हैं। इसके जप, ध्यान आदि पूर्ववत् ही होते हैं।।८३५-८३६।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मया या समुपासिता।
दत्ता च रविणादित्यै सा विद्या तु षडक्षरी ॥८३७॥
ॐ ह्लीं ह्वुं ह्लीं हुं फडिति मुनिः सोऽहं च पूर्ववत्।
ज्ञेयं न्यासादिकं पूर्वं प्रयोगादि च पूर्ववत् ॥८३८॥

शिवोपासित तारामन्त्र—अब मैं उस मन्त्र को कहता हूँ, जो मेरे द्वारा सम्यक् रूप से उपासित है एवं जिसे सूर्य ने अदिति को प्रदान किया था। छः अक्षरों वाली वह विद्या है—ॐ ह्लीं ह्वुं ह्लीं हुं फट्। पूर्ववत् इस मन्त्र का ऋषि भी मैं ही हूँ। इसके न्यास, प्रयोग आदि को पूर्ववत् ही जानना चाहिये।८३७-८३८।।

अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि चास्याः पञ्चाक्षरं मनुम्।
जलन्धरवधार्थं तु मया सिद्धीकृतं पुरा ॥८३९॥
त्रीं हुं मायां हुंफडिति मनुः पञ्चाक्षरो मतः।
मया पञ्चमुखैर्जप्तो दक्षमार्गेण भोः सुराः ॥८४०॥
देवांशेषु च विप्रेषु तथा धर्मपरेषु च।
यमानां नियमानां च तत्रस्था नान्यदेवता ॥८४१॥
वाममार्गाराधितास्तु कार्यं साधयितुं क्षमाः।
दक्षिणाराधिता देवा रणसाहाय्यकारकाः ॥८४२॥
तेजोनिधीन् रिपून्हत्वा नयन्ति ब्रह्म शाश्वतम्।
क्षत्रियाणां क्षयार्थं तु मया रामाय चार्पिताः ॥८४३॥
पञ्चामृतं सुरास्थाने मांसस्थाने च सूरणम्।
मत्स्यस्थाने खण्डकाद्यं धर्मपत्न्यां रतं मतम् ॥८४४॥
अन्यच्च पूर्ववद्देवा भुञ्जते तत्प्रकाशितम्।
कस्तु तारां न सेवेत लोकद्वयपरीप्सया ॥८४५॥
अस्याः पूजादिकं प्राग्वद्विशेषोऽत्र निरूप्यते।
तारायाः सद्गुरौ सिद्धिः स्त्रीरते भ्रान्तता भवेत् ॥८४६॥

जलन्धर-वधार्थ शिवोपासित तारामन्त्र—अब मैं अन्य पञ्चाक्षर तारामन्त्र को कहता हूँ, जिसकी सिद्धि प्राचीन काल में मैंने जलन्धर के वध के लिये की थी। वह पञ्चाक्षर मन्त्र है—त्रीं ह्वुं ह्रीं हुं फट्। हे देवताओं! मेरे द्वारा दक्षिणमार्ग का आश्रयण करके पाँच मुखों से इसका जप किया गया था।

उस समय वहाँ पर देवांश एवं यम-नियमपूर्वक धर्माचरण में रत विप्रगण ही विद्यमान थे; अन्य देवगणों की उपस्थिति नहीं थी। इस मन्त्र की वाममार्ग से आराधना

करने पर मनुष्य कार्यों को सिद्ध करने के योग्य हो जाता है एवं दक्षिण मार्ग से आराधना करने युद्ध में देवगण उसके सहायक होते हैं एवं अत्यन्त तेज:सम्पन्न शत्रुओं का भी वध करके उन्हें शाश्वत ब्रह्मलोकगामी बना देते हैं। इस पञ्चाक्षर मन्त्र को क्षत्रियों के वध-हेतु मेरे द्वारा परशुराम को प्रदान किया गया था।

दक्षिणमार्गी को वाममार्ग से इसकी उपासना करते समय सुरा के स्थान पर पञ्चामृत, मांस के स्थान पर सूरण (जमीकन्द) एवं मत्स्य के स्थान पर शक्कर आदि का प्रयोग करना चाहिये; साथ ही केवल अपनी धर्मपत्नी के साथ ही रति करनी चाहिये; अन्य स्त्रियों से समागम नहीं करना चाहिये। शेष सब पूर्ववत् ही किया जाता है। देवताओं को जो समर्पित किया जाता है, वह भी पूर्व में कह दिया गया है। लोक में कौन ऐसा है जिसके द्वारा दोनों लोकों को विजित करने की कामना से इसकी उपासना नहीं की जाती? इस मन्त्र के न्यास, ध्यान, पूजन आदि पूर्ववत् ही होते हैं। विशेष केवल यह है कि इस मन्त्र को सद्गुरु से प्राप्त करने पर तारा की सिद्धि होती है एवं उपासनाकाल में स्त्री-समागम से भ्रान्तता होती है।।८३९-८४६।।

महातारामन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महातारामनुं सुराः।
सिद्धा मार्गद्वयेनापि वर्णवर्णाधिकारतः ॥८४७॥
त्रीं ह्रीं ह्रां हुं नमस्तारायै महापदमुच्चरेत्।
तारायै सकलेत्युक्त्वा दुस्तरात्तारयद्वयम् ॥८४८॥
तरद्वयं वह्निजाया द्वात्रिंशार्णो मनुर्मतः।
न्यासपूजाजपाद्यं तु प्राग्वत्सर्वं समाचरेत् ॥८४९॥

महातारामन्त्र—हे देवताओं! अब मैं महातारामन्त्र को कहता हूँ। चारो वर्णों को उनके अधिकार के अनुसार दोनों मार्गों से इस मन्त्र की सिद्धि प्राप्त होती है। बत्तीस अक्षरों का यह मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—त्रीं ह्रीं ह्रां हुं नमस्तारायै महातारायै सकलदुस्तरात् तारय तारय तर तर स्वाहा। इसका न्यास, पूजा, जप आदि सबकुछ पूर्ववत् ही करना चाहिये।।८४७-८४९।।

दक्षिणकालिकामन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि देवीं दक्षिणकालिकाम्।
क्रीं क्रीं क्रीं हुं द्विरुच्चार्य लज्जाबीजद्वयं तथा ॥८५०॥
दक्षिणे कालिके पश्चात्पुनर्बीजानि संवदेत्।
क्रमेणैवाग्निगृहिणी मन्त्रो द्वाविंशदर्णकः ॥८५१॥

भैरवोऽस्य मुनिः प्रोक्तस्त्रिष्टुप्छन्द उदाहृतम्।
देवता कालिका देवी ह्रीं बीजं हुं च शक्तिका॥८५२॥
दीर्घषट्कयुताद्येन बिन्दुना संयुतेन च।
षडङ्गानि न्यसेन्मन्त्री द्विः सकृद्वा यथाविधि॥८५३॥
पञ्चाशद्भिर्मातृकार्णैर्हृदये च भुजद्वये।
दशभिर्दशभिः कुर्यात्तथा जङ्घाद्वये क्रमात्॥८५४॥
एष्वङ्गेषु च मूलेन पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः।
सप्तभिश्चापि मन्त्रार्णैर्व्यापकं च समन्ततः॥८५५॥

दक्षिणकालिका मन्त्र—अब मैं देवी दक्षिणकालिका के मन्त्र को कहता हूँ। दक्षिणकालिका का बाईस अक्षरों का मन्त्र है—क्रीं क्रीं क्रीं हुं हुं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हुं हुं ह्रीं ह्रीं स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि भैरव, छन्द त्रिष्टुप्, देवता कालिका, बीज ह्रीं एवं शक्ति हुं कहे गये हैं। प्रथम बीज (क्रां) के बिन्दु से समन्वित छः दीर्घ स्वरूपों से दो बार अथवा एक बार यथाविधि षडङ्गन्यास करना चाहिये।

पचास मातृकाओं का दस-दस के क्रम से क्रमशः हृदय, दोनों भुजा एवं दोनों जंघा में इस प्रकार न्यास करना चाहिये—अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं हृदये, एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं दक्षभुजे, ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं वामभुजे, णं तं थं दं धं नं पं फं वं भं दक्षजङ्घायाम्, मं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं वामजङ्घायाम्। तदनन्तर इन्हीं अंगों में मूल मन्त्र के पाँच-पाँच अक्षरों को क्रमशः हृदय, भुजद्वय एवं जङ्घाद्वय में न्यस्त करने के उपरान्त शेष सात अक्षरों से व्यापक न्यास करना चाहिये।।८५०-८५५।।

करालवदनां घोरां मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम्।
कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुण्डमालाविभूषिताम्॥८५६॥
खड्गाभयवराञ्छिन्नं मुण्डं च दधतीं करैः।
महामेघप्रभां श्यामां तथा चैव दिगम्बराम्॥८५७॥
कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्रुधिरचर्चिताम्।
कर्णावतंसतानीतशवयुग्मविराजिताम्॥८५८॥
घोरदंष्ट्राकरालास्यां पीनोन्नतपयोधराम्।
शवानां करसङ्घातैः कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम्॥८५९॥
सृक्कद्वयगलद्रक्तधाराविस्फुरिताननाम्।
घोररूपां महारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम्॥८६०॥

दन्तुरां दक्षिणां व्यालीयुक्तालम्बिकचोच्चयाम्।
शवरूपमहादेवहृदयोपरिसंस्थिताम् ॥८६१॥
शिवाभिर्घोररावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्विताम्।
महाकालसमायुक्तां शर्वोपरि रतान्विताम् ॥८६२॥
सुखप्रसन्नवदनां स्मेरारुणसरोरुहाम्।
एवं सञ्चिन्तयेत्कालीं श्मशानालयवासिनीम् ॥८६३॥

तदनन्तर काली का इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—देवी दक्षिणकालिका का मुख विकराल है। वे अत्यन्त भयंकर हैं। उनके केश खुले हुये हैं। वे दिव्य मुण्ड़मालाओं से विभूषित हैं। अपने चारो हाथों में खड्ग, अभय, वर एवं कटा हुआ शिर धारण की हुई हैं। उनकी कान्ति विशाल मेघ के समान है। वे श्याम वर्ण वाली एवं दिगम्बर (निर्वस्त्र) हैं। रक्तस्राव-युक्त मुण्ड़ों की माला से उनका कण्ठ सुशोभित है। कर्णाभूषण के रूप में उनके दोनों कानों में दो शव लटक रहे हैं। वे भयंकर दाढ़, विकराल मुख एवं उठे हुये बड़े-बड़े स्तनों वाली हैं। शवों के हाथों की करधनी बनाकर धारण की हुई वे मुस्करा रही हैं। उनके खुले मुख के दोनों होठों के प्रान्तभाग से रक्तधारा स्रवित हो रही है। वे अत्यन्त भयंकर रौद्र रूप वाली एवं श्मशानरूपी गृह में निवास करने वाली हैं। उनके दाँत बड़े-बड़े हैं। सर्पिणी से युक्त लम्बे-लम्बे उनके बाल हैं। शवस्वरूप महादेव के हृदय पर वे विराजमान हैं। चारो दिशाओं में भयंकर शब्द करते हुये श्रृगालों से वे घिरी हुई हैं। वे महाकाल से युक्त हैं। शिव के ऊपर आरूढ़ होकर वे रतिक्रिया में तल्लीन हैं। वे किञ्चित् अरुणवर्ण कमल-सदृश प्रफुल्लित मुख वाली हैं। इस प्रकार श्मशानरूपी गृह में निवास करने वाली काली का चिन्तन करना चाहिये।।८५६-८६३।।

आदौ विरचयेत्पञ्च त्रिकोणानि ततः परम्।
पद्ममष्टदलं बाह्ये भूपुरं तत्र पूजयेत् ॥८६४॥
ततो मध्यत्रिकोणान्तर्न्यसेद्देवीं च दक्षिणे।
महाकालं च तत्रैव न्यसेदेष विधिः स्मृतः ॥८६५॥
ततः पूर्वादिकोणेषु वामावर्तेन पूजयेत्।
कालीं कपालिनीं कुल्लां प्रथमे तु त्रिकोणके ॥८६६॥
नीलां घनां बलाकां च द्वितीये तु त्रिकोणके।
कुरुकुल्लाविरोधिन्यौ विप्रचित्तां तृतीयके ॥८६७॥
उग्रामुग्रप्रभां दीप्तां चतुर्थे तु त्रिकोणके।
मात्रां मुद्रां च मित्रां च त्रिकोणे पञ्चमे यजेत् ॥८६८॥

सर्वाः श्यामा असिकरा मुण्डमालाविभूषणाः।
तर्जनीं वामहस्तेन धारयन्ति च सस्मिताः ॥८६९॥

सर्वप्रथम पाँच त्रिकोण का निर्माण करने के पश्चात् उसके बाहर अष्टदल पद्म बनाकर उसके बाहर भूपुर की रचना करके वहीं पर देवी दक्षिणकालिका का पूजन करना चाहिये। पूजन यन्त्र का स्वरूप इस प्रकार का होता है—
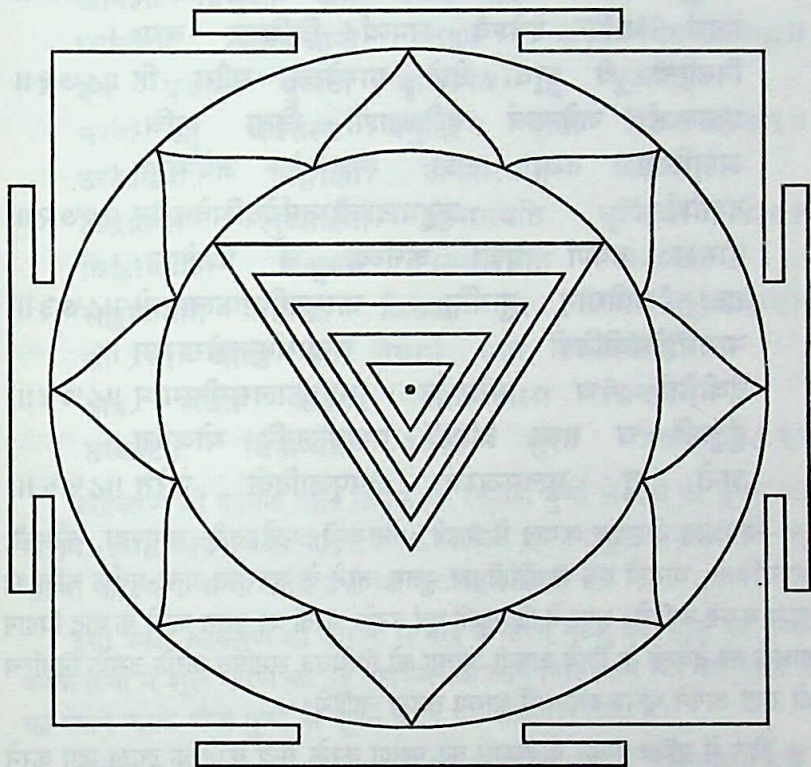
पूजन की विधि यह है कि उक्त यन्त्र के प्रथम त्रिकोण के मध्य में देवी को एवं उनके दाहिने महाकाल को स्थापित करके पूजन करना चाहिये। तदनन्तर प्रथम त्रिकोण के पूर्वादि कोणों में वामावर्तक्रम से काली, कपालिनी एवं कुल्ला का पूजन करने के उपरान्त द्वितीय त्रिकोण में उसी प्रकार नीला, घना एवं बलाका का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर तृतीय त्रिकोण में कुरुकुल्ला, विरोधिनी एवं विप्रचित्ता का तथा चतुर्थ त्रिकोण में उग्रा, उग्रप्रभा एवं दीप्ता का पूजन करना चाहिये। इसके बाद पञ्चम त्रिकोण में मात्रा, मुद्रा एवं मित्रा का पूजन करना चाहिये। ये समस्त देवियाँ कृष्णवर्णा

हैं, हाथों में खड्ग धारण की हुई हैं एवं मुण्डमाला से विभूषित हैं। बाँयें हाथ से तर्जनी को धारण की हुई ये सभी प्रसन्न मुख वाली हैं।।८६४-८६९।।

ब्राह्मीं नारायणीं माहेश्वरीं मुण्डां कुमारिकाम्।
अपराजितां च वाराहीं नारसिंहीं दलाष्टके।
सम्पूज्य यत्नतश्चापि बलिं सम्प्रतिपादयेत्।।८७०।।
हृदयं चापि देवेश्यै समर्प्य विधिवद् बुधः।
निर्माल्यं वै शुचौ देशे धारयेच्च सदैव हि।।८७१।।
एकलक्षं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी दिवा शुचिः।
अशुचिश्च तथा रात्रौ लक्षमेनं जपेन्मनुम्।
दशांशं जुहुयादाज्यैस्तर्पयेदभिषेचयेत्।।८७२।।
होमश्च तर्पणं पूजा कर्त्तव्या च विशेषतः।
ततः प्रयोगान् कुर्वीत काम्यानिष्टफलाप्तये।।८७३।।
नागयज्ञोपवीतिनीं चन्द्रार्धकृतशेखराम्।
देवीमेवं च सञ्चिन्त्य महाकालसमीपगाम्।।८७४।।
हुंहुंक्रीं च तथा क्रींक्रीं पञ्चबीजानि योजयेत्।
अन्ते तु मूलमन्त्रस्य जपपूजादिकं चरेत्।।८७५।।

तत्पश्चात् अष्टदल कमल में ब्राह्मी, नारायणी, माहेश्वरी, चामुण्डा, कौमारी, अपराजिता, वाराही एवं नारसिंही का पूजन करने के उपरान्त यत्न-पूर्वक बलि भी प्रदान करनी चाहिये। भूपुर में दिक्पालों एवं उनके अस्त्रों का पूजन करने के बाद विद्वान् साधक को देवेशी के लिये अपनी आत्मा को विधिवत् समर्पित करके उसके निर्माल्य को सदा अपने पवित्र स्थान में धारण करना चाहिये।

दिन में पवित्र होकर हविष्यान्न का भक्षण करके मन्त्र का एक लाख जप करने के पश्चात् रात्रि में अपवित्र रहने पर भी मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिये। इसके बाद गोघृत से दशांश हवन करके तर्पण एवं स्वयं का अभिषेक (मार्जन) करना चाहिये। अभीष्ट फल-प्राप्ति के लिये विशेषतया हवन, तर्पण और पूजन करने के उपरान्त ही प्रयोगों का सम्पादन करना चाहिये। सर्पों का यज्ञोपवीत एवं शीर्ष पर अर्धचन्द्र धारण करके महाकाल के समीप अवस्थित देवी का ध्यान करके 'हुं हुं क्रीं क्रीं क्रीं' इन पाँच बीजों को मूल मन्त्र के अन्त में संयुक्त करके जप-पूजन आदि करना चाहिये।।८७०-८७५।।

वश्यकामः साधकश्चेद्रक्तपुष्पैः प्रपूजयेत्।

कामबाणसमाविद्धा निर्लज्जा विह्वला: स्त्रिय:।
स्वं स्वं सन्त्यज्य भर्तारमालिङ्गन्ति सदैव तम् ॥८७६॥
एवमाकर्षणे योज्यमादौ हुंक्रीं तत: परम्।
लोहितां शूलहस्तां च महाकालाग्रसंस्थिताम्।
ध्यात्वा सम्पूजयेत्पुष्पै: पीतैराकर्षणं भवेत् ॥८७७॥
कपिलां द्विभुजां कर्त्रीं सव्ये दक्षे कपालकम्।
ध्यात्वैवं सर्वमन्त्रान्ते ठद्वयं परिकीर्तयेत् ॥८७८॥
एवं प्रजप्य पुष्पेण कृष्णेनैव तु पूजयेत्।
मरणं तु भवेत्तस्य यमुद्दिश्य कृता क्रिया ॥८७९॥
उच्चाटयति पिङ्गाक्षी सन्त्रासयति केकरा।
विद्रावयति शुष्कास्या प्रोन्मत्तयति घूर्णिका ॥८८०॥
विक्षोभयति संक्षुब्धा सम्पादयति सम्मता।
सङ्कोचयति संरुद्धा विरुद्धा च विरोधयेत् ॥८८१॥
यो यो भावो यत्र ज्ञेयस्तं भावं स्थापयेदिति।
अत्र सर्वत्र कर्तव्यं भावमात्रस्य चिन्तनम्।
उच्चाटनं विनान्यत्र सर्वत्र सुरतं मतम् ॥८८२॥

वशीकरण की कामना वाले साधक को रक्तवर्ण पुष्पों से देवी का पूजन करना चाहिये। इससे कामबाण से पीड़ित स्त्रियाँ निर्लज्ज एवं व्याकुल होकर अपने-अपने पतियों का त्याग करके सदैव उसी का आलिङ्गन करती हैं।

इसी प्रकार आकर्षण की कामना से मन्त्र के आदि में 'हुं क्रीं' बीज का संयोजन करके हाथों में शूल धारण की हुई महाकाल के आगे विराजमान रक्त वर्ण वाली देवी का ध्यान करके पीले पुष्पों से पूजन करने पर आकर्षण होता है।

बाँयें हाथ में कैंची एवं दाँयें हाथ में कपाल धारण की हुई कपिलवर्णा देवी का ध्यान करके समस्त मन्त्र के अन्त में दो 'ठ' का संयोजन करके जप करने के उपरान्त कृष्णवर्ण वाले पुष्पों से देवी का पूजन करना चाहिये। जिसको उद्देश्य करके यह क्रिया की जाती है, उसका निश्चित मरण होता है।

पिङ्गाक्षी (भूरे आँखों वाली) देवी उच्चाटन करती है एवं केकरा (भैंगी आँख वाली) देवी त्रास देती है। शुष्क मुख वाली देवी विद्रावण करती है, घूर्णिका (भ्रमण करने वाली) उन्मत्त करती है, संक्षुब्धा विक्षुब्ध करती हैं, सम्मता कार्य का सम्पादन करती है, संरुद्धा संकोचन करती है एवं विरुद्धा विरोध उत्पन्न करती है। जिस-जिस

भाव की जहाँ आवश्यकता हो, उस-उस भाव का ध्यान करके जप-पूजन करना चाहिये। सर्वत्र भावना-मात्र का ही चिन्तन करना चाहिये। उच्चाटन के अतिरिक्त अन्य सभी कार्यों में मैथुन आवश्यक कहा गया है।।८७६-८८२।।

स्नातः शुक्लाम्बरधरः कृतनित्यक्रियो दिवा।
रात्रौ नग्नशयानश्च मैथुने च व्यवस्थितः।
अवाक्यो मुक्तकेशश्च तेन स्युः सर्वसिद्धयः ।।८८३।।
नग्नां वरस्त्रियं पश्यन् प्रजपेदयुतं मनुम्।
स भवेत्सर्वसिद्धीनां पारगः सर्वदैव हि ।।८८४।।
तस्य दर्शनमात्रेण वादिनो निष्प्रभा मताः।
गद्यपद्यमयी वाणी तस्य सर्वविधा भवेत् ।।८८५।।
अवाक्यो मुक्तकेशश्च हविष्यं भक्षयन्नरः।
प्रजपेदयुतं तावदेवं प्रतिनिधिर्भवेत् ।।८८६।।

दिन में स्नान करने के बाद श्वेत वस्त्र धारण करके नित्यक्रिया का सम्पादन करने के उपरान्त रात्रि में नग्न होकर शयन करते हुये मौन का अवलम्बन करके केशों को खोलकर मैथुन करने से समस्त सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। नग्न सुन्दर स्त्री को देखते हुये मन्त्र का दस हजार जप करने वाला साधक सर्वदा समस्त सिद्धियों का पारगामी होता है। उस साधक को देखते ही उसके वादी (प्रतिद्वन्द्वी) निष्प्रभ हो जाते हैं। उसकी वाणी गद्य-पद्यमयी हो जाती है। मौनावलम्बन कर मुक्तकेश होकर हविष्यान्न का भक्षण करके मन्त्र का दस हजार जप करने से साधक देवी का प्रतिनिधि-स्वरूप हो जाता है।।८८३-८८६।।

ऋतुमत्या भगं पश्यन्नयुतं प्रजपेन्नरः।
अनर्घकविता तस्य गद्यपद्यमयी भवेत् ।।८८७।।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा भगमालोक्य चान्ततः।
प्रयाति मैथुनं योऽसौ धनधान्यसुतान्वितः ।।८८८।।
सुरते जपितव्यञ्च सदा पापविशुद्धये।
यदि योषित्प्रसङ्गेन रेतः पतति यत्नतः ।।८८९।।
समुत्सार्य ततो जप्तं सर्वकामसमृद्धये।
श्मशानाङ्गारमादाय मुक्तकेशो दिगम्बरः ।।८९०।।
जपेदयुतसङ्ख्यं तु सर्वकामसमृद्धये।
प्रेतमारुह्य तत्रैव यो जपेन्मन्त्रवित्तमः ।।८९१।।

अयुतं वाग्यतो भूत्वा कविभिः स तु पूजितः।
स याति परमां सिद्धिं देवैरपि सुदुर्लभाम् ॥८९२॥

रजस्वला स्त्री के भग को देखते हुये मन्त्र का दस हजार जप करने वाले मनुष्य की गद्य-पद्यमयी कविता अनर्घ (अमूल्य) हो जाती है। भग को देखते हुये मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करके जो मैथुन करता है, वह धन-धान्य और पुत्रों से युक्त हो जाता है।

पाप से मुक्ति के लिये मैथुन के समय सदा जप करना चाहिये। यदि स्त्री के साथ मैथुन के समय वीर्यपात हो जाय तो यत्न-पूर्वक उसका उत्सारण करके जप करने से समस्त मनोरथों की प्राप्ति होती है।

समस्त कामनाओं की समृद्धि के लिये श्मशान के अङ्गार को लाकर बालों को खोलकर नग्न होकर मन्त्र का दस हजार जप करना चाहिये। मन्त्रज्ञ साधक उसी स्थान पर शव पर आरूढ़ होकर मौन रहकर मन्त्र का यदि दस हजार जप करता है तो वह कवियों द्वारा पूजित होता है। उसे देवताओं के लिये भी दुर्लभ सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।।८८७-८९२।।

स्वदेहरुधिराक्तैश्च बिल्वपत्रैः सहस्रशः।
श्मशानेऽभ्यर्चयेद्देवीं वागीशसमतां व्रजेत् ॥८९३॥
सुरतत्यक्तशुक्रेण ह्यर्कपुष्पैः सहस्रकैः।
श्मशानेऽभ्यर्चयेद्देवीं सर्वां सिद्धिं स विन्दति ॥८९४॥
धन्वाब्जपत्रैः सम्पूज्य देवीं सर्वफलप्रदाम्।
लोके स कुलवान्वाग्मी सर्वयोषित्प्रियो भवेत्।
सुखी स्यान्नात्र सन्देहो महाकालवचो यथा ॥८९५॥
श्मशाने योषितं नीत्वा मन्त्रैः प्रार्थ्य सहस्रकैः।
रक्तचन्दनदिग्धाङ्गीं रक्तपुष्पैरलंकृताम् ॥८९६॥
तावत्पुष्पैर्मनुं प्रार्थ्य ततो ध्यायेच्च चण्डिकाम्।
ततो गत्वाप्नुयाद्राज्यं यद्यसौ न बिभेति वै ॥८९७॥

अपने शरीर के रक्त से सिक्त एक हजार बिल्वपत्रों से श्मशान में देवी का पूजन करने से साधक बृहस्पति के समान हो जाता है। जो साधक मैथुन के समय पतित शुक्र से सिक्त एक हजार अकवन के फूलों से श्मशान में देवी का पूजन करता है, उसे सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

महाकाल का कथन है कि धन्वाब्जपत्रों (?) से पूजन करने पर देवी समस्त फल

प्रदान करने वाली होती है। ऐसा साधक संसार में कुलीन, वाग्मी एवं समस्त वनिताओं का प्रिय होकर पूर्ण रूप से सुखी होता है; इसमें कोई सन्देह नहीं है।

श्मशान में सुन्दरी को लाकर एक हजार मन्त्रों से उसकी प्रार्थना करने के उपरान्त उसके समस्त शरीर पर रक्त चन्दन का लेप लगाने के बाद रक्त पुष्पों से ही अलंकृत करके (अलंकृत करने में प्रयुक्त) पुष्पों की संख्या के बराबर मन्त्रजप करने के पश्चात् चण्डिका का ध्यान करना चाहिये। उस समय साधक यदि भयभीत नहीं होता तो वहाँ से जाने के बाद वह राज्य प्राप्त करता है।।८९३-८९७।।

श्मशाने ह्ययने चैवं शवासनगतः स्थिरः।
असकृत्तु जपेन्मन्त्रं सर्वसिद्धिप्रदो भवेत्।।८९८।।
तर्पयेच्च शवास्यं तु रक्तमांसादिभिस्त्रिधा।
त्रिस्त्रिर्मन्त्रानुदीर्यैवं सर्वसिद्धिर्भवेत्ततः।।८९९।।
तर्पयेच्च पयोभिर्हि सुधाधारायुतैस्तथा।
रेतोभिश्च तथा तद्वत् स्वकीयेन कचेन च।।९००।।
मैथुनोपचिताद्भिश्च भगप्रक्षालनाम्बुभिः।
मेषमाहिषरक्तेन नररक्तेन चैव हि।
मूषमार्ज्जाररक्तेन वाग्मित्वं तस्य जायते।।९०१।।
धनित्वं जायते तस्य सर्वसिद्धिः प्रजायते।
वचसा स भवेज्जीवो धनेन च धनाधिपः।।९०२।।
आज्ञया देवराजोऽसौ रूपेण च मनोभवः।
बलेन पवनो ज्येष्ठः सर्वतत्त्वार्थसाधकः।।९०३।।
साधितासाधितं मांसं सास्थि दद्यात्सदा बलिम्।
मूषमांसं मेषमांसं छागं माहिषमेव च।।९०४।।
सर्वं सास्थि प्रदातव्यं सदा त्वग्लोमसंयुतम्।
अजकस्य नखं छिन्नं केशं स्वमार्जनीगतम्।
निवेदयेच्छ्मशाने तत्सर्वसिद्धिप्रदो भवेत्।।९०५।।

जो साधक श्मशान में अथवा घर में शवासन पर आसीन होकर लगातार मन्त्रजप करता है, उसे सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। रक्त-मांस आदि से उस शव के मुख में तीन-तीन बार मन्त्र का उच्चारण करते हुये तीन बार तर्पण करने सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

मद्य-मिश्रित दुग्ध, अपना वीर्य, अपना बाल, मैथुन के पश्चात् भग को प्रक्षालित

किया हुआ जल, भेड़ एवं भैंसा का रक्त, मनुष्य-रक्त तथा चूहा एवं मार्जार (विड़ाल) के रक्त से तर्पण करने पर साधक को वाग्मीत्व की प्राप्ति होती है। वह धनवान होता है एवं उसे सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। अपनी वाणी से वह बृहस्पति के समान एवं धन से कुबेर के समान हो जाता है। अपनी आज्ञा से वह इन्द्र के समान, रूप से कामदेव के समान तथा बल से पवन के समान हो जाता है। साथ ही समस्त तत्त्वार्थसाधकों में वह अग्रणी होता है। उस साधक को सदा अस्थि-सहित मूषक, मेष (भेड़), छाग (बकरा) अथवा महिष (भैंसा) के पक्व अथवा कच्चे मांस की बलि प्रदान करनी चाहिये। बलि के लिये गृहीत वह मांस तत्सम्बद्ध अस्थि, त्वचा एवं रोयें से युक्त होना चाहिये।

बकरे का कटा हुआ नख एवं अपने झाडू में लगा हुआ केश श्मशान में निवेदित करने से सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।।८९८-९०५।।

नारीरजोयुजां कृत्वा पर्णानां शतमुत्तमम्।
प्रत्येकं प्रजपेन्मन्त्रं ततस्तद्धोमयेद् बुधः ।।९०६।।
युगानाङ्गयुतं तेन पूजिता दक्षिणा भवेत्।
सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य वाग्मी धीरः स जायते ।।९०७।।
न तस्य दुर्लभं किञ्चित्पृथिव्यां जातु जायते।
योनिरूपं हि कृत्वा तु कुण्डं वितस्त्यरत्नितः ।।९०८।।
हस्तविस्तारतो वापि कृत्वा चैव यथाविधि।
तत्र कार्या हि मन्त्रेण वह्निस्थापनिकाः क्रियाः ।।९०९।।
महाकालाय देवाय दद्यात्प्रथममाहुतिम्।
स्रुवेणाज्येन मांसेन भक्तेन रुधिरेण च ।।९१०।।
कृष्णपुष्पेण साज्येन सरक्तेन विशेषतः।
आमिषादिभिरप्येवं जुहुयाच्च श्मशानके ।।९११।।

बुद्धिमान साधक को दो अंगनाओं से युक्त होकर एक सौ उत्तम पत्तों को स्त्रीरज से युक्त करके प्रत्येक को मन्त्रजप से अभिमन्त्रित करने के बाद उन पत्तों से हवन करना चाहिये। ऐसा करने से दक्षिणकालिका पूजित होती है तथा उस साधक को सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं; साथ ही वह साधक धैर्यशाली एवं वाग्मी हो जाता है और उसके लिये पृथिवी पर प्राप्त होने वाली कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रह जाती।

एक बीत्ता अथवा एक हाथ लम्बे-चौड़े योनिकुण्ड का विधिवत् निर्माण करके उसमें मन्त्र के द्वारा अग्निस्थापन करने के बाद उस अग्नि में स्रुवा के द्वारा गोघृत, मांस, भात एवं रक्त से महाकाल के लिये प्रथम आहुति प्रदान करनी चाहिये।

विशेषतः घृत एवं रक्त-सिक्त कृष्णवर्ण वाले पुष्प से आहुति प्रदान करनी चाहिये। इसी प्रकार श्मशान में मांसादि की आहुति प्रदान करनी चाहिये।।९०६-९११।।

स्नातः शुक्लाम्बरधरः शुचिः प्रयतमानसः।
दिवा सर्वं प्रकुर्वीत सर्वकामार्थसिद्धये ।।९१२।।
रात्रौ नग्नो मुक्तकेशो मैथुनेनापि संयुतः।
प्रकुर्वीत प्रयत्नेन सर्वकामार्थसिद्धये ।।९१३।।
द्विजानामत्र सर्वेषां विधी रात्रौ प्रदर्शितः।
शूद्राणां चैव सम्प्रोक्तो रात्रावेव विधिर्मया ।।९१४।।

समस्त कामनाओं की सिद्धि के लिये दिन में स्नान करने के बाद श्वेत वस्त्र धारण करके पवित्र होकर एकाग्र मन से समस्त कर्मों को करना चाहिये एवं रात्रि में प्रयत्न-पूर्वक निर्वस्त्र होकर अपने केशों को खोलकर स्त्रीसमागम करते हुये समस्त कर्मों का सम्पादन करना चाहिये। यहाँ पर द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के लिये रात्रि में की जाने वाली समस्त विधियों को बतलाया गया। शूद्रों के लिये रात्रि में ही समस्त विधियाँ मेरे द्वारा कही गयी हैं।।९१२-९१४।।

महाकालं यजेद्यत्नात्पश्चाद्देवीं प्रपूजयेत्।
त्रिधा विभज्य मन्त्राद्यैर्यत्नात्साधकसत्तमः ।।९१५।।
मांसं रक्तं तिलं केशो नखो भक्तं च पायसम्।
आज्यं चेति प्रयत्नेन होतव्यं सर्वसिद्धये ।।९१६।।
एवं कृत्वा विधानेन भजते सिद्धिमुत्तमाम्।
यद्यत्प्रार्थयते जन्तुस्तत्तत्प्राप्नोति नित्यशः ।।९१७।।
देवत्वं दानवत्वं च सिद्धचारणतां तथा।
हवनात्सर्वमाप्नोति नित्यमेवमतन्द्रितः ।।९१८।।
एकचित्तो जपेन्मन्त्रं चत्वारिंशत्सहस्रकम्।
होमं तु रक्तपुष्पेण कुण्डे कुर्याद्यथाविधि ।।९१९।।

श्रेष्ठ साधक को यत्न-पूर्वक महाकाल का पूजन करने के बाद देवी का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् यत्न-पूर्वक मन्त्र आदि के द्वारा मांस, रक्त, तिल, केश, नख, भात, खीर एवं घृत को तीन भागों में विभक्त करके उनसे हवन करना चाहिये। इससे समस्त सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

जो साधक इस प्रकार विधि-पूर्वक क्रियाओं का सम्पादन करता है, वह उत्तम सिद्धि को प्राप्त करता है। वह प्राणी जिस-जिस वस्तु की याचना करता है, उसे

अवश्य प्राप्त करता है। प्रतिदिन सजग होकर हवन करने से देवत्व, दानवत्व, सिद्धचारणत्व आदि सबकुछ प्राप्त कर लेता है। एकाग्र चित्त से मन्त्र का चालीस हजार जप करके रक्तपुष्पों से कुण्ड़ में यथाविधि हवन करना चाहिये।।११५-११९।।

एतन्मन्त्रजपान्मन्त्री मुच्यते ब्रह्महत्यया।
पितृमातृवधाद्यैश्च किमन्यैः क्षुद्रपातकैः ।।१२०।।
कपिलारत्नसम्पूर्णपृथ्वीदानस्य यत्फलम्।
कोटिहोमसहस्त्रैर्यद्ध्यानेन फलभाग्भवेत्।
यं यं स्पृष्ट्वा जपेन्मन्त्री स तं तं वशमानयेत्।।१२१।।
जपित्वाऽष्टोत्तरशतं जुहुयाद्रक्तपुष्पकैः।
कुर्यान्नृपं वशे मन्त्री नासाध्यं भुवनत्रये।।१२२।।
शून्यागारे देवगृहे स्वयम्भूस्थान एव च।
ब्रह्मचारी हविष्याशी भवेदिन्द्रसमो जपात्।।१२३।।

इस मन्त्र का जप करने से साधक ब्रह्महत्या, पिता-माता के वधरूप पाप से भी मुक्त हो जाता है; फिर अन्य क्षुद्र पापों का तो कहना ही क्या है? कपिला गाय एवं रत्न-सहित सम्पूर्ण पृथिवी के दान से जो फल प्राप्त होता है तथा कोटिसहस्त्र हवन से जो फल प्राप्त होता है, वह फल देवी के ध्यानमात्र से प्राप्त हो जाता है। साधक जिस-जिस को स्पर्श करके मन्त्र का जप करता है, वह-वह उसके वशीभूत हो जाता है।

मन्त्रज्ञ साधक मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करके रक्त पुष्पों से यदि हवन करता है तो वह राजा को वशीभूत कर लेता है; साथ ही तीनों लोकों में उसके लिये कुछ भी असाध्य नहीं रह जाता।

जनशून्य गृह, देवालय एवं स्वयम्भू स्थान में ब्रह्मचर्य धारण कर हविष्य का भक्षण करके इस मन्त्र का जप करने से जापक इन्द्र के समान हो जाता है।।१२०-१२३।।

कुण्डे त्रिकोणसंज्ञे तु शान्तौ पुष्टौ तथैव च।
अयुतं जुहुयान्मन्त्री सहस्त्रत्रितयं पुनः।।१२४।।
काम्ये सहस्त्रमारक्तैः पुष्पैर्हुत्वा दशांशतः।
तर्पयेच्च पुनस्तद्वद्देवीं ध्यात्वा हुताशने।।१२५।।
सम्पूज्य मूलमन्त्रेण बिल्वपत्रैर्घृतान्वितैः।
सहस्त्रं प्रत्यहं हुत्वा प्राप्नोति परमां गतिम्।
घृताक्तमालतीपुष्पैर्होमाद् द्रुतकविर्भवेत्।।१२६।।

नासाध्यं विद्यते किञ्चिदिह मन्त्रविदः सदा।
देव्याराधनशक्तिश्च गुरुभक्तस्य नान्यथा ॥९२७॥

शान्ति एवं पुष्टिकर्म की सिद्धि के लिये मन्त्रज्ञ साधक को त्रिकोणकुण्ड में दस हजार हवन करने के पश्चात् पुनः तीन हजार हवन करना चाहिये।

काम्य कर्म में एक हजार मन्त्रजप करने के बाद रक्तपुष्पों से कृत जप का दशांश हवन करने के पश्चात् तर्पण करना चाहिये। पुनः उस हुताग्नि में देवी का ध्यान करके मूल मन्त्र से उनका पूजन करने के बाद घृतान्वित बेलपत्रों से प्रतिदिन एक हजार हवन करने पर परमगति की प्राप्ति होती है। घृताक्त मालतीपुष्पों के हवन से साधक आशुकवि हो जाता है।

इस मन्त्र के ज्ञाता के लिये इस लोक में कुछ भी असाध्य नहीं रह जाता। गुरुभक्त को ही देवी के आराधना की शक्ति प्राप्त होती है; गुरुद्रोही को नहीं प्राप्त होती।।९२४-९२७।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रमष्टाक्षरं परम्।
दक्षिणे कालिके स्वाहा मन्त्रोऽष्टाक्षर ईरितः ॥९२८॥
न्यासः प्राग्वद्ध्यानमत्र शवरूपशिवस्थिताम्।
महाकालरतासक्तां शिवाभिर्दिक्षु वेष्टिताम् ॥९२९॥
नवशक्तियुते पीठेऽनन्ता च विजया जया।
तथापराजया नित्या विलासिन्यपि कीर्तिता ॥९३०॥
क्षुब्धा घोरा मङ्गलेति पीठमन्त्रोऽर्कवर्णकः।
ह्रींकालिकायोगपीठात्मने नम उदाहृतः ॥९३१॥

दक्षिणकालिका का अष्टाक्षर मन्त्र—अब मैं श्रेष्ठ अष्टाक्षर मन्त्र को कहता हूँ। वह मन्त्र है—दक्षिणे कालिके स्वाहा। इसका न्यास पूर्ववत् ही किया जाता है। यहाँ पर शवरूप शिव पर विराजमान, महाकाल के साथ सुरत में तल्लीन तथा चारो दिशाओं से शृगालिनों द्वारा घिरी हुई देवी का ध्यान करना चाहिये।

इनका पूजनपीठ नव शक्तियों से समन्वित है। वे नव शक्तियाँ हैं—अनन्ता, जया, विजया, अपराजया, नित्या, विलासिनी, क्षुब्धा, घोरा तथा मंगला। बारह अक्षरों का इनका पीठमन्त्र इस प्रकार कहा गया है—ह्रीं कालिकायोगपीठात्मने नमः।।९२८-९३१।।

अङ्गानि पूर्वमाराध्य षड्दलेषु ततोऽर्चयेत्।
कालीं कपालिनीं कुल्लां कुरुकुल्लां विरोधिनीम् ॥९३२॥
विप्रचित्तां च सम्पूज्य नवकोणेष्वथोऽर्चयेत्।
उग्रामुग्रप्रभां दीप्तां नीलां घनां वाचालिकाम् ॥९३३॥

मात्रां मुद्रां तथामितां पूज्याः पत्रेषु मातरः ।
पूर्वोक्तभूपुरे पूज्या भैरव्योऽष्टौ च भैरवीः ॥१३४॥
ततो महाभैरवी च तृतीया सिंहभैरवी ।
धूम्राख्या भैरवी तुर्या पञ्चमी भीमभैरवी ॥१३५॥
उन्मत्तभैरवी षष्ठी वशीकरणभैरवी ।
सप्तमी भैरवी ख्याताष्टमी मोहनभैरवी ॥१३६॥
दिक्पतींश्च तदस्त्राणि पूजैवं परिकीर्तिता ।
पुरश्चर्यादिकं प्राग्वत्प्रयोगानाचरेत्तथा ॥१३७॥

सर्वप्रथम षट्कोण में षडङ्ग-पूजन करने के उपरान्त षड्दल पद्म में क्रमशः काली, कपालिनी, कुल्ला, कुरुकुल्ला, विरोधिनी एवं विप्रचित्ता का पूजन करने के बाद नव कोणों में उग्रा, उग्रप्रभा, दीप्ता, नीला, घना, वाचालिका, मात्रा, मुद्रा और अमिता का पूजन करना चाहिये।
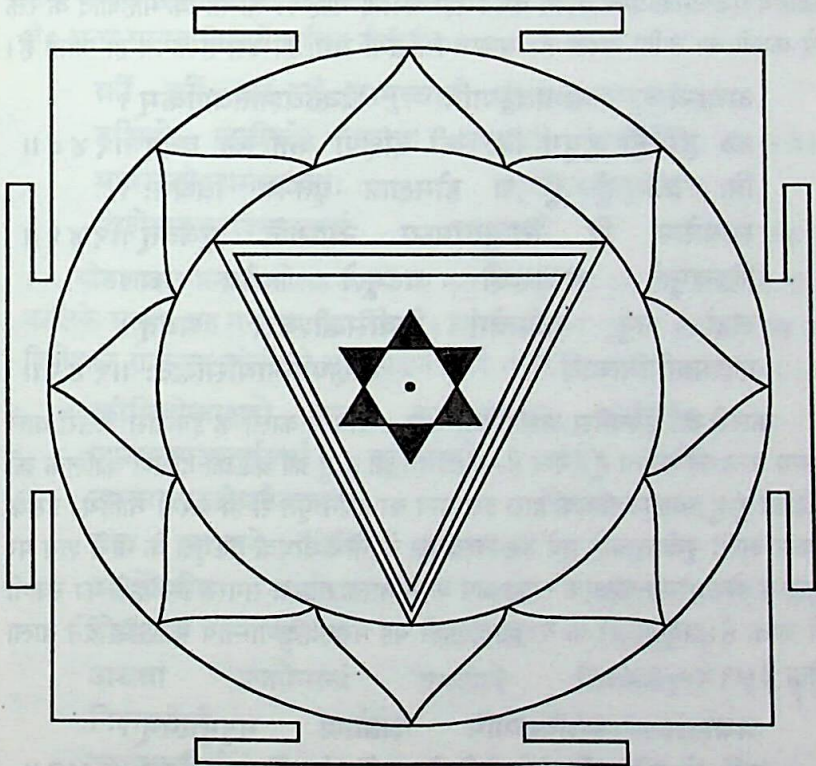
इसके बाद अष्टपत्र में ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं का पूजन करके पूर्वोक्त भूपुर में अष्टभैरवियों का पूजन करना चाहिये। वे अष्टभैरवियाँ इस प्रकार हैं—भैरवी, महाभैरवी, सिंहभैरवी, धूम्राभैरवी, भीमभैरवी, उन्मत्तभैरवी, वशीकरणभैरवी एवं मोहनभैरवी। इसके बाद भूपुर के बाहर दश दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार इनका पूजन कहा गया है। तदनन्तर पुरश्चरण आदि करके प्रयोगों का सम्पादन करना चाहिये।।९३२-९३७।।

स्त्रीप्रहारं च निन्दां च कौटिल्यं चाप्रियं वचः।
आत्मनो हितमन्विच्छन् कालीभक्तो विवर्जयेत् ।।९३८।।
असृजा महिषादीनां कालिकां यस्तु तर्पयेत्।
तस्य स्युरचिरादेव करस्थाः सर्वसिद्धयः ।।९३९।।

अपना हित चाहने वाले काली-भक्त को स्त्रियों पर प्रहार नहीं करना चाहिये, उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिये, उनके साथ कुटिलता-पूर्वक व्यवहार नहीं करना चाहिये एवं उनके प्रति अप्रिय वचन नहीं बोलना चाहिये। जो साधक महिषादि के रक्त से काली का तर्पण करता है, समस्त सिद्धियाँ सद्यः ही उसे हस्तगत हो जाती हैं।

अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि चैकविंशतिवर्णकम्।
ॐ ह्लीं ह्लीं हुंयुगं त्रिः क्रीं दक्षिणे कालिके वदेत् ।।९४०।।
त्रिः क्रीं हुँ हुँ च होमश्चात्र घृतेनैव विधेयः।
साधकेन हि क्तियुग्ममस्य न्यासादि पूर्ववत् ।।९४१।।
बिल्वमूले शवारूढो वटमूले तथैव च।
लक्षं मनुं जपित्वेमं सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्।
पञ्चमप्रतिमित्यायं दक्षिणाम्नायसिद्धिदः ।।९४२।।

काली का इक्कीस अक्षरों का मन्त्र—अब मैं काली के इक्कीस अक्षरों वाले अन्य मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—ॐ ह्लीं ह्लीं हुं हुं क्रीं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हुं हुं स्वाहा। साधक द्वारा इस मन्त्र का हवन घृत से ही करना चाहिये। इसके न्यास आदि पूर्ववत् कहे गये हैं। बिल्ववृक्ष के नीचे अथवा वटवृक्ष के नीचे शव पर आरूढ़ होकर मन्त्र का एक लाख जप करने वाला साधक समस्त सिद्धियों का स्वामी हो जाता है। पञ्च मकार के यथार्थ ज्ञान से यह मन्त्र दक्षिणाम्नाय में सिद्धि देने वाला होता है।।९४०-९४२।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शक्रार्णं मनुमुत्तमम्।
क्रीं हुं ह्लीं दक्षिणे कालिके क्रीं हुं ह्लीं दहनप्रिया ।।९४३।।

पूजनं पूर्ववत्प्रोक्तं न्यासध्यानजपादिकम् ।
विशेषान्नसुरादीनामयमाकर्षणक्षमः ॥१४४॥

चतुर्दशाक्षर मन्त्र—अब मैं चौदह अक्षरों वाले उत्तम मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—क्रीं हुं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं हुं ह्रीं स्वाहा। इस मन्त्र के पूजन, न्यास, ध्यान, जप आदि पूर्ववत् कहे गये हैं। यह मन्त्र विशेषतया अन्न-सुरा आदि के आकर्षण में समर्थ होता है।।१४३-१४४।।

हुं हुं त्रिः क्रीं द्विश्च लज्जा दक्षिणे कालिके पुनः ।
हुं च त्रिर्द्विश्च लज्जा स्वाहेत्याकृतिवर्णवान् ॥१४५॥
न्यासपूजादिकं प्राग्वद्विशेषेण वशीकृतिः ।
जपादेतस्य भूतिश्च सर्वमन्यत्तु पूर्ववत् ॥१४६॥

विंशाक्षर मन्त्र—बीस अक्षरों का मन्त्र है—हुं हुं क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके हुं हुं हुं ह्रीं ह्रीं स्वाहा। इस मन्त्र के न्यास-पूजन आदि पूर्ववत् होते हैं। इस मन्त्र के जप से साधक को विशेषतया वशीकरण एवं अलौकिक शक्ति की प्राप्ति होती है। अन्य समस्त क्रियायें पूर्ववत् होती हैं।।१४५-१४६।।

क्रीं क्रीं क्रीं हुँ समुच्चार्य हुंलज्जाद्वयमुच्चरेत् ।
दक्षिणे कालिके स्वाहा नृपवर्णः प्रकीर्त्तितः ॥१४७॥
मन्त्रराजोऽयमाख्यातः पूर्ववत्स्यादुपासना ।
विशेषाद्भ्रष्टराज्यानामयं राज्यप्रदो मतः ॥१४८॥

षोडशाक्षर मन्त्र—सोलह अक्षरों का मन्त्र है—क्रीं क्रीं क्रीं हुं हुं हुं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा। यह मन्त्रराज कहा गया है। इसकी उपासना पूर्ववत् होती है। यह मन्त्र विशेषकर राज्यभ्रष्ट लोगों को राज्य प्रदान करने वाला होता है।।१४७-१४८।।

क्रीमित्येकाक्षरो मन्त्रः कालिकायाः प्रकीर्तितः ।
जपेत्कृष्णाचतुर्दश्यां शून्यागारे मनुं निशि ।
उपवासपरश्चैवमेकाहात् सिद्धिमाप्नुयात् ॥१४९॥
यद्वा श्मशाने विपिने जपेल्लक्षं तु वाग्यतः ।
आर्द्रोष्णीष आर्द्रवासास्तेन मन्त्रः प्रसिध्यति ॥१५०॥
होमश्चात्र घृतेनैव तर्पणादि ततश्चरेत् ।
अथवा प्रजपेन्मन्त्रं श्मशाने विगतज्वरः ॥१५१॥
निशाभोजी दशांशेन तिलैर्हवनमाचरेत् ।
जपपूजादिकं प्राग्वद्विशेषाद्भोगमोक्षदम् ॥१५२॥

एकाक्षर मन्त्र—'क्रीं' को कालिका का एकाक्षर मन्त्र कहा गया है। कृष्णपक्ष चर्तुदशी की रात्रि में जनशून्य गृह में निराहार रहकर मन्त्रजप करने से एक दिन में ही इसकी सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

अथवा वन-स्थित श्मशान में भीगी पगड़ी बाँध करके भीगे वस्त्र धारण करके मौन होकर मन्त्र का एक लाख जप करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है। जप के पश्चात् घृत से हवन करके तर्पण करना चाहिये।

अथवा रात्रि में भोजन करके सजग होकर श्मशान में जाकर मन्त्र का जप करके तिलों से कृत जप का दशांश हवन करना चाहिये। जप-पूजा आदि पूर्ववत् किया जाता है। यह मन्त्र विशेषतया भोग एवं मोक्ष देने वाला होता है।।९४९-९५२।।

क्रीमुक्त्वा कालिके स्वाहा षडर्णो मन्त्र ईरितः।
न्यासपूजादिकं प्राग्वद्विशेषाद् भोगदो मतः ।।९५३।।

षडक्षर मन्त्र—'क्रीं कालिके स्वाहा' यह काली का षडक्षर मन्त्र कहा गया है। इसके न्यास-पूजन आदि पूर्ववत् होते हैं। यह मन्त्र विशेषतया भोग प्रदान करने वाला कहा गया है।।९५३।।

क्रीं हुं ह्रीं त्र्यक्षरात्मायं मन्त्रः काल्याः प्रकीर्तितः।
प्राग्वज्जपादिकं चास्य विशेषात्सन्ततिप्रदः ।।९५४।।

त्र्यक्षर मन्त्र—काली का तीन अक्षरों का मन्त्र कहा गया है—क्रीं हुं ह्रीं। इसके जप आदि पूर्ववत् होते हैं। यह मन्त्र विशेषतया सन्तति प्रदान करने वाला होता है।।९५४।।

कालीबीजं च हुं माया हुं फट् पञ्चाक्षरो मनुः।
न्यासध्यानादिकं प्राग्वद्विशेषाद्भूतनाशनः ।।९५५।।

पञ्चाक्षर मन्त्र—काली का पञ्चाक्षर मन्त्र है—क्रीं हुं ह्रीं हुं फट्। इसके न्यास-ध्यान आदि पूर्ववत् होते हैं। यह मन्त्र विशेषतया भूतों का विनाश करने वाला होता है।।९५५।।

क्रीं हुं ह्रीं च हुं फट् स्वाहान्तः सप्ताक्षरो मतः।
प्राग्वन्यासादिकं सर्वं विशेषाच्छान्तिकारकः ।।९५६।।

सप्ताक्षर मन्त्र—क्रीं हुं ह्रीं हुं फट् स्वाहा—यह काली का सप्ताक्षर मन्त्र कहा गया है। इसके न्यास-ध्यान आदि सबकुछ पूर्ववत् ही होते हैं। यह मन्त्र विशेषतया शान्तिकारक होता है।।९५६।।

धूमावतीमन्त्रसाधनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि धूमावत्या मनुं परम्।
धूं धूं धूमावति स्वाहा मन्त्रोऽष्टाक्षर ईरितः ॥९५७॥
पिप्पलादो मुनिश्छन्दो निवृज्ज्येष्ठास्य देवता।
षड्दीर्घबिन्दुयुक्तेन धकारेण षडङ्गकम् ॥९५८॥
आद्यबीजद्वयान्तस्थैः षडर्णैर्न्यासमाचरेत्।
अङ्गुष्ठादिषडङ्गेषु पुनर्देवीं विचिन्तयेत् ॥९५९॥
विवर्णां चञ्चलां कृष्णां दीर्घां च मलिनाम्बराम्।
विमुक्तकुन्तलां दीर्घां विधवां विरलद्विजाम् ॥९६०॥
काकध्वजरथारूढां विलम्बितपयोधराम्।
शूर्पहस्तां तु रूक्षाक्षीं धूतहस्तां त्वरान्विताम् ॥९६१॥
प्रवृद्धरोम्णीं तु भृशं जटिलां कुटिलेक्षणाम्।
क्षुत्पिपासार्दितां नित्यं सदा कलहतत्पराम् ॥९६२॥
एवंविधां सदा ध्यायेत्ततः कर्म समाचरेत्।

धूमावती मन्त्र-साधन—अब मैं धूमावती के श्रेष्ठ मन्त्र को कहता हूँ। धूमावती का अष्टाक्षर मन्त्र है—धूं धूं धूमावति स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि पिप्पलाद, छन्द निवृत् एवं देवता ज्येष्ठा कही गयी हैं। धकार के छः दीर्घ स्वरूपों (धां धीं धूं धैं धौं धः) से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये। करन्यास इस प्रकार करना चाहिये—धूं धूं अंगुष्ठाभ्यां नमः, धूं तर्जनीभ्यां नमः, मां मध्यमाभ्यां नमः, वं अनामिकाभ्यां नमः, तिं कनिष्ठाभ्यां नमः, स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। इसके बाद इस प्रकार देवी का ध्यान करना चाहिये—कुरूप, चञ्चल, कृष्ण वर्ण वाली एवं लम्बी; मलिन वस्त्र धारण की हुई, विखरे लम्बे बालों वाली, विधवा, विरल (एकाध) दाँतों वाली, काकरूपी ध्वज वाले रथ पर आरूढ़, लटके स्तनों वाली, हाथों में सूप ली हुई, रूक्ष आँखों वाली, काँपते हाथों वाली, शीघ्रता-पूर्वक चलने वाली, बढ़े हुये अत्यधिक रोमों वाली, जटाधारिणी, कुटिल दृष्टि वाली, भूख-प्यास से अहर्निश व्याकुल रहने वाली, सदा कलहकारिणी—इस प्रकार की देवी का बराबर ध्यान करना चाहिये। तदनन्तर पूजनकर्म का आरम्भ करना चाहिये।।९५७-९६२।।

पूर्वोक्ते पूजयेत्पीठे ज्येष्ठां शत्रुनिवर्तने ॥९६३॥
केशरेषु षडङ्गानि पत्रस्था अष्ट शक्तयः।
क्षुधा तृषा रतिर्निद्रा निर्ऋतिर्दुर्गतीरुषा।
अक्षमेति ततो देवा इन्द्राद्या आयुधान्विताः ॥९६४॥

एवं ज्येष्ठां समाराध्य सिद्धमन्त्रः प्रजायते।
उपोष्य कृष्णभूताहे नग्नो मुक्तशिरोरुहः।
शून्यागारे श्मशाने वा कान्तारे भूधरेऽथवा ॥१६५॥
प्रत्यहं प्रजपेन्निर्भीर्ध्यायेद्देवीं शवासनाम्।
एवं लक्षं जपेन्मन्त्रं नाशयेदचिरादरीन् ॥१६६॥
जुहुयाल्लवणोपेतां राजिकां निशि तत्फलम् ॥१६७॥

शत्रु-निवृत्ति के लिये पूर्वोक्त पीठ पर जेष्ठा का पूजन करने के पश्चात् केशरों में षडङ्ग-पूजन करना चाहिये। इसके बाद अष्टदल में क्षुधा, तृषा, रति, निद्रा, निर्ऋति, दुर्गति, उषा एवं अक्षमा—इन आठ शक्तियों का पूजन करके भूपुर में आयुधों से समन्वित इन्द्रादि दश दिक्पालों का पूजन करना चाहिये। पूजन यन्त्र इस प्रकार का होता है—
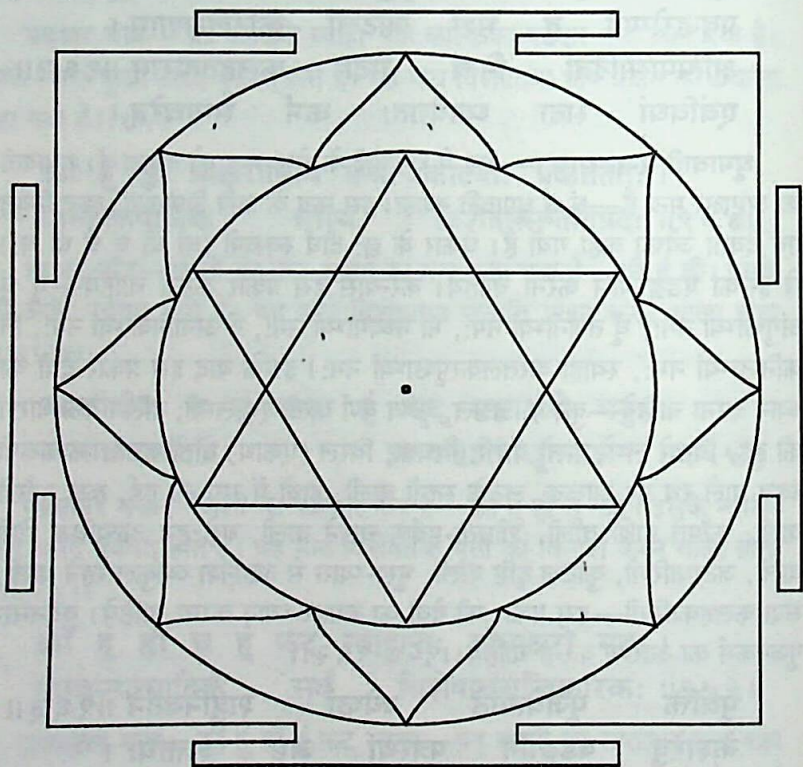
इस प्रकार से ज्येष्ठा की आराधना करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

कृष्ण पक्ष के मंगलवार को उपवास करके निर्वस्त्र होकर शिर के बालों को खोलकर सूने भवन में, श्मशान में, जंगल में या पर्वत पर निर्भयता-पूर्वक शव पर आरूढ़ होकर देवी का ध्यान करते हुये प्रतिदिन मन्त्र का एक लाख जप करने से शीघ्र ही शत्रुओं का विनाश हो जाता है। रात्रि में लवण-युक्त राई का हवन करने से भी वही फल प्राप्त होता है।।९६३-९६७।।

आख्यापर्यन्तमालिख्य तत्र स्थाप्य शिवं यजेत्।
अवष्टभ्य शिवं शत्रुनाम्नाथ प्रजपेन्मनुम्।
सहस्त्रादूर्ध्वतः शत्रुज्वरेण परिगृह्यते ।।९६८।।
पञ्चगव्येन शान्तिः स्याज्ज्वरस्य पयसापि वा।
मन्त्राद्यक्षरमालिख्य शत्रुनाम ततः परम्।
द्वितीयान्तं मनौ शत्रोर्नामैवं मनुमालिखेत् ।।९६९।।
रणेऽयुतजपाच्छत्रोर्निश्चितं मरणं भवेत्।
कृत्वा यन्त्रे रिपोराख्यामारण्ये पद्मिनीदले।
उन्मादो जायते शत्रोर्मनोरयुतजापतः ।।९७०।।

शत्रु का पूरा नाम लिखकर वहीं पर शिव को स्थापित करने के बाद उनका पूजन करके शिव का स्पर्श करके मन्त्र के प्रारम्भ में शत्रु का नाम जोड़कर एक हजार से अधिक जप करने से शत्रु ज्वर से ग्रसित हो जाता है। पश्चात् पञ्चगव्य अथवा दूध पिलाने से उस ज्वर की शान्ति हो जाती है।

मन्त्र के पहले अक्षर के बाद शत्रु का नाम लिखकर दूसरे अक्षर के बाद पुनः शत्रु का द्वितीयान्त नाम लिखने के पश्चात् सम्पूर्ण मन्त्र लिखकर उसका दस हजार जप करने से युद्ध में शत्रु की निश्चित मृत्यु होती है। जंगल में कमल के पत्ते पर शत्रु का नाम पूर्वोक्त प्रकार से यन्त्र में लिखकर दस हजार जप करने से शत्रु उन्मत्त (पागल) हो जाता है।।९६८-९७०।।

दग्ध्वा कङ्कं श्मशानाग्नौ तद्भस्मादाय मन्त्रितम्।
विरोधिनाम्नाष्टाशासु क्षिप्रमुच्चाटनं रिपोः ।।९७१।।
श्मशानभस्मना कृत्वा शिवं तस्योपरि न्यसेत्।
विरोधि नाम संरुद्धं कृष्णपुष्पैः समर्चयेत् ।।९७२।।
महिषीक्षीरधूपं च दद्याच्छत्रुविपत्करम्।
महिषीरूपेणागत्य स्वप्ने शत्रुं विनाशयेत् ।।९७३।।
मन्त्रेणानेन संलिख्य तद्भस्म रिपुमन्दिरे।
समुच्चाटयते तूर्णं नात्र कार्या विचारणा ।।९७४।।

न्यस्य पाणितले शत्रोराख्यानं चितिभस्मना।
वह्नावधोमुखः क्रुद्धस्तापयेदयुतं जपन्।
धूमावतीमनुं मन्त्री शत्रुर्यमपुरं व्रजेत्॥९७५॥
प्राग्वत्करतले नामार्द्धद्वयं तु रिपोर्न्यसेत्।
जलस्थः प्रजपेन्मन्त्रं हुंकाराद्नाशयेदरीन्॥९७६॥

बगुले को चिता की अग्नि में जलाकर उसके भस्म को लेकर मन्त्र से अभिमन्त्रित करके शत्रु के नाम से आठो दिशाओं में प्रक्षिप्त कर देने से शीघ्र ही शत्रु का उच्चाटन हो जाता है।

चिताभस्म से शिवलिङ्ग बनाकर उसे भस्म के ऊपर रखकर शत्रुनाम से संरुद्ध कृष्णपुष्पों से उसका सम्यक् रूप से अर्चन करके भैंस का दूध एवं धूप प्रदान करने से शत्रु विपत्ति में पड़ जाता है और देवी स्वप्न में महिषीरूप में आकर शत्रु का विनाश कर देती हैं।

चिताभस्म से इस मन्त्र को लिखकर उस भस्म को शत्रु के घर में फेंक देने से शीघ्र ही शत्रु का उच्चाटन हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये।

चिताभस्म से शत्रु का नाम हथेली पर लिखकर क्रुद्ध होकर अग्नि के ऊपर अधोमुख हथेली को तप्त करके धूमावती मन्त्र का दस हजार जप करता हुआ मन्त्रज्ञ साधक शत्रु को यमपुरी भेज देता है।

पूर्ववत् करतल में दो शत्रुओं के नामार्द्ध को लिखकर जल में खड़े होकर मन्त्रजप करके हुंकार करने से शत्रुओं का नाश हो जाता है।।९७१-९७६।।

श्मशानभस्मना लिङ्गं कृत्वा पुष्पादिनार्चयेत्।
भगवन्निति सम्भाष्य मनसा कर्म चिन्तयेत्॥९७७॥
निम्बकाकच्छदानेकीकृत्य चाष्टशतं जपेत्।
दद्याद्धूपं साध्यनाम्ना सद्यो विद्वेषयेदरीन्।
चिताकाष्ठानले क्षीरहोमाच्छान्तिः प्रजायते॥९७८॥
रजोधूमप्रदानेन गृध्ररूपेण कालिका।
मारयत्यरिमागत्य शान्तिर्निर्माल्यधूपतः॥९७९॥
वाराहबालधूपेन हन्याच्छूकररूपिणी।
अश्वत्थपत्रधूपेन शान्तिर्भवति नान्यथा॥९८०॥
शान्तिः सर्वाभिचारस्य पञ्चगव्येन जायते।
क्षीरेण शान्तिर्भवति मधुरत्रितयेन वा॥९८१॥

चिताभस्म से शिवलिङ्ग का निर्माण करके पुष्पों से उनका पूजन करने के बाद 'भगवन्' बोलकर मन में कार्य का चिन्तन करके नीम एवं काकच्छदों (अलकों) को एक में मिलाकर आठ सौ बार मन्त्रजप करके साध्य के नाम से धूप देने पर तत्काल ही शत्रुओं में विद्वेष हो जाता है। पुनः चिताकाष्ठ की अग्नि में दूध का हवन करने से शान्ति होती है।

रजोधूम प्रदान करने से काली गिद्धरूप में आकर शत्रु को ताड़ित करती है। पुनः निर्माल्य का धूप प्रदान करने से उसकी शान्ति होती है।

शूकर के बालों से धूप देने पर देवी शूकररूप में आकर शत्रु को मारती है। पीपल के पत्तों से धूप देने पर ही उसकी शान्ति होती है; अन्यथा नहीं।

पञ्चगव्य से समस्त अभिचारकर्मों की शान्ति होती है। केवल दूध से अथवा मधुरत्रय से भी अभिचारकर्मों की शान्ति होती है।।९७७-९८१।।

कीले क्ष्वेडतरोश्चापि शत्रोर्नाम समालिखेत्।
निर्दह्य मूलमन्त्रेण शत्रोर्नामाक्षराणि वै।
जप्त्वा पदद्वये मन्त्री खनेदुच्चाटनं रिपोः ।।९८२।।
शत्रुपादद्वयाद्धूलिं घृताक्तां भक्तमिश्रिताम्।
वायसेभ्यो बलिं दत्त्वा शत्रोरुच्चाटनं भवेत्।।९८३।।
शत्रुपादद्वयाद्धूलिं चिताभस्मयुतां क्षिपेत्।
शत्रुगेहेऽपि सञ्जप्तां शत्रोरुच्चाटनं भवेत्।।९८४।।
ज्येष्ठावासे श्मशाने वा निर्माल्यं पादगोचरम्।
गर्दभावासभूमौ वा प्रेतस्थाने चतुष्पथे।।९८५।।
ऊषरे मेहनोर्व्यां वा हदनस्थानमध्यकौ।
आनीय शर्करां मन्त्री दिग्वासा दक्षिणामुखः।
श्मशानस्थो विनिःक्षिप्य चिताग्नौ भर्जयेत्तथा।।९८६।।
मन्त्रं तं तु जपेल्लक्षं निक्षिपेच्छत्रुवेश्मनि।
सेनामध्येऽपि सर्वेषां क्षणादुच्चाटनं भवेत्।।९८७।।

विषवृक्ष की लकड़ी से कील बनाकर उस पर सम्यक् रूप से शत्रु का नाम लिखकर मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुये शत्रु के नामाक्षरों को अग्नि में जलाकर दोनों पैरों पर मन्त्रजप करके भूमि को खोदकर उस कील को गाड़ देने से मन्त्रज्ञ साधक शत्रु का उच्चाटन कर देता है।

शत्रु के दोनों पैरों की धूलि को घृताक्त करके भात में मिलाकर उससे कौओं को बलि प्रदान करने से शत्रु का उच्चाटन होता है।

शत्रु के दोनों पैरों की धूलि को चिताभस्म में मिलाकर मन्त्रजप से अभिमन्त्रित करके उसे शत्रु के घर में प्रक्षिप्त कर देने से शत्रु का उच्चाटन हो जाता है।

ज्येष्ठ अर्थात् परमेश्वर के आवास-स्थित अथवा श्मशान-स्थित पैरों पर चढ़ाये गये निर्माल्य अथवा गदहे के आवासस्थान, प्रेतस्थान, चौराहा, ऊषर भूमि, मूत्रयुक्त भूमि अथवा मलत्याग-स्थान के मध्य से धूलकणों को लाकर साधक निर्वस्त्र होकर दक्षिण की ओर मुख करके श्मशान-स्थित चिता की अग्नि में उस धूलकण को प्रक्षिप्त कर उसका भर्जन करे (भूँजे) और धूमावती मन्त्र का एक लाख जप करके उसे शत्रु के घर में अथवा सेना के मध्य में प्रक्षिप्त कर दे तो क्षणमात्र में ही सबका उच्चाटन हो जाता है।।९८२-९८७।।

गर्ते पिपीलिकानान्तु पादधूलियुतान् कणान्।
सघृतान् सप्तवारांस्तु जुहुयान्मन्त्रविन्निशि।
भ्रमते काकवत्सर्वा महीमावरणादिषु ।।९८८।।
कृत्वा प्रतिकृतिं शत्रोर्जन्मवृक्षेण मन्त्रवित्।
कृत्वा प्रतिष्ठां प्राणस्य विद्धा मर्मसु कण्टकैः।
आयासैर्मन्त्रमावृत्य वक्ष्यमाणैः प्रवेष्टयेत् ।।९८९।।
पूर्वोक्तशर्कराभिस्तु जप्त्वा नित्यं प्रतापयेत्।
सप्तरात्रेण तस्यापि भवेदुच्चाटनं ध्रुवम् ।।९९०।।
मुख्यशैलाह्वये लेख्यौ सारमेयवराहयोः।
मन्त्रेण दमितौ साध्यौ भौमवारोदये रवेः ।।९९१।।
धत्तूररससंयुक्तचिताङ्गारेण मन्त्रितम्।
व्यत्यस्य पृष्ठतो बद्ध्वा केशपाशेन तं जपेत् ।।९९२।।
श्मशाने शत्रुमार्गे वा तद्गृहे निखनेन्निशि।
विद्वेषणं भवेत्सद्यो गौरीशङ्करयोरपि ।।९९३।।
अश्वत्थत्वचि मन्त्रार्णैर्दर्मितं साध्यमालिखेत्।
अन्यद्विषतरोस्तद्वज्जपित्वोद्धृत्य विन्यसेत् ।।९९४।।
पूर्वोक्तकण्टकैर्विद्ध्वा जपेत्स्पृष्ट्वा शतं शतम्।
विद्विष्टौ भवतस्तौ च नाम्नामपि च तत्क्षणात्।
एते प्रयोगाः कथिता धूमावत्या मया सुराः ।।९९५।।

मन्त्रज्ञ साधक द्वारा रात्रि में शत्रु की पदधूलि से युक्त कणों को घृत के साथ मिलाकर चींटियों के गड्ढे में उनसे हवन करने से शत्रु सम्पूर्ण पृथिवीलोक में काक के समान घूमता रहता है।

मन्त्रज्ञ साधक शत्रु के जन्मवृक्ष की लकड़ी से उसकी प्रतिमा बनाकर उसमें शत्रु की प्राण-प्रतिष्ठा करके मन्त्रजप करते हुये उसके मर्मस्थानों को काँटों से विद्ध करके उन काँटों को प्रयत्न-पूर्वक उसके हृदय में प्रविष्ट कराकर प्रतिदिन मन्त्रजप करके पूर्वोक्त धूलकणों को अग्नि में तप्त करे। सात रात्रियों तक ऐसा करने से उस शत्रु का भी निश्चित उच्चाटन हो जाता है।

मंगलवार को सूर्योदय के समय प्रधान प्रस्तरखण्ड पर सारमेय (कुक्कुर) एवं वराह को लिखकर मन्त्रजप-पूर्वक उसे दबा देने के बाद धत्तूर के रस में चिता का अङ्गार मिलाकर अपने केश को उलटे हाथ से बाँधकर मन्त्रजप करके रात्रि में उस धत्तूररस और अङ्गार को श्मशान में अथवा शत्रु के मार्ग में अथवा शत्रु के घर में गाड़ देने से साक्षात् गौरी एवं शंकर में भी सद्यः विद्वेषण हो जाता है; फिर सामान्य जन का तो कहना ही क्या है?

पीपल के छाल पर मन्त्र-जप से दमित साध्य का नाम लिखकर दूसरे विषवृक्ष की छाल को भी उसी प्रकार जप करके उखाड़कर वहीं पर रख दे। फिर पूर्वोक्त काँटे से उन दोनों को विद्ध करके दोनों का स्पर्श करके एक-एक सौ बार मन्त्र का जप करने से तत्क्षण ही उन दोनों का नाम लेने पर भी दोनों में विद्वेषण हो जाता है। हे देवताओं! इस प्रकार मैंने धूमावती के इन प्रयोगों को आप सबसे कहा।।९८८-९९५।।

भद्रकालीमन्त्रसाधनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि भद्रकाल्या महामनुम्।
ह्रौं कालीति महाकालि द्विः किणिः फड् वसुप्रिया।
चतुर्दशाक्षरो मन्त्रो भद्रकाल्या उदाहृतः ।।९९६।।
पदैः षड्भिः षडङ्गानि जातियुक्तानि कल्पयेत्।
ध्यातव्येयं सदा देवी भद्रकाली भयापहा ।।९९७।।
क्षुत्क्षामा कोटराक्षी च नाहं तृप्तेति वादिनी।
जम्बूफलाभदशना ज्वलत्पाशं च बिभ्रती।
मषीमुखी मुक्तकेशी जगद्ग्रसनलालसा ।।९९८।।
अशेषं कालिकातन्त्रे यत्प्रोक्तं तदिहापि च।
जपपूजाप्रयोगाद्यं यो विशेषः स उच्यते ।।९९९।।

आराध्य प्रजपेन्मन्त्रं नित्यमष्टोत्तरं शतम्।
रिष्टमाला विधातव्या जपार्थं सिद्धिमिच्छता।
इयं देवी महादेवी शत्रुविग्रहकारिणी ।।१०००।।
यथेष्टचेष्टया चिन्त्या धर्मकामार्थसिद्धिदा।

भद्रकाली मन्त्र-साधन—अब मैं भद्रकाली के महामन्त्र को कहता हूँ। भद्रकाली का चौदह अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—ह्रौं कालि महाकालि किणि किणि फट् स्वाहा। मन्त्र के छः पदों को जातियुक्त करके इसका षडङ्ग-न्यास करना चाहिये। भय को दूर करने वाली इस देवी भद्रकाली का सदा ध्यान करना चाहिये। भूख के कारण दुबली हुई, भीतर धँसी आँखों वाली, 'मैं तृप्त नहीं हूँ' इस प्रकार बोलने वाली, जामुन के फल के समान कान्तिमान दाँतों वाली, जलते हुये पाश को धारण की हुई, कृष्णवर्ण मुख वाली, विखरे बालों वाली एवं सम्पूर्ण जगत् को ग्रास बनाने की लालसा वाली देवी भद्रकाली का ध्यान करना चाहिये।

कालीतन्त्र में वर्णित जप-पूजन-प्रयोग आदि समस्त विधियाँ यहाँ भी करणीय होती हैं। उसके अतिरिक्त जो कुछ विशेष करणीय होता है, उसे यहाँ कहा जा रहा है। नित्य पूजा करके मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करना चाहिये। सिद्धि की कामना वाले को जप-हेतु रीठे की जपमाला बनानी चाहिये। यह महादेवी शत्रुविग्रहकारिणी है। धर्म, काम एवं अर्थ की सिद्धि प्रदान करने वाली इस देवी का अपनी अभीष्ट चेष्टा के अनुरूप चिन्तन करना चाहिये।।९९६-१०००।।

अथ मन्त्रान्तरं वक्ष्ये भद्रकाल्याः सुगोपितम्।
गृध्रकर्णि विरूपाक्षि लम्बस्तनि महोदरि ।।१००१।।
उत्पादयोत्पादयेति द्विधोपरिपदं भवेत्।
द्विधा वेत्ति पदं हुं फट् स्वाहा सप्ताग्निवर्णकः ।।१००२।।
पिप्पलादो मुनिः प्रोक्तो निवृच्छन्द उदाहृतम्।
भद्रकाली देवता स्याद् द्विरुत्पादय हृत्स्मृतम् ।।१००३।।
उपरिभ्यां शिरः प्रोक्तं वेत्तिभ्यां तु शिखा स्मृता।
हुंफड्भ्यां कवचं प्रोक्तं स्वाहयास्त्रमुदीरितम् ।।१००४।।
अतिरौद्रां महादंष्ट्रां भृशं दीर्घां कृशोदरीम्।
सुवृत्तनयनां शूरां दीर्घघोणां मदातुराम् ।।१००५।।
स्निग्धगम्भीरनिर्घोषां नीलजीमूतसन्निभाम्।
कुटिलभ्रुकुटीदीप्तां महारदनभीषणाम् ।।१००६।।

दष्टौष्ठकोपताम्राक्षीं रक्तदीर्घशिरोरुहाम्।
त्रिशूलव्यग्रदोर्दण्डां नरकीं पिप्पलाशिनीम्॥१००७॥
अतिरक्ताम्बरां देवीं रक्तमांसासवप्रियाम्।
शिरोमालाभूषिताङ्गीं पिबन्तीं शोणितासवम्॥१००८॥
नृत्यन्तीं च हसन्तीं च पिशाचगणसेविताम्।
पिशाचस्कन्धमारुह्य भ्रमन्तीं वसुधातले॥१००९॥
शङ्करस्य मुखोत्पन्नां योगिनीं योगवल्लभाम्।
इत्थम्भूतां भद्रकालीं मातृभिः परिवारिताम्॥१०१०॥
ध्यात्वा सम्यक्समाराध्य ततो मन्त्रं जपेद् बुधः।
अयुतं मन्त्रसिद्ध्यर्थं मातृकान्यासतत्परः॥१०११॥
घृतहोमं तथा कृत्वा तर्पणादि समाचरेत्।
धूमावत्या च यत्प्रोक्तमनयापि तदाचरेत्॥१०१२॥

अब भद्रकाली के अत्यन्त गुप्त एक अन्य मन्त्र को कहता हूँ। सैंतीस अक्षरों का मन्त्र है—गृध्रकर्णि विरूपाक्षि लम्बस्तनि महोदरि उत्पादयोत्पादय उपरि उपरि वेत्ति वेत्ति हुं फट् स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि पिप्पलाद, छन्द निवृत् एवं देवता भद्रकाली कही गई हैं। मन्त्र के 'उत्पादय उत्पादय' से हृदय में, 'उपरि उपरि' से शिर में, 'वेत्ति वेत्ति' से शिखा में, 'हुं फट्' से कवच में एवं 'स्वाहा' से अस्त्र में न्यास करना चाहिये।

तदनन्तर अत्यन्त भयंकर, विशाल दाढ़ वाली, अत्यधिक लम्बी, पतली उदर वाली, गोल-गोल सुन्दर आँखों वाली, शूकर के समान लम्बी नाक वाली, मद से आतुर, स्निग्ध गम्भीर गर्जन करने वाली, नीलजीमूत (बादल) के समान वर्ण वाली, दीप्त कुटिल भृकुटी वाली, बड़े-बड़े भीषण दाँतों वाली, क्रोध के कारण होठों को काटती हुई ताम्रवर्ण आँखों वाली, रक्तवर्ण लम्बे बालों वाली, व्यग्र पतले हाथों में त्रिशूल धारण की हुई, नरक (दूषित स्थान) में निवास करने वाली, पिप्पल का भक्षण करने वाली, अत्यन्त रक्त वस्त्र धारण करने वाली, रक्त-मांस एवं आसव (सुरा) की प्रिया, मुण्डमाला से भूषित अंगों वाली, रक्त एवं आसव का पान करती हुई, नृत्य एवं हास में रत पिशाचों द्वारा सेवित, पिशाच के कन्धे पर आरूढ़ होकर पृथिवीतल पर भ्रमण करती हुई, शङ्कर के मुख से उत्पन्न, योगिनी, योगप्रिया, अष्टमातृकाओं द्वारा घिरी हुई—इस प्रकार की भद्रकाली का ध्यान करके उनका सम्यक् रूप से पूजन करने के पश्चात् मन्त्र की सिद्धि के लिये मातृका-न्यास करके मन्त्र का दस हजार जप करके घृत से हवन करने के उपरान्त तर्पण आदि करना चाहिये; साथ ही धूमावती-साधन में कथित क्रियाओं को यहाँ भी करना चाहिये।।१००१-१०१२।।

उक्तः प्रयोग एवात्र विशेषविधिरुच्यते।
आज्याप्लुतं तु निर्दोषमेकमूलं वनान्तरात्।
विषवृक्षं समादाय ततो होमं समाचरेत् ॥१०१३॥
शून्यागारे वने वापि कुण्डं कृत्वा त्रिकोणकम्।
विषवृक्षेन्धनेनाग्निं प्रज्वाल्यावाहयेत्सुधीः ॥१०१४॥
ततो दण्डं जपेन्मन्त्री विषवृक्षस्य साधकः।
अष्टोत्तरशतं वह्नौ तं दण्डं निक्षिपेद् बुधः ॥१०१५॥
सुविनीतं द्विजं वीरं कृत्वा चोत्तरसाधकम्।
दिक्षु सर्वासु संस्थाप्याः स्वभेदाः खड्गहस्तकाः ॥१०१६॥
कृतरक्षः समाराध्य वह्निं क्रोधसमन्वितः।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा दण्डाग्रं जातवेदसि ॥१०१७॥
दत्त्वा सिद्धार्थकैर्मन्त्री जुहुयात्सवनद्वयम्।
तैलोक्षितैश्च होमान्ते दिक्पालबटुयोगिनीः।
अग्न्यादींचापि सन्तोष्य बलिदानेन देवताम् ॥१०१८॥
ध्यायेच्च प्रलयोदग्रमेधाभां रक्तनेत्रिकाम्।
शूलाग्रप्रोतसिंहां च नरमालाविभूषिताम् ॥१०१९॥
तीक्ष्णदंष्ट्रा रक्तमधुमत्ता चैव भयानकाम्।
उल्काहस्तां शत्रुसङ्घं शिलायां निघ्नतीं मुहुः ॥१०२०॥
भावयित्वा करेणोल्कां दक्षिणेन रिपून्मुखीम्।
गत्वा दूरेण विसृजेत्तं दण्डं ध्यानमास्थितः ॥१०२१॥
सुसहायस्ततस्तीर्थं गच्छेत्पश्चात्तु वाग्यतः।
स्नात्वावश्यं शुचिर्भूत्वा कण्ठमात्रोदके स्थितः ॥१०२२॥
जपेत्सुदर्शनं दुर्गां सावित्रीं च समाहितः।
अष्टोत्तरसहस्रन्तु जपेदन्यच्छतं शतम् ॥१०२३॥

इससे भी वही प्रयोग किये जाते हैं, जो धूमावती मन्त्र से किये जाते हैं। अब यहाँ पर विशेष विधि को कहा जा रहा है। दूसरे वन से विषवृक्ष का एक निर्दुष्ट मूल (डण्डा) लाकर उसे घृत से प्लुत करके हवन करना चाहिये। एतदर्थ विद्वान् साधक को जनशून्य गृह में अथवा जंगल में त्रिकोण कुण्ड बनाकर उसमें विषवृक्ष की लकड़ी से अग्नि प्रज्वलित करने के बाद वहीं पर देवी का आवाहन करना चाहिये। तदनन्तर विषवृक्ष के डण्डे को एक सौ आठ मन्त्रजप से अभिमन्त्रित करके उस अग्नि में डाल

देना चाहिये। कुण्ड की रक्षा के लिये सभी दिशाओं में विनीत खड्गहस्त द्विज वीरों को खड़ा करके क्रोध-पूर्वक अग्नि की सम्यक् रूप से आराधना करने के पश्चात् मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करके डण्डे के अग्रभाग को अग्नि में ड़ालकर मन्त्रज्ञ साधक को दोनों सवन में तैलोक्षित (तेल से सिञ्चित) सिद्धार्थों (श्वेत सरसो) से हवन करना चाहिये। हवन के अन्त में दिक्पाल, बटुक, योगिनी, अग्नि आदि को बलि प्रदान करके सन्तुष्ट करने के बाद देवता का ध्यान करना चाहिये।

प्रलयकालीन मेघ के समान कान्ति वाली, रक्त नेत्रों वाली, शूल के अग्रभाग पर सिंह को उठायी हुई, नरमुण्ड़ों की माला से विभूषित, नुकीले दाढ़ों वाली, रक्त एवं मधु के पान से मत्त, अतिशय भयानक, हाथ में मशाल ली हुई, शत्रुओं को बार-बार शिला पर पटकती हुई देवी का चिन्तन करके शत्रु की ओर उन्मुख उल्का (मशाल)-रूपी उस दण्ड़ को दाहिने हाथ से पकड़कर दूर जाकर विसर्जित कर देना चाहिये अर्थात् फेंक देना चाहिये।

इसके बाद ध्यानावस्थित सहायकों के साथ तीर्थ में जाकर मौनावलम्बन करके स्नान करने के पश्चात् पवित्र होकर कण्ठ-पर्यन्त जल में खड़े होकर एकाग्रता-पूर्वक सुदर्शन, दुर्गा एवं सावित्रीमन्त्र का एक हजार आठ बार जप करने के बाद अन्य मन्त्रों का एक-एक सौ की संख्या में जप करना चाहिये।।१०१३-१०२३।।

उष्णीषवासा आच्छाद्य ससहायः सुरालयम्।
गत्वा तु महतीं पूजा कृत्वा देवस्य चक्रिणः।
पादयुग्मं समालम्ब्य वर्णलक्षं जपेन्मनुम्॥१०२४॥
तावज्जप्त्वा घटैः सम्यगभिषिञ्चेत्स्वकं वपुः।
दक्षिणां विधिवद्दत्त्वा शान्तिहोमञ्च कारयेत्॥१०२५॥
यद्वा दुर्गालये लक्षं सावित्रीये तथैव च।
कृत्वाभिषेकं ताभ्यान्तु शक्तितो भोजयेद् द्विजान्॥१०२६॥
दक्षिणां शक्तितो दद्यात्सिद्धो भवति साधकः।
रुद्रदण्डप्रयोगोऽयं दारुणोरगसूदनः॥१०२७॥

पगड़ी से शिर को ढँककर सहायकों के सहित देवालय में जाकर चक्री अर्थात् विष्णु की महती पूजा करने के बाद उनके दोनों पैरों का अवलम्ब ग्रहण करके मन्त्र का वर्णलक्ष अर्थात् सैंतीस लाख जप करना चाहिये। तदनन्तर स्थापित घट के जल से अपने शरीर को सम्यक् रूप से अभिषिक्त करने के पश्चात् विधिवत् दक्षिणा प्रदान करने के बाद शान्तिहवन करना चाहिये।

फिर दुर्गा-मन्दिर में दुर्गामन्त्र का एवं सावित्री-मन्दिर में सावित्री-मन्त्र का एक-एक लाख जप करके दोनों जगहों पर स्वयं का अभिषेक करने के बाद अपनी शक्ति के अनुरूप ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये। इसके बाद उन ब्राह्मणों को यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करने से साधक सिद्ध हो जाता है। यह रुद्रदण्ड-नामक प्रयोग दारुण सर्पों का विनाशक होता है।।१०२४-१०२७।।

बिभीतकफले शत्रोर्लिखेन्नाम विदर्भितम्।
मन्त्रं जप्त्वा सहस्रन्तु खनेत्पीतावनौ पुनः।
उच्चाटनं भवेत्क्षिप्रमचलस्यापि किं नृणाम् ॥१०२८॥
धत्तूरबीजचूर्णेन बिभीतकफले तथा।
त्रिकोणेऽरिप्रतिकृतिं लिखेत्सम्यगधोमुखीम् ॥१०२९॥
अष्टोत्तरसहस्रन्तु जप्त्वा तां निखनेत्पुनः।
पादपातो यथा शत्रोः स्यात्तथोच्चाटयेद्बलात् ॥१०३०॥

बहेडे के फल पर मन्त्र-विदर्भित शत्रु का नाम लिखकर मन्त्र का एक हजार जप करने के पश्चात् उस नामाङ्कित विभीतकफल को पीली भूमि में खनकर गाड़ देने से शीघ्र ही अचल पर्वतों का भी उच्चाटन हो जाता है; फिर मनुष्यों की तो बात ही क्या है?

बहेड़े के फल पर धत्तूरबीज के चूर्ण से त्रिकोण बनाकर उस त्रिकोण में शत्रु की अधोमुख प्रतिमा बनाकर मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करने के बाद उस प्रतिकृति को ऐसे स्थान पर मिट्टी में दबा दे, जहाँ पर शत्रु का पैर उसपर पड़ जाय। उस पर पैर पड़ते ही बलात् शत्रु का उच्चाटन हो जाता है।।१०२८-१०३०।।

महाकालीमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महाकालीमनुं परम्।
ॐ क्ष्रैं क्ष्रैं क्रेमतः क्रें च पशुं गृहाण चोच्चरेत् ॥१०३१॥
हुं फट् स्वाहा शक्रवर्णः सिद्धमन्त्रः उदाहृतः।
नास्य मुन्यादिकन्यासः सिद्धमन्त्रस्य विद्यते ॥१०३२॥
कृष्णतोयेन सम्पूर्णे घटे चाहूय कालिकाम्।
ब्राह्म्यादिभिश्च दूतीभिर्युक्तां सम्पूज्य भक्तितः ॥१०३३॥
अष्टमीं चण्डिकां स्तोत्रदेवीं ध्यायेद् गृहे पुनः।
पञ्चवक्त्रां महारौद्रीं प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनाम् ॥१०३४॥
शक्तिशूलधनुर्बाणखेटखड्गवराभयान्।
वामदक्षभुजैर्देवीं बिभ्राणां भोगिभूषणाम् ॥१०३५॥

वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं वामाचारेण साधकः ।
पिचुमन्दस्य समिधो घृताक्ता जुहुयात्ततः ॥१०३६॥
हुत्वा प्रज्वलिते वह्नौ तर्पणादि ततश्चरेत् ।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री मारयेदचिराद्रिपून् ॥१०३७॥

महाकाली मन्त्र—अब महाकाली के श्रेष्ठ मन्त्र को कहता हूँ। चौदह अक्षरों का मन्त्र है—ॐ क्ष्रें क्ष्रें क्रें क्रें पशुं गृहाण हुं फट् स्वाहा। इस सिद्ध मन्त्र के ऋष्यादि न्यास नहीं होते।

काले जल से पूर्ण घड़े में काली का आवाहन करके दूतियों के सहित ब्राह्मी आदि देवियों का भक्ति-पूर्वक पूजन करने के बाद अष्टमी को पुनः अपने घर में अत्यन्त भयानक पाँच मुखों वाली, प्रतिमुख पर तीन नेत्रों वाली, बाँयीं एवं दाहिनी भुजाओं में क्रमशः शक्ति शील धनुष बाण खेट (मूसल) खड्ग वर एवं अभय धारण की हुई तथा सर्पों के आभूषण वाली चण्डिका का ध्यान करना चाहिये।

तदनन्तर साधक को वाममार्ग का आश्रयण करके मन्त्र का वर्णलक्ष अर्थात् चौदह लाख जप करने के उपरान्त घृत-सिक्त पिचुमन्द की समिधा से प्रज्वलित अग्नि में हवन करना चाहिये। इसके बाद तर्पण आदि करना चाहिये। इस प्रकार की क्रिया से मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर मन्त्रज्ञ साधक शीघ्र ही शत्रु का हनन करने में समर्थ हो जाता है।।१०३१-१०३७।।

प्रत्यङ्गिरामन्त्रः

देवीं प्रत्यङ्गिरां नाम सर्वापत्तिविघातिनीम् ।
स्मरेदनन्यमनसा मानवो मानमाप्नुयात् ॥१०३८॥
ॐ अं कं चं तथा टं पं यं शं ह्रां ह्रीं समुच्चरेत् ।
ह्रूं स उक्त्वा हुं तथास्त्रं स्वाहान्तः षोडशाक्षरः ॥१०३९॥
मुनिर्विधाता छन्दोऽष्टिर्देवताः षट् प्रकीर्तिताः ।
महावायुर्महापृथ्वी महाकाशस्तथैव च ॥१०४०॥
महासमुद्रनामा च महापर्वत एव च ।
महाग्निश्चेति ह्रूं बीजं ह्रीं शक्तिः परिकीर्तिता ॥१०४१॥
लज्जया तु षडङ्गानि षट्दीर्घान्वितया चरेत् ।
मन्त्रदेवांस्ततो मन्त्री ध्यायेत्सुस्थिरमानसः ॥१०४२॥

प्रत्यङ्गिरा मन्त्र—समस्त आपत्तियों का समूल नाश करने वाली देवी प्रत्यङ्गिरा

का अनन्य मन से स्मरण करने वाला मनुष्य लोक में सम्मान प्राप्त करता है। प्रत्यङ्गिरा का षोडशाक्षर मन्त्र है—ॐ अं कं चं टं पं यं शं ह्रां ह्रीं ह्रूं सः हुं फट् स्वाहा।

इस मन्त्र के ऋषि विधाता, छन्द अष्टि एवं देवता महावायु, महापृथ्वी, महाकाश, महासमुद्र, महापर्वत तथा महाग्नि—ये छः हैं। इसका बीज हूं एवं शक्ति ह्रीं कहा गया है। लज्जाबीज (ह्रीं) के छः दीर्घ स्वरूपों (ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः) से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। तदनन्तर साधक को सुस्थिर मन से मन्त्र के देवताओं का ध्यान करना चाहिये।।१०३८-१०४२।।

तारररत्नार्चिराक्रान्तमम्भः प्रस्रवणैर्युतम् ।
व्याघ्रादिपशुभिर्व्याप्तं सानुयुक्तं गिरिं स्मरेत् ।।१०४३।।
मत्स्यकूर्मादिबीजाढ्यं नवरत्नसमर्चितम् ।
घनतोयं सकल्लोलमकूपारं विचिन्तयेत् ।।१०४४।।
ज्वालावलीसमाक्रान्तं जगत्त्रितयमद्भुतम् ।
पीतवर्णं महावह्निं संस्मरेच्छत्रुशान्तये ।।१०४५।।
स्वरात्समुत्थरेण्वौघमलिनमूर्ध्वभूविदम् ।
पवनं संस्मरेद्विश्वजीवनं प्राणरूपतः ।।१०४६।।
नदीपर्वतवृक्षादिकलिता ग्रामसङ्कुला ।
आधारभूता जगतो ध्येया पृथ्वीह मन्त्रिणा ।।१०४७।।
सूर्यादिग्रहनक्षत्रकालचक्रसमन्वितम् ।
निर्मलं गगनं ध्यायेत्प्राणिनामाश्रयप्रदम् ।।१०४८।।

विशाल रत्नों की किरणों से आक्रान्त, जलप्रवाहों से समन्वित, व्याघ्र आदि पशुओं से व्याप्त तथा प्रस्तरखण्ड़ों से युक्त पर्वत का स्मरण करना चाहिये।

मछलियों कछुओं आदि के बीज से सम्पन्न, नव रत्नों से सुपूजित एवं कल्लोल करते प्रचुर जल वाले समुद्र का चिन्तन करना चाहिये।

शत्रु की शान्ति के लिये ज्वालामाला से आक्रान्त एवं तीनों लोकों में अद्भुत पीत वर्ण वाली महान् अग्नि का संस्मरण करना चाहिये।

स्वरों से उत्पन्न रेणुओं से अन्तरिक्ष को मलिन करने वाले, विश्व के जीवनभूत, प्राण-स्वरूप पवन का स्मरण करना चाहिये।

नदी पर्वत वृक्ष आदि से विभूषित, ग्रामों के कारण अस्त-व्यस्त, जगत् के आधारभूत पृथिवी का मन्त्रज्ञ को ध्यान करना चाहिये।

सूर्य आदि ग्रहों, नक्षत्रों एवं कालचक्र से समन्वित, समस्त प्राणियों को आश्रय प्रदान करने वाले निर्मल आकाश का ध्यान करना चाहिये।।१०४३-१०४८।।

एवं षड् देवता ध्यात्वा सहस्राणि तु षोडश।
जपेन्मन्त्रं दशांशेन षड्द्रव्यैर्होममाचरेत् ।।१०४९।।
व्रीहींश्च सतिलानाज्यं सर्षपांश्च यवांस्तिलान्।
एतान्हुत्वा यथाभागं पीठे पूर्वोदिते यजेत् ।।१०५०।।
अङ्गदिक्पालवज्राद्यैरेवं सिद्धो भवेन्मनुः।

इस प्रकार छ: देवताओं का ध्यान करने के बाद मन्त्र का सोलह हजार जप करने के उपरान्त व्रीहि (चावल), तिल-सहित घृत, सरसो, यव एवं तिल—इन छ: द्रव्यों से भागानुसार कृत जप का दशां (छ: हजार) हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् पूर्वोक्त पीठ पर अर्चन करना चाहिये।
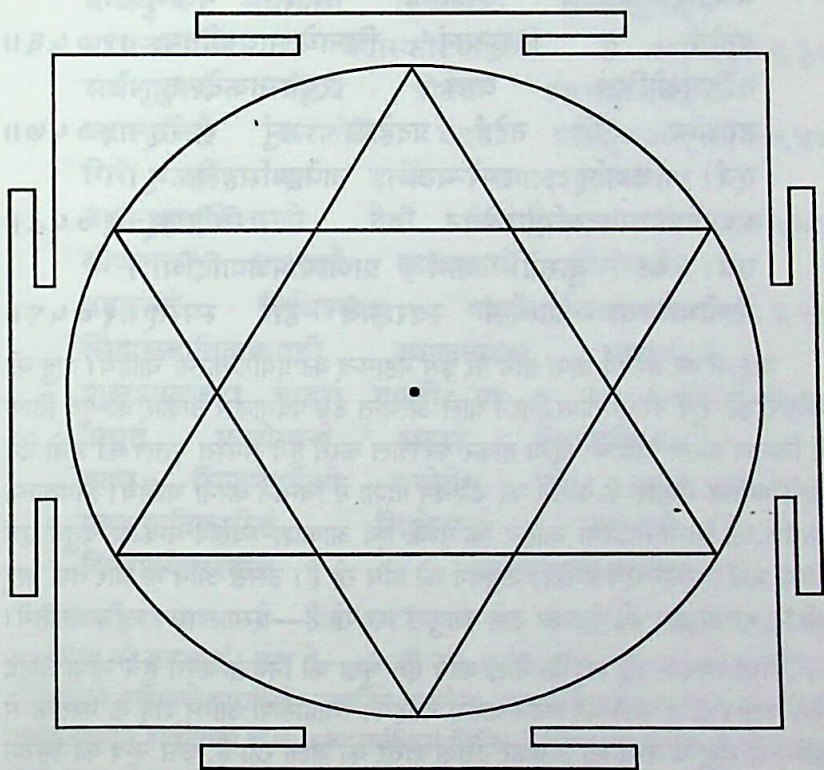
तदनन्तर अंग, दिक्पाल एवं उनके वज्र आदि आयुधों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार जप-पूजन आदि करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है।।१०४९-१०५०।।

शत्रूपद्रव आपन्ने युञ्जीतात्र महामनुम् ।।१०५१।।
अकारं पर्वताकारं धावन्तं शत्रुसम्मुखम् ।
पतनोन्मुखमत्युग्रं प्राच्यां दिशि विचिन्तयेत् ।।१०५२।।
ककारं क्षुब्धकल्लोलं प्लावितारिवलभूतलम् ।
समुद्ररूपिणं भीमं प्रतीच्यां दिशि चिन्तयेत् ।।१०५३।।
तुरीयपञ्चमाद्यर्णौः पृथ्वीगगनरूपिणौ ।
शत्रुवर्गं च बध्नन्तौ चिन्तयेन्नियतात्मवान् ।।१०५४।।
तदग्रिमं वर्मयुगं शत्रोर्निःश्वासपद्धतिम् ।
निरुन्धानं स्मरेन्मन्त्री विदधद्रिपुमाकुलम् ।।१०५५।।
मायादिवर्णत्रितयं शत्रोर्नेत्रे श्रुती मुखम् ।
प्रत्येकं तु निरुन्धानं चिन्तयेत्साधकोत्तमः ।।१०५६।।
वह्निसंक्षोभितं वस्त्रं रिपुमस्तकदेशतः ।
उत्थाप्य वह्निं तद्देहं प्रदहेत्स मनुं स्मरेत् ।।१०५७।।
एवं वर्णान् स्मरेन्मन्त्रं जपेद्वर्णसहस्रकम् ।
मण्डलत्रितयादर्वाग्दारयेत्तेन विद्विषम् ।।१०५८।।
एवं यः कुरुते कर्म प्राणायामजपादिभिः ।
संशोधयित्वा चात्मानं स्वरक्षायै हरिं स्मरेत् ।।१०५९।।

शत्रुओं का उपद्रव प्राप्त होने पर इस महामन्त्र का प्रयोग करना चाहिये। शत्रु की ओर दौड़ते हुये उसके ऊपर गिरने वाले अत्यन्त उग्र पर्वताकार अकार का पूर्व दिशा में चिन्तन करना चाहिये। क्षुब्ध होकर कल्लोल करते हुये समस्त भूतल को डूबो देने वाले भयंकर समुद्ररूपी ककार का पश्चिम दिशा में चिन्तन करना चाहिये। नियतात्मा साधक को चिन्तन करना चाहिये कि पृथ्वी एवं आकाश-स्वरूप मन्त्र के चतुर्थ एवं पञ्चम वर्ण (चकार एवं टकार) शत्रुवर्ग को बाँध रहे हैं। उससे आगे के चार वर्ण शत्रु की निःश्वासपद्धति को रोककर उसे व्याकुल कर रहे हैं—ऐसा स्मरण करना चाहिये।

श्रेष्ठ साधक को शत्रु के नेत्र, कान एवं मुख को निरुद्ध करते हुये माया आदि तीन वर्णों (ह्रीं हूं सः) का ध्यान करना चाहिये। स्वाहारूपी अग्नि शत्रु के मस्तक से अग्नि से संक्षुब्ध वस्त्र को उठाकर उसके शरीर को जला रही है, उस मन्त्र का स्मरण करना चाहिये। इस प्रकार मन्त्रवर्णों का स्मरण करते हुये सोलह हजार मन्त्रजप करने

वाला साधक तीन मण्डल (एक सौ बीस दिन) के भीतर इस मन्त्र से शत्रु को विदारित कर देता है। जो साधक इस प्रकार का कर्म करता है, उसे प्राणायाम-जप आदि के द्वारा अपनी आत्मा को शुद्ध करके अपनी रक्षा के लिये हरि का स्मरण करना चाहिये।।१०५१-१०५९।।

प्रत्यङ्गिरामालामन्त्रः

अथ प्रत्याङ्गिरामालामन्त्रः सिद्धः प्रकीर्त्यते।
ॐ ह्रीं नमः कृष्णवाससे स्तुते विश्वसहस्र ॥१०६०॥
हिंसिनि सहस्रावने महाबलेऽपराजिते।
प्रत्यङ्गिरे परसैन्यपर कर्मपदं वदेत् ॥१०६१॥
विध्वंसिनि परमन्त्रोत्सादिनीति ततो वदेत्।
सर्वभूतेति दमनि सर्वदेवान् वदेत्ततः ॥१०६२॥
बन्धयुग्मं सर्वविद्यां द्विश्छिन्धि क्षोभयद्वयम्।
परयन्त्राणीति वदेत्स्फोटयद्वितयं ततः ॥१०६३॥
सर्वशृङ्खलां त्रोटय त्रोटय ज्वलदुच्चरेत्।
ज्वालाजिह्वे करालेति वदने प्रत्यङ्गुच्चरेत् ॥१०६४॥
गिरे ह्रीं नम इत्येष सपादशतवर्णवान्।
ब्रह्मानुष्टुम्मुनिश्छन्दो देवी प्रत्यङ्गिरा मता ॥१०६५॥
बीजशक्ती तारमाये कृत्याकार्ये नियोजयेत्।
षडङ्गानां विधिश्चात्र षड्दीर्घान्वितमायया ॥१०६६॥
सिंहारूढातिकृष्णाङ्गी ज्वालावस्त्रा भयङ्करा।
शूलशस्त्रकरा खड्गं दधती या तु तां भजे ॥१०६७॥
अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं सहस्रं तिलराजिकाः।
हुत्वा सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगेषु शतं जपेत् ॥१०६८॥
ग्रहभूतादिकारिष्टं सिञ्चेन्मन्त्रं जपज्जलैः।
विनाशयेत्परकृतं यन्त्रमन्त्रादिसाधनम् ॥१०६९॥

प्रत्यङ्गिरा मालामन्त्र—अब प्रत्यङ्गिरा के एक सौ पच्चीस अक्षरों वाले सिद्ध मालामन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—ॐ ह्रीं नम: कृष्णवाससे स्तुते विश्वसहस्रहिंसिनि सहस्रावने महाबलेऽपराजिते प्रत्यङ्गिरे परसैन्य-परकर्मविध्वंसिनि परमन्त्रोत्सादिनि सर्वभूतदमनि सर्वदेवान् बन्ध बन्ध सर्वविद्यां छिन्धि छिन्धि क्षोभय क्षोभय परयन्त्राणि स्फोटय स्फोटय सर्वशृङ्खलां त्रोटय त्रोटय ज्वलज्ज्वालाजिह्वे करालवदने प्रत्यङ्गिरे ह्रीं नम:।

इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता प्रत्यङ्गिरा कही गया हैं। इसका बीज ॐ एवं शक्ति ह्रीं है तथा कृत्या-कार्य के लिये इसका विनियोग किया जाता है। मायाबीज (ह्रीं) के छः दीर्घ स्वरूपों (ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः) से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। इसका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—जो देवी सिंह पर आरूढ़ है, कृष्ण वर्ण शरीर वाली है, अग्निज्वालारूपी वस्त्रों वाली है, हाथों में शूल एवं खड्ग धारण की हुई है, उस भयंकर देवी का मैं स्मरण करता हूँ।

इस मन्त्र का दश हजार जप करके तिल एवं राई से एक हजार हवन करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है। तत्पश्चात् प्रयोगों के समय मन्त्रज्ञ साधक को मन्त्र का एक सौ बार जप करना चाहिये। इस मन्त्र से अभिमन्त्रित जल द्वारा अभिषेक करने से ग्रह, भूत आदि-सम्बन्धी अरिष्टों का तथा दूसरों के द्वारा किये गये यन्त्र-मन्त्रादि साधनों का विनाश हो जाता है।।१०६०-१०६९।।

चामुण्डामहामन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि चामुण्डाया महामनुम्।
नवदुर्गात्मकं यस्य सेवनाद् भुक्तिमुक्तिके ।।१०७०।।
सुरथो यत्प्रसादेन राज्यं प्राप्य भवेन्मनुः।
संसारबन्धनिर्नाशि ज्ञानमाप्तं समाधिना ।।१०७१।।
मार्कण्डेयपुराणोक्तचरित्रत्रितयस्तवः ।
जपाद्यस्य फलं दद्यात्तं मनुं वच्मि साम्प्रतम् ।।१०७२।।
वाग्लज्जाकामबीजानि चामुण्डायै पदं वदेत्।
विच्चे नवार्णमन्त्रोऽयं शक्तिमन्त्रोत्तमोत्तमः ।।१०७३।।
ब्रह्मविष्णुमहेशास्तु मुनयोऽस्य प्रकीर्तिताः।
गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च च्छन्दस्त्रयमुदीरितम् ।।१०७४।।
देव्योऽस्य तु महाकाली महालक्ष्मीः सरस्वती।
नन्दाशाकम्भरीभीमाशक्तित्रयमुदाहृतम् ।।१०७५।।
अस्य बीजत्रयं दुर्गा भ्रामरी रक्तदन्तिका।
अग्निवायुभगास्तत्त्वं प्राग्वदृष्यादिकं न्यसेत् ।।१०७६।।
स्तनयोः शक्तिबीजानि तत्त्वानि हृदये पुनः।

चामुण्डा महामन्त्र-कथन—अब मैं चामुण्डा के नवदुर्गात्मक महामन्त्र को कहता हूँ, जिसके सेवन से भोग एवं मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं। जिसकी कृपा से राज्य को प्राप्त करके सुरथ 'मनु' हुये थे और समाधि द्वारा संसार के समस्त बन्धनों का विनाश करने वाले ज्ञान को प्राप्त किया था।

मार्कण्डेय पुराण में कथित स्तुतिरूप तीन चरित्र जिस मन्त्र के जप से फल प्रदान करता है, उस मन्त्र को इस समय मैं कहता हूँ। 'ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' यह नवार्ण मन्त्र शक्तिमन्त्रों में सर्वश्रेष्ठ है। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश कहे गये हैं। तीन छन्द कहे गये हैं—गायत्री, उष्णिक् एवं अनुष्टुप्। महाकाली, महालक्ष्मी एवं महासरस्वती इसकी देवियाँ कही गई हैं। नन्दा, शाकम्भरी एवं भीमा—ये तीन शक्तियाँ कही गई हैं। दुर्गा, भ्रामरी एवं रक्तदन्तिका इसके तीन बीज हैं तथा अग्नि, वायु एवं भग—ये तीन तत्त्व हैं। इसका ऋष्यादि न्यास पूर्ववत् करना चाहिये। दोनों स्तनों में शक्तिबीजों का एवं हृदय में तत्त्वों का न्यास करना चाहिये।

तत एकादशन्यासान् कुर्यादिष्टफलप्रदान् ॥१०७७॥
प्रथमं मातृकान्यासं प्रागुक्तं च समाचरेत्।
कृतेन येन देवस्य सारूप्यं याति मानवः ॥१०७८॥
अथ द्वितीयं कुर्वीत न्यासं सारस्वताभिधम्।
बीजत्रयं तु मन्त्राद्यं तारादिहृदयान्तकम् ॥१०७९॥
षडक्षरो भवेन्मन्त्रो नवस्थानेषु विन्यसेत्।
कनिष्ठानामिकामध्यातर्जन्यङ्गुष्ठयुग्मके ॥१०८०॥
करमध्ये हस्तपृष्ठे मणिबन्धे च कूर्परे।
हृदयादिषडङ्गेषु जातियुक्तं पुनर्न्यसेत् ॥१०८१॥
अस्मिन् सारस्वते न्यासे कृते जाड्यं विनश्यति।
न्यासः कार्यः सप्तशत्याः पठेत्कामविशेषतः ॥१०८२॥

तत्पश्चात् अभीष्ट फल प्रदान करने वाले ग्यारह प्रकार के न्यासों को करना चाहिये। उनमें से सर्वप्रथम पूर्वोक्त मातृकान्यास को करना चाहिये; जिसके करने से मनुष्य देवता का सारूप्य प्राप्त करता है।

इसके बाद दूसरा सारस्वत न्यास करना चाहिये। मन्त्र के आदि के तीन बीज (ऐं ह्रीं क्लीं) हैं एवं 'नमः'-पर्यन्त (चामुण्डायै विच्चे) षडक्षर मन्त्र है। इस नवाक्षर मन्त्र का शरीर के नव स्थानों—दोनों कनिष्ठा, दोनों अनामिका, दोनों मध्यमा, दोनों तर्जनी, दोनों अङ्गुष्ठ, करमध्य, हस्तपृष्ठ, मणिबन्ध एवं कूर्पर में न्यास करना चाहिये। उसके बाद पुनः जातियुक्त मन्त्र का हृदय आदि छः स्थानों में न्यास करना चाहिये। इस सारस्वत न्यास को करने से जड़ता का विनाश होता है। फिर सप्तशती का न्यास करके कामना-विशेष के अनुसार सप्तशती का पाठ करना चाहिये।।१०७७-१०८२।।

ततस्तृतीयं कुर्वीत न्यासं मातृगणादिकम्।
मायाबीजादिका ब्राह्मी पूर्वतः पातु मां सदा ॥१०८३॥

माहेश्वरी तथाग्नेय्यां कौमारी दक्षिणेऽवतु।
वैष्णवी पातु कौणप्यां वाराही पश्चिमेऽवतु ॥१०८४॥
इन्द्राणी पावने कोणे चामुण्डा चोत्तरेऽवतु।
ऐशान्ये तु महालक्ष्मीरूर्ध्वे व्योमेश्वरी तथा ॥१०८५॥
सप्तद्वीपेश्वरी भूमौ रक्षेत्कामेश्वरी तथा।
तृतीयेऽस्मिन् कृते न्यासे त्रैलोक्ये विजयी भवेत् ॥१०८६॥

तदनन्तर तृतीय स्थान पर मातृगणादि का न्यास इस प्रकार करना चाहिये—ब्राह्मी सदा पूर्व की ओर से मेरी रक्षा करें। अग्निकोण में माहेश्वरी एवं दक्षिण में कौमारी मेरी रक्षा करें। नैर्ऋत्य कोण में वैष्णवी एवं पश्चिम दिशा में वाराही मेरी रक्षा करें। वायव्य कोण में इन्द्राणी एवं चामुण्डा उत्तर में मेरी रक्षा करें। ईशान कोण में महालक्ष्मी एवं ऊपर व्योमेश्वरी मेरी रक्षा करें। भूमि पर सप्तद्वीपेश्वरी रक्षा करें एवं कामेश्वरी सर्वत्र मेरी रक्षा करें। इस तीसरे न्यास को करने से साधक त्रैलोक्यविजयी होता है।

न्यासं चतुर्थं कुर्वीत नन्दजादिसमन्वितम्।
नन्दजा पातु पूर्वाङ्गं कमलाङ्कुशमण्डिता ॥१०८७॥
खड्गपात्रकरा पातु दक्षिणे रक्तदन्तिका।
पृष्ठे शाकम्भरी पातु पुष्पपल्लवसंयुता ॥१०८८॥
धनुर्बाणकरा दुर्गा वामे पातु सदैव माम्।
शिरःपात्रकरा भीमा मस्तकाच्चरणावधि ॥१०८९॥
पादादिमस्तकं यावद् भ्रामरी चित्रकान्तिभृत्।
तुर्यं न्यासं नरः कुर्वञ्जरामृत्युं व्यपोहति ॥१०९०॥

नन्दजा आदि से समन्वित चतुर्थ न्यास इस प्रकार करना चाहिये—अंकुशमण्डिता कमला नन्दजा पूर्व दिशा से मेरे अंगों की रक्षा करें। हाथों में खड्ग एवं पात्र ली हुई रक्तदन्तिका दक्षिण दिशा से रक्षा करें। पुष्प एवं पल्लवयुक्त शाकम्भरी पीछे से मेरी रक्षा करें। हाथ में धनुष-बाण ली हुई दुर्गा बाँयीं ओर से सदा मेरी रक्षा करें। कपालपात्र ली हुई भीमा मस्तक से पाद-पर्यन्त मेरी रक्षा करें। रंग-विरंगी कान्ति से युक्त भ्रामरी पैरों से मस्तक-पर्यन्त मेरी रक्षा करें। इस चतुर्थ न्यास को करता हुआ मनुष्य जरा (बुढ़ापा) एवं मृत्यु को नष्ट कर देता है।।१०८७-१०९०।।

ब्रह्माद्यमथ कुर्वीत न्यासं पञ्चममुत्तमम्।
पादादिनाभिपर्यन्तं ब्रह्मा पातु सनातनः ॥१०९१॥
नाभेर्विशुद्धिपर्यन्तं पातु नित्यञ्जनार्दनः।
विशुद्धेर्ब्रह्मरन्ध्रान्तं पातु रुद्रस्त्रिलोचनः ॥१०९२॥

हंसः पातु पदद्वन्द्वं वैनतेयः करद्वयम्।
चक्षुषी वृषभः पातु सर्वाङ्गानि गजाननः ॥१०९३॥
परापरौ देहभागौ पात्वानन्दमयो हरिः।
कृतेऽस्मिन् पञ्चमे न्यासे सर्वकामानवाप्नुयात् ॥१०९४॥

पञ्चम उत्तम न्यास ब्रह्मा आदि का इस प्रकार करना चाहिये—सनातन ब्रह्मा पैरों से नाभि-पर्यन्त मेरी रक्षा करें। नाभि से विशुद्धि-पर्यन्त जनार्दन नित्य मेरी रक्षा करें। विशुद्धि से ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्त त्रिनेत्र रुद्र मेरी रक्षा करें। हंस (परब्रह्म) मेरे दोनों पैरों की तथा वैनतेय (गरुड़) मेरे दोनों हाथों की रक्षा करें। मेरी दोनों आँखों की रक्षा वृषभ (नन्दी) करें तथा समस्त अंगों की गजानन रक्षा करें। मेरे परापर शरीरभाग की रक्षा आनन्द-स्वरूप हरि करें। इस पञ्चम न्यास को करके मनुष्य समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेता है।।१०९१-१०९४।।

षष्ठं न्यासन्ततः कुर्यान्महालक्ष्म्यादिसंयुतम्।
मध्यं पातु महालक्ष्मीरष्टादशभुजान्विता ॥१०९५॥
ऊर्ध्वं सरस्वती पातु भुजैरष्टाभिरूर्जिता।
अधः पातु महाकाली दशबाहुसमन्विता ॥१०९६॥
सिंहो हस्तद्वयं पातु परहंसोऽक्षियुग्मकम् ॥१०९७॥
महिषं हि समारूढो यमः पातु पदद्वयम्।
महिषश्चण्डिकायुक्तः सर्वाङ्गानि ममावतु ॥१०९८॥
षष्ठेऽस्मिन् विहिते न्यासे सद्गतिं प्राप्नुयान्नरः।

तदनन्तर महालक्ष्मी आदि से संयुक्त षष्ठ न्यास इस प्रकार करना चाहिये—अट्ठारह भुजाओं वाली महालक्ष्मी मेरे मध्यभाग की रक्षा करें। आठ भुजाओं से शक्तिसम्पन्न सरस्वती मेरे ऊर्ध्वभाग की रक्षा करें। दस बाहुओं से समन्वित महाकाली मेरे अधःभाग की रक्षा करें। सिंह मेरे दोनों हाथों की तथा परहंस दोनों आँखों की रक्षा करें। भैंसे पर सम्यक् रूप से सवार यम मेरे दोनों पैरों की रक्षा करें। चण्डिका से युक्त महिष मेरे समस्त अंगों की रक्षा करे। इस षष्ठ न्यास को करने से मनुष्य सद्गति प्राप्त करता है।।१०९५-१०९८।।

मूलाक्षरन्यासरूपं ततः कुर्वीत सप्तमम् ॥१०९९॥
ब्रह्मरन्ध्रे नेत्रयुगे श्रुत्योर्नासिकयोर्मुखे ॥११००॥
पायौ मूलमनोर्वर्णांस्ताराद्यान् विन्यसेत्सुधीः।
नमोऽन्तान् सप्तमेऽस्मिंस्तु कृते रोगक्षयो भवेत् ॥११०१॥

पायुतो ब्रह्मरन्ध्रान्तं पुनस्तानेव विन्यसेत्।
कृतेऽस्मिन्नष्टमे न्यासे सर्वं दुःखं विनश्यति ॥११०२॥

तत्पश्चात् सप्तम न्यास में मूल मन्त्र के प्रत्येक अक्षरों को उनके आदि में तार (ॐ) एवं अन्त में 'नमः' लगाकर शरीर के तत्तत् स्थानों पर इस प्रकार न्यस्त किया जाता है—ॐ ऐं नमः ब्रह्मरन्ध्रे, ॐ ह्रीं नमः दक्षनेत्रे, ॐ क्लीं नमः वामनेत्रे, ॐ चां नमः दक्षकर्णे, ॐ मुं नमः वामकर्णे, ॐ डां नमः दक्षनासापुटे, ॐ यं नमः वामनासापुटे, ॐ विं नमः मुखे, ॐ च्चें नमः गुह्ये। इस सप्तम न्यास को करने से रोगों का नाश होता है।

अष्टम न्यास में पुनः उन्हीं मन्त्रवर्णों को पायु से ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्त इस प्रकार न्यस्त किया जाता है—ॐ च्चें नमः गुह्ये, ॐ विं नमः मुखे, ॐ यैं नमः वामनासापुटे, ॐ डां नमः दक्षनासापुटे, ॐ मुं नमः वामकर्णे, ॐ चां नमः दक्षकर्णे, ॐ क्लीं नमः वामनेत्रे, ॐ ह्रीं नमः दक्षनेत्रे, ॐ ऐं नमः ब्रह्मरन्ध्रे। इस अष्टम न्यास को करने से सभी दुःखों का विनाश होता है।।१०९९-११०२।।

कुर्वीत नवमं न्यासं मन्त्रव्याप्तिस्वरूपकम्।
मस्तकाच्चरणं यावच्चरणान्मस्तकावधि ॥११०३॥
पुरो दक्षे पृष्ठदेशे वामभागेषु सन्न्यसेत्।
मूलमन्त्रकृतो न्यासो नवमो देवताप्तिकृत् ॥११०४॥
ततः कुर्वीत दशमं षडङ्गन्यासमुत्तमम्।
मूलमन्त्रं जातियुक्तं हृदयादिषु विन्यसेत्।
कृतेऽस्मिन्दशमे न्यासे त्रैलोक्यं वशमानयेत् ॥११०५॥
चण्डीपाठेऽपि कर्तव्या न्यासाश्चेष्टप्रदायकाः।

तदनन्तर मन्त्रव्याप्ति-स्वरूप नवम न्यास करना चाहिये। इसमें मस्तक से पाद-पर्यन्त, पाद से मस्तक-पर्यन्त, आगे से सम्पूर्ण शरीर का, शरीर के सम्पूर्ण दाहिने भाग का, शरीर के पृष्ठभाग का एवं वामभाग का सम्पूर्ण नवार्ण मन्त्र का उच्चारण करते हुये स्पर्श किया जाता है। मूल मन्त्र द्वारा किये गये इस नवम न्यास से देवता की प्राप्ति होती है।

तत्पश्चात् श्रेष्ठ षडङ्गन्यासरूप दशम न्यास करना चाहिये इसमें मूलमन्त्र को जातियुक्त करके हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र एवं अस्त्र में न्यस्त किया जाता है। इस दशम न्यास को करने से तीनों लोक साधक के वशीभूत होते हैं। चण्डीपाठ में भी अभीष्ट-प्रदायक इन न्यासों को करना चाहिये।।११०३-११०५।।

अन्यन्यासोक्तफलदं कुर्यादेकादशन्ततः ॥११०६॥
खड्गिनी शूलिनीत्यादि पठित्वा श्लोकपञ्चकम्।
आद्यं कृष्णतरं बीजं ध्यात्वा सर्वाङ्गके न्यसेत् ॥११०७॥
शूलेन पाहि नो देवीत्यादिश्लोकचतुष्टयम्।
पठित्वा सूर्यसदृशं द्वितीयं पृष्ठतो न्यसेत् ॥११०८॥
ततः षडङ्गं कुर्वीत विभक्तैर्मूलवर्णकैः।
एकेनैकेन चैकेन चतुर्भिर्युग्मकेन च ॥११०९॥
समस्तेनैव मन्त्रेण कुर्यादङ्गानि षट् क्रमात्।
शिखायां नेत्रयोः श्रुत्योर्नसोर्वक्त्रे गुदे न्यसेत् ॥१११०॥
मन्त्रवर्णान् समस्तेन व्यापकाष्टकमाचरेत्।

तदनन्तर अन्य न्यासों में कथित फल को देने वाले एकादश न्यास को करना चाहिये। सर्वप्रथम 'खड्गिनी शूलिनि' से लेकर 'तैरस्मान् रक्ष सर्वतः' इन पाँच श्लोकों का उच्चारण करके प्रथम कृष्णतर बीज का ध्यान करते हुये सम्पूर्ण शरीर में न्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् 'शूलेन पाहि' इत्यादि चार श्लोकों का उच्चारण करके सूर्य-सदृश द्वितीय बीज का ध्यान करते हुये पृष्ठभाग में न्यास करना चाहिये। तदनन्तर मूलमन्त्र को विभक्त करके षडङ्गन्यास करना चाहिये। इसमें क्रमशः 'ऐं' वर्ण का हृदय में, 'ह्रीं' वर्ण का शिर में, 'क्लीं' का शिखा में, 'चामुण्डायै' का कवच में एवं 'विच्चे' का नेत्रत्रय में न्यास करने के पश्चात् सम्पूर्ण मन्त्र का अस्त्र में न्यास किया जाता है। इसके बाद मन्त्रवर्णों का क्रमशः शिखा, दक्षनेत्र, वामनेत्र, दक्षकर्ण, वामकर्ण, दक्षनासापुट, वामनासापुट, मुख एवं गुह्य में न्यास करने के अनन्तर समस्त मन्त्रवर्णों से आठ बार व्यापक न्यास करना चाहिये।।११०६-१११०।।

ततो देवीत्रयं ध्यायेत्कालिकाध्यानमुच्यते ॥११११॥
दशास्यां दशपादां च दशहस्तां विधिस्तुताम्।
इन्द्रनीलद्युतिं खड्गं चक्रं शङ्खं शिरः शरान् ॥१११२॥
दक्षहस्तेषु दधतीं गदां शूलं भुशुण्डिकाम्।
परिघं च धनुर्बाणौ दधतीं ब्रह्मसंस्तुताम्।
मधुकैटभनाशार्थं सालङ्कारां त्रिवीक्षणाम् ॥१११३॥
ततो ध्यायेन्महालक्ष्मीं महिषासुरमर्दिनीम्।
समस्तदेवतातेजोजातां पद्मासनस्थिताम् ॥१११४॥
अष्टादशभुजामक्षमालां पद्मं च सायकान्।
खड्गं वज्रं गदां चक्रं दक्षहस्ते कमण्डलुम् ॥१११५॥

शङ्खं च दधतीं वामे शक्तिं च परशुं धनुः ।
चर्मदण्डौ सुरापात्रं घण्टां पाशं त्रिशूलकम् ॥१११६॥
सरस्वतीं ततो ध्यायेच्छरच्चन्द्रसमप्रभाम् ।
शङ्खं च मुशलं चक्रं दक्षहस्तेषु बिभ्रतीम् ॥१११७॥
घण्टां शूलं हलं चापं वामहस्तेषु बिभ्रतीम् ।
गौरीदेहसमुद्भूतां नृणामानन्ददायिनीम् ॥१११८॥
आधारभूतां जगतः शुम्भादिकविमर्दिनीम् ।
अधिष्ठात्रीं तृतीयं हि चरित्रं च स्मरेत्सदा ॥१११९॥

तदनन्तर तीनों देवियों का ध्यान करना चाहिये। उनमें से महाकाली का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—विधि-पूर्वक स्तुत देवी महाकाली के दस मुख, दस पैर एवं दस हाथ हैं। उनकी कान्ति मरकतमणि के समान है। मधु एवं कैटभ के नाश के लिये वे अपने दाहिने पाँच हाथों में खड्ग, चक्र, शंख, शिर एवं बाण तथा बाँयें पाँच हाथों में गदा, शूल, भुशुण्ड़ी (चमड़े से निर्मित प्रस्तर फेंकने वाला अस्त्र), परिघ, धनुष एवं बाण धारण की हुई हैं। वे अलंकारों से अलंकृत हैं एवं तीन नेत्रों वाली हैं।

तदनन्तर महिषासुर का मर्दन करने वाली महालक्ष्मी का ध्यान करना चाहिये। देवी महालक्ष्मी समस्त देवताओं के तेज से उत्पन्न हैं। वे पद्मासन पर विराजमान हैं। अपनी अट्ठारह भुजाओं के दाहिने नव हाथों में अक्षमाला, पद्म, बाण, खड्ग, वज्र, गदा, चक्र, कमण्डलु एवं शंख तथा बाँयें नव हाथों में शक्ति, परशु, धनुष, चर्म, दण्ड, सुरापात्र, घण्टा, पाश एवं त्रिशूल धारण की हुई हैं।

तत्पश्चात् शरत्कलीन चन्द्रमा के सदृश कान्ति वाली महासरस्वती का ध्यान करना चाहिये। वे अपने दाहिने हाथों में शंख, मूसल एवं चक्र तथा बाँयें हाथों में घण्टा, शूल, हल एवं चाप धारण की हुई हैं। गौरी के शरीर से समुद्भूत वे देवी मनुष्यों को आनन्द प्रदान करने वाली हैं। वे जगत् की आधार-स्वरूपा हैं एवं शुम्भ आदि राक्षसों का मर्दन करने वाली हैं। तृतीय चरित्र की वे अधिष्ठात्री हैं; अत: सदा सप्तशती के तृतीय चरित्र का स्मरण करना चाहिये।।१११२-१११९।।

एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षचतुष्कं तद्दशांशतः ।
पायसान्नेन जुहुयात्पूजिते हेमरेतसि ॥११२०॥
जयादिशक्तिभिर्युक्ते पीठे देवीं समर्चयेत् ।
एतद्यन्त्रं वृत्तत्र्यस्रषट्कोणाष्टदलान्वितम् ॥११२१॥
श्रिया च नैर्ऋते विष्णुं वायव्ये तूमया शिवम् ।
विदारयन्तं महिषं प्राक्कोणे मृगपं यजेत् ॥११२२॥

षट्कोणेषु च पूर्वादौ नन्दजां रक्तदन्तिकाम्।
शाकम्भरीं तथा दुर्गां भीमां च भ्रामरीं यजेत् ॥११२३॥
तारस्वबीजपूर्वाश्च ङेऽन्ता हृदयसंयुताः।
सर्वासामेव शक्तीनां नाममन्त्राः यतः स्मृताः ॥११२४॥

इस प्रकार से तीनों देवियों का ध्यान करने के पश्चात् नवार्ण मन्त्र का चार लाख की संख्या में जप करने के बाद पायसान्न से कृत जप का दशांश (चालीस हजार) हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् जया-विजया आदि शक्तियों से समन्वित, स्वर्णकणों से रचित एवं पूजित पीठ पर देवी का सम्यक् रूप से अर्चन करना चाहिये। वृत्त, त्रिकोण, षट्कोण एवं अष्टदल से समन्वित यह यन्त्र इस प्रकार का होता है—
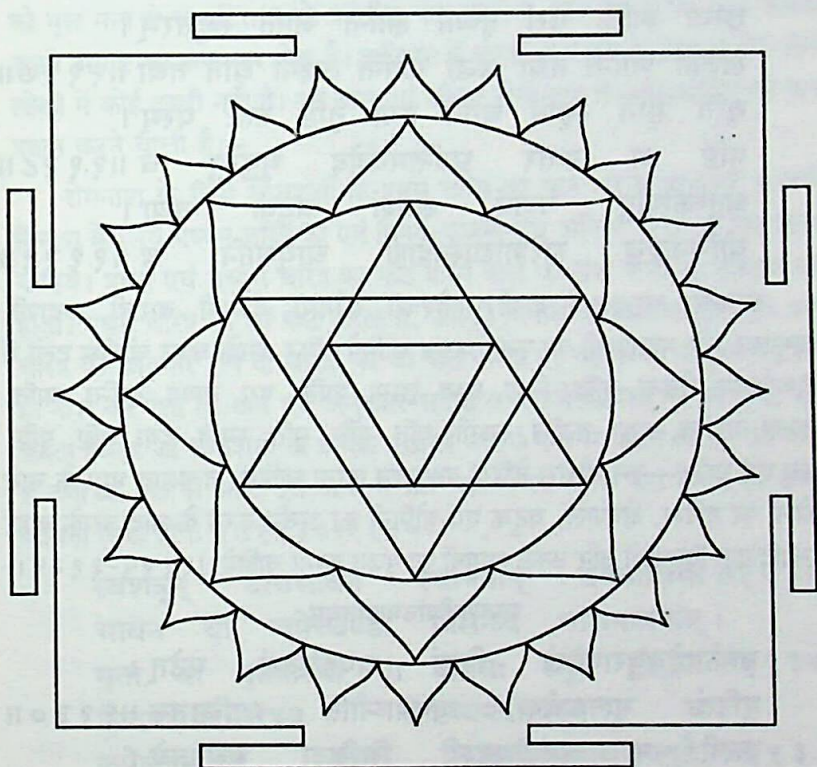
यन्त्रस्थ त्रिकोण के नैर्ऋत्य कोण में लक्ष्मी-सहित विष्णु का, वायव्य कोण में उमा-सहित शिव का एवं ईशान कोण में महिषासुर को विदारित करते हुये सिंह का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् षट्कोण में पूर्वादि क्रम से नन्दजा, रक्तदन्तिका,

शाकम्भरी, दुर्गा, भीमा और भ्रामरी का उनके नाममन्त्रों से यजन करना चाहिये। इन सभी शक्तियों के नाममन्त्र उनके चतुर्थ्यन्त नाम के पूर्व प्रणव एवं स्वबीज तथा नाम के बाद 'नमः' लगाकर इस प्रकार बनते हैं—ॐ नं नन्दजायै नमः, ॐ रं रक्तदन्तिकायै नमः, ॐ शां शाकम्भर्यै नमः, ॐ दुं दुर्गायै नमः, ॐ भीं भीमायै नमः, ॐ भ्रां भ्रामर्यै नमः।।११२०-११२४।।

ततश्चाष्टदले ब्राह्मीं माहेशीं च कुमारिकाम्।
वैष्णवीं चापि वाराहीं तथेन्द्राणीं प्रपूजयेत्।।११२५।।
चामुण्डामथ तद्बाह्ये चतुर्विंशदलेऽर्चयेत्।
विष्णुमायां चेतनां च बुद्धिं निद्रां क्षुधां तथा।।११२६।।
छायां शक्तिं परां तृष्णां क्षान्तिं जातिं तदुत्तरम्।
लज्जां शान्तिं तथा श्रद्धां कान्तिं लक्ष्मीं धृतिं तथा।।११२७।।
वृत्तिं सृतिं स्मृतिं चापि दयां तुष्टिं ततः परम्।
पुष्टिं च मातरं भ्रान्तिमर्चयेद् भूपुरेषु च।।११२८।।
चतुष्कोणेषु गणपं क्षेत्रेशं बटुकं तथा।
योगिनीश्च सुरेशाद्यांस्तद्बाह्ये चायुधानि च।।११२९।।

तदनन्तर अष्टदल में ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा और महालक्ष्मी का पूजन करना चाहिये। फिर उसके बाहर चौबीस दलों में विष्णुमाया, चेतना, बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, छाया, शक्ति, परा, तृष्णा, क्षान्ति, जाति, लज्जा, शान्ति, श्रद्धा, कान्ति, लक्ष्मी, धृति, वृत्ति, सृति, स्मृति, दया, तुष्टि, पुष्टि, मातृ एवं भ्रान्ति—इन चौबीस देवियों का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् भूपुर के चारो कोणों पर गणेश, क्षेत्रपाल, वटुक एवं योगिनी का अर्चन करने के बाद उसके बाहर इन्द्रादि दश दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये।।११२५-११२९।।

सप्तशतीपाठमाहात्म्यम्

मार्कण्डेयपुराणोक्तं नित्यं चण्डीस्तवं पठेत्।
पुटितं मूलमन्त्रेण जपन्नाप्नोति वाञ्छितम्।।११३०।।
कलौ न चण्डीसदृशी सिद्धिदा भुवनत्रये।
वामदक्षिणमार्गाभ्यामधिकारिफलप्रदा।।११३१।।
तत्रादिमं चरित्रं तु रोगनाशाय योजयेत्।
उपसर्गविनाशाय मध्यमं योजयेद् बुधः।।११३२।।

अन्त्यं विषयकामस्तु चरित्रं परिशीलयेत्।
चरित्रद्वयशीलस्य न वंशश्छिद्यते क्वचित् ॥११३३॥
पठेदाद्यं तु चरितं विपत्तिस्तस्य नश्यति।
अनाद्यं पठते यस्तु मारयेदचिराद्रिपून् ॥११३४॥
सार्थानुस्वारपद्यं च सप्तशत्याश्च यो जपेत्।
यस्तु मन्त्रेण पुटितं तत्पृष्ठाङ्कस्य सङ्ख्यया ॥११३५॥
पठेच्च श्रीं तथाद्यन्ते सकामस्तस्य सिद्ध्यति।

सप्तशती-पाठमाहात्म्य—मार्कण्डेय पुराण में पठित चण्डीस्तव (सप्तशती) को मूल मन्त्र से सम्पुटित करके प्रतिदिन पाठ करने के बाद जप करने वाला साधक अपने अभीष्ट को प्राप्त कर लेता है। कलियुग में चण्डी के समान सिद्धिदात्री देवी तीनों लोकों में कोई दूसरी नहीं है। यह वाम एवं दक्षिण दोनों मार्ग के अधिकारियों को फल प्रदान करने वाली है।

रोगनाश के लिये सप्तशती के प्रथम चरित्र का पाठ करना चाहिये। उपसर्ग-विनाश के लिये मध्यम चरित्र का एवं विषय-कामना-हेतु अन्तिम चरित्र का पाठ करना चाहिये। प्रथम एवं मध्यम चरित्र का पाठ करने वाले का वंश कभी भी उच्छिन्न नहीं होता। प्रथम चरित्र का जो पाठ करता है, उसकी विपत्ति का विनाश होता है। प्रथम चरित्र को छोड़कर शेष दो चरित्रों का जो पाठ करता है, वह अपने शत्रुओं का शीघ्र ही नाश कर देता है। अर्थ एवं अनुस्वार-सहित सप्तशती के पद्यों का जो जप (पाठ) करता है एवं जो सप्तशती के प्रत्येक पद्य को नवार्ण मन्त्र से पुटित करके पाठ करता है तथा जो पद्य के आदि एवं अन्त में 'श्रीं' का योजन करके पाठ करता है, उसकी कामना सिद्ध होती है।।११३०-११३५।।

स्वशत्रून् दैत्यभावेन स्वमित्रान् देवताधिया ॥११३६॥
भावेन यो जपेच्चण्डीं त्रिसन्ध्यं मासमात्रकम्।
मृता वा मृतकल्पा वा शत्रवः स्युर्न संशयः ॥११३७॥
सितपक्षादिमारभ्य चाष्टम्यन्तमिषस्य च।
जपेल्लक्षमनुं होमः खाद्यैस्त्रिमधुराप्लुतैः ॥११३८॥
प्रत्यहं पूजयेद्देवीं चण्डीमाद्यां तथा पठेत्।
विप्रान् गुरून् समाराध्य वाञ्छितं लभते द्रुतम् ॥११३९॥
सप्तशत्याश्चरित्रस्य प्रथमस्य विधिर्मुनिः।
छन्दो गायत्रमुदितं महाकाली तु देवता ॥११४०॥

वाग्बीजं पावकस्तत्त्वं धर्मार्थे विनियोजनम्।
प्रयोगाणान्तु नवतिर्मारणे मोहनेऽत्र तु ॥११४१॥

अपने शत्रु को दैत्य मानकर एवं मित्र को देवता मानकर जो एक माह तक तीनों सन्ध्याओं में चण्डीपाठ करता है, उसके शत्रु की मृत्यु हो जाती है या वह मृतवत् हो जाता है; इसमें कोई संशय नहीं है।

आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से आरम्भ कर अष्टमी-पर्यन्त नवार्णमन्त्र का एक लाख जप करके त्रिमधुराक्त खाद्य पदार्थों से हवन, प्रतिदिन देवी का पूजन और प्रथम चरित्र का पाठ करने के साथ-साथ ब्राह्मणों एवं गुरुओं की सम्यक् रूप से आराधना करने से साधक शीघ्र ही अपने वाञ्छित को प्राप्त कर लेता है।

सप्तशती के प्रथम चरित्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री, देवता महाकाली, बीज ऐं एवं तत्त्व पावक कहे गये हैं। धर्म-प्राप्ति के लिये इसका विनियोग किया जाता है। मारण एवं मोहन-हेतु इसके प्रयोगों की संख्या नब्बे है।।११३६-११४१।।

मध्यमस्य चरित्रस्य मुनिर्विष्णुरुदाहृतः।
उष्णिक् छन्दो महालक्ष्मीर्देवता बीजमद्रिजा ॥११४२॥
वायुस्तत्त्वं धनप्राप्त्यै विनियोग उदाहृतः।
उच्चाटे स्तम्भने चात्र प्रयोगाणां शतद्वयम् ॥११४३॥
उत्तमस्य चरित्रस्य मुनिः शङ्कर उच्यते।
महासरस्वती देवी त्रिष्टुप् छन्द उदाहृतम् ॥११४४॥
कामो बीजं रविस्तत्त्वं कामाप्त्यै विनियोजनम्।
विद्वेषवश्ययोश्चात्र प्रयोगा दिक्कृतैर्मिताः ॥११४५॥

मध्यम चरित्र के ऋषि विष्णु, छन्द उष्णिक्, देवता महालक्ष्मी, बीज पार्वती एवं तत्त्व वायु कहे गये हैं। धन-प्राप्ति के लिये इसका विनियोग कहा गया है। इससे उच्चाटन एवं स्तम्भन-हेतु प्रयोगों की संख्या दो सौ कही गई है।

उत्तम चरित्र के ऋषि शंकर, छन्द त्रिष्टुप्, देवता महासरस्वती, बीज क्लीं एवं तत्त्व सूर्य कहे गये हैं। मनोरथ-सिद्धि के लिये इसका विनियोग किया जाता है। इससे विद्वेषण एवं वशीकरण-हेतु दश प्रयोग किये जाते हैं।।११४२-११४५।।

एवं सप्तशतं चात्र प्रयोगाः परिकीर्तिताः।
तस्मात्सप्तशतीत्येवं व्यासेन परिकीर्तिता ॥११४६॥
सौम्यानि यानि रूपाणीत्यत्रापि परिकीर्तिताः।

उपास्या दक्षिणे मार्गे लक्ष्म्याद्याः सप्त शक्तयः।
तस्मात्सप्तशतीत्येवं प्रोक्ता व्यासेन धीमता ॥११४७॥
महाविद्येत्यादिसप्तशक्तयो ब्रह्मणा स्तुताः।
तस्मात्सप्तशतीत्येवं प्रोक्ता व्यासेन धीमता ॥११४८॥
ब्रह्मेन्द्रगुरुशुक्राणां विष्णुरुद्रसुरद्विषाम्।
उपास्या देवता यास्ता इह सप्तशती ह्यतः ॥११४९॥
लक्ष्मीश्च ललिता काली दुर्गा गायत्र्यरुन्धती।
सरस्वती चेति सप्त ह्युपास्या वाममार्गतः ॥११५०॥
काली तारा छिन्नमस्ता सुमुखी भुवनेश्वरी।
बाला कुब्रेति मनवः सूचिताः सम्प्रकीर्तिताः ॥११५१॥
नाम्ना सप्तशती चेति मध्यमे चरिते द्विधा।
तत्तन्मन्त्रोक्तसङ्केतैर्मन्त्रशक्तिः प्रजायते ॥११५२॥
एवं स्तवाभियुक्तानामित्यारभ्य तृतीयके।
चरिते शक्तयस्सप्त चामुण्डान्ताः प्रकीर्तिताः ॥११५३॥
हंसयुक्तविमानाग्रे इत्यारभ्य प्रकीर्तिताः।
ब्रह्माण्याद्याः सप्तसङ्ख्या वर्तमानाश्च तत्र हि ॥११५४॥
वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते इत्यारभ्य च सप्त तु।
शक्त्यः प्रोक्ताः स्वयं देव्यास्तस्मात्सप्तशती स्मृता ॥११५५॥

इस प्रकार सप्तशती के सात सौ प्रयोग कहे गये हैं; इसीलिये व्यास के द्वारा इसे 'सप्तशती' कहा गया है। देवी के जितने भी सौम्य स्वरूप हैं, उन्हें यहाँ कहा गया है। लक्ष्मी आदि सात सौम्य शक्तियाँ यहाँ दक्षिण मार्ग से उपास्य होती हैं; इसीलिये बुद्धिमान व्यास द्वारा यह 'सप्तशती' अभिधान से अभिहित किया गया है। ब्रह्मा द्वारा महाविद्या आदि सात शक्तियों की स्तुति की गई है; इसीलिये बुद्धिमान व्यास ने इसे 'सप्तशती' नाम से कहा है। ब्रह्मा, इन्द्र, गुरु, शुक्र, विष्णु, रुद्र एवं देवद्रोही दानवों के द्वारा जिस देवता की उपासना की जाती है, उनका यहाँ वर्णन होने से इसे 'सप्तशती' कहा जाता है।

लक्ष्मी, ललिता, काली, दुर्गा, गायत्री, अरुन्धती एवं सरस्वती—ये सात शक्तियाँ वाममार्ग से उपास्य होती हैं। काली, तारा, छिन्नमस्ता, सुमुखी, भुवनेश्वरी, बाला एवं कुब्रा के निर्दिष्ट मन्त्र यहाँ कहे गये हैं। मध्यम चरित्र में दो प्रकार से सप्तशती का कथन किया गया है। उन मन्त्रों में उक्त संकेत से मन्त्रशक्ति उद्भूत होती

है। 'एवं स्तवाभियुक्तानाम्' से आरम्भ होने वाले तृतीय चरित्र में चामुण्डा-पर्यन्त (ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, इन्द्राणी, वाराही और चामुण्डा) सात शक्तियों का कथन किया गया है।

'हंसयुक्तविमानाग्रे' से आरम्भ कर कहे गये इस ग्रन्थ में ब्रह्माणी आदि सात शक्तियाँ वर्त्तमान हैं। 'वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते' से प्रारम्भ होने वाले ग्रन्थ में देवी द्वारा स्वयं सात शक्तियाँ कही गई हैं, इसी से इसे 'सप्तशती' कहा गया है।।११४६-११५५।।

सप्तशत्यास्तु सप्तत्वं वेद्म्यहं सर्वमेव हि।
पादोनं श्रीहरिर्वेत्ति वेत्त्यर्धन्तु प्रजापतिः ।।११५६।।
व्यासस्तुर्यांशकं वेत्ति कोट्यंशमितरे जनाः।
यथामन्त्रस्तु सिद्ध्यर्थं योज्यते क्रियतेऽथवा ।।११५७।।
बीजादिकं तथा सद्भिः कामनावशतः क्वचित्।
वर्णानां च पदानां च व्यत्यासस्तु व्यवस्थितः ।।११५८।।
शब्दशास्त्रविरुद्धो यः पाठः सोऽशुभकर्मणि।
शब्दशास्त्राविरुद्धस्तु पाठः शान्तिकपौष्टिके ।।११५९।।
सार्थस्मृतिं पठेच्चण्डीस्तवं स्पष्टपदाक्षरम्।
समाप्तौ तु महालक्ष्मीं ध्यात्वा कृत्वा षडङ्गकम्।
जपेदष्टशतं मूलं देवतायै निवेदयेत् ।।११६०।।
एवं यः कुरुते सोऽत्र नावसीदति कुत्रचित्।

सप्तशती के सप्तत्व को मैं सम्पूर्ण रूप से जानता हूँ। तीन चौथाई अंश को विष्णु जानते हैं एवं आधे अंश को ब्रह्मा जानते हैं। एक चौथाई अंश को व्यास जानते हैं एवं अन्य लोग करोड़वें अंश को ही जानते हैं। सज्जनों के द्वारा मन्त्रसिद्धि के लिये तदनुरूप बीज आदि की योजना की जाती है अथवा कामना के अनुरूप कहीं-कहीं उनका प्रयोग किया जाता है। इसमें वर्णों और पदों का व्यत्यास (व्यतिक्रम) पूर्णतया व्यवस्थित है। शब्दशास्त्र (व्याकरण) के विरुद्ध जो इसका पाठ होता है, वह अशुभ कर्मकारक होता है एवं शब्दशास्त्र के अनुरूप जो पाठ होता है, वह शान्ति और पुष्टि कर्मकारक होता है। अर्थ के स्मरण-पूर्वक पदों के अक्षरों का स्पष्ट उच्चारण करते हुये चण्डीस्तव का पाठ करना चाहिये। पाठ की समाप्ति पर महालक्ष्मी का ध्यान करके षडङ्ग-न्यास करने के बाद मूल मन्त्र (नवार्ण मन्त्र) का एक सौ आठ बार जप करके उस जप को देवी को समर्पित कर देना चाहिये। इस प्रकार से जो साधक चण्डीस्तव का पाठ करता है, वह कहीं भी लज्जित नहीं होता।।११५६-११६०।।

शतचण्डीविधाननिरूपणम्

शतचण्डीविधानन्तु प्रवक्ष्ये च प्रियं नृणाम् ॥११६१॥
नृपोपद्रवमापन्ने दुर्भिक्षे भूमिकम्पने।
अतिवृष्ट्यामनावृष्टौ परचक्रभये क्षये ॥११६२॥
सर्वे विघ्ना विनश्यन्ति शतचण्डीविधौ कृते।
रोगाणां वैरिणां नाशो धनपुत्रसमृद्धय: ॥११६३॥
शङ्करस्य भवान्या वा प्रासादनिकटे शुभम्।
मण्डपं द्वारवेद्याद्यं कुर्यात्सध्वजतोरणम्।
तत्र कुण्डं प्रकुर्वीत प्रतीच्यां मध्यतोऽपि वा ॥११६४॥
स्नात्वा नित्यकृतिं कृत्वा वृणुयाद्दशवाडवान्।
जितेन्द्रियान् सदाचारान् कुलीनान् सत्यवादिन:।
व्युत्पन्नांश्चण्डिकापाठे रतांल्लज्जादयावत: ॥११६५॥
मधुपर्कविधानेन वस्त्रशस्त्रादिदानत:।
पाद्यार्घ्यमासनं मालां दद्यात्तेभ्योऽपि भोजनम् ॥११६६॥
ते हविष्यान्नमश्नन्तो मन्त्रार्थगतमानसा:।
भूमौ शयाना: प्रत्येकञ्जपेयुश्चण्डिकास्तवम्।
मार्कण्डेयपुराणोक्तं दशकृत्व: सचेतस: ॥११६७॥
नवार्णचण्डिकामन्त्रञ्जपेयुश्चायुतं पृथक्।
यजमान: पूजयेच्च कन्यानां नवकं शुभम् ॥११६८॥

शतचण्डी-विधान—अब मैं मनुष्यों के लिये हितकर शतचण्डी-विधान को कहता हूँ। राजा के द्वारा उपद्रव किये जाने पर, दुर्भिक्ष की स्थिति में, भूकम्प होने पर, अतिवृष्टि अथवा अनावृष्टि के समय, परचक्र का भय उपस्थित होने पर, क्षयरोग का प्रकोप होने पर शतचण्डी-विधान करने से समस्त विघ्नों का विनाश हो जाता है। इससे रोगों एवं शत्रुओं का नाश होता है तथा धन, पुत्र एवं समृद्धि की प्राप्ति होती है।

शिवालय अथवा दुर्गा मन्दिर के निकट विधान-सहित ध्वज-पताका आदि से युक्त द्वार-वेदी आदि से समन्वित मण्डप का निर्माण करके उस मण्डप के पश्चिम भाग में अथवा मध्यभाग में कुण्ड का निर्माण करना चाहिये। स्नान करने के बाद नित्यकृत्यों का सम्पादन करके जितेन्द्रिय, सदाचारी, कुलीन, सत्यवादी व्युत्पन्न, चण्डीपाठ में निरत एवं लज्जा-दया आदि से युक्त दश ब्राह्मणों का मधुपर्क विधान से वस्त्र-शस्त्र आदि प्रदान करते हुये वरण करके उन्हें पाद्य, अर्घ्य, आसन, माला, भोजन आदि प्रदान करना चाहिये।

उन प्रत्येक ब्राह्मणों को हविष्यान्न का भोजन करते हुये, मन्त्रार्थ का मन में चिन्तन करते हुये, भूमि पर शयन करते हुये मार्कण्डेय पुराणोक्त चण्डिकास्तव (सप्तशती) का दस-दस बार पाठ करके नवार्ण चण्डिकामन्त्र का पृथक्-पृथक् दस-दस हजार जप करना चाहिये और यजमान को नव सुन्दर कुमारियों का पूजन करना चाहिये।

द्विवर्षाद्या दशाब्दान्ताः कुमारीः परिपूजयेत्।
नाधिकाङ्गीं न हीनाङ्गीं कुष्ठिनीं च व्रणाङ्किताम् ॥११६९॥
अन्धाक्षीं केकराक्षीं च कुरूपां रोमयुक्तनुम्।
दासीजातां भोगयुक्तामिष्टां कन्यां न पूजयेत् ॥११७०॥
विप्रां सर्वेष्टसंसिद्ध्यै यशसे क्षत्रियोद्भवाम्।
वैश्यजां धनलाभाय पुत्राप्त्यै शूद्रजां यजेत् ॥११७१॥
द्विवर्षा सा कुमार्युक्ता त्रिमूर्त्तिर्हायनत्रिका।
चतुरब्दा तु कल्याणी पञ्चवर्षा तु रोहिणी ॥११७२॥
षडब्दा कालिका प्रोक्ता चण्डिका सप्तहायना।
अष्टवर्षा शाम्भवी स्याद्दुर्गा तु नवहायना ॥११७३॥
सुभद्रा दशवर्षोक्ता नाममन्त्रैः प्रपूजयेत्।
एकाब्दां ह्यप्रीतिभावाद्रुद्राब्दान्तु विवर्जयेत् ॥११७४॥

दो वर्ष से लेकर दस वर्ष तक की कुमारियों का पूजन करना चाहिये। अधिक अंग वाली, न्यून अंग वाली, कुष्ठरोगिणी, व्रणाङ्कित अंग वाली, अन्धी, भैंगी आँखों वाली, कुत्सित रूप वाली, रोमयुक्त शरीर वाली, दासी से उत्पन्न, भोगयुक्त एवं अभीष्ट कन्याओं का पूजन नहीं करना चाहिये।

समस्त प्रकार की इष्टसिद्धि के लिये ब्राह्मणी कन्या का, यशःप्राप्ति के लिये क्षत्रिया कन्या का, धन-प्राप्ति के लिये वैश्या कन्या का एवं पुत्र-प्राप्ति के लिये शूद्रजा कन्या का पूजन करना चाहिये।

दो वर्ष वाली कन्या कुमारी, तीन वर्ष वाली त्रिमूर्ति, चार वर्ष वाली कल्याणी, पाँच वर्ष वाली रोहिणी, छः वर्ष वाली कालिका, सात वर्ष वाली चण्डिका, आठ वर्ष वाली शाम्भवी, नव वर्ष वाली दुर्गा एवं दस वर्ष वाली सुभद्रा कही गई है। इनका पूजन इनके नाममन्त्रों से करना चाहिये। प्रीति का अभाव होने के कारण एक वर्ष वाली एवं ग्यारह वर्ष वाली कन्या का पूजन नहीं करना चाहिये।।११६९-११७४।।

तासामावाहने मन्त्रः श्लोकरूपो निगद्यते।
मन्त्राक्षरमयीं लक्ष्मीं मातृणां रूपधारिणीम् ॥११७५॥

नवदुर्गात्मिकां साक्षात्कन्यामावाहयाम्यहम्।
कुमारिकादिकन्यानां पूजामन्त्रान् ब्रुवेऽधुना ॥११७६॥
जगत्पूज्ये जगद्वन्द्ये सर्वशत्रुविनाशिनि।
पूजां गृहाण कौमारि जगन्मातर्नमोऽस्तु ते ॥११७७॥
त्रिपुरां त्रिपुराधारां त्रिवर्गज्ञानरूपिणीम्।
त्रैलोक्यवन्दितां देवीं त्रिमूर्तिं पूजयाम्यहम् ॥११७८॥
कालात्मिकां कलातीतां कारुण्यहृदयां शिवाम्।
कल्याणजननीन्नित्यां कल्याणीं पूजयाम्यहम् ॥११७९॥
कामचारां शुभां कान्तां कालचक्रस्वरूपिणीम्।
कामदां करुणोदारां कालिकां पूजयाम्यहम् ॥११८०॥
चण्डीं पूज्यां चण्डिमयीं चण्डमुण्डप्रभञ्जिनीम्।
पूजयामि सदा देवीं चण्डिकां चण्डविक्रमाम् ॥११८१॥
सदानन्दकरां शान्तां सर्वदेवनमस्कृताम्।
सर्वभूतात्मिकां लक्ष्मीं शाम्भवीं पूजयाम्यहम् ॥११८२॥
दुर्गमे दुस्तरे कार्ये भवदुःखविनाशिनीम्।
सुन्दरीं पूजयेद्भक्त्या दुर्गां दुर्गार्तिनाशिनीम् ॥११८३॥
सुन्दरीं स्वर्णवर्णाभां सुखसौभाग्यदायिनीम्।
सुभद्रजननीं देवीं सुभद्रां पूजयाम्यहम् ॥११८४॥
एतैर्मन्त्रैर्लक्षणाढ्यान्तान्तां कन्यां प्रपूजयेत्।
गन्धैः पुष्पैर्भक्ष्यखाद्यैर्वस्त्रैराभरणैरपि ॥११८५॥

उनके आवाहन-हेतु श्लोकरूप मन्त्र को कहा जा रहा है। मन्त्र है—'मन्त्राक्षरमयीं... वाहयाम्यहम्'। अर्थात् मन्त्रवर्ण-स्वरूपा, लक्ष्मी-स्वरूपा, मातृ-रूपधारिणी, साक्षात् नवदुर्गा-स्वरूपा कन्या का मैं आवाहन करता हूँ। अब कुमारिका आदि कन्याओं के पूजनमन्त्रों को कहता हूँ।

कुमारी का पूजनमन्त्र है—'जगत्पूज्ये.......नमोऽस्तु ते' अर्थात् संसार द्वारा पूज्य, जगत् द्वारा वन्दनीय, समस्त शत्रुओं का विनाश करने वाली हे जगन्माता कौमारि! आपको नमस्कार है।

त्रिमूर्ति का पूजनमन्त्र है—'त्रिपुरां.......पूजयाम्यहम्' अर्थात् तीन पुरों वाली, त्रिपुर की आधार-स्वरूपा, त्रिवर्ग (धर्म-अर्थ-काम) की ज्ञान-स्वरूपिणी, तीनों लोकों में वन्दित देवी त्रिमूर्ति का मैं पूजन करता हूँ।

कल्याणी का पूजनमन्त्र है—'कालात्मिकां........पूजयाम्यहम्' अर्थात् कालस्वरूपा, कलातीता, कारुण्यपूर्ण हृदय वाली, पार्वती-स्वरूपा, कल्याण-प्रसवित्री, नित्य विद्यमान कल्याणी का मैं पूजन करता हूँ।[1]

कालिका का पूजनमन्त्र है—'कामचारां........पूजयाम्यहम्' अर्थात् असंयत आचार वाली, कल्याणप्रदा, सुन्दरी, कालचक्र-स्वरूपिणी, कामनाओं को प्रदान करने वाली, उदारता-पूर्वक दया करने वाली कालिका की मैं पूजा करता हूँ।

चण्डिका का पूजनमन्त्र है—'चण्डी........चण्डविक्रमाम्' अर्थात् दुर्गा-स्वरूपा, वन्दनीया, क्रोधमयी, चण्ड एवं मुण्ड का भञ्जन करने वाली, प्रचण्ड पराक्रमशालिनी देवी चण्डिका की मैं सदा पूजा करता हूँ।

शाम्भवी का पूजनमन्त्र है—'सदानन्द........पूजयाम्यहम्' अर्थात् सदा आनन्द प्रदान करने वाली, शान्त स्वरूप वाली, समस्त देवताओं द्वारा नमस्कृत, सर्वभूतमयी, लक्ष्मीस्वरूपा शाम्भवी की मैं पूजा करता हूँ।

दुर्गा का पूजनमन्त्र है—'दुर्गमे........नाशिनीम्' अर्थात् दुर्गग एवं दुस्तर कार्यों में सांसारिक दुःखों का विनाश करने वाली, भयंकर क्लेशों का नाश करने वाली, सुन्दरी दुर्गा की मैं भक्तिपूर्वक पूजा करता हूँ।

सुभद्रा का पूजनमन्त्र है—'सुन्दरीं........पूजयाम्यहम्' अर्थात् मनोहर स्वरूप वाली, स्वर्ण-सदृश कान्ति वाली, सुख एवं सौभाग्य प्रदान करने वाली, सुभद्र को उत्पन्न करने वाली देवी सुभद्रा की मैं पूजा करता हूँ।

तत्तत् शुभ लक्षणों से समन्वित तत्तत् कन्याओं का उनके [2]नाममन्त्रों के द्वारा गन्ध, पुष्प, भक्ष्य, खाद्य, वस्त्र एवं आभूषण प्रदान करते हुये पूजन करना चाहिये।

वेद्यां विरचिते रम्ये सर्वतोभद्रमण्डले ।
घटं संस्थाप्य विधिवत्तत्रावाह्यार्चयेच्छिवाम् ॥११८६॥
तदग्रे कन्यकाश्चापि भोजयेद् ब्राह्मणानपि ।
उपचारैश्च विधिवत्पूर्वोक्तावरणान्यपि ॥११८७॥

---

१. मूल ग्रन्थ में पञ्चवर्षीया रोहिणी का पूजनमन्त्र नहीं दिया गया है, वह इस प्रकार है—
अणिमादिगुणाधारामकाराद्यक्षरात्मिकाम्।
अनन्तशक्तिकां लक्ष्मीं रोहिणीं पूजयाम्यहम्।।

२. नवों कन्याओं के नाममन्त्र इस प्रकार होते हैं—ॐ ह्रीं कुमार्यै नमः, ॐ ह्रीं त्रिमूर्त्यै नमः, ॐ ह्रीं कल्याण्यै नमः, ॐ ह्रीं रोहिण्यै नमः, ॐ ह्रीं कालिकायै नमः, ॐ ह्रीं चण्डिकायै नमः, ॐ ह्रीं शाम्भव्यै नमः, ॐ ह्रीं दुर्गायै नमः, ॐ ह्रीं सुभद्रायै नमः।

एवं चतुर्दिनं कृत्वा पञ्चमे होममाचरेत्।
पायसान्नैस्त्रिमध्वक्तैर्द्राक्षारम्भाफलैरपि ॥११८८॥
मातुलुङ्गैरिक्षुखण्डैर्नारिकेलैः पुनस्तिलैः।
जातीफलैराम्रफलैरन्यैर्मधुरवस्तुभिः ॥११८९॥
सप्तशत्या दशावृत्त्या प्रतिश्लोकं हुतं चरेत्।
अयुतं च नवार्णेन स्थापितेऽग्नौ विधानतः ॥११९०॥
कृत्वावरणदेवानां होमं तन्नाममन्त्रतः।
कृत्वा पूर्णाहुतिं सम्यग्देवमग्निं विसृज्य च ॥११९१॥
अभिषिञ्चेच्च यष्टारं विप्रौघः कलशोदकैः।
निष्कं सुवर्णमथ वा प्रत्येकं दक्षिणां दिशेत् ॥११९२॥
भोजयेच्च पृथग्विप्रान् भक्ष्यखाद्यैः पृथग्विधैः।
तेभ्योऽपि दक्षिणान्दत्त्वा गृह्णीयादाशिषः शुभाः ॥११९३॥
एवंकृते जगद्वश्यं सर्वे नश्यन्त्युपद्रवाः।
राज्यं धनं यशः पुत्रानिष्टमन्यल्लभेत च ॥११९४॥

मनोहर सर्वतोभद्रमण्डल बनाकर उस पर सविधि कलश-स्थापन करके वहीं पर शिवा का आवाहन करके पूजन करना चाहिये। फिर उसके सम्मुख कुमारियों और ब्राह्मणों को भोजन कराने के उपरान्त पूर्वोक्त आवरणदेवियों का भी विविध उपचारों से सविधि अर्चन करना चाहिये।

इस प्रकार चार दिनों तक पूजन करने के बाद पाँचवें दिन त्रिमधु-सिक्त पायसान्न, दाख, केला, मातुलुङ्ग, इक्षुखण्ड, नारियल, तिल, जातीफल, आम एवं अन्य भी मधुर वस्तुओं द्वारा सप्तशती की दस आवृत्ति करते हुये प्रत्येक श्लोक के द्वारा हवन करने के उपरान्त स्थापित अग्नि में नवार्ण मन्त्र से भी विधिवत् दस हजार हवन करना चाहिये।

तदनन्तर आवरणदेवताओं का उनके नाममन्त्रों से हवन करने के पश्चात् पूर्णाहुति प्रदान करके अग्निदेव का सम्यक् रूप से विसर्जन करने के बाद विप्रों को कलशजल से यजमान का अभिषेक करना चाहिये। इसके बाद यजमान द्वारा प्रत्येक ब्राह्मणों को बारह ग्राम सोने का एक-एक सिक्का अथवा यथेष्ट दक्षिणा देनी चाहिये। इसके बाद सभी ब्राह्मणों को पृथक्-पृथक् भक्ष्य-भोज्य प्रदान करते हुये विधिवत् भोजन कराकर उन्हें भी दक्षिणा प्रदान करके यजमान को उनका आशीर्वाद प्राप्त करना चाहिये। ऐसा करने से समस्त संसार साधक के वशीभूत हो जाता है, सभी उपद्रव नष्ट हो जाते हैं तथा राज्य, धन, यश एवं पुत्रों के साथ-साथ अन्य अभीष्टों की भी प्राप्ति होती है।।११८६-११९४।।

एतद्दशगुणं कुर्याच्चण्डीसाहस्रजं विधिम्।
विद्यावतः सदाचारान् ब्राह्मणान् वृणुयाच्छतम्॥११९५॥
प्रत्यहं चण्डिकापाठान् विदध्युस्ते शतोन्मितान्।
अयुतं च जपेयुस्ते प्रत्येकं च नवार्णकम्॥११९६॥
पूर्वोक्ताः कन्यकाः पूज्याः पूर्वमन्त्रैः शतं शुभाः।
एवं दशाहं सम्पाद्य होमं कुर्यात्प्रयत्नतः॥११९७॥
सप्तशत्याः शतावृत्त्या प्रतिश्लोकं विधानतः।
लक्षसङ्ख्यं नवार्णं च पूर्वोक्तद्रव्यसञ्चयैः॥११९८॥
होतृभ्यो दक्षिणां दत्त्वा पूर्वोक्तान् भोजयेद् द्विजान्।
सहस्रसम्मितान् साधून् देव्याराधनतत्परान्॥११९९॥
एवं सहस्रसङ्ख्याके कृते चण्डीविधौ नृणाम्।
सिद्ध्यत्यभीप्सितं कर्म दुःखौघश्च विनश्यति।
नारीदुर्भगरोगाद्या नश्यन्ति व्यसनोच्चयाः॥१२००॥
नेमं विधिं वदेद् दुष्टे खले चौरे श्रुतिद्रुहि।
साधौ जितेन्द्रिये दान्ते वदेद्विधिमिमम्परम्।
एवं सावर्णिका तुष्टा ब्रह्मश्रोतॄन् प्ररक्षति॥१२०१॥

शतचण्डी का दशगुणा करने पर सहस्रचण्डी की विधि होती है। सहस्रचण्डी में एक सौ विद्वान् एवं सदाचारी ब्राह्मणों का वरण करना चाहिये।

उन ब्राह्मणों द्वारा प्रतिदिन चण्डिकास्तोत्र का एक सौ पाठ करके प्रत्येक के द्वारा नवार्णमन्त्र का दस-दस हजार जप किया जाना चाहिये; साथ ही पूर्वोक्त एक सौ कुमारियों का उनके मन्त्रों से पूजन करना चाहिये। इस प्रकार दस दिनों तक करने के बाद यत्न-पूर्वक हवन करना चाहिये।

सप्तशती के प्रत्येक श्लोक की सौ आवृत्ति द्वारा विधि-पूर्वक हवन करने के बाद नवार्ण मन्त्र से पूर्वोक्त द्रव्यों से भी एक लाख हवन करना चाहिये। इसके बाद होताओं को दक्षिणा प्रदान करके देवी की आराधना में तत्पर हजारों सज्जन ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये।

इस प्रकार एक हजार की संख्या में चण्डीपाठ करने से मनुष्य के अभीप्सित कर्म सिद्ध होते हैं एवं उसके समस्त दुःखों का विनाश हो जाता है। अत्यधिक व्यसन के फलस्वरूप होने वाले नारी के दुर्भग आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

दुष्ट (कामचोर), धूर्त्त, चोर, वेदनिन्दक को यह विधि नहीं बतलानी चाहिये;

अपितु सज्जन, जितेन्द्रिय, एवं दान्त (संयमित) मनुष्यों से ही इस श्रेष्ठ विधि का कथन करना चाहिये। इस प्रकार से तुष्ट सावर्णिगण (आठवें मनु के पुत्रगण) ब्रह्मश्रोत्रियों की रक्षा करते हैं।।११९५-१२०१।।

महालक्ष्मीमहामन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महालक्ष्म्या महामनुम्।
ऐंह्रींश्रींक्लीं वेदवर्णो मन्त्रश्चास्या उदाहृतः ।।१२०२।।
ऋषिर्भृगुर्निवृत्पूर्वमनुष्टुप्छन्द ईरितम्।
देवता कमला प्रोक्ता सर्वसम्पत्करी शुभा।
एकाक्षरविधानेन तदङ्गानि प्रकल्पयेत् ।।१२०३।।
चतुर्भिः श्वेतकरिभिर्घटैर्मणिमयैः सदा।
आसिच्यमाना रत्नाभा पद्मस्था पद्मलोचना।
पद्मद्वयं च हस्तेषु बिभ्रती नृपसेविता ।।१२०४।।
एकाक्षरोदिते पीठे यजेद्देवीं च पूर्ववत्।
अर्कलक्षं जपेन्मन्त्री नियताशी हुतं चरेत्।
तत्सहस्रं सरोजैश्च रक्तैस्त्रिस्वादुसंयुतैः।
पूर्वत्रोक्तप्रयोगांश्च कुर्यान्मन्त्री यथाविधि ।।१२०५।।

महालक्ष्मी-मन्त्र—अब मैं महालक्ष्मी के महामन्त्र को कहता हूँ। इसका चार अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं। इस मन्त्र के ऋषि भृगु, छन्द निवृत् अनुष्टुप् एवं देवता समस्त सम्पत्तियाँ प्रदान करने वाली कल्याणप्रदात्री कमला कही गई हैं। श्रां श्रीं श्रूं श्रैं श्रौं श्रः से इसका हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र, अस्त्ररूप षडङ्गन्यास करना चाहिये।

चार श्वेत हाथियों द्वारा मणिमय घटों से सदा अभिषिक्त की जाती हुई, रत्नों के सदृश कान्तिमान, कमल पर स्थित, कमल-सदृश आँखों वाली, हाथों में दो कमल धारण की हुई, राजाओं द्वारा सेवित महालक्ष्मी का ध्यान करना चाहिये।

एकाक्षर मन्त्र 'श्रीं' में कथित पीठ पर पूर्ववत् देवी का पूजन करके मन्त्रज्ञ साधक को मिताहार करते हुये मन्त्र का बारह लाख जप पूर्ण करने के बाद त्रिमधु-युक्त रक्तकमलों से बारह हजार हवन करना चाहिये। इसके पश्चात् यथाविधि एकाक्षर मन्त्र के पूर्वोक्त प्रयोगों का सम्पादन करना चाहिये।।१२०२-१२०५।।

ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं समुच्चार्य हसरा औयुताः पुनः।
विसर्गान्ताः पञ्चमन्तु बीजमेतदुदाहृतम् ।।१२०६।।

जगत्प्रसूत्यै हृदयं द्वादशार्णो मनुः स्मृतः।
प्रणवादिरयं मन्त्रः स्यात्त्रयोदशवर्णकः ॥१२०७॥
ऋष्याद्या ब्रह्मगायत्री महालक्ष्मीः प्रकीर्तिता।
संशोध्य मनुना पाणिं प्रणवाद्यं हृदन्तकम् ॥१२०८॥
अङ्गुलीषु क्रमान्मन्त्री विन्यसेद्बीजपञ्चकम्।
मन्त्रशेषं जपेन्मन्त्री तलयोरुभयोरपि ॥१२०९॥
मूर्द्धादिचरणं यावन्मन्त्रेण व्यापकं न्यसेत्।
शेषं सप्तार्णकं मन्त्री विन्यसेद्धृदयादिषु ॥१२१०॥
पञ्चबीजैः पञ्च मन्त्री शेषैः षष्ठन्तु कल्पयेत्।
चतुर्थं ज्ञानमुख्यैश्च युक्तं कुर्यात्षडङ्गकम् ॥१२११॥
ज्ञानैश्वर्ये शक्तिबले वीर्यं तेजश्च षट् क्रमात्।
एवं न्यसेन्मनुं मन्त्री चिन्तयेदिष्टदेवताम् ॥१२१२॥

महालक्ष्मी का द्वादशाक्षर मन्त्र है—ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं ह्स्त्रौः जगत्प्रसूत्यै नमः। आदि में प्रणव (ॐ) से संयुक्त कर देने पर यही मन्त्र त्रयोदशाक्षर हो जाता है। इन दोनों मन्त्रों के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री एवं देवता महालक्ष्मी कही गई हैं। मन्त्र से हाथों को शुद्ध करके आदि में प्रणव एवं अन्त में 'नमः' लगाकर पाँच बीजों का अंगुलियों में क्रमशः इस प्रकार न्यास करना चाहिये—ॐ ऐं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः, ॐ श्रीं मध्यमाभ्यां नमः, ॐ क्लीं अनामिकाभ्यां नमः, ॐ ह्स्त्रौः कनिष्ठाभ्यां नमः। तदनन्तर शेष मन्त्र से दोनों करतल एवं करपृष्ठ में इस प्रकार न्यास करना चाहिये—ॐ जगत्प्रसूत्यै नमः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

तत्पश्चात् मस्तक से चरण-पर्यन्त मन्त्र से इस प्रकार व्यापक न्यास करना चाहिये—ॐ ऐं नमः मूर्ध्नि, ॐ ह्रीं नमः मुखे, ॐ श्रीं नमः हृदये, ॐ क्लीं नमः गुह्ये, ॐ ह्स्त्रौः नमः पादयोः। इसके बाद शेष सात वर्णों से हृदय आदि में इस प्रकार न्यास करना चाहिये—ॐ जं नमः त्वचि, ॐ गं नमः रक्ते, ॐ त्रं नमः मांसे, ॐ सूं नमः मेदसि, ॐ त्यैं नमः अस्थ्नि, ॐ नं नमः मज्जायाम्, ॐ मं नमः शुक्रे।

पुनः ज्ञानप्रधान षडङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—ॐ ऐं ज्ञानाय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ ह्रीं ऐश्वर्याय तर्जनीभ्यां नमः, ॐ श्रीं शक्तये मध्यमाभ्यां नमः, ॐ क्लीं बलाय अनामिकाभ्यां नमः, ॐ ह्स्त्रौः वीर्याय कनिष्ठाभ्यां नमः, ॐ जगत्प्रसूत्यै नमः तेजसे करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

करन्यास करने के बाद इस प्रकार अङ्गन्यास करना चाहिये—ॐ ऐं ज्ञानाय

हृदयाय नम:, ॐ ह्रीं ऐश्वर्याय शिरसे स्वाहा, ॐ श्रीं शक्तये शिखायै वषट्, ॐ क्लीं बलाय कवचाय हुम्, ॐ ह्स्रौ: वीर्याय नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ जगत्प्रसूत्यै नम: तेजसे अस्त्राय फट्। इस प्रकार मन्त्रन्यास करने के उपरान्त इष्टदेवता का ध्यान करना चाहिये।।१२०६-१२१२।।

आदौ स्मरेत्स उद्यानं सर्वर्तुप्रतिशोभितम्।
मन्दान्दोलितकर्पूरकदलीवृन्दमण्डितम् ।।१२१३।।
अशोकनागसरलकोविदारमनोरमम्।
मल्लिकायूथिकाकुन्दमदयन्तीसुगन्धिकम् ।।१२१४।।
द्राक्षावल्लीनागवल्लीमाधवीदेवदारुभि: ।
नमेरुभिर्लवङ्गैश्च चन्दनै रक्तचन्दनै: ।।१२१५।।
वञ्जुलैर्मातुलुङ्गैश्च दाडिमीलकुचै: शुभम्।
नारिकेलैश्च खर्ज्जूरै: पूगै: कुरबकैर्वृतम् ।।१२१६।।
मालतीकैङ्कताजातीपाटलीतुलसीवृतम् ।
नन्द्यावर्त्तैर्मदनकै: सर्वर्त्तुकुसुमोज्ज्वलम् ।।१२१७।।
प्रमदै: पिचुमन्दैश्च मन्दारैरुपशोभितम् ।।१२१८।।
शिरीषै: पनसैरुच्चै: शाखोटैरुपशोभितम्।
महानसं(?सरं) तस्य मध्ये स्मरेन्मन्त्री मनोरमम्।

सर्वप्रथम साधक को उस उद्यान का स्मरण करना चाहिये, जो समस्त ऋतुओं से सुशोभित है, जो धीरे-धीरे हिलते हुये कर्पूर एवं कदलीवृक्षों से घिरा हुआ है, जो अशोक नागकेसर सरल एवं कोविदार वृक्षों से मनोरम है, जो सुगन्धित मल्लिका यूथिका कुन्द एवं मदयन्ती के पुष्पों से सुगन्धित है, जो द्राक्षा (मुनक्का) पान एवं माधवी (वासन्ती) लताओं के साथ-साथ देवदारु नमेरु लवङ्ग चन्दन रक्तचन्दन वञ्जुल (तिनिस) मातुलुङ्ग अनार लकुच (बड़हर) नारियल खजूर सुपाड़ी एवं कुरबक (आक) के वृक्षों से चारो ओर से आच्छादित है, जो मालती कैङ्कत चमेली एवं तुलसी के पौधों से घिरा है, जिसका भीतरी भाग सभी ऋतुओं में फूलने वाले नन्द्यावर्त मदनक प्रमद पिचुमन्द एवं मन्दार से सुशोभित है, जो शिरीष कटहल सिहोर के वृक्षों से सुशोभित है; उस उद्यान के मध्य में मनोरम महानस (?महासर) का मन्त्रज्ञ साधक को स्मरण करना चाहिये।।१२१३-१२१८।।

मल्लिकायूथिकाकुन्दजातीमालतिकावृतम् ।।१२१९।।
भ्रमद् भ्रमरमालाभिरलंकृतचतुर्दिशम्।
केकिकेकारवाकीर्णं लक्ष्मणासारसावृतम् ।।१२२०।।

कौरव्यहंससङ्घातं चक्रकारण्डवोज्ज्वलम् ।
फुल्लैः सरसिजै रम्यैः कह्लारैः कैरवैरपि ॥१२२१॥
नीलेन्दीवरसङ्घैश्च सुगन्धिकुसुमैर्वृतम् ।
सर्वर्तुशोभिभिः कल्पद्रुमैर्मण्डितमुज्ज्वलम् ॥१२२२॥
पुलिनं तत्र तन्मध्ये रत्नमण्डपकुट्टिमम् ।
समुद्यदर्कसन्दोहकिरणद्युतिभास्करम् ॥१२२३॥
हिमरश्मिकरव्रातसिक्तामृतसुशीतलम् ।
प्रोल्लसद्गलितस्वर्णप्राकारसुमनोहरम् ॥१२२४॥
नवरत्नमयप्रोद्यत्कपाटाट्टालिकावृतम् ।
नूतनोद्यन्महारत्नरचितं तुङ्गगोपुरम् ॥१२२५॥
तप्तगालितहेमादिदण्डध्वजसमूहकम् ।
वैडूर्यादिमहारत्नरचितस्तम्भराजितम् ॥१२२६॥
सन्तप्तस्वर्णरचितगवाक्षशतसङ्कुलम् ।
हेमदण्डस्फुरद् द्वीपसहस्त्रं सुमनोहरम् ॥१२२७॥
नानाविधक्षौमवस्त्रै रचिताभिश्च काञ्चनैः ।
सक्षुद्रघण्टिकायुक्तपताकाभिरलंकृतम् ।
शरद्राकासुधारश्मिदुकूलरचितैः शुभैः ।
विचित्रवसनोद्धूतैर्युतं चन्द्रायुतैरपि ॥१२२८॥
काञ्चनोर्वीमणिव्रातकुट्टिमालंकृतं शुभम् ।
घनसारागुरुनखकस्तूरीकुङ्कुमैरपि ॥१२२९॥
तमालैर्द्रव्यजातैश्च सुगन्धिभिरथेतरैः ।
क्रमादेवं चतुर्द्वारं मण्डपं परिचिन्तयेत् ॥१२३०॥

उसका तटप्रदेश मल्लिका, यूथिका, जाती एवं मालती-लताओं से घिरा हुआ है। उसकी चारो दिशायें मँडराते भौंरों से अलंकृत हैं। वह स्थान मयूरों की ध्वनि से व्याप्त है। हंसी एवं सारस से घिरा हुआ है। कौरव्य हंसों एवं चक्रकारण्डवों (घूमते बत्तखों) से उज्ज्वल है। रमणीय एवं विकसित कमलों, कह्लारों, कुमुदों, नीलकमलों के सुगन्धित पुष्पों से आच्छादित है। समस्त ऋतुओं में सुशोभित कल्पवृक्षों से वह घिरा हुआ है। उसके मध्य में रत्नजटित फर्श वाला रत्नमण्डप विराजमान है। वह उदीयमान सूर्य-सदृश किरणों की कान्ति से दीप्तिमान है। चन्द्रमा की अमृतमय किरणों से सिक्त होने के कारण अत्यन्त शीतल है। स्वर्ण को गलाकर बनाये गये कान्तिमान

प्राकार (चहारदीवारी) से मनोहर है। प्रकाशमान नवरत्नमय कपाटों (किवाड़ों) वाले महलों से घिरा हुआ है। नवीन प्रकाशमान रत्नों से निर्मित उसका अत्यन्त ऊँचा गोपुर है। उस पर तपाकर गलाये गये सुवर्ण आदि निर्मित दण्डों में ध्वज लहरा रहे हैं। वैदूर्य आदि महारत्नों से निर्मित स्तम्भों से वह सुशोभित है। स्वर्ण को तपाकर बनाई गई उसकी सौ खिड़कियाँ हैं। स्वर्ण एवं रत्नों से दीप्तिमान हजारों द्वीपों से वह मनोहर है। छोटी-छोटी घण्टियाँ लगी हुई नाना प्रकार के काञ्चन-सदृश रेशमी वस्त्रों से बनी पताकाओं से वह अलंकृत है। शरत्पूर्णिमा की अमृतकिरणों से निर्मित सुन्दर सूक्ष्म वस्त्रों एवं दसों हजार चन्द्रमाओं से बने विचित्र वस्त्रों से वह समन्वित है। उसकी काञ्चनमयी सुन्दर भूमि मणियों से निर्मित फर्श से अलंकृत है। घनसार (कपूर) अगुरु कस्तूरी कुंकुम तमाल आदि द्रव्यों से वह सुगन्धित है। इस प्रकार चार द्वारों वाले मण्डप का ध्यान करना चाहिये।।१२१९-१२३०।।

तदन्तः पारिजातस्य मूले सिंहासनं नवम्।
नानारत्नगणाकीर्णं तत्र देवीं विचिन्तयेत्।।१२३१।।
बालभास्करसत्कान्तिं शशिशेखरमण्डिताम्।
मुक्ताहारोज्ज्वलां रम्यां रत्नाकल्पविभूषिताम्।।१२३२।।
हस्ताम्भोजैश्च बिभ्राणां नूतनां शालिमञ्जरीम्।
पद्मद्वयं कौस्तुभं च सस्मितास्यसरोरुहाम्।।१२३३।।
विकचोत्पलसंशोभिनयनत्रयभूषिताम्।
क्वणन्नूपुरसम्फुल्लरक्तोत्पलपदद्वयाम्।।१२३४।।
नितम्बविलसद्धेमरशनादाममञ्जुलाम्।
बलित्रयलसद्वेदिमध्यदेशसुशोभिताम्।।१२३५।।
गम्भीरावृत्तहृन्नाभिह्रदमण्डलमण्डिताम्।
यक्षकर्दमसंलिप्तपीनोन्नतघनस्तनीम्।।१२३६।।
कुम्भिकुम्भोद्भवप्रोद्यन्मुक्तादामविराजिताम्।
क्षौमोत्तरासङ्गवतीं पुष्पदामविभूषिताम्।।१२३७।।
माणिक्यस्वर्णखचितवैदूर्याद्यङ्गदोज्ज्वलाम्।
काञ्चनोद्यत्पद्मरागमणिसम्बद्धकङ्कणाम्।।१२३८।।
नानाविधलसद्रत्नमुद्रिकालंकृताङ्गुलीम्।
कम्बुकण्ठकलारावां स्वर्णग्रैवेयराजिताम्।।१२३९।।
विचित्रनानालङ्कारालंकृताङ्गीं शुचिस्मिताम्।
उद्यदर्कप्रभाभास्वद्रत्नताटङ्कशोभिताम्।।१२४०।।

निर्लाञ्छनशरद्राकाताराधिपशुभाननाम् ।
पञ्चसायककोदण्डजिद् भ्रूयुगविराजिताम् ॥१२४१॥
बिडालनासिकां प्रोद्यत्तिलपुष्पाक्षतां शुभाम् ।
कर्णपूरीकृतस्वर्णबद्धरत्नाङ्कुरां शुभाम् ॥१२४२॥
प्रवालविलसत्कान्तिं रुचिराधरपल्लवाम् ।
शेखरे प्रोल्लसद्रत्नरशनावलिशोभिताम् ॥१२४३॥
शीतांशुशकलाकाररुचिरालकराजिताम् ।
कान्तकुञ्चितसंस्निग्धनीलमञ्जुलमूर्द्धजाम् ॥१२४४॥
तप्तहाटकसम्बद्धनानारत्नौघशेखराम् ।
सौन्दर्यसलिलाम्भोधिं रत्नसारविभूषिताम् ॥१२४५॥
विलासलक्ष्म्या भवनं महालक्ष्मीं विचिन्तयेत् ।

उस मण्डप के भीतर पारिजात वृक्ष के नीचे नाना प्रकार के रत्न-जटित नूतन सिंहासन पर विराजमान देवी का ध्यान करना चाहिये। उन देवी की कान्ति बाल सूर्य के समान है। उनका शीर्षभाग चन्द्रमा से मण्डित है। विविध रत्नों से विभूषित मोतियों के रमणीय हार से वे दीप्तिमान हैं। वे अपने करकमलों में नूतन धान्यमञ्जरी, दो कमल एवं कौस्तुभ मणि धारण की हुई हैं। उनका मुखकमल किञ्चित् हास्ययुक्त है। खिले हुये कमल के समान शोभायमान तीन नेत्रों से वे विभूषित हैं। बजते हुये नूपुरों से उनके दोनों रक्त चरणकमल शोभायमान हैं। उनके नितम्ब पर स्वर्ण-निर्मित करधनी शोभायमान है। त्रिवली से शोभित वेदी से मध्यदेश सुशोभित है। गहरी घुमी हुई नाभि से मण्डित हृदमण्डल है। उनके स्थूल, उठे हुये एवं कठोर स्तन यक्षकर्दम (सम भाग में कपूर, अगुरु, कस्तूरी एवं कंकोल-मिश्रित अंगलेप) से लिप्त हैं। उने स्तनों के ऊपर कुम्भ से निकली हुई दीप्तिमान मोतियों की माला सुशोभित है। रेशमी वस्त्रों के ऊपर पुष्पों की माला से वे विभूषित हैं। माणिक्य, वैदूर्य आदि से जटित स्वर्ण-निर्मित वाजूबन्द से वे प्रकाशित हैं। पद्मराग मणि-जटित सुवर्ण-निर्मित कङ्कणों को धारण की हुई हैं। अंगुलियों में नाना प्रकार के रत्नों से शोभायमान अंगुठियाँ धारण की हुई हैं। शंख-सदृश उनका कण्ठ शब्द करते स्वर्ण-निर्मित ग्रैवेय (हार या कण्ठा) से सुशोभित है। उनके शरीराङ्ग अनेक प्रकार के विचित्र अलंकारों से अलंकृत हैं। उनके मुख पर पवित्र मुस्कान है। उदित होते सूर्य की कान्ति-सदृश कान्तिमान रत्न-जटित ताटङ्क (काल का बाला) से वे सुशोभित हैं। लाञ्छन-रहित शरत्पूर्णिमा की चन्द्रमा के सदृश सुन्दर उनका मुख है। कामदेव को भी विजित करने वाली दो भौंहों से वे सुशोभित हैं। विडाल-सदृश उनकी नासिका अक्षत तिलपुष्प के समान सुन्दर है।

स्वर्णबद्ध रत्नाङ्कुरों वाला उनका सुन्दर कर्णपूर (कर्णफूल) है। प्रवाल (मूँगा) की कान्ति के समान शोभायमान उनके अधरपल्लव हैं। शीर्ष पर दीप्तिमान रत्नबद्ध रशना से वे सुशोभित हैं। चन्द्रखण्ड़ के आकार वाले मनोहर अलकों से वे सुशोभित हैं। उनकी मूर्धा पर मनोहर, मुलायम नीले रंग के सुन्दर घुंघराले बाल हैं। उनके माथे पर दमदमाते सुवर्ण-जटित अनेक रत्न हैं। वे सौन्दर्य की समुद्रस्वरूपा हैं। श्रेष्ठ रत्नों से विभूषित हैं। विलासलक्ष्मी की भवनस्वरूपा महालक्ष्मी का ध्यान करना चाहिये।

वामाधःकरमारभ्य साध्यदक्षकरावधि ॥१२४६॥
आयुधानि च पूर्वोक्ते रमापीठे यजेदिमाम्।
दद्याद्बीजेनासनं च स्वाणुना मूर्तिकल्पनम् ॥१२४७॥
दक्षभागे यजेद्देव्या गणकं वामतस्तथा।
सुमनोञ्जलिहस्तं च पुष्पाभरणमर्चयेत् ॥१२४८॥
अङ्गानि पूजयेदादौ यथास्थानं च मन्त्रवित्।
अष्टपत्रे स्थिता पूज्या ह्युमा श्रीश्च सरस्वती ॥१२४९॥
दुर्गा धरणिगायत्र्यौ देव्युषा चेति शक्तयः।
नानालङ्करणाढ्याः स्युरम्भोजद्वयपाणयः॥१२५०॥
अङ्घ्रिप्रक्षालनार्थञ्च प्रोच्येते वह्निसूर्यभे।
पूजनीये प्रयत्नेन कराभ्यां धृतचामरे ॥१२५१॥
निधीन् सम्पूज्य वरुणं पश्चिमे छत्रधारिणम्।
परितश्च यजेद्राशीन् ग्रहान्नव ततोऽर्चयेत् ॥१२५२॥
चतुर्दन्तान् दिग्गजांश्च यजेदाशासु मन्त्रवित्।
लोकपालांस्तदस्त्राणि तत्तद्बाह्ये यजेत्पुनः ॥१२५३॥

उनके हाथों में बाँयें भाग वाले नीचे के हाथ से आरम्भ करके साध्य के दाहिने हाथ-पर्यन्त आयुध सुशोभित हैं। पूर्वोक्त रमापीठ पर इनका पूजन करना चाहिये। बीजमन्त्र (श्रीं) से आसन प्रदान करके मूल मन्त्र से मूर्ति की कल्पना करनी चाहिये। देवी के दक्ष भाग में उनके गणों का तथा वाम भाग में हाथ में पुष्पाञ्जलि लिये हुये पुष्पाभरण का अर्चन करना चाहिये। मन्त्रवित् साधक को सर्वप्रथम यथास्थान षडङ्ग-पूजन करना चाहिये। इसके बाद अष्टपत्रों में स्थित शक्तियों—उमा, श्री, सरस्वती, दुर्गा, धरणी, गायत्री, देवी और उषा का पूजन करना चाहिये। ये सभी देवियाँ अनेक अलंकारों से अलंकृत हैं तथा दोनों हाथों में कमल ली हुई हैं। देवी के पाद-प्रक्षालन में लगे हुये अग्नि और सूर्य का यत्नसहित पूजन करना चाहिये। हाथ में चँवर धारण

किये शङ्खनिधि और पद्मनिधि का पूजन करने के बाद पश्चिम में छत्रधारी वरुण का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् उनके चारो ओर बारह राशियों का पूजन करने के बाद नव ग्रहों का पूजन करना चाहिये। चार दाँतों वाले दिग्गजों का समस्त दिशाओं में पूजन करना चाहिये। इसके बाद भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों और उसके बाहर उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिये।।१२४६-१२५३।।

जपेद्भास्करलक्षं च नियताशी धृतव्रतः।
तद्दशांशं प्रजुहुयाद्घृतैस्त्रिस्वादुसंयुतैः ॥१२५४॥
पद्मै रमाद्रुमफलैः प्रत्येकमयुतं हुनेत्।
सुशीतैः शुचिभिस्तोयैस्तर्पयेदयुतद्वयम् ॥१२५५॥
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री गुरुभक्तो दृढव्रतः।
कुर्यात्काम्यानि कर्माणि स्वाभीष्टानि च मन्त्रवित् ॥१२५६॥

तदनन्तर व्रतनिष्ठ साधक को नियत आहार ग्रहण करते हुये मन्त्र का बारह लाख जप करना चाहिये। फिर त्रिमधु-युक्त घृत से जप का दशांश (एक लाख बीस हजार) हवन करना चाहिये। कमल और विल्वफल से अलग-अलग दस-दस हजार हवन करने के बाद पवित्र शीतल जल से बीस हजार तर्पण करना चाहिये। इस प्रकार मन्त्र की सिद्धि हो जाने पर गुरुभक्त व्रतनिष्ठ मन्त्रज्ञ साधक को काम्य कर्मों एवं अपने अभीष्ट का साधन करना चाहिये।।१२५४-१२५६।।

आज्यप्लुताभिर्दूर्वाभिरायुष्कामो हुनेन्नरः।
सहस्रं दशरात्रं च समिद्धे हव्यवाहने ॥१२५७॥
घृताक्ताभिश्च दूर्वाभिरष्टोत्तरसहस्रकम्।
सप्ताहं जुहुयाज्जीवेद्वत्सराणां शतं सुधीः ॥१२५८॥
दूर्वायुक्तैर्घृताभ्यक्तैः स्निग्धैः प्रजुहुयाद्बुधः।
आरोग्यकामः कमलैरारभ्यार्कदिनं सुधीः ॥१२५९॥
दशाहं प्रत्यहं वापि सर्पिषाक्ताः समिद्वराः।
कण्ठमात्रे जले स्थित्वा महालक्ष्मीमिति स्मरेत् ॥१२६०॥
अष्टाधिकसहस्रं च ऊर्ध्वबाहुर्जपेन्मनुम्।
स वाञ्छितार्थं लभते तथारोग्यं च साधकः ॥१२६१॥
अन्वहं जुहुयादष्टसहस्रं शालिभिर्ध्रुवम्।
सोऽचिराल्लभते लक्ष्मीं महतीं साधकोत्तमः ॥१२६२॥
रमालताप्रसूनैर्वा नन्द्यावर्त्तसमुद्भवैः।
श्वेतसर्षपकैराज्यप्लुतैर्वा जुहुयाद् बुधः ॥१२६३॥

महीयसीं रमामाप्नोत्यचिरात्साधकोत्तमः ।
मान्यते च तथा सर्वैर्जन्तुभिर्नान्यथात्र च ।।१२६४।।

आयु की कामना वाले को दस रात्रियों तक प्रज्वलित अग्नि में आज्य-सिक्त दूर्वा से एक हजार आहुतियों द्वारा हवन करना चाहिये। सात दिनों तक घृत-सिक्त दूर्वा से एक हज़ार आठ आहुतियों द्वारा हवन करने वाला विद्वान् साधक सौ वर्षों तक जीवित रहता है।

आरोग्य की कामना वाले साधक को बारह दिनों तक घृत-सिक्त दूर्वायुक्त स्निग्ध कमलों से हवन करना चाहिये अथवा दस दिनों तक प्रतिदिन गोघृत-सिक्त श्रेष्ठ समिधाओं से हवन करना चाहिये।

जो साधक कण्ठ-पर्यन्त जल में खड़े होकर महालक्ष्मी का स्मरण करते हुये ऊर्ध्वबाहु होकर मन्त्र का एक आठ हजार बार जप करता है, वह अपने अभीष्ट को प्राप्त करने के साथ-साथ आरोग्य-लाभ भी करता है।

जो श्रेष्ठ साधक प्रतिदिन शालि चावल से आठ हजार हवन करता है, वह शीघ्र ही प्रभूत लक्ष्मी को प्राप्त करता है। अथवा रमा-नाम्नी लता के पुष्पों अथवा नन्द्यावर्त-पुष्पों अथवा आज्य-प्लुत श्वेत सरसों से हवन करने वाला श्रेष्ठ साधक थोड़े दिनों में ही अत्यधिक धन प्राप्त करने के साथ-साथ निश्चित रूप से समस्त प्राणियों द्वारा प्रशंसनीय हो जाता है।।१२५७-१२६४।।

नारिकेलरसैर्युक्तैर्मरिचैर्वीरकान्वितैः ।
गुडयुक्तघृतैः पक्वैरपूपैर्जुहुयात्सुधीः ।।१२६५।।
संयतः प्रत्यहं चाष्टशतं पायसभुग्द्विजः ।
मण्डलाच्च ध्रुवं साक्षाद्भवेद्वैश्रवणोपमः ।
गुडमिश्रहविष्यस्य होमादन्नसमृद्धिमान् ।।१२६६।।
अष्टोत्तरसहस्रं च जपापुष्पाणि संहुनेत् ।
संगृह्य भस्ममन्त्री तन्नागवल्लीरसेन च ।
सहितं तिलकं कुर्यात्सर्वं वश्यं भवेद् ध्रुवम् ।।१२६७।।
पलाशोत्थसमिद्भिश्च कुसुमैर्जुहुयात्तथा ।
वश्या भवेयुर्मुखरा वशिनस्तस्य मन्त्रिणः ।।१२६८।।
जातिकाकुसुमैर्मन्त्री राजानं वशमानयेत् ।
जुहुयादरुणाम्भोजैर्वश्याः स्युस्तस्य विश्वगाः ।।१२६९।।

नीलोत्पलानां होमेन वश्याश्चारण्यसम्भवाः ।
वशयेत्प्रमदा विद्वान् मधूककुसुमैर्हुनेत् ॥१२७०॥

मात्र पायस का भोजन करने वाला द्विज यदि नियम-पूर्वक प्रतिदिन नारियल-जल से समन्वित मरिच, वीरक एवं गुड़-मिलाकर घृत में पाक किये गये अपूपों से एक सौ आठ बार हवन करता है तो चालीस दिनों के भीतर वह निश्चित ही साक्षात् कुबेर के समान हो जाता है। गुड़-मिश्रित हविष्य के हवन से साधक समृद्ध होता है।

अड़हुल के एक हजार आठ पुष्पों से हवन करने के बाद उसके भस्म को लेकर उसमें पान का रस मिलाकर तिलक लगाने से निश्चित रूप से सभी वशीभूत होते हैं। पलाश की समिधा एवं पुष्पों के हवन से वाचाल लोग भी उस मन्त्रज्ञ साधक के वशीभूत हो जाते हैं।

जातिपुष्पों के हवन से साधक राजा को वशीभूत कर लेता है। लाल कमलों के हवन से विश्व के समस्त लोग साधक के वशीभूत होते हैं। नीलकमल के हवन से वनवासी वशीभूत होते हैं। महुआ के फूलों से हवन करने पर स्त्रियाँ वशीभूत होती हैं।।१२६५-१२७०।।

नवकोष्ठात्मकं सम्यङ्मण्डलं रचयेत्सुधीः ।
मध्ये यन्त्रं वक्ष्यमाणं कल्पयेच्च यथाविधि ॥१२७१॥
तेषु कोष्ठेषु नवसु विन्यसेत्कलशान्नव ।
शुभांश्चन्दनकाश्मीरलिप्तान् सर्वाङ्गसुन्दरान् ॥१२७२॥
कुर्वंस्तण्डुलसंयुक्तान् सर्वदृष्टिमनोहरान् ।
पूजयेच्च यथावत्तान् वासितैस्तीर्थपुष्करैः ॥१२७३॥
कर्षस्वर्णेन रचितन्नवरत्नसमन्वितम् ।
कर्णिकामध्यविलसत्तत्र पद्मं तु कारयेत् ॥१२७४॥
मध्यमे कलशे रम्ये यथावत्तद्विनिःक्षिपेत् ।
खादिरोशीरकाश्मीरचन्द्रागुरुतमालकम् ॥१२७५॥
जातीकङ्कोलसंयुक्तं वीक्ष्य सर्वं विभागशः ।
कलशेषु च सर्वेषु यथाविधि विलोडयेत् ॥१२७६॥
सदाभद्रा च दूर्वा च देवी श्रीश्च मधुव्रता ।
अपामार्गस्य पत्राणि मुसली वज्रवल्लरी ॥१२७७॥
चक्रप्रियङ्गुव्रीहींश्च मुद्गगोधूमतण्डुलान् ।
शालिमाषांश्च सतिलान् यवान् प्रक्षाल्य निःक्षिपेत् ॥१२७८॥

कदलीनारिकेराणां श्रीधात्रीकुचभूरुहाम्।
फलानि पद्मबकुलजातीसौगन्धिकानि च ॥१२७९॥
मल्लिकाचम्पकाशोकपुन्नागोत्थानि निःक्षिपेत्।
पुष्पाणि केतकस्याथ तुलसीपल्लवांस्तथा ॥१२८०॥
न्यग्रोधोदुम्बरप्लक्षचैत्यानां ब्रह्मकूर्चनम्।
प्रक्षिप्य च घटान् वस्त्रैश्छादयेच्चम्पकैः शुभैः ॥१२८१॥
साक्षतैः सफलैस्तांश्च वेष्टयेत्क्षौमवाससा।

विद्वान् साधक को सम्यक् रूप से नव कोष्ठों वाला मण्डल बनाकर उसके मध्य में यथाविधि वक्ष्यमाण यन्त्र का निर्माण करना चाहिये।

उन नव कोष्ठों में चन्दन एवं केशर के लेप से लिप्त सर्वाङ्गसुन्दर नव कलशों को स्थापित करके उन कलशों पर चावल रखकर देखने में मनोहर बनाकर उनमें सुवासित तीर्थजल भर कर उनका पूजन करना चाहिये।

एक कर्ष (सोलह माशा) सुवर्ण की कर्णिका (पत्र) के मध्य में नवरत्न-समन्वित अष्टदल कमल बनाकर उसके मध्य में भी रमणीय कलश स्थापित करके उन कलशों में कत्था, खश, केशर, कपूर, अगरु, तमाल, जायफल, कंकोल को बराबर-बराबर डालकर अच्छी तरह से कलशजल में मिला देना चाहिये। फिर उनमें सदाभद्रा, दूर्वा, देवी, श्री, मधुव्रता एवं चिड़चिड़ा के पत्ते तथा मुसली, वज्रवल्लरी, चकवड, प्रियङ्गु, धान्य, मूँग, गेहूँ, चावल, शालिधान्य, उड़द, तिल एवं यव (जौ) को प्रक्षालित करके

डाल देना चाहिये। फिर केला, नारियल, आँवला एवं अनार के फल तथा कमल, वकुल, हरसिङ्गार, मल्लिका, चम्पा, अशोक, पुन्नाग एवं केतकी के पुष्पों-सहित तुलसीपत्र भी डाल देना चाहिये। वट, गूलर एवं पाकड़ के पल्लवों को उनके मुख पर रखने के बाद कलशों को वस्त्र से आच्छादित करके उन पर अक्षत एवं फल-सहित चम्पापुष्प रखकर उन्हें रेशमी वस्त्र से वेष्टित कर देना चाहिये।

तेषु मध्यस्थकलशे समावाह्य महेश्वरीम् ॥१२८२॥
महालक्ष्मीं चन्दनाद्यैरुपचारैश्च संयजेत्।
शेषेष्वष्टसु कुम्भेषु क्रमानुक्रमतो यजेत् ॥१२८३॥
सुगन्धैश्चन्दनैः पुष्पैर्मनोज्ञैर्धूपदीपकैः।
भक्ष्यभोज्यनिवेद्यैश्च यथाविधि यजेत्सुधीः ॥१२८४॥

तत्पश्चात् मध्यकलश में महेश्वरी महालक्ष्मी का सम्यक् रूप से आवाहन करके चन्दनादि उपचारों से उनका पूजन करने के बाद शेष आठ कलशों में भी क्रमानुक्रम से यथाविधि गन्ध, चन्दन, पुष्प, मनोज्ञ धूप, दीप, भक्ष्य-भोज्य नैवेद्य अर्पित करते हुये अर्चन करना चाहिये।।१२८२-१२८४।।

संस्पृश्य तान् घटान् मन्त्री त्रिसहस्रं मनुं जपेत्।
ततः साध्यं समानीय संयतं स्थण्डिले शुभे ॥१२८५॥
सुपीठे तं निवेश्य स्वं तस्मिन् साध्येऽनुयोजयेत्।
मनोहरैरलङ्कारैर्विविधैर्वसनैरपि ॥१२८६॥
आदरादप्यलंकृत्य सुक्लृप्तं सुमनोवृतम्।
सुवासिनीभिर्जायाभिरर्चितानां द्विजन्मनाम् ॥१२८७॥
सहाशीर्वचनैः सर्ववाद्यानां निनदैः सह।
वेदघोषेण च सह लग्ने चैव तु शोभने ॥१२८८॥
तेषु मध्यस्थितं कुम्भं समुद्धृत्य गुरुः स्वयम्।
मूलमन्त्रं जपन् सिञ्चेत्साध्यशीर्ष्णि ततोऽपरैः ॥१२८९॥
कलशैः पूर्ववत्सिक्त्वा हस्तेनास्य शिखां शिरः।
संस्पृशन् वेदगदितामाशिषं सम्प्रयच्छति ॥१२९०॥
कल्याणमस्तु च सदा सम्पदश्च निराकुलाः।
प्रसीदतु महालक्ष्मीः सकला देवता अपि ॥१२९१॥
रक्षन्तु त्वां सर्वदेवा विजयोऽस्तु सुखी भव।
इत्थं दत्त्वाशिषं पश्चाद्वाससी परिधाय च ॥१२९२॥

आचान्तः प्रणमेत्सम्यग्यथाविधि गुरुं शिशुः ।
नानाविधैश्च वसनैर्नानालङ्करणैः शुभैः ॥१२९३॥
धनैर्धान्यै रत्नगोभिर्महिषीभिश्च दासकैः ।
दासीभिर्देवताबुद्ध्या गुरुं सन्तोषयेत्सुधीः ॥१२९४॥

तदनन्तर उन कलशों का स्पर्श करके मन्त्रज्ञ साधक को मन्त्र का तीन हजार जप करना चाहिये। इसके बाद जितेन्द्रिय साध्य को लाकर उसे सुन्दर स्थण्डिल के शुभ पीठ पर बैठाकर स्वयं को साध्य के साथ संयुक्त करना चाहिये। तत्पश्चात् आदर-पूर्वक मनोहर अलङ्कारों एवं विविध वस्त्रों से अलंकृत करके पुष्पमाला आदि पहनाकर पूजित सुवासिनियों एवं ब्राह्मणियों के आशीर्वचनों, समस्त प्रकार के वाद्यों की ध्वनियों एवं वेदघोष के साथ शोभन लग्न में मध्य-स्थित कुम्भ को गुरु द्वारा उठाकर उसके जल से मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुये साधक का अभिषेक करना चाहिये। तत्पश्चात् दूसरे कलशों के जल से भी साधक का पूर्ववत् अभिषेक करके गुरु द्वारा अपने हाथों से शिष्य के शिर एवं शिखा का स्पर्श करते हुये उसे इस प्रकार वेदोक्त आशीर्वाद प्रदान करना चाहिये—तुम्हारा सदा कल्याण हो, तुम्हारी सम्पत्तियाँ स्थिर हों, महालक्ष्मी एवं समस्त देवता तुम पर प्रसन्न हों, समस्त देवता तुम्हारी रक्षा करें, तुम्हारी जय हो, सुखी रहो।

इस प्रकार आशीष प्रदान करने के बाद साधक शिष्य को वस्त्र पहनकर आचमन करके गुरु को सम्यक् रूप से प्रणाम करना चाहिये। साथ ही देवताबुद्धि से गुरु को नाना प्रकार के वस्त्र, सुन्दर आभूषण, धन, धान्य, रत्न, गाय, भैंस, दास, दासी समर्पित कर उन्हें सन्तुष्ट करना चाहिये।।१२८५-१२९४।।

नानाविधैर्भक्ष्यभोज्यैर्लेह्यैश्चोष्यैस्तथेतरैः ।
दीनान्धकृपणैः सार्धं भोजयेच्च द्विजन्मनः ॥१२९५॥
ततः स्वमन्दिरे कुर्यादुत्सवं बन्धुभिः सह ।
महात्रिलोकरम्यश्च ततः स नृवरः स्वयम् ॥१२९६॥
कृतार्थं मन्यते सम्यगात्मानं नान्यथा क्वचित् ।
राजा शत्रून् विजयतेऽभिषिक्तश्च यथाविधि ॥१२९७॥
राजपुत्रश्च राजा स्यादचिरादाप्नुयात्पदम् ।
बन्ध्याभिषिक्ता रमणादचिराद्वाञ्छितं सुतम् ।
महामतिं च लभते नात्र कार्या विचारणा ॥१२९८॥
महामयेषु भूतादि समुत्थेषु भयेषु च ।
कृत्याद्रोहादिदोषे च प्रकुर्यादभिषेचनम् ॥१२९९॥

अभिषेकेणामुना च नृणां भवति निश्चितम्।
सर्वसम्पच्च सौभाग्यं सर्वामयशमस्तथा।
सर्वापद्वारणं चैव सर्वसौख्यानि निश्चितम् ॥१३००॥

इसके बाद नाना प्रकार के भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य एवं अन्य भोज्य पदार्थों से दीनों, अन्धों एवं कृपणों के साथ-साथ ब्राह्मणों को भी भोजन कराना चाहिये। तदनन्तर अपने घर पर बन्धु-बान्धवों के साथ उत्सव करना चाहिये। ऐसा करने से तीनों लोकों में रमणीय वह नरश्रेष्ठ स्वयं को कृतार्थ मान लेता है।

इस प्रकार से विधि-पूर्वक अभिषिक्त राजा शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है और राजपुत्र शीघ्र ही राजा बन जाता है। अभिषिक्त वन्ध्या स्त्री पति के साथ रमण करने पर शीघ्र ही वाञ्छित पुत्र को प्राप्त करती है और वह पुत्र अत्यन्त बुद्धिमान होता है; इसमें कोई संशय नहीं है।

महान् रोग होने पर, भूत-प्रेत का भय उपस्थित होने पर एवं कृत्या आदि का दोष होने पर इस प्रकार का अभिषेक करना चाहिये। इस अभिषेक से मनुष्यों को निश्चित ही सभी सम्पत्तियों एवं सौभाग्य की प्राप्ति होती है। उसके समस्त रोगों का शमन होता है। उसकी समस्त आपत्तियों का निवारण होता है एवं सभी सुख प्राप्त होते हैं।।१२९५-१३००।।

सप्तविंशाक्षरलक्ष्मीमन्त्रसाधनविधिः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सप्तविंशाक्षरं मनुम्।
तारो रमा शक्ति लक्ष्मि कमले कमलालये ॥१३०१॥
प्रसीदद्वितयं श्रीह्रींश्रीं महालक्ष्मि हृत्तथा।
गायत्रीछन्द उद्दिष्टं मुनिर्दक्षः प्रजापतिः ॥१३०२॥
लक्ष्मीर्देव्यथ पञ्चाङ्गं त्रिबीजपुटितैर्मनोः।
वर्णैस्त्रिपञ्चरामाग्निरामैर्ध्यानमथो ब्रुवे ॥१३०३॥
सिन्दूराभां च पद्मस्थां पद्मपत्रं च दर्पणम्।
अर्घपात्रं च दधतीं सद्धारमुकुटान्विताम् ॥१३०४॥
नानादासीपरिवृतां काञ्चीकुण्डलमण्डिताम्।
लावण्यभूमिकां वन्दे सुन्दराङ्गदबाहुकाम् ॥१३०५॥

सप्तविंशाक्षर महालक्ष्मी मन्त्र—अब मैं महालक्ष्मी के सत्ताईस अक्षरों वाले मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्मि नमः। इस मन्त्र के ऋषि दक्ष प्रजापति, छन्द गायत्री एवं देवता लक्ष्मी

कही गई हैं। त्रिबीज-पुटित मन्त्र के क्रमशः तीन, पाँच, तीन, तीन, तीन वर्णों से इस प्रकार पञ्चाङ्ग न्यास करना चाहिये—श्रीं ह्रीं श्रीं कमले श्रीं ह्रीं श्रीं हृदयाय नमः, श्रीं ह्रीं श्रीं कमलालये श्रीं ह्रीं श्रीं शिरसे स्वाहा, श्रीं ह्रीं श्रीं प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं शिखायै वषट्, श्रीं ह्रीं श्रीं प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं कवचाय हुम्, श्रीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्मि श्रीं ह्रीं श्रीं अस्त्राय फट्। अब इसके ध्यान को कहता हूँ। सिन्दूर के सदृश कान्ति वाली, कमल पर बैठी हुई, हाथों में पद्मपत्र, दर्पण एवं अर्घपात्र धारण की हुई, उत्कृष्ट हार एवं मुकुट से समन्वित, अनेक दासियों से घिरी हुई, करधनी एवं कुण्डल से सुशोभित, बाहों पर सुन्दर बाजूबन्द धारण की हुई सौन्दर्य की भूमि को मैं प्रणाम करता हूँ।

पूर्वोदिते यजेत्पीठे वर्त्तमानेन वर्त्मना।
पुरोऽङ्गानि यजेत्पश्चाच्छ्रीधरादींस्ततः परम्॥१३०६॥
श्रीधरश्च हृषीकेशो वैकुण्ठो विश्वरूपकः।
वासुदेवः सङ्कर्षणश्च प्रद्युम्नानिरुद्धकौ॥१३०७॥
तदग्राष्टदले पूज्या भारती पार्वती तथा।
ब्राह्मी सती दिक्षु चैता आग्नेयादिविदिक्षु तु॥१३०८॥
दमकः सलिलश्चापि गुग्गुलुश्च कुरन्तकः।
चत्वारस्तु गजा एते तृतीयेऽष्टदलेऽर्चयेत्॥१३०९॥
अनुरागो विसंवादो विजयो वल्लभो मदः।
हर्षो बलश्च तेजस्वी यजेल्लोकेश्वरान् बहिः॥१३१०॥
तदायुधानि तद्बाह्ये पूजयेच्चन्दनादिभिः।
एवं सम्पूजयेल्लक्ष्मीं यो मर्त्यः स धनी भवेत्॥१३११॥

पूर्वोक्त पीठ पर आगे वर्णित विधि से देवी का अर्चन करना चाहिये। सर्वप्रथम षडङ्ग-पूजन करने के बाद अष्टदल में क्रमशः श्रीधर, हृषीकेश, वैकुण्ठ, विश्वरूप, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध का पूजन करना चाहिये। इसके बाद उसके आगे दूसरे अष्टदल में पूर्वादि क्रम से दिशाओं में भारती, पार्वती, ब्राह्मी एवं सती का तथा आग्नेयादि विदिशाओं में दमक, सलिल, गुग्गुलु एवं कुरन्तक—इन चार हस्तियों का पूजन करना चाहिये। इसके बाद तीसरे अष्टदल में अनुराग, विसंवाद, विजय, वल्लभ, मद, हर्ष, बल एवं तेजस्वी का अर्चन करने के पश्चात् उसके बाहर भूपुर में दस दिक्पालों का और उसके बाहर उनके आयुधों का चन्दन आदि से पूजन करना चाहिये। जो मनुष्य इस प्रकार से सम्यक् रूप से लक्ष्मी का पूजन करता है, वह धनवान हो जाता है।।१३०६-१३११।।

लक्षं जपेत्फलैर्बिल्वैर्जुहुयान्मधुरोक्षितैः ।
दशाहं संस्कृते वह्नौ प्राक्प्रोक्तेनैव वर्त्मना ॥१३१२॥
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री साधयेदिष्टमात्मनः ।
चन्दनाक्तैः सरसिजैर्लक्षं प्रजुहुयात्सुधीः ॥१३१३॥
लभते वैरिणां राज्यं तथैव समरं विना ।
राजलक्ष्मीमनुं चैव प्राप्य राजसभां व्रजेत् ।
तथा स्वं प्राप्यते नित्यं नात्र कार्या विचारणा ॥१३१४॥
सहदेवीं श्रीलतां च श्वेतदूर्वापराजिते ।
भद्रां मधुव्रतां शक्रवल्लीं शाल्मलिमूसली ॥१३१५॥
हरिचन्दनकालीयं कर्पूरं रक्तचन्दनम् ।
कुष्ठकङ्कोलकाश्मीरं हरिद्राशिखरी समे ॥१३१६॥
पिष्ट्वा सम्यक्च सञ्जप्तमष्टोत्तरसहस्त्रकम् ।
अनेन तिलकं कुर्य्यात्सर्वं वश्यं भवेद् ध्रुवम् ।
पूर्वोक्ताश्चात्र सिद्ध्यन्ति प्रयोगा वाञ्छितार्थदाः ॥१३१७॥

तत्पश्चात् मन्त्र का एक लाख जप करने के बाद पूर्वोक्त रीति से संस्कृत अग्नि में दस दिनों तक त्रिमधु-सिक्त बेल के फलों से हवन करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार सिद्ध मन्त्र से साधक को अपने इष्ट का साधन करना चाहिये।

चन्दनाक्त कमल से एक लाख हवन करने वाला साधक विना युद्ध किये ही शत्रु के राज्य को प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार राजलक्ष्मी मन्त्र को प्राप्त करके साधक जब राजसभा में जाता है तो निस्सन्देह समस्त अधिकारों को प्राप्त कर लेता है।

सहदेई, श्रीलता, श्वेत दूर्वा, अपराजिता, भद्रा, मधुव्रता, इन्द्रवल्ली, सेमर, मूसली, हरिचन्दन, कालीय चन्दन, कपूर, रक्तचन्दन, कूठ, कंकोल, केशर, हल्दी एवं शिखरी (चिड़चिड़ा)—सबको बराबर-बराबर लेकर सम्यक् रूप से पीसकर उस पिष्ट को मन्त्र के एक हजार आठ जप से अभिमन्त्रित करने के बाद उससे तिलक लगाने पर साधक निश्चित ही सबों को वशीभूत कर लेता है। साथ ही साथ वाञ्छित अर्थ को प्रदान करने वाले पूर्वोक्त प्रयोग भी इस मन्त्र से सिद्ध होते हैं।

महालक्ष्म्याः लक्ष्मीहृदयमन्त्रः

ॐ शुद्धवाससे चोक्त्वा नमो महाश्रियै च हृत् ।
चतुर्दशाक्षरो मन्त्रो लक्ष्मीहृदयनामकः ॥१३१८॥

मनोः पदैश्च पञ्चाङ्गं पूर्ववद्ध्यानपूजनम्।
जपस्त्रिलक्षमेतस्य पद्मैर्होमो दशांशतः ॥१३१९॥
मुनिश्छन्दादिकं प्राग्वत्प्रयोगः पूर्ववन्मतः।
एतस्योपासकानां तु न वंशे स्याद्दरिद्रता ॥१३२०॥

लक्ष्मीहृदय मन्त्र—अब लक्ष्मीहृदय-नामक चौदह अक्षरों वाले मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—ॐ शुद्धवाससे नमो महाश्रियै नमः। मन्त्र के पाँच पदों से इस प्रकार पञ्चाङ्ग-न्यास किया जाता है—ॐ हृदयाय नमः, शुद्धवाससे शिरसे स्वाहा, नमो शिखायै वषट्, महाश्रियै कवचाय हुम्, नमः अस्त्राय फट्। इसका ध्यान-पूजन पूर्ववत् करना चाहिये। पुरश्चरण-हेतु इस मन्त्र का तीन लाख जप एवं कमलों से कृत जप का दशांश होम किया जाता है। इस मन्त्र के ऋषि-छन्द आदि पूर्ववत् होते हैं एवं प्रयोग भी पूर्ववत् ही कहा गया है। इस मन्त्र के उपासकों के वंश में कभी भी दरिद्रता नहीं होती।।१३१८-१३२०।।

यौं नौं मौं नम ऐं चोक्त्वा श्रियै श्रीं नम इत्यपि।
एकादशार्णो मन्त्रोऽयं जमदग्निर्मतो मुनिः ॥१३२१॥
त्रिष्टुप्छन्दो रमा देवी षडङ्गविधिरुच्यते।
यौं नौं मौं नम ऐं नमो हृदयाय नमोऽस्तु हृत् ॥१३२२॥
यौं नौं मौं नम ऐं स्वाहा शिरसेऽग्निवधूः शिरः।
यौं नौं मौं नम ऐं वषट् शिखायै च वषट् शिखा ॥१३२३॥
यौं नौं मौं नम ऐं हुं च कवचं कवचाय हुम्।
श्रियै नेत्राय वौषट् च प्रोच्य नेत्रे तु विन्यसेत् ॥१३२४॥
श्रीं नमोऽस्त्राय फट् चेत्यस्त्रमङ्गुल्यादिकं तथा।
ध्यानपूजादिकं सर्वं महालक्ष्मीवदाचरेत् ॥१३२५॥
नित्यं द्वादशसाहस्रं सप्तरात्रं मनुं जपेत्।
तेन सिद्धो भवेन्मन्त्रः साधकस्य न संशयः ॥१३२६॥
होमः पूर्वोदितैर्द्रव्यैर्दशांशं तर्पणादिकम्।
कृत्वा ब्राह्मणभोजान्तं मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ॥१३२७॥
लक्ष्मीं सुवर्णककरां ध्यात्वा मन्त्रमिमं जपेत्।
अष्टोत्तरसहस्रं स लभते वाञ्छितं फलम् ॥१३२८॥
जपन्नष्टशतं विश्वं तिलकाद्वशयेद् ध्रुवम्।
मासत्रयं जपित्वा च ग्रामं मन्त्री तथाप्नुयात् ॥१३२९॥

एकादशाक्षर मन्त्र—लक्ष्मी का ग्यारह अक्षरों का मन्त्र है—यौं नौं मौं नमः ऐं श्रियै श्री नमः। इस मन्त्र के ऋषि जमदग्नि, छन्द त्रिष्टुप् एवं देवी लक्ष्मी कही गई हैं। इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—यौं नौं मौं नमः ऐं नमो हृदयाय नमः, यौं नौं मौं नम ऐ स्वाहा शिरसे स्वाहा, यौ नौं मौं नम ऐ वषट् शिखायै वषट्, यौं नौं मौं नम ऐं हुं कवचाय हुम्, श्रियै नेत्रत्रयाय वौषट्, श्री नमः अस्त्राय फट्। इसी प्रकार करन्यास भी करना चाहिये। इसका ध्यान-पूजन आदि सबकुछ महालक्ष्मी के समान करना चाहिये।

सात रात्रियों तक प्रतिरात्रि बारह हजार मन्त्रजप करने से साधक को निस्सन्देह मन्त्र सिद्ध हो जाता है। जप के बाद पूर्वोक्त द्रव्यों से दशांश (आठ हजार चार सौ) हवन-तर्पण आदि करने के पश्चात् ब्राह्मणभोजन कराने पर मन्त्रसिद्धि हो जाती है।

हाथों में सुवर्ण धारण की हुई वाली लक्ष्मी का ध्यान करके इस मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करने वाला साधक वांछित फल को प्राप्त कर लेता है। एक सौ आठ बार मन्त्र-जप से अभिमन्त्रित तिलक लगाकर साधक समस्त संसार को वशीभूत कर लेता है। साथ ही तीन महीने तक इस मन्त्र का जप करने वाला साधक ग्रामाधिपति हो जाता है।।१३२१-१३२९।।

पद्मप्रभामन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि लक्ष्मीं पद्मप्रभाभिधाम्।
पद्मप्रभे पद्मसुन्दरि पद्मेश्यग्निगेहिनि ॥१३३०॥
चतुर्दशाक्षरो मन्त्रो ध्यानाद्येकाक्षरोदितम्।
पदैश्चतुर्भिः सर्वेण पञ्चाङ्गं गदितं मनोः ॥१३३१॥
जपपूजापुरश्चर्यादिकमेकाक्षरोदितम् ।
इयं सिद्धा महाविद्या भक्तानां कल्पवल्लिका ॥१३३२॥

लक्ष्मी का पद्मप्रभा-नामक मन्त्र—अब मैं पद्मप्रभा-नाम्नी लक्ष्मी के चतुर्दशाक्षर मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—पद्मप्रभे पद्मसुन्दरि पद्मेशि स्वाहा। इसका ध्यान एकाक्षर मन्त्र के समान कहा गया है।

मन्त्र के चार पदों से और पूरे मन्त्र से इसका पञ्चाङ्ग न्यास कहा गया है; जो इस प्रकार करना चाहिये—पद्मप्रभे हृदयाय नमः, पद्मसुन्दरि शिरसे स्वाहा, पद्मेशि शिखायै वषट्, स्वाहा कवचाय हुम्, पद्मप्रभे पद्मसुन्दरि पद्मेशि स्वाहा अस्त्राय फट्। इस मन्त्र का जप, पूजन, पुरश्चरण आदि एकाक्षर मन्त्र के समान ही कहे गये हैं। यह सिद्ध महाविद्या भक्तों के लिये कल्पलता के समान है।।१३३०-१३३२।।

साम्राज्यलक्ष्मीमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि लक्ष्मीसाम्राज्यसञ्ज्ञितम्।
आदौ श्रीबीजमुच्चार्य सहकलहरास्ततः ॥१३३३॥
ईकारान्ता बिन्दुयुता द्वितीयं कूटमुच्यते।
पुनश्च श्रीं समुच्चार्य मन्त्रस्त्र्यक्षर ईरितः ॥१३३४॥
ऋषिर्हरिस्तथा छन्दो गायत्री देवता मता।
तथैव मोहिनी लक्ष्मीः सर्वसाम्राज्यदायिनी ॥१३३५॥
बीजं कूटं समाख्यातं शक्तिः श्रीबीजमुच्यते।
षड्भिर्दीर्घैः स्वरैर्विद्वान् षडङ्गानि प्रविन्यसेत् ॥१३३६॥
अतसीपुष्पसङ्काशां रत्नभूषणभूषिताम्।
शङ्खचक्रगदापद्मशार्ङ्गबाणधरां करैः ॥१३३७॥
षड्भिः कराभ्यां देवेशीं वरदाभयशोभिताम्।
पूजयामि जगद्धात्रीं बिन्दुषट्कोणमेव च ॥१३३८॥
त्रिकोणं चाष्टपत्रं च भूपुरद्वारमण्डितम्।
अस्मिन् समावाह्य देवीं पूजयेदुपचारकैः ॥१३३९॥
बिन्दौ देवीं षडङ्गानि षट्कोणेषु यजेत्ततः।
अग्रे यजेच्च गायत्रीं सावित्रीं च सरस्वतीम् ॥१३४०॥
ब्राह्म्याद्याश्चाष्टपत्रेषु भूपुरे मनुनामुना।
अष्टादशमहाकोटियोगिनीभ्यो नमस्त्विवति ॥१३४१॥
अर्च्याः स्युर्नेत्रयोगिन्यः शक्राद्यानायुधान्यपि।
पुनर्देवीं समभ्यर्च्य गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥१३४२॥
बटुकक्षेत्रपालेभ्यो योगिनीभ्यो बलिं हरेत्।
एवमष्टभुजां ध्यात्वा त्रिलक्षं प्रजपेत्सुधीः ॥१३४३॥
तद्दशांशेन पद्मैस्तु हुनेत्साम्राज्यसिद्धये।
तर्पणं मार्जनं कुर्याद् ब्राह्मणानपि भोजयेत् ॥१३४४॥

साम्राज्यलक्ष्मी मन्त्र—अब मैं साम्राज्यलक्ष्मी-नामक मन्त्र को कहता हूँ। तीन अक्षरों का मन्त्र है—श्रीं स्ह्क्ल्हीं श्रीं। इस मन्त्र के ऋषि हरि, छन्द गायत्री एवं देवता साम्राज्य प्रदान करने वाली मोहिनी लक्ष्मी कही गई हैं। बीज स्ह्क्ल्हीं एवं शक्ति श्रीं कहा गया है। छः दीर्घ स्वरों (आं ईं ऊं ऐं औं अः) से इसका षडङ्ग न्यास करना चाहिये। इनका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—अतसी (अलसी)-पुष्प के समान,

रत्नों के आभूषणों से भूषित, छः हाथों में क्रमशः शंख चक्र गदा पद्म शार्ङ्गधनुष एवं बाण तथा दो हाथों में वर एवं अभय धारण की हुई, जगत् को धारण करने वाली देवेशी का मैं पूजन करता हूँ।
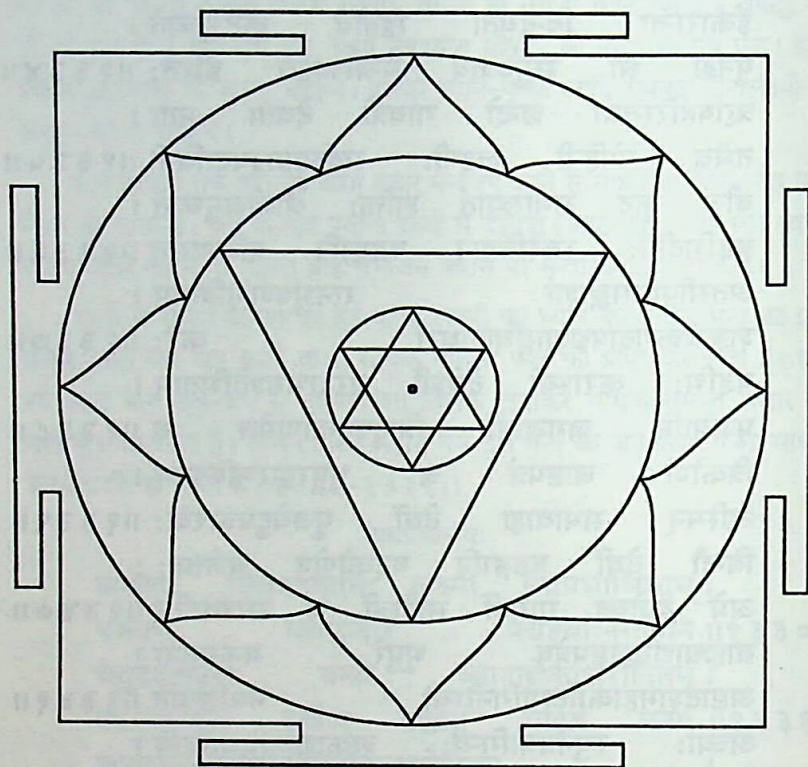
बिन्दु, षट्कोण, त्रिकोण, अष्टदल एवं द्वारयुक्त भूपुर से बने यन्त्र के बिन्दुस्थान में देवी का सम्यक् रूप से आवाहन करके उपचारों से पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् षट्कोण में षडङ्गों का पूजन करने के बाद त्रिकोण के तीनों कोणों में गायत्री, सावित्री और सरस्वती का यजन करना चाहिये।

इसके बाद अष्टदल में ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं का पूजन करने के उपरान्त भूपुर में 'अष्टादशमहाकोटियोगिनीभ्यो नमः' इस मन्त्र से नेत्रयोगिनियों का अर्चन करने के साथ-साथ इन्द्रादि दस दिक्पालों और उनके आयुधों का भी यजन करना चाहिये। इसके बाद गन्ध-पुष्प-अक्षत आदि से पुनः देवी का अर्चन करने के बाद बटुक, क्षेत्रपाल एवं योगिनियों के लिये बलि प्रदान करना चाहिये।

इस प्रकार अष्टभुजा का ध्यान करके विद्वान् साधक को साम्राज्य-सिद्धि के लिये मन्त्र का तीन लाख जप करने के बाद कमलों से जप का दशांश (तीस हजार) हवन, तर्पण एवं मार्जन करके ब्राह्मणभोजन भी कराना चाहिये।।१३३३-१३४४।।

सप्ताक्षरलक्ष्मीमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सप्तवर्णं रमामनुम्।
हृदयं ब्रह्मतनये मन्त्रोऽयं परिकीर्तितः ।।१३४५।।
मनोः पदद्वयेनैव त्रिरावृत्त्या षडङ्गकम्।
ध्यानपूजापुरश्चर्यादिकमेकाक्षरोदितम् ।।१३४६।।

सप्ताक्षर लक्ष्मी-मन्त्र—अब मैं सप्ताक्षर लक्ष्मीमन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—नमो ब्रह्मतनये। मन्त्र के दोनों पदों की तीन आवृत्ति से इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—नमः हृदयाय ब्रह्मतनये शिरसे स्वाहा, नमः शिखायै वषट्, ब्रह्मतनये कवचाय हुम्, नमः नेत्रत्रयाय वौषट्, ब्रह्मतनये अस्त्राय फट्। इसके ध्यान, पूजन, पुरश्चरण आदि सभी एकाक्षर मन्त्र के समान कहे गये हैं।।१३४५-१३४६।।

ज्येष्ठालक्ष्मीमन्त्रविधानम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि ज्येष्ठालक्ष्मीमनुं परम्।
ॐ ह्रीं श्रीमादिलक्ष्मीति पदमुक्त्वा स्वयम्भुवे।
ह्रीं ज्येष्ठायै नमः प्रोच्य मन्त्रः सप्तदशाक्षरः ।।१३४७।।
ऋषिरस्य स्मृतो ब्रह्मा छन्दस्त्रिष्टुबुदाहृतम्।
देवता ज्येष्ठलक्ष्मीश्च श्रीमाये शक्तिबीजके ।।१३४८।।
प्रमृज्य त्रिः करौ विद्वानङ्गन्यासं समाचरेत्।
त्रिवेदाब्धीन्द्वग्नियुग्मवर्णैरङ्गानि षट् क्रमात् ।।१३४९।।
शिरोभ्रूमध्यवक्त्रेषु बीजानां त्रितयं न्यसेत्।
हृन्नाभ्याधारजान्वंघ्रौ पदानां पञ्चकं न्यसेत् ।।१३५०।।

ज्येष्ठालक्ष्मी मन्त्र—अब मैं ज्येष्ठालक्ष्मी के श्रेष्ठ मन्त्र को कहता हूँ। सत्रह अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—ॐ ह्रीं श्रीं आदिलक्ष्मि स्वयम्भुवे ह्रीं ज्येष्ठायै नमः। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द त्रिष्टुप्, देवता ज्येष्ठा लक्ष्मी, शक्ति श्रीं एवं बीज ह्रीं कहे गये हैं।

तीन बार हाथों को धोकर करशुद्धि करने के बाद विद्वान् साधक को मन्त्र के तीन, चार, चार, एक, तीन एवं दो वर्णों से इस प्रकार षडङ्गन्यास करना चाहिये—ॐ ह्रीं श्रीं हृदयाय नमः, आदिलक्ष्मि शिरसे स्वाहा स्वयंभुवे शिखायै वषट्, ह्रीं कवचाय

हुम्, ज्येष्ठायै नेत्रत्रयाय वौषट्, नमः अस्त्राय फट्। इसके बाद मन्त्र के तीन बीजों (ॐ ह्रीं श्रीं) का क्रमशः शिर, भ्रूमध्य एवं मुख में न्यास करके शेष पाँच पदों को क्रमशः हृदय, नाभि, आधार, दोनों जानुओं एवं दोनों चरणों में न्यस्त करना चाहिये।।१३४७-१३५०।।

पद्मासनस्थामरुणामरुणाम्बरधारिणीम् ।
कुङ्कुमक्षोदलिप्ताङ्गीं प्रफुल्लकमलेक्षणाम् ।।१३५१।।
मन्दस्मितमुखां ज्येष्ठां सुधापूर्णं घटं घटम् ।
धनपूर्णं सृणिं पाशं दधतीं भुजपल्लवैः ।।१३५२।।
चिन्तयेत्परया भक्त्या ततो देवीं प्रपूजयेत् ।

तदनन्तर पद्मासन पर विराजमान, रक्त वर्ण वाली, रक्त वस्त्र धारण की हुई, अंगों में कुमकुम का लेप लगाई हुई, कमल-सदृश विकसित नेत्रों वाली, ईषत् मुस्कान-युक्त मुख वाली, अपने चार करपल्लवों के द्वारा सुधापूर्ण एवं धनपूर्ण दो कलश, अंकुश तथा पाश को धारण की हुई ज्येष्ठा का भक्ति-पूर्वक ध्यान करने के बाद उनका पूजन करना चाहिये।।१३५१-१३५२।।

सम्यग्धर्मादिभिः पीठं मन्त्रवित्परिकल्पयेत् ।।१३५३।।
लोहिताक्षी विरूपाक्षी कराली नीललोहिता ।
समदा वारुणी पुष्टिरमोघा विश्वमोहिनी ।
पूर्वादिदलमध्येषु मध्ये चार्च्याः क्रमादिमाः ।।१३५४।।
रक्तज्येष्ठायै विद्महे नीलज्येष्ठायै धीमहि ।
तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् ।।१३५५।।
गायत्र्यावाह्य तां ज्येष्ठां पूजयेच्चन्दनादिभिः ।
अङ्गानि मातृलोकेशांस्तदस्त्राणि प्रपूजयेत् ।।१३५६।।
लक्षं तु प्रजपेन्मन्त्रं जुहुयात्तद्दशांशतः ।
पायसेन सुसिद्धेन सर्पिःसिक्तेन साधकः ।।१३५७।।
तर्पणं मार्जनं कृत्वा ब्राह्मणानपि भोजयेत् ।
इह वंशं च सम्पत्तिं वैकुण्ठं लभते मृतः ।।१३५८।।

मन्त्रज्ञ साधक को धर्मादि द्वारा सम्यक् रूप से पीठ का निर्माण करके उस पीठ पर यन्त्र की परिकल्पना करके अष्टदल के आठ दलों के मध्य में पूर्वादि दल से आरम्भ करके क्रमशः लोहिताक्षी, विरूपाक्षी, कराली, नीललोहिता, समदा, वारुणी, पुष्टि, अमोघा एवं अष्टदलमध्य में विश्वमोहिनी—इन पीठशक्तियों का अर्चन करना चाहिये।

तत्पश्चात् 'रक्तज्येष्ठायै विद्महे नीलज्येष्ठायै धीमहि तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात्' इस

गायत्री मन्त्र से ज्येष्ठा का आवाहन करके चन्दन आदि के द्वारा उनका पूजन करना करना चाहिये। तदनन्तर षडङ्ग-पूजन करने के बाद अष्टपत्रों में ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं का पूजन करके भूपुर में इन्द्रादि दस दिक्पालों एवं उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये। इसके बाद मन्त्र का एक लाख की संख्या में जप पूर्ण करने के अनन्तर घृत-सिक्त पायस से कृत जप का दशांश (दस हजार) हवन करना चाहिये। पश्चात् तर्पण एवं मार्जन करके ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये। इस प्रकार के विधिवत् पूजन से मनुष्य के वंश की वृद्धि होती है एवं सम्पत्तियों की प्राप्ति होती है; साथ ही शरीरान्त होने पर वह वैकुण्ठ-गमन करता है।।१३५३-१३५८।।

सिद्धलक्ष्मीमहामनुविधिः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सिद्धिलक्ष्मीमहामनुम्।
एकादशाक्षरैरूनं तं शतत्रयवर्णकम् ।।१३५९।।
ॐ श्रीं नमः सर्वसिद्धियोगिनीभ्यो नमो वदेत्।
सर्वसिद्धिमातृकाभ्यो नमो नित्योदिता वदेत् ।।१३६०।।
नन्देत्युक्त्वा नन्दितायै सकलेतिपदं ततः।
कुलचक्रनामिकायै भगवत्यै पदं वदेत् ।।१३६१।।
ततश्चण्डकपालिन्यै ॐह्रींह्रूंह्रां वदेत्ततः।
ॐक्षौंक्रौं नम इत्युक्त्वा परमेति च हंसिनी ।।१३६२।।
निर्वाणमार्गदे देवि विषमोपप्लवेति च।
प्रशमनि पदं प्रोच्य सकलेति पदं वदेत् ।।१३६३।।
दुरितारिष्टक्लेशेति दलनीति ततः पदम्।
सर्वापदाम्भोधितारिणीत्युक्त्वा सकलेति च ।।१३६४।।
शत्रुविध्वंसिनि देव्यागच्छ आगच्छ उच्चरेत्।
हंसयुग्मं बलायुग्मं नरेति रुधिरान्त्र च ।।१३६५।।
वसाभक्षिणि मम शत्रूनुक्त्वा मर्दय मर्दय।
खाद खाद त्रिशूलं नो भिन्धि भिन्धि वदेत्ततः ।।१३६६।।
छिन्धि छिन्धीति खड्गेन ताडयद्वितयं वदेत्।
छेदयद्वितयं प्रोच्य तावद्यावन्ममेति च ।।१३६७।।
सकलेति पदस्यान्ते वदेदेवम्मनोरथान्।
साधयद्वितयान्ते तु वदेत्परम इत्यपि ।।१३६८।।
कारुणिके भगवति महाभैरवरूपधारिणि।
त्रिदश चेत्युक्त्वा वरेति नमिते वदेत् ।।१३६९।।

सकलेति च मन्त्रेण मातः प्रणत इत्यपि।
जनेति वत्सले देवि महाकालिपदं वदेत् ॥१३७०॥
कालनाशिनि हुंहुंहुं प्रसीद मदनातुराम्।
कुरु कुरु सुरासुरकन्यकां ह्रीं वसुप्रिया ॥१३७१॥
हुं त्रिधा फट् ततः स्वाहा मन्त्रोऽयं समुदीरितः।

सिद्धलक्ष्मी-महामन्त्र—अब मैं सिद्धलक्ष्मी के महामन्त्र को कहता हूँ। यह मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—ॐ श्रीं नमः सर्वसिद्धियोगिनीभ्यो नमो सर्वसिद्धिमातृकाभ्यो नमो नित्योदितानन्दानन्दितायै सकलकुलचक्रनामिकायै भगवत्यै चण्डकपालिन्यै ॐ ह्रीं हूं ह्रां ॐ क्षौं क्रौं नमः परमहंसिनि निर्वाणमार्गदे देवि विषमोपप्लवप्रशमनि सकलदुरितारिष्टक्लेशदलनि सर्वापदाम्भोधितारिणि सकलशत्रुविध्वंसिनि देव्यागच्छ आगच्छ हंस हंस बला बला नररुधिरान्त्रवसाभक्षिणि मम शत्रून् मर्दय मर्दय खाद खाद त्रिशूलं नो भिन्धि भिन्धि छिन्धि छिन्धि खड्गेन ताड़य ताड़य छेदय छेदय तावद्यान्मम सकलमनोरथान् साधय साधय परमकारुणिके भगवति महाभैरवरूपधारिणि त्रिदशवरनमिते सकलमन्त्रेण मातः प्रणतजनवत्सले देवि महाकालि कालनाशिनि हुं हुं हुं प्रसीद मदनातुरां कुरु कुरु सुरासुरकन्यकां ह्रीं वसुप्रिया हुं हुं हुं फट् स्वाहा।।१३५९-१३७१।।

त्रिलोचनमुनिश्चातिजगतीछन्द उच्यते ॥१३७२॥
सिद्धिलक्ष्मीर्देवता श्रीं बीजं ह्रीं शक्तिरुच्यते।
तारादिकन्तु हृदयं वदेत्परमहंसिनि ॥१३७३॥
निर्वाणमार्गदे देवि शीर्षमन्त्रो ध्रुवादिकः।
विषमोपप्लवप्रशमनि ध्रुवाद्या शिखा मता ॥१३७४॥
सकलदुरितारिष्टक्लेशदलनि वर्म च।
सर्वापदाम्भोधितारिणीति नेत्रं ध्रुवादिकम् ॥१३७५॥
सकलशत्रुध्वंसिनि ताराद्यं चास्त्रमुच्यते।
एवं कृत्वा षडङ्गानि वक्त्रन्यासं समाचरेत् ॥१३७६॥
ॐ नमः सर्वसिद्धीति योगिनीभ्यः पदं वदेत्।
ईशानवक्त्राय नमः पूर्ववक्त्रे तु विन्यसेत् ॥१३७७॥
ॐ नमः सर्वसिद्धीति मातृभ्य इति चोच्चरेत्।
तत्पुरुषेति वक्त्राय नमः प्रोच्य न्यसेदवाक् ॥१३७८॥
ऐं ह्रीं नित्योदितानन्दनन्दितायै वदेत्ततः।
अघोरवक्त्राय नमः पश्चिमे तु मुखे न्यसेत् ॥१३७९॥

ऐं सकलकुलचक्रनायिकायै पदं वदेत्।
वामदेववक्त्रायेति नमश्चोदङ्मुखे न्यसेत्॥१३८०॥
भगवत्यै चण्डकपालिन्यै वाक्पूर्वकं न्यसेत्।
सद्योजातेति वक्त्राय नमश्चोर्ध्वमुखे न्यसेत्॥१३८१॥
पञ्चवक्त्रां दशभुजां पीनोन्नतपयोधराम्।
तडित्कोटिसमप्रख्यां सिन्दूरारुणविग्रहाम्॥१३८२॥
अक्षमालां कपालञ्च शूलं खड्गञ्च बिभ्रतीम्।
खेटं घण्टां स्वर्णपाशं साङ्कुशं वरदाभये॥१३८३॥
नीलग्रीवां चन्द्रमौलिं त्रिनेत्रां सर्पभूषणाम्।
सर्वसिद्धिप्रदां देवीं सिद्धिलक्ष्मीं विचिन्तयेत्॥१३८४॥

इस मन्त्र के ऋषि त्रिलोचन, छन्द अतिजगती, देवता सिद्धिलक्ष्मी, बीज श्रीं एवं शक्ति ह्रीं कहा गया है। इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—ॐ ह्रीं श्रीं हृदयाय नम:, ॐ परमहंसिनि निर्वाणमार्गदे देवि शिरसे स्वाहा, ॐ विषमोपप्लवप्रशमनि शिखायै वषट्, ॐ सकलदुरितारिष्टक्लेशदलनि कवचाय हुम्, ॐ सर्वापदाम्भोधितारिणि नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ सकलशत्रुविध्वंसिनि अस्त्राय फट्।

इस प्रकार षडङ्गन्यास करने के बाद वक्त्रन्यास करना चाहिये। 'ॐ नम: सर्वसिद्धियोगिनीभ्य: ईशानवक्त्राय नम:' से पूर्वमुख में न्यास करना चाहिये। 'ॐ नम: सर्वसिद्धिमातृभ्य: तत्पुरुषवक्त्राय नम:' से दक्षिणमुख से न्यास करना चाहिये। 'ऐं ह्रीं नित्योदितानन्दनन्दितायै अघोरवक्त्राय नम:' से पश्चिममुख में न्यास करना चाहिये। 'ऐं सकलकुलचक्रनायिकायै वामदेववक्त्राय नम:' से उत्तरमुख में न्यास करना चाहिये। 'भगवत्यै चण्डकपालिन्यै सद्योजाताय नम:' से ऊर्ध्वमुख में न्यास करना चाहिये।

इसके बाद पाँच मुख एवं दस भुजाओं वाली, स्थूल उन्नत पयोधरों वाली, करोड़ों बिजलियों के समान दीप्तिमान, सिन्दूर के सदृश रक्त वर्ण वाली, हाथों में अक्षमाला कपाल शूल खड्ग मूसल घण्टा स्वर्णपाश अंकुश वर एवं अभय धारण की हुई, नीली ग्रीवा वाली, मौली पर चन्द्रमा को धारण की हुई, तीन नेत्रों वाली, सर्पों का आभूषण धारण की हुई, समस्त सिद्धियाँ प्रदान करने वाली देवी सिद्धिलक्ष्मी का ध्यान करना चाहिये।।१३७२-१३८४।।

मार्गद्वयेऽपि पूजास्या मापीठे दक्षिणे यजेत्।
वामे तु भुवनेश्वर्या अङ्गैः स्यात्प्रथमावृतिः॥१३८५॥
राज्यविद्या च सौभाग्यामृतकाम्यपदादिकाः।
सत्यभोगयोगपूर्वा लक्ष्म्योऽष्टौ च दलाष्टके॥१३८६॥

एतद् द्वितीयावरणं ब्राह्म्याद्याभिस्तृतीयकम्।
चतुर्थमसिताङ्गाद्यैर्लोकपालैश्च पञ्चमम्॥१३८७॥
चतुस्सहस्रप्रमितः पुरश्चर्य्याजपः स्मृतः।
होमयेद् गुग्गुलाज्याभ्यां प्रयोगानथ वच्म्यहम्॥१३८८॥

दक्षिण एवं वाम—दोनों मार्गों से इस देवी की उपासनी की जाती है। दक्षिणमार्ग में रमापीठ पर एवं वाममार्ग में भुवनेश्वरीपीठ पर अर्चन करना चाहिये। प्रथम आवरण में षट्कोण में षडङ्ग-पूजन किया जाता है। इसके बाद अष्टदल में राज्यलक्ष्मी, विद्यालक्ष्मी, सौभाग्यलक्ष्मी, अमृतलक्ष्मी, काम्यलक्ष्मी, सत्यलक्ष्मी, भोगलक्ष्मी एवं योगलक्ष्मी—इन आठ लक्ष्मियों का पूजन करना चाहिये। यह द्वितीय आवरण का पूजन होता है। तृतीय आवरण में ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, इन्द्राणी, वाराही, चामुण्डा एवं अपराजिता—इन अष्टमातृकाओं का एवं चतुर्थ आवरण में असिताङ्ग आदि अष्टभैरवों का पूजन करने के उपरान्त पञ्चम आवरण में आयुध-सहित इन्द्रादि दस दिक्पालों का पूजन करना चाहिये।

पुरश्चरण-हेतु इस मन्त्र का चार हजार की संख्या में जप करने के पश्चात् आज्य-मिश्रित गुग्गुलु से हवन करना चाहिये। अब प्रयोगों को कहता हूँ।।१३८५-१३८८।।

अश्वत्थवृक्षमालिङ्ग्य न्यग्रोधं प्लक्षमेव च।
सहस्रन्तु जपेन्मन्त्रं ग्रहपीडादिशान्तये॥१३८९॥
जातीगुल्मं समालिङ्ग्य कर्णिकारं सुपुष्पितम्।
बिल्वं वा पूजयेद्देवीं जपेदष्टसहस्रकम्॥१३९०॥
सहस्रं लभते स्वर्णं न दरिद्रो भवेत्ततः।
शालिभिः स्वर्णलाभः स्याद्गोधूमैः पुष्टिरेव च॥१३९१॥
यवहोमेन धान्यं स्यादिक्षुभिश्चतुरङ्गुलैः।
कुमुदैर्जनवात्सल्यं बकुलैरतुलाः श्रियः॥१३९२॥
अशोकपुष्पैर्लाभः स्यात्पाटलीभिः शुभाङ्गना।
माषहोमेन मूकः स्यात्कोद्रवैर्व्याधियुग्भवेत्॥१३९३॥
फलैर्बैभीतकैर्भ्रान्तो म्रियते शाल्मलीहुतात्।
कटुतैलेन विद्वेषः स्तम्भः प्रीतप्रकारकैः॥१३९४॥
वायुवेगपतत्पत्रहोमेनोच्चाटनं रिपोः।
होमोऽन्येषां पदार्थानामष्टोत्तरसहस्रकम्॥१३९५॥

ग्रह-जनित पीड़ा आदि की शान्ति के लिये पीपल, वट और पाकड़ के वृक्षों का आलिङ्गन करके मन्त्र का एक हजार बार जप करना चाहिये।

जातीलता, पुष्पित कर्णिकार अथवा बिल्ववृक्ष का आलिङ्गन करके देवी का पूजन करते हुये मन्त्र का आठ हजार जप करने से एक हजार स्वर्णमुद्राओं की प्राप्ति होती है, जिसके बाद वह साधक दरिद्र नहीं रह जाता।

धान्य के हवन से स्वर्ण-लाभ, गेहूँ के हवन से पुष्टि एवं यव के हवन से धान्य की प्राप्ति होती है। चार अंगुल लम्बे ईख के टुकड़ों तथा कुमुदपुष्पों के हवन से जनवात्सल्य (लोगों का प्रेम) प्राप्त होता है। मौलसिरी-पुष्पों के हवन से अतुल धन की प्राप्ति होती है।

अशोकपुष्पों के हवन से लाभ होता है। पाटलीपुष्पों के हवन से सुन्दर स्त्री की प्राप्ति होती है। उड़द के हवन से शत्रु मूक (गूँगा) हो जाता है। कोदो के हवन से शत्रु व्याधियुक्त हो जाता है। बहेड़ाफलों के हवन से शत्रु भ्रान्त होता है। सेमरपुष्पों के हवन से शत्रु की मृत्यु होती है। सरसो तेल के हवन से विद्वेषण होता है। प्रीतिकर पुष्पों के हवन से स्तम्भन होता है। हवा के झोकों से झड़े पत्तों के हवन से शत्रु का उच्चाटन होता है। अन्य पदार्थों से एक हजार आठ आहुतियों द्वारा हवन करना चाहिये।।१३८९-१३९५।।

कस्तूरिकादिहोमेन दिव्यदेहं लभेत ना।
सरसीरुहहोमेन साम्राज्यं लभते नरः ।।१३९६।।
ब्रह्मवृक्षसमिद्धोमाद् ब्रह्मश्रियमवाप्नुयात्।
आयुषे दूर्वया होमो वटहोमेन यक्षिणी ।।१३९७।।
उदुम्बरसमिद्धोमात्पुत्रः स्यादुत्तमोत्तमः ।
महाभये समुत्पन्ने महारिष्टसमुद्भवे ।।१३९८।।
सितश्रीपुष्पबीजेनापामार्गमिश्रितेन च।
तिलतण्डुलहोमेन महाभयनिवारणम् ।।१३९९।।
श्रीफलं घृतसंयुक्तं जुहुयात्तिलतण्डुलम्।
श्वेतपद्मकहोमेन विद्यार्थी लभते च ताम् ।।१४००।।
भोगार्थी लभते भोगान् स्वेष्टं प्राप्नोत्यसंशयम्।
ज्वराश्चातुर्थिकाद्याश्च व्याधयो विविधा ग्रहाः ।।१४०१।।
सप्तजन्मोदकानान्तु नश्यन्त्यभ्युक्षणात्क्षणात्।
एकविंशतिजप्ताम्बुपानात् सर्वविषापहम् ।।१४०२।।

कुङ्कुमागुरुकर्पूरगोरोचनविमिश्रितम् ।
तिलकं सप्तजपितं सर्ववश्यकरम्भवेत् ॥१४०३॥
भक्ष्यभोज्यान्नहोमस्तु सर्वसिद्धिविभूतिकृत् ।
इत्यष्टमातृकाः प्रोक्ताः किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥१४०४॥

इति श्रीमहामायामहाकालानुमते मेरुतन्त्रे शिवप्रणीते
ब्राह्म्याद्यष्टमातृकामन्त्रप्रकाशस्त्रयोविंशः ॥२३॥

•

कस्तूरी आदि के हवन से मनुष्य दिव्य शरीर प्राप्त करता है। कमलों के हवन से मनुष्य को साम्राज्य की प्राप्ति होती है।

ब्रह्मवृक्ष (पलाश) की समिधा के हवन से ब्रह्मश्री (सरस्वती) की प्राप्ति होती है। आयु की प्राप्ति के लिये दूर्वा से हवन करना चाहिये। वटसमिधा के हवन से यक्षिणी सिद्ध होती हैं। गूलर की समिधा के हवन से सर्वश्रेष्ठ पुत्र की प्राप्ति होती है।

महाभय एवं भयंकर अनिष्ट होने की अवस्था में अपामार्ग (चिड़चिड़ा)-मिश्रित श्वेत श्रीपुष्प (लवंग) के बीज, तिल एवं चावल मिलाकर हवन करने से महान् भयों का निवारण हो जाता है।

श्रीफल, घी, तिल, चावल एवं श्वेत पद्म मिलाकर हवन करने से निश्चित रूप से विद्याकामी को विद्या एवं भोगकामी को अभीप्सित भोग प्राप्त होता है। इस मन्त्र के सात जप से अभिमन्त्रित जल का छींटा मारने से चातुर्थिक ज्वर एवं विविध ग्रह-कृत व्याधियाँ नष्ट होती हैं। मन्त्र के इक्कीस जप से अभिमन्त्रित जल का पान करने से समस्त विषों का नाश होता है।

कुमकुम, अगुरु, कपूर, गोरोचन को मिलाकर बनाये गये लेप को मन्त्र के सात जप से अभिमन्त्रित कर उससे तिलक करने से सभी लोगों का वशीकरण होता है। भक्ष्य एवं भोज्य अन्न के हवन से सभी सिद्धियों के साथ वैभव की प्राप्ति होती है। इस प्रकार अष्टमातृकाओं का विवेचन किया गया; अब और क्या सुनना चाहती हो।।१३९६-१४०४।।

**इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र में
शिवप्रणीत 'ब्राह्मी आदि अष्टमातृका-मन्त्रकथन'-
नामक त्रयोविंश प्रकाश पूर्णता को प्राप्त हुआ।**

•

चतुर्विंशतितमः प्रकाशः

(दशदिगीशमन्त्रनिरूपणम्)

श्रीदेव्युवाच

सर्वेषां ये तु देवानां बाह्यावरणके स्थिताः ।
दिगीशास्तन्मनून् ब्रूहि फलं चापि महेश्वर ॥१॥

श्रीदेवी ने कहा—हे महेश्वर! जो (दिक्पालगण) समस्त देवताओं के बाहरी आवरण-रूप में अवस्थित हैं, उन दिक्स्वामियों के मन्त्रों के साथ-साथ उनके फलों को भी आप कहें।।१।।

इन्द्रमन्त्रकथनम्

श्रीमहेश्वर उवाच

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि दिक्पतीनां मनून् क्रमात् ।
इमिन्द्राय नमश्चेति शक्रमन्त्रः षडक्षरः ॥२॥
पंक्तिश्छन्दो मुनिर्ब्रह्मा देव इन्द्रः प्रकीर्तितः ।
इन्द्राय शक्तिरिं बीजं बीजेनैव षडङ्गकम् ॥३॥
पीतवर्णं सहस्राक्षं वज्रपद्मकरं विभुम् ।
सर्वालङ्कारसंयुक्तं नौमीन्द्रं दिक्पतीश्वरम् ॥४॥

इन्द्र-मन्त्र—श्री महेश्वर बोले—हे देवि! मैं दिक्पालों के मन्त्रों का क्रमशः विवेचन करता हूँ; श्रवण करो। शक्र (इन्द्र) का छः अक्षरों का मन्त्र है—इं इन्द्राय नमः। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द पंक्ति, देवता रुद्र, शक्ति इन्द्राय एवं बीज 'इं' कहा गया है। बीजाक्षर 'इं' से ही इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये।

तदनन्तर इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—पीले वर्ण वाले, हजार आँखों वाले, हाथों में वज्र एवं पद्म धारण किये हुये, अतीव बलशाली, समस्त अलंकारों से सुसज्जित, दिक्स्वामियों के अधिपति इन्द्र को मैं प्रणाम करता हूँ।।२-४।।

षडस्रमध्ये देवेन्द्रं पत्रेष्वङ्गानि पूजयेत् ।
तद्बाह्येऽष्टदले प्रोक्तमन्त्रैरेतैः क्रमाद्यजेत् ॥५॥

कं कार्तिकेयं रं चाग्निमीं यमं हं च निर्ऋतिम्।
वं वरुणं यं च वायुं सं सोमं चेशमं त्विति ।।६।।
ङेऽन्ता नमोऽन्ता मन्त्राः स्युर्वज्राद्यैः स्यात्तृतीयकम्।
प्रजपेल्लक्षमेकन्तु बिल्वाज्यं जुहुयात्ततः ।।७।।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगं कर्तुमर्हति।

षट्कोण के मध्य में देवेन्द्र का पूजन करने के उपरान्त उसके पत्रों में षडङ्ग-पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् उसके बाहर अष्टदल में आगे कहे गये मन्त्रों से क्रमशः इनका पूजन करना चाहिये—कं कार्तिकेयाय नमः, रं अग्नये नमः, ईं यमाय नमः, हं निर्ऋतये नमः, वं वरुणाय नमः, यं वायवे नमः, सं सोमाय नमः, ईं ईशानाय नमः। इसके बाद भूपुर में उन दिक्पालों के व्रजादि आयुधों का पूजन करना चाहिये।
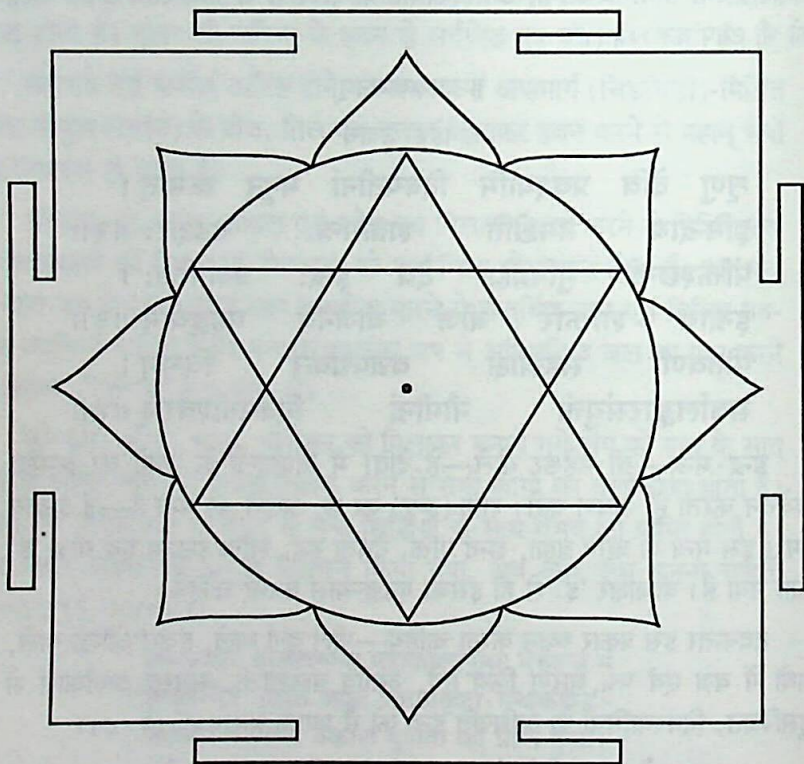
इस प्रकार पूजन करने के उपरान्त शक्रमन्त्र का एक लाख की संख्या में जप करना चाहिये। जप सम्पन्न करने के पश्चात् बेल एवं आज्य (गोघृत) से हवन करना

चाहिये। इस प्रकार सिद्ध किये गये मन्त्र द्वारा प्रयोग करने में मन्त्रज्ञ साधक समर्थ हो जाता है।।५-७।।

मण्डलन्तु चतुष्कोणं कृत्वा तन्मध्यगं लिखेत् ।।८।।
पद्ममष्टदलं तस्मिन्नववस्त्रेण वेष्टितम् ।
अव्रणं स्थापयेत्कुम्भं सुवर्णोदकपूरितम् ।।९।।
पूज्य सपरिवारेन्द्रं सहस्रेणाभिमन्त्रयेत् ।
तज्जलं स्नापयेत्तेन राज्यभ्रष्टो नृपो लभेत् ।।१०।।
स्वराज्यमन्योऽपि नरः स्नातो लक्ष्मीपतिर्भवेत् ।
न स्नापयेद्धर्महीनं भक्तिश्रद्धादिविच्युतम् ।।११।।

चौकोर मण्डल का निर्माण करके उसके मध्य में अष्टदल कमल बनाकर उसपर नूतन वस्त्र से वेष्टित एवं सुगन्धित जल से परिपूर्ण छिद्र-रहित कलश स्थापित करना चाहिये। फिर उसमें आवरण-सहित इन्द्र का पूजन करने के उपरान्त मन्त्र के एक हजार जप से उस कलशोदक को अभिमन्त्रित करना चाहिये। उस अभिमन्त्रित जल से स्नान करने पर राज्य से च्युत किया गया राजा अपने राज्य को पुनः प्राप्त कर लेता है। अन्य लोग भी उस अभिमन्त्रित जल से स्नान करके धनपति हो जाते हैं। धर्म से सर्वथा रहित (नास्तिक) एवं श्रद्धा-भक्ति से विहीन व्यक्ति को उस जल से स्नान नहीं कराना चाहिये।।८-११।।

वह्निमन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि तत्त्वार्णं वह्निमन्त्रकम् ।
भूर्भुवःस्वरग्ने च जातवेद इहावह ।।१२।।
सर्वकर्माणि सम्भाष्य साधयाग्निप्रियान्तकः ।
ऋषिर्भृगुर्भवेच्छन्दो गायत्रं देवतानलः ।।१३।।
पञ्चषड्वेदपञ्चत्रिकरवर्णैः षडङ्गकम् ।
ध्यायेदग्निं कण्ठगतस्वर्णमालाविराजितम् ।।१४।।
रक्तचन्दनलिप्ताङ्गमरुणस्रक्सुशोभितम् ।
ज्वालापुञ्जकृतातापं श्वेतवस्त्रं च बिभ्रतम् ।।१५।।
शक्तिं च स्वस्तिकं दर्भमुष्टिं च जपमालिकाम् ।
स्रुक्स्रुवौ च वराभीती रक्ताभं दहनं भजेत् ।।१६।।

अग्नि-मन्त्र—अब मैं पच्चीस अक्षरों वाले अग्निमन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—ॐ भूर्भुवःस्वः अग्ने जातवेद इहावह सर्वकर्माणि साधय स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि

भृगु, छन्द गायत्री एवं देवता अग्नि कहे गये हैं। मन्त्र के पाँच, छः, चार, पाँच, तीन एवं दो वर्णों से इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—ॐ भूर्भुवःस्वः हृदयाय नमः, अग्ने जातवेद शिरसे स्वाहा, इहावह शिखायै वषट्, सर्वकर्माणि कवचाय हुम्, साधय नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहास्त्राय फट्।

तत्पश्चात् गले में सुवर्ण की माला धारण किये हुये, अङ्गों में रक्तचन्दन का लेप लगाये हुये, रक्त वर्ण की माला से सुशोभित, अग्निज्वालाओं से ताप उत्पन्न करते हुये, श्वेत वस्त्र धारण किये हुये, हाथों में शक्ति स्वस्तिक दर्भपुञ्ज जपमालिका स्रुक् स्रुवा वर एवं अभय धारण किये हुये, रक्त वर्ण की कान्ति वाले अग्निदेव का ध्यान करना चाहिये।।१२-१६।।

गुरोर्लब्धमनुर्मन्त्री चतुर्दश्यामुपोषितः।
जपेद्भानुसहस्राणि शुद्धाचारो जितेन्द्रियः ॥१७॥
अमावास्यादिने विप्रान् भोजयेन्मधुरोत्तरैः।
भक्ष्यैर्भोज्यैर्यथाशक्ति दद्यात्तेभ्यश्च दक्षिणाः ॥१८॥
भुक्त्वा स्वयं समानीय होमद्रव्याणि शोधयेत्।
अपरं दिनमारभ्य होमं कुर्यादतन्द्रितः ॥१९॥
क्रमाद्वटसमिद्व्रीहितिलराजीहविर्घृतैः।
नित्यमष्टोत्तरशतं जुहुयाद्दिनशः सुधीः ॥२०॥
दशाहमेवं निर्वर्त्य विधानेन विधानवित्।
ततः पूर्णाहुतिं सम्यगेकादश्यां द्विजोत्तमान्।
सम्पूज्य तर्पयेद्विप्रैर्यथाविभवमादरात् ॥२१॥
गुरवे दक्षिणां दद्याद्धेनुं साङ्गां पयस्विनीम्।
वासांसि धनधान्यादि नत्वा सम्प्रीणयेद् गुरुम् ॥२२॥

जितेन्द्रिय, पवित्र आचार वाले तथा गुरु से मन्त्र-प्राप्त मन्त्रज्ञ साधक को चतुर्दशी तिथि में उपवास रहकर मन्त्र का बारह हजार जप करना चाहिये। तत्पश्चात् अमावस्या के दिन ब्राह्मणों को सुमधुर भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थों से भोजन कराने के उपरान्त उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करनी चाहिये। इसके बाद स्वयं भोजन करने के पश्चात् हवनीय द्रव्यों को लाकर उनका शोधन करने के बाद दूसरे दिन से सावधान होकर हवन करना चाहिये। विद्वान् साधक को एक-एक दिन क्रमशः वट की समिधा, चावल, तिल, राई, खीर एवं घृत से एक सौ आठ बार हवन करना चाहिये।

इस प्रकार विधि-पूर्वक दस दिनों तक हवन करने के उपरान्त एकादशी को

सम्यक् रूप से पूर्णाहुति करने के पश्चात् श्रेष्ठ ब्राह्मणों का सम्यक् रूप से पूजन करके आदर-पूर्वक उन्हें यथाशक्ति धन प्रदान करके तृप्त करना चाहिये। तदनन्तर प्रणाम-पूर्वक बछड़े-सहित दूध देने वाली गाय, वस्त्र, धन, धान्य आदि से समन्वित दक्षिणा प्रदान करते हुये गुरु को सम्यक् रूप से प्रसन्न करना चाहिये।।१७-२२।।

स्वमण्डलान्तं प्रयजेत्पीठं सनवशक्तिकम्।
पीता श्वेतारुणा कृष्णा धूम्रा तीक्ष्णा स्फुलिङ्गिनी।
रुचिरा ज्वलिनी प्रोक्ता: क्रमशो नव शक्तय: ॥२३॥
स्वबीजेनासनन्दद्यान्मूर्तिं मूलेन कल्पयेत्।
अत्र सम्पूजयेद्वह्निं विधिना प्रोक्तलक्षणम् ॥२४॥
अङ्गपूजा पुरा प्रोक्ता मूर्तयोऽष्टौ दलेष्विमा:।
जातवेदा: सप्तजिह्वो हव्यवाहनसञ्ज्ञक: ॥२५॥
अश्वोदरजसञ्ज्ञोऽन्य: पुनर्विश्ववराह्वय:।
कौमारतेजा: स्याद्विश्वमुखो देवमुख: पर: ॥२६॥
अर्च्य: स्वस्तिकशक्तिभ्यां विराजितकराम्बुज:।
लोकेशानर्चयेद्बाह्ये वज्राद्यायुधसंयुतान् ॥२७॥
इति सम्पूजयेन्नित्यं जपेत्साग्रं सहस्रकम्।
जायते वत्सरादर्वाग्धनधान्यसमृद्धिमान् ॥२८॥

इसके बाद नव शक्तियों से समन्वित अपने मण्डल के मध्य-स्थित पीठ का पूजन करना चाहिये; वे नव शक्तियाँ इस प्रकार कही गई हैं—पीता, श्वेता, अरुणा, कृष्णा, धूम्रा, तीक्ष्णा, स्फुलिङ्गिनी, रुचिरा एवं ज्वलिनी। पुन: अग्निबीज (रं) से आसन प्रदान करने के उपरान्त मूल मन्त्र से मूर्त्ति की कल्पना करके उस मूर्ति में विधि-पूर्वक अग्नि का पूजन करना चाहिये।

तत्पश्चात् पूर्व-कथित अङ्गपूजन करने के उपरान्त अष्टदल के आठो दलों में क्रमश: इनका पूजन करना चाहिये—जातवेद, सप्तजिह्व, हव्यवाहन, अश्वोदरज, विश्ववर, कौमारतेज, विश्वमुख एवं देवमुख।

तत्पश्चात् हाथों में कमल धारण किये हुये स्वस्तिक एवं शक्ति का अर्चन करने के उपरान्त उसके बाहर भूपुर में वज्र आदि आयुधों से समन्वित दिक्पालों का अर्चन करना चाहिये। इस प्रकार पूजन करने के बाद उस यन्त्रपीठ के सामने बैठकर प्रतिदिन मन्त्र का एक हजार जप करने वाला साधक एक वर्ष के भीतर ही धन-धान्य से समृद्ध हो जाता है।।२३-२८।।

षण्मासं कपिलाज्येन जुहुयाद्वत्सरान्तरे ।
तस्य सञ्जायते लक्ष्मीः कीर्तिस्त्रैलोक्यवन्दिता ॥२९॥
साज्यमन्नं प्रजुहुयाद्वत्सराल्लभते श्रियम् ।
कुसुमैर्ब्रह्मवृक्षस्य दधिक्षौद्रघृतप्लुतैः ।
करवीरप्रसूनैर्वा मण्डलात् स्यात्समृद्धिमान् ॥३०॥
शालिभिर्जुहुयान्नित्यं विधिनाष्टोत्तरं शतम् ।
व्रीहिगोमहिषान्नाद्यैर्भवनं तस्य पूर्यते ।
तिलहोमेन महतीं श्रियमाप्नोति मानवः ॥३१॥
पलाशबिल्वखदिरशमीदुग्धमहीरुहाम् ।
विकङ्कतारग्वधयोः समिद्भिः करवीरजैः ॥३२॥
प्रसूनैः कुमुदैः पद्मैः कह्लारैररुणोत्पलैः ।
जातीप्रसूनैर्दूर्वाभिर्नित्यमष्टोत्तरं शतम् ॥३३॥
एकेन जुहुयान्मन्त्री प्रतिपत्स्वथ वा सुधीः ।
साधयेदखिलान् कामान् षण्मासान्नात्र संशयः ॥३४॥

छः मास-पर्यन्त कपिला गाय के घृत से हवन करने वाला साधक एक वर्ष के भीतर ही तीनों लोकों में प्रशंसनीय लक्ष्मी एवं कीर्ति वाला हो जाता है। एक वर्ष-पर्यन्त गोघृत-समन्वित अन्न से हवन करने वाला साधक लक्ष्मी प्राप्त करता है। चालीस दिनों तक दधि, मधु एवं घृत से सिक्त ब्रह्मवृक्ष-पुष्प (पलाशपुष्प) अथवा कनेरपुष्प से हवन करने वाला साधक समृद्धि-सम्पन्न होता है। प्रतिदिन विधि-पूर्वक शालि (तण्डुल) की एक सौ आठ आहुतियों से हवन करने वाले साधक का घर धान्य, गाय-भैंस, अन्न आदि से भरा-पूरा हो जाता है। तिल के हवन से मनुष्य विपुल लक्ष्मी प्राप्त करता है।

जो साधक प्रतिदिन एक सौ आठ बार पलाश, बेल, खैर, शमी, दूध वाले वृक्ष, विकङ्कत एवं अमलतास की समिधा तथा कनेर, कुमुद, कमल, कह्लार, लाल कमल एवं जातीपुष्प तथा दूर्वा से हवन करता है अथवा प्रत्येक प्रतिपदा तिथि को उक्त में से एक-एक से हवन करता है, उसकी समस्त कामनायें छः मास के भीतर पूर्ण हो जाती हैं; इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिये।।२९-३४।।

अग्नेरपरो मन्त्रः

अथ मन्त्रान्तरं वक्ष्ये वह्नेः सेव्यं त्रिवर्णकैः ।
उत्तिष्ठ पुरुष ब्रूयाद्धरिपिङ्गलतत्परम् ॥३५॥

लोहिताक्षपदं देहि मे प्रदापय ठद्वयम्।
चतुर्विंशत्यक्षरात्मा समृद्धिमनुरीरितः ॥३५॥
ऋष्यादयः पुरा प्रोक्ता मन्त्राणैरङ्गकल्पनम्।
षट्शराब्धित्रिवेदद्विमितैर्ध्यायेद्धुताशनम् ॥३७॥
सिन्दूरपूरप्रतिमं स्वर्णाश्वत्थाद्विनिर्गतम्।
रोमवल्लीलसज्ज्वालं कान्ताजनविमोहनम् ॥३८॥
अनर्घ्यरत्नसंयुक्तभूषणैश्च विभूषितम्।
लक्षं मनुं जपेदेनं पयोऽन्नेन ससर्पिषा।
दशांशं जुहुयाद्वह्नौ तुरगाग्निमनुं स्मरेत् ॥३९॥
पीठे प्रागीरितेऽभ्यर्च्य तदङ्गैर्मूर्तिभिः सह।
आशापालैस्तदीयास्त्रैरभ्यर्च्य हव्यवाहनम् ॥४०॥

अग्नि का अन्य मन्त्र—अब तीनों वर्णों (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य) द्वारा उपासना के योग्य चौबीस अक्षरों वाले अग्नि के अन्य मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—उत्तिष्ठ पुरुष हरिपिङ्गल लोहिताक्ष देहि मे प्रदापय ठ ठः। पूर्वमन्त्रोक्त ऋषि-छन्द आदि ही इसके भी ऋषि आदि कहे गये हैं। मन्त्र के क्रमशः छः, पाँच, चार, तीन, चार एवं दो वर्णों से इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—उत्तिष्ठ पुरुष हृदयाय नमः, हरिपिंगल शिरसे स्वाहा, लोहिताक्ष शिखायै वषट्, देहि मे कवचाय हुम्, प्रदापय नेत्रत्रयाय वौषट्, ठः ठः अस्त्राय फट्। इसके बाद सिन्दूर एवं दाहागरु की मूर्तिस्वरूप, स्वर्णरूपी वटवृक्ष से निर्गत, रोम-रोम में ज्वालाओं से सुशोभित, स्त्रियों को मुग्ध करने वाले, बहुमूल्य रत्न-जटित आभूषणों से सुशोभित अग्निदेव का ध्यान करना चाहिये। तत्पश्चात् अग्निमन्त्र का एक लाख जप करने के उपरान्त तुरगाग्नि मन्त्र का स्मरण करते हुये घृत-सहित दुग्धान्न से कृत जप का दशांश (दस हजार) अग्नि में हवन करना चाहिये। इसके बाद पूर्वोक्त पीठ का अङ्गमूर्तियों के सहित अग्निदेव का अर्चन करने के अनन्तर दिक्पालों और उनके आयुधों का अर्चन करना चाहिये।।३५-४०।।

प्रातःस्नानरतो मन्त्री सहस्रं प्रजपेन्मनुम्।
जित्वा रोगान् स जीवेत श्रिया वर्षशतं नरः ॥४१॥
हृत्प्रमाणजले स्थित्वा भानुमालोक्य सम्प्लुतः।
चतुःसहस्रं प्रजपेन्नित्यं संवत्सरावधि ॥४२॥
अपमृत्युभवान् रोगकृत्यादारिद्र्यसम्भवान्।
क्लेशान्निर्जित्य तेजस्वी जीवेद्वर्षशतं सुधीः ॥४३॥

कृत्तिकायाम्प्रतिपदि शालिहोमो धनप्रदः ।
दध्ना च समिद्भिर्वा प्रतिपत्सु भवेद्धनम् ।।४४।।
इष्टावाप्तिर्भवेदाज्यैः पद्मैर्ग्राममवाप्नुयात् ।
तिलैर्ज्योतिष्मतीभूतै रिपुराष्ट्रञ्जयेन्नृपः ।।४५।।
अश्वत्थसमिधो मेषीघृताक्ता जुहुयान्नरः ।
कन्यामिष्टामवाप्नोति सापि तं प्राप्नुयाद्वरम् ।।४६।।
शुद्धाज्येन कृतो होमो ज्वरनाशकरः परः ।

प्रतिदिन प्रात:काल स्नान करके इस मन्त्र का एक हजार जप करने वाला मन्त्रज्ञ साधक समस्त रोगों को जीतकर सम्पन्नता-पूर्वक सौ वर्षों तक जीवित रहता है। एक वर्ष तक प्रतिदिन स्नान करके हृदय-पर्यन्त जल में खड़े होकर सूर्य की ओर देखते हुये मन्त्र का चार हजार जप करने वाला विद्वान् साधक अपमृत्यु, रोग, कृत्या, दरिद्रता के कारण होने वाले कष्टों पर विजय प्राप्त करके तेज:सम्पन्न होकर सौ वर्षों तक जीवित रहता है। कृत्तिका नक्षत्र-युक्त प्रतिपदा तिथि को शालि (तण्डुल) से किया गया हवन धन प्रदान करने वाला होता है। अथवा प्रतिपदा को दधि एवं समिधा से हवन करने पर धन की प्राप्ति होती है।

आज्य (गोघृत) के हवन से अभीष्ट-प्राप्ति होती है। कमलों के हवन से साधक को ग्राम की प्राप्ति होती है अर्थात् वह ग्रामाधिपति होता है। तिल और ज्योतिष्मती के हवन से राजा शत्रुराष्ट्रों पर जय प्राप्त करता है। भेंड़ी के घृत से सिक्त पीपल की समिधा के हवन से पुरुष को अभीष्ट कन्या की प्रप्ति होती है एवं कन्या को अभीष्ट वर की प्राप्ति होती है। शुद्ध आज्य से किया गया हवन श्रेष्ठ ज्वर-शामक होता है।।४१-४६।।

सप्ताहं जुहुयान्मन्त्री बन्धूककुसुमैः शुभैः ।
साज्यैः सहस्रमचिरान्महतीं श्रियमाप्नुयात् ।।४७।।
मासं क्षीरेण गव्येन क्षीराहारो जितेन्द्रियः ।
सहस्रं जुहुयान्मन्त्री सम्पदामधिपो भवेत् ।
आज्याक्तदूर्वाहोमेन जीवेद्वर्षशतं नरः ।।४८।।
अष्टोत्तरशतं नित्यं हविषा मृगमुद्रया ।
जुह्वता लभ्यते लक्ष्मीर्धनधान्यसमृद्धिदा ।।४९।।
प्रतिमासं प्रतिदिनं जुहुयादयुतं घृतैः ।
श्रीर्भवेन्महती तस्य षण्मासादनपायिनी ।।५०।।

अरुणैरुत्पलैः फुल्लैर्मधुरत्रयसंयुतैः ।
जुहुयाद्वत्सरादर्वाक् स भवेदिन्दिरापतिः ॥५१॥
अरुणाब्जैस्त्रिमध्वक्तैर्जुहुयादन्वहं सुधीः ।
सहस्रं वत्सरार्धेन भवेद् भूमिपुरन्दरः ।
वत्सरं जुह्वतस्तैः स्याल्लक्ष्मीरिन्द्रेण वाञ्छिता ॥५२॥

सात दिनों तक प्रतिदिन कल्याण-दायक अन्न-सहित बन्धूकपुष्पों से एक हजार आहुतियों द्वारा हवन करने वाला साधक शीघ्र ही विपुल लक्ष्मी को प्राप्त कर लेता है। केवल दुग्ध का आहार ग्रहण करने वाला जितेन्द्रिय मन्त्रज्ञ साधक यदि एक मास-पर्यन्त प्रतिदिन गोदुग्ध की एक हजार आहुति प्रदान करते हुये हवन करता है तो वह सम्पत्तियों का स्वामी हो जाता है। गोघृत-सिक्त दूर्वा से हवन करने वाला शतायु होता है।

प्रतिदिन मृगमृद्रा का अवलम्बन कर हविष्य से एक सौ आठ आहुतियों द्वारा हवन करने वाला साधक लक्ष्मी, धन, धान्य एवं समृद्धि प्राप्त करता है। छः मास-पर्यन्त प्रत्येक मास में प्रत्येक दिन घी से दस हजार हवन करने वाले साधक को कभी नष्ट न होने वाली विपुल लक्ष्मी हस्तगत होती है। त्रिमधु-समन्वित रक्तकमल-पुष्पों से हवन करने वाला साधक एक वर्ष के भीतर ही साक्षात् लक्ष्मीपति हो जाता है।

प्रतिदिन त्रिमधुराक्त लाल कमलों से एक हजार हवन करने वाला विद्वान् साधक छः मास में ही पृथ्वी पर दूसरे इन्द्र के समान हो जाता है। इसी प्रकार एक वर्ष तक हवन वाले साधक को इन्द्र द्वारा आकांक्षित लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।।४७-५२।।

जुहुयादमृताखण्डैः पयोक्तैः सप्त वासरान् ।
त्रिसहस्रं प्रतिदिनं मन्त्रसिद्ध्यै जितेन्द्रियः ॥५३॥
कृत्यादाहज्वरोन्मादरोगाञ्जित्वा निरन्तरम् ।
जीवेद्वर्षशतं भूत्वा तेजसा भास्करप्रभः ॥५४॥
करवीरजपाबिल्वपलाशनृपभूरुहाम् ।
प्रसूनैः कुसुमैः फुल्लैः कुटजैर्जातिसम्भवैः ॥५५॥
पुष्पैर्हुत्वा त्रिमध्वक्तैर्मन्त्री प्रतिपदम्प्रति ।
आप्नुयान्महतीं लक्ष्मीं वत्सराद्वाञ्छिताधिकाम् ॥५६॥
आदाय तण्डुलप्रस्थं निर्मलं साधु शोधितम् ।
गोदुग्धेन हविः कृत्वा कवलन्तेन कल्पयेत् ॥५७॥
आज्याक्तं तत्समादाय पूजिते हव्यवाहने ।
गन्धमाल्यादिभिः सम्यग्जपित्वाष्टोत्तरं शतम् ॥५८॥

जुहुयात्प्रतिपत्स्वग्निं ध्यात्वा तुरगविग्रहम्।
जायते वत्सरादेव लक्ष्मीस्त्रैलोक्यमोहिनी ॥५९॥

जितेन्द्रिय साधक को मन्त्रसिद्धि के लिये सात दिनों तक दुग्ध-सिक्त अमृताखण्डों (गुरुच के टुकड़ों) से प्रतिदिन तीन हजार हवन करना चाहिये। मन्त्रसिद्ध साधक कृत्या-सम्बद्ध दाह, ज्वर-सम्बद्ध रोग, उन्माद रोग आदि पर विजय प्राप्त करके सूर्य-सदृश तेजस्वी होकर सौ वर्षों तक जीवित रहता है। प्रत्येक प्रतिपदा को त्रिमधु-सिक्त कनैल, अड़हुल, बेल, पलाश, आम की कलियों अथवा खिले पुष्पों एवं कूठ तथा जातिपुष्पों से हवन करने वाले मन्त्रज्ञ साधक को एक वर्ष के भीतर उसकी आकांक्षा से भी अधिक लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

परिमार्जित एवं शोधित एक प्रस्थ (लगभग चार किलोग्राम) चावल से गोदुग्ध में हविष्य बनाकर उसके एक-एक ग्रास के बराबर गोले बनाकर उन्हें गोघृत में सिक्त करने के उपरान्त गन्ध-माल्य आदि के द्वारा अग्निदेव की सम्यक् रूप से पूजा करने के पश्चात् मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करने के पश्चात् प्रतिपदा को अश्वमुख अग्नि का ध्यान करके हवन करने से एक वर्ष के भीतर ही त्रैलोक्यमोहिनी लक्ष्मी की प्राप्ति हो जाती है।।५३-५९।।

मन्त्रेणानेन जपितां वचां खादेद्दिनागमे।
भारती निवसेत्तस्य मुखाम्भोजेऽतिनिश्चला ॥६०॥
अष्टोत्तरशतं प्रातर्जपित्वा कं पिबेन्नरः।
जाठराग्निर्भवेत्तस्य घृतेनैव हुताशनः ॥६१॥
कृत्वा नवपदात्मानं मण्डलं प्रागुदीरितम्।
कलशान्नवकल्याणान् स्थापयेत् प्रोक्तवर्त्मना।
क्षीरवृक्षसमुद्भूतैः क्वाथैस्तान् पूरयेत्क्रमात् ॥६२॥
वस्त्रादिभिरलंकृत्य नवरत्नानि निःक्षिपेत्।
मध्ये सम्पूजयेदग्निमूर्तीरष्टौ दिशां क्रमात्।
कुम्भेषु धूपदीपाद्यैः पुष्पधूपैर्मनोहरैः ॥६३॥
स्पृष्ट्वा जपेत्ततः कुम्भं मन्त्रमष्टोत्तरं शतम्।
अभिषिञ्चेत्ततः साध्यं विनीतं दत्तदक्षिणम् ॥६४॥
ज्वरग्रहमहारोगदारिद्र्यादीन् विजित्य सः।
जीवेद्वर्षशतं सम्यगभिषिक्तः श्रिया सह।
अग्नेराराधनं चेत्थं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥६५॥

इस मन्त्र से अभिमन्त्रित वचा का प्रतिदिन प्रात:काल भक्षण करने से साधक के मुख में स्थिर सरस्वती का वास होता है। इस मन्त्र के एक सौ आठ जप से अभिमन्त्रित जल का प्रात:काल पान करने वाले मनुष्य की जठराग्नि घृत से प्रज्वलित अग्नि के समान दीप्त हो जाती है।

पूर्वोक्त नौ कोष्ठों वाले मण्डल का निर्माण करने के उपरान्त पूर्वकथित विधि से उसमें नव सुन्दर कलशों को स्थापित करके उन कलशों को दूध वाले वृक्षों के छाल से निर्मित क्वाथ से भरने के पश्चात् उन्हें वस्त्रादि से अलंकृत करके उनमें नव रत्नों को प्रक्षिप्त करके मध्यवर्ती कलश में अग्निदेव का पूजन करने के पश्चात् आठ दिशाओं में स्थापित कलशों में क्रमश: पूर्वोक्त आठ वह्निमूर्त्तियों का धूप-दीप आदि से पूजन करना चाहिये। इसके बाद पुष्प-धूप आदि से मनोहर कलशों का स्पर्श करके मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करने के उपरान्त दक्षिणा प्रदान किये हुये विनीत साध्य का उन कलशों के जल से अभिषेक करना चाहिये। इस प्रकार सम्यक् रूप से अभिषिक्त वह साध्य व्यक्ति ज्वर, ग्रह-कृत भयंकर रोग, दरिद्रता आदि पर विजय प्राप्त करके धन-सम्पन्न होकर शतायु होता है। इस प्रकार अग्निदेव की आराधना भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाली होती है।।६०-६५।।

यममन्त्रकथनम्

अथात: सम्प्रवक्ष्यामि यममन्त्रमघापहम्।
ॐक्रोंह्रींआं च तद्बीजं ङेऽन्तं वैवस्वतं वदेत्।।६६।।

धर्मराजाय भक्तानुग्रहकृते नमो वदेत् ।
चतुर्विंशतिवर्णोऽयं यममन्त्रोऽखिलेष्टदः ॥६७॥
त्रिद्वीष्विष्वगयुग्मार्णैः षडङ्गानि स्मरेद्यमम् ।
मेघश्यामं प्रसन्नास्यं नानालङ्कारसंयुतम् ॥६८॥
महिषस्थं दण्डधरं संस्तुतं पितृभिर्वृतम् ।
नानारूपधरैर्दूतैः श्वेतवस्त्रं भजेद्यमम् ॥६९॥
पूजयेत् षड्दलेऽङ्गानि वसुपत्रे ग्रहाष्टकम् ।
दिगीशांश्च यमस्थाने चित्रगुप्तं प्रपूजयेत् ॥७०॥
वज्रादींश्चापि तद्बाह्ये यमपूजा प्रकीर्तिता ।
वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं हुनेदाज्यान्वितैस्तिलैः ॥७१॥
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री निग्रहानुग्रहक्षमः ।
तस्य संस्मरणादेव सकलापन्निवारणम् ॥७२॥
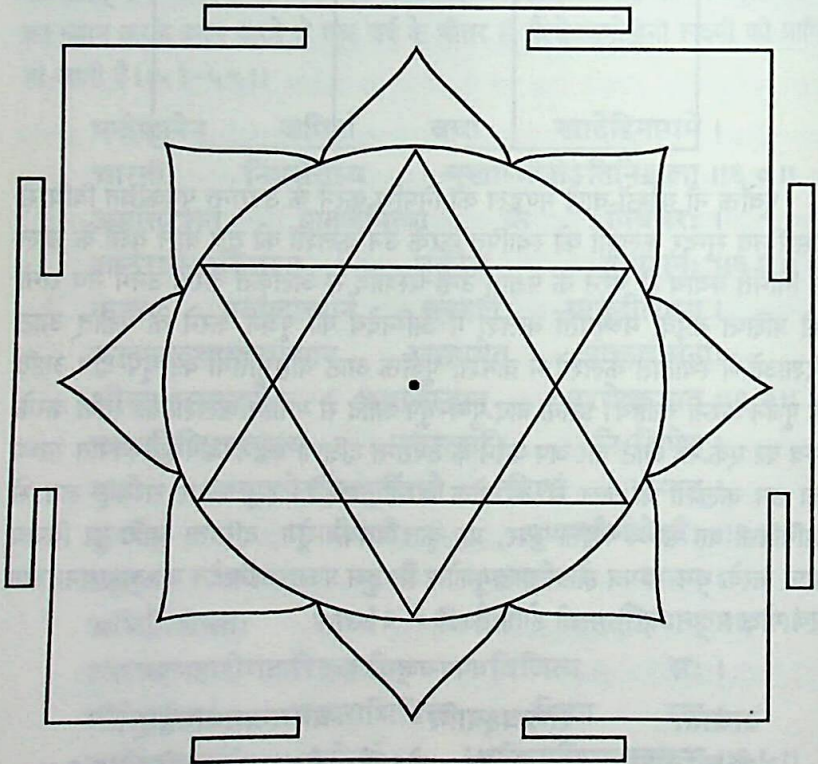
पाप-विनाशक यममन्त्र—अब मैं पातकों को दूर करने वाले यमराज के मन्त्र को कहता हूँ। समस्त अभीष्टों को प्रदान करने वाला चौबीस अक्षरों का यममन्त्र इस प्रकार है—ॐ क्रों ह्रीं आं वैं वैवस्वताय धर्मराजाय भक्तानुग्रहकृते नमः। क्रमशः मन्त्र के तीन, दो, पाँच, पाँच, सात एवं दो वर्णों से षडङ्गन्यास करने के उपरान्त यम का ध्यान करना चाहिये।

मेघ के समान श्याम वर्ण वाले, प्रसन्नमुख, अनेक अलंकारों से युक्त, महिष पर आरूढ़, हाथ में दण्ड लिये हुये, पितरों द्वारा स्तुत, अनेक रूपधारी दूतों से घिरे हुये तथा श्वेत वस्त्रधारी यम का स्मरण करना चाहिये।

(पूजन-यन्त्र में षट्कोण, अष्टदल एवं भूपुर बनाकर यन्त्रमध्य में यम का पूजन करने के उपरान्त) षट्कोण में षडङ्ग-पूजन करने के बाद अष्टदल में आठ ग्रहों (सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि एवं राहु) का एवं भूपुर में दिक्पालों का भी पूजन करना चाहिये। दिक्पाल-पूजन में यम के स्थान पर चित्रगुप्त का पूजन करना चाहिये। इसके बाद उन दिक्पालों के आयुधों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार यम का पूजन कहा गया है।

पूजनोपरान्त यममन्त्र का वर्णलक्ष (चौबीस लाख) जप करना चाहिये। तत्पश्चात् आज्य-समन्वित तिल से हवन करना चाहिये। इस प्रकार मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर मन्त्रज्ञ साधक निग्रह (दमन) एवं अनुग्रह (दया) करने में समर्थ हो जाता है। उस मन्त्रसिद्ध साधक द्वारा यम के स्मरण-मात्र से ही समस्त आपत्तियों का निवारण हो जाता है।।६६-७२।।

चित्रगुप्तमन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि चित्रगुप्तमनुं परम्।
तारो नमो विचित्राय ङेऽन्तः स्याद्यमलेखकः।
यमेत्युक्त्वा च वहिकाधिकारिणे वदेत्ततः ।।७३।।
ततः षडक्षरं कूटं यमलकरपास्तथा।
उकारस्वरसंयुक्ताः सचन्द्राः कूटमुच्यते ।।७४।।
जन्मसम्पत्प्रलयं च द्विधा कथय ठद्वयम्।
अष्टत्रिंशदक्षरोऽयं चित्रगुप्तमनुर्मतः।
सप्तषणमनुवस्वङ्गनेत्रार्णैरङ्गकल्पनम् ।।७५।।
किरीटिनं श्वेतवस्त्रं विचित्रासनसंस्थितम्।
लेखकं पापपुण्यानां चित्रगुप्तमहम्भजे ।।७६।।

जपेद्वर्णसहस्रं च ततः सिद्धो भवेन्मनुः ।
राजद्वारे विवादे च संग्रामे जयदायकः ॥७७॥
भजन्ति लेखंका ये तु मन्त्रमेतं नृपाङ्गणे ।
मान्यां कीर्तिं च वंशं च संस्थाप्य स्वर्गगामिनः ॥७८॥

चित्रगुप्त-मन्त्र—अब मैं चित्रगुप्त के श्रेष्ठ मन्त्र को कहता हूँ। अड़तीस अक्षरों का चित्रगुप्त का मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—ॐ नमो विचित्राय यमलेखकाय यमवहिकाधिकारिणे य्म्ल्क्र्पुं जन्मसम्पत्प्रलयं कथय कथय स्वाहा। मन्त्र के सात, छः, नव, आठ, छः एवं दो अक्षरों से क्रमशः षडङ्ग न्यास इस प्रकार करना चाहिये—ॐ नमो विचित्राय हृदयाय नमः, यमलेखकाय शिरसे स्वाहा, यमवहिकाधिकारिणे शिखायै वषट्, य्म्ल्क्र्पुं जन्मसम्पत्प्रलय कवचाय हुम्, कथय कथय नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट्।

तत्पश्चात् इस प्रकार चित्रगुप्त का ध्यान करना चाहिये—शीर्ष पर मुकुट धारण किये हुये, श्वेत वस्त्र धारण करने वाले, विचित्र आसन पर विराजमान, पाप-पुण्य को अंकित करने वाले चित्रगुप्त को मैं नमस्कार करता हूँ।

उक्त प्रकार से ध्यान करने के उपरान्त मन्त्र का वर्णसहस्र (अड़तीस हजार) जप करने से मन्त्र की सिद्धि हो जाती है। यह मन्त्र राजद्वार, विवाद और युद्ध में जय प्रदान करने वाला कहा गया है। जो लेखक चित्रगुप्त के इस मन्त्र की राजदरबार में उपासना करता है, वह अपनी प्रतिष्ठा, कीर्ति एवं वंश को स्थापित करके स्वर्ग-गमन करता है।।७३-७८।।

निर्ऋतिमन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि नैर्ऋतस्य मनुं परम् ।
ॐ क्षं निर्ऋतये रक्षोधिपतये पदं वदेत् ॥७९॥
धूम्रवर्णाय खड्गेति हस्ताय प्रेतवाहनम् ।
ङेऽन्तस्ततश्च हृदयं त्रिंशदर्णो मनुर्मतः ॥८०॥
किरीटिनञ्च पिङ्गाक्षं धूम्राभं प्रेतवाहनम् ।
नानारक्षोगणैः सेव्यं खड्गचर्मधरं भजे ॥८१॥
ॐ क्षमाद्यैर्हृदन्तैश्च पञ्चाङ्गैः पञ्चभिः पदैः ॥८२॥

निर्ऋति-मन्त्र—अब मैं निर्ऋति के श्रेष्ठ मन्त्र को कहता हूँ। तीस अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—ॐ क्षं निर्ऋतये रक्षोधिपतये धूम्रवर्णाय खड्गहस्ताय प्रेतवाहनाय नमः। इनका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—शीर्ष पर मुकुट धारण किये

हुये, लालिमा-युक्त भूरे नेत्रों वाले, धूम-तुल्य कान्ति वाले, प्रेतरूपी वाहन वाले, अनेक राक्षसों द्वारा सेवित, हाथों में खड्ग एवं चर्म धारण किये हुये (निर्ऋतिदेव) की मैं आराधना करता हूँ।

मन्त्र के पाँचो पदों के पूर्व 'ॐ क्षं' एवं अन्त में 'नमः' लगाकर इस प्रकार पञ्चाङ्गन्यास करना चाहिये—ॐ क्षं निर्ऋतये नमः हृदयाय नमः, ॐ क्षं रक्षोधिपतये नमः शिरसे स्वाहा, ॐ क्षं धूम्रवर्णाय नमः शिखायै वषट्, ॐ क्षं खड्गहस्ताय नमः कवचाय हुम्, ॐ क्षं प्रेतवाहनाय नमः नेत्रत्रयाय वौषट्।।७९-८२।।

आसुरीशक्तिसहितं मध्ये तु निर्ऋतिं यजेत्।
पञ्चकोणेषु मञ्चाङ्गमष्टपत्रे यजेदिमाः ॥८३॥
नवस्थां पाशिनीं वाणीं त्रासिनीं गुप्तचारिणीम्।
राक्षसीं भीतिदां कृत्यां खेटानस्त्राणि तद्बहिः ॥८४॥
जपेत्त्रिंशत्सहस्राणि गुञ्जाज्याभ्यां हुनेत्ततः।
एवं तु सिद्धे मन्त्रेऽस्मिन्नभयं जायते वने ॥८५॥
रक्षोभूतपिशाचाद्याश्चौरव्याघ्रोरगादयः।
मनुष्या अपि ये वन्या मृगादीनां तु का कथा ॥८६॥
स्वयमेव पलायन्ते साधकस्य रणादपि॥८७॥
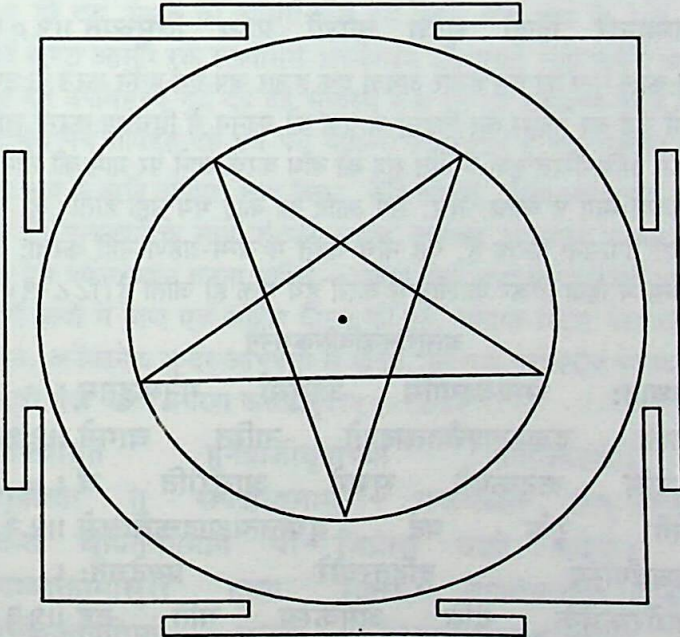
(पञ्चकोण, अष्टपत्र एवं भूपुर से पूजनयन्त्र का निर्माण करके) यन्त्रमध्य मे आसुरी शक्ति-सहित निर्ऋति का पूजन करना चाहिये। इसके बाद पञ्चकोण के पाँचो कोणों में पञ्चाङ्ग-पूजन करने के उपरान्त अष्टपत्रों में नवस्था, पाशिनी, वाणी, त्रासिनी, गुप्तचारिणी, राक्षसी, भीतिदा एवं कृत्या का पूजन करना चाहिये। फिर उसके बाहर भूपुर में सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु का उनके आयुधों के साथ पूजन करना चाहिये।

तदनन्तर निर्ऋतिमन्त्र का तीस हजार जप पूर्ण करने के बाद गुञ्जा एवं गोघृत से हवन करना चाहिये। इस प्रकार इस मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर साधक वन में निर्भय हो जाता है। वन में रहने वाले राक्षस, भूत, पिशाच, चोर, बाघ, सर्प, जंगली मनुष्य एवं समस्त चौपाये पशु सामना होने पर साधक को देखते ही भाग खड़े होते हैं।।८३-८७।।

जप्त्वा हुत्वा पर्वदिनेऽयुतं वापि सहस्रकम्।
परेऽह्नि वा गुडाद्यं च कानने विचरेद् बुधः ॥८८॥
अनेन मनुना कुर्यात्तृणसूत्राभिमन्त्रणम्।
बध्नीयाद् ग्रामसीमायां वने वा मार्ग एव च।
न भयं जायते तत्र व्याघ्रचौरोरगादिजम् ॥८९॥
निर्ऋतिं भजते यस्तु नीचजातौ न जायते।
जन्मान्तरे द्विजो भूत्वा काशीं प्राप्य विमुच्यते ॥९०॥

प्रात:काल मन्त्र का दस हजार अथवा एक हजार जप एवं हवन करने के उपरान्त अपराह्न में गुड़ का भक्षण कर विद्वान् साधक को कानन में विचरण करना चाहिये। इस मन्त्र से अभिमन्त्रित तृण-निर्मित सूत्र को बाँध करके जाने पर ग्राम की सीमा पर, वन में अथवा मार्ग में व्याघ्र, चोर, सर्प आदि का कोई भय नहीं होता। जो साधक निर्ऋति की उपासना करता है, वह नीच जाति में जन्म-ग्रहण नहीं करता; अपितु अगले जन्म में द्विज होकर काशीवास करते हुये मुक्त हो जाता है।।८८-९०।।

आसुरीमन्त्रविधिकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि आसुर्या मनुमद्भुतम्।
कलौ द्रुतफलश्चैतत्सदृशो नास्ति चागमे ॥९१॥
कटुके कटुकपत्रे सुभगे आसुरीति च।
ततो रक्ते पदं ब्रूयात्तत्पश्चाद्रक्तवाससे ॥९२॥
अथर्वणस्य दुहितुरघोरे प्रवदेत्ततः।
अघोरकर्मके देवि अमुकस्य गतिं दह ॥९३॥

दहेति चोपविष्टस्य गुदं दहयुगं तथा।
सुप्तस्येति प्रोच्य मनो दहयुग्मं वदेत्ततः ॥९४॥
प्रबुद्धस्येति हृदयं दहयुग्मं हनद्वयम्।
पचयुग्मं तावदिति दहयुग्मं पचेति च ॥९५॥
यावन्मे वशमायाति हुं फट् स्वाहा ध्रुवादिकः।
प्रोक्तोऽयमासुरीमन्त्रो दशोत्तरशताक्षरः ॥९६॥
अङ्गिराः स्यान्मुनिश्छन्दो विराड् देवी तथासुरी।
स्वाहा शक्तिस्तथौंबीजं मन्त्रस्यास्य प्रकीर्तितम्।
हुम्फट्स्वाहान्तकैर्मन्त्रवर्णैः प्रत्यङ्गकल्पनम् ॥९७॥
दक्षयोः कार्मुकं शूलं वामयोश्च शराङ्कुशौ।
बिभ्रतीं चन्द्रभां पद्मस्थितां सुबहुभूषणाम्।
अहियज्ञोपवीतां तामासुरीं संस्मराम्यहम् ॥९८॥

सविधि आसुरी-मन्त्र—अब मैं आसुरी के अद्भुत मन्त्र को सम्यक् रूप से कहता हूँ। कलियुग में सद्यः फल प्रदान करने वाला इसके समान कोई अन्य मन्त्र आगमशास्त्र में नहीं है।

एक सौ दस अक्षरों का आसुरी मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—ॐ कटुके कटुकपत्रे सुभगे आसुरि रक्ते रक्तवाससे अथर्वणस्य दुहितुरघोरे अघोरकर्मके अमुकस्य गतिं दह दह उपविष्टस्य गुदं दह दह सुप्तस्य मनो दह दह प्रबुद्धस्य हृदयं दह दह हन हन पच पच तावद्दह दह पच पच यावन्मे वशमायाति हुं फट् स्वाहा।

इस मन्त्र के ऋषि अंगिरा, छन्द विराट्, देवी आसुरी, शक्ति स्वाहा एवं बीज औं कहे गये हैं। मन्त्रवर्णों के साथ 'हुं फट् स्वाहा' लगाकर अंगन्यास करना चाहिये। तदनन्तर इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—दाहिने दोनों हाथों में धनुष एवं शूल तथा बाँयें दोनों हाथों में बाण एवं अङ्कुश धारण की हुई, चन्द्रमा-सदृश श्वेत कमल पर विराजमान, अनेकानेक सुन्दर आभूषणों से भूषित, सर्परूपी यज्ञोपवीत धारण की हुई उस आसुरी देवी का मैं स्मरण करता हूँ।।९१-९८।।

जप्त्वायुतं हुनेद्राजीघृताभ्यां मन्त्रसिद्धये।
गृहीत्वा तु सपञ्चाङ्गमासुरीं मन्त्रयेच्च ताम् ॥९९॥
तया धूपितमात्मानं यो जिघ्रेत्स वशो भवेत्।
मध्वाक्तामासुरीं हुत्वा सहस्रं वशयेज्जगत् ॥१००॥
राजिकाप्रतिमां कृत्वा दक्षाङ्घ्रेर्मस्तकावधि।

अष्टोत्तरशतं खण्डाञ्जुहुयादसिना कृतान्।
नार्याः प्रतिकृतेर्वामपादादिहवनं चरेत् ॥१०१॥
सप्ताहमेवं कुर्वीत राजीकाष्ठैश्चितानले।
दासवज्जायते साध्यस्त्रिलिङ्गी ह्यपि तद्वशे ॥१०२॥

मन्त्रसिद्धि के लिये मन्त्र का दस हजार जप करके घृताक्त राई से हवन करना चाहिये। राई के पञ्चाङ्ग (फूल, फल, पत्ता, डण्ठल एवं जड़) को ग्रहण करके उसे आसुरी मन्त्र से अभिमन्त्रित करने के बाद उससे स्वयं को धूपित करके साधक जिसको सूँघ लेता है, वह उसके वशीभूत हो जाता है। मधु-सिक्त आसुरी (राई) की एक हजार आहुतियाँ प्रदान करने से समस्त संसार को वशीभूत किया जा सकता है।

राई के पिष्ट से शत्रु की प्रतिमा बनाकर साध्य यदि पुरुष हो तो उस प्रतिमा के दाहिने पैर से मस्तक-पर्यन्त भाग को तथा यदि स्त्री हो तो बाँयें पैर से मस्तक-पर्यन्त भाग को खड्ग से एक सौ आठ टुकड़ों में विभक्त कर प्रत्येक टुकड़े से हवन करना चाहिये। एक सप्ताह-पर्यन्त राई की लकड़ी से निर्मित चिता की अग्नि में इस प्रकार हवन करने से वह पुरुष अथवा स्त्रीरूप साध्य उस साधक के वशीभूत होकर दास के समान हो जाता है।।९९-१०२।।

कटुतैलान्वितां राजीं निम्बपत्रयुतां रिपोः।
नामयुङ्मनुना हुत्वा ज्वरिणं कुरुते रिपुम् ॥१०३॥
एवं राजीं सलवणां हुत्वा स्फोटयते रिपुम्।
अर्कदुग्धाक्ततद्धोमान्नेत्रनाशः प्रजायते ॥१०४॥
सप्ताहं तु पलाशाग्नौ हुनेद्विप्रवशीकृतौ।
क्षत्रियं तु गुडाभ्यक्तराजिकाभिर्वशं नयेत् ॥१०५॥
दध्यक्तराजिकाहोमाद्वैश्यो वश्यः प्रजायते।
शूद्रो लवणयुग्घोमात्प्रत्यहं साष्टकं शतम् ॥१०६॥
एकादिसप्तकैः सप्तसप्तकान्तं यदा हुनेत्।
असाध्यं साधयेत्कार्यं साधको नात्र संशयः।
आसुरीसमिधो हुत्वा मध्वक्ता लभते निधिम् ॥१०७॥

सरसो तेल-मिश्रित राई में नीम के पत्तों को मिलाकर शत्रु का नाम को मन्त्र में जोड़कर मन्त्रोच्चार-पूर्वक हवन करने से शत्रु ज्वरग्रस्त हो जाता है। इसी प्रकार लवण-युक्त राई के हवन से शत्रु का शरीर व्रण-युक्त हो जाता है। अकवन के दूध में मिश्रित राई के हवन से शत्रु की आँखें नष्ट हो जाती हैं। ब्राह्मण को वशीभूत करने

के लिये दूध-मिश्रित राई से सात दिनों तक प्रतिदिन पलाश की अग्नि में एक सौ आठ बार हवन करना चाहिये। इसी प्रकार गुड़-सिक्त राई के हवन से क्षत्रिय को वशीभूत किया जाता है। दधि-सिक्त राई के हवन से वैश्य वशीभूत होते हैं तथा लवण-युक्त राई के हवन करने से शूद्र वशीभूत होते हैं। उपरोक्त सात द्रव्यों से एक-एक करके सात दिनों तक या सातों से सात दिनों तक हवन करने से साधक असाध्य कार्य को भी सिद्ध कर सकता है; इसमें सन्देह नहीं है। मधु-सिक्त आसुरी समिधाओं (राई के डण्ठल) के हवन से निधि (खजाने) की प्राप्ति होती है।।१०३-१०७।।

जलपूर्णे घटे राजीपल्लवैः समलंकृते।
आवाह्य चासुरीं तत्र पूजयेदुपचारकैः ॥१०८॥
अष्टोत्तरशतं मूलमन्त्रेणापि च मन्त्रयेत्।
तेनाभिषिक्तो भवति व्याध्याधिभ्यां विवर्जितः ॥१०९॥
मनःशिला चन्दनं च तगरं नागकेशरम्।
आसुर्य्याश्चापि पुष्पाणि प्रियङ्गु च समं समम् ॥११०॥
सम्यग्विचूर्ण गुटिकाः शतवाराभिमन्त्रिताः।
गुञ्जानिभा यस्य मूर्ध्नि स्थापितैका वशस्तु सः ॥१११॥
ससर्षपाश्च निम्बाग्नौ सप्ताहं राजिका हुनेत्।
अष्टोत्तरशतं याम्याभिमुखो मारयेदरीन् ॥११२॥
कलौ काम्यकरी नान्या सत्यं नास्त्यासुरीसमा।
सर्वेऽपि कुण्ठिता मन्त्रा नासुरी परमेश्वरी ॥११३॥

राई के कोमल पत्रों से सुसज्जित जलपूर्ण कलश में आसुरी देवी का आवाहन करके उपचारों से उनका पूजन करने के उपरान्त उस कलश को मूल मन्त्र के एक सौ आठ जप से अभिमन्त्रित करने के बाद उस जल से स्नान करने से साधक समस्त आधि-व्याधियों से रहित हो जाता है।

मैनसिल, चन्दन, तगर, नागकेशर, राई का फूल एवं प्रियङ्गु—इन सबको समभाग में ग्रहण करके महीन पीस करके गुञ्जा के बराबर छोटी-छोटी गोलियाँ बनाकर उन गोलियों को मन्त्र के सौ जप से अभिमन्त्रित करने के उपरान्त उनमें से एक गोली जिसके मस्तक पर रख दी जाती है, वह वशीभूत हो जाता है।

सात दिनों तक प्रतिदिन दक्षिणाभिमुख होकर निम्बकाष्ठ की अग्नि में सरसों और राई से एक सौ आठ बार हवन करके साधक शत्रुओं का वध कर देता है। यह सत्य है कि कलियुग में कार्य-साधन करने वाली आसुरी के समान कोई दूसरी विद्या नहीं

है। कलियुग में समस्त मन्त्र कुण्ठित हो जाते हैं; लेकिन परमेश्वरी आसुरी का मन्त्र कुण्ठित नहीं होता।।१०८-११३।।

वरुणदैवतमन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रं वरुणदैवतम्।
तारं वं वरुणायेति जलाधिपतये वदेत्।।११४।।
वदेच्च शुक्लवर्णाय पाशहस्ताय संवदेत्।
मकरेति वाहनाय चैकोनत्रिंशदर्णकः।
ॐ वमाद्यैर्नमोऽन्तैश्च पञ्चाङ्गं पञ्चभिः पदैः।।११५।।
श्वेतांशुको दधद्धस्तैः पाशाङ्कुशाभयवरान्।
स्वच्छारविन्दवसतिर्मुक्ताभरणभूषितः।
तुन्दिलश्च प्रसन्नास्यो वरुणो निधिदोऽस्तु मे।।११६।।
त्रिष्टुप्छन्दो वसिष्ठर्षिर्देवता वरुणो मतः।
जपेद्वर्णसहस्त्रं तु होमः पद्माक्षकैः स्मृतः।।११७।।

वरुण-मन्त्र—अब मैं वरुणदेव के मन्त्र को कहता हूँ। उनतीस अक्षरों का वरुणमन्त्र इस प्रकार है—ॐ वं वरुणाय जलाधिपतये शुक्लवर्णाय पाशहस्ताय मकरवाहनाय। मन्त्र के पाँच पदों के आदि में 'ॐ वं' एवं अन्त में 'नमः' लगाकर इस प्रकार पञ्चाङ्गन्यास करना चाहिये—ॐ वं वरुणाय हृदयाय नमः, ॐ वं जलाधिपतये शिरसे स्वाहा, ॐ वं शुक्लवर्णाय शिखायै वषट्, ॐ वं पाशहस्ताय नमः कवचाय हुम्, ॐ वं मकरवाहनाय नमः अस्त्राय फट्। इसके बाद इस प्रकार वरुणदेव का ध्यान करना चाहिये—श्वेत वस्त्र धारण किये हुये, हाथों में पाश अंकुश अभय एवं वर धारण करके स्वच्छ कमल पर विराजमान, मोतियों के आभूषणों से अलंकृत, बृहदाकार पेट वाले, प्रसन्नमुख वरुणदेव मेरे लिये निधि प्रदान करने वाले हों।

इस मन्त्र के ऋषि वशिष्ठ, छन्द त्रिष्टुप् एवं देवता वरुण कहे गये हैं। पुरश्चरण-हेतु मन्त्र का वर्णसहस्र (उनतीस हजार) जप एवं पद्माक्षों (कमलगट्टों) से हवन कहा गया है।।११४-११७।।

अङ्गानि पूजयेदादौ नदीषट्कं ततोऽर्चयेत्।
मणिकर्णीं तथा गङ्गां नर्मदां च सरस्वतीम्।
गोदावरीं च कालिन्दीं समुद्रास्तदनन्तरम्।।११८।।
अनन्तो वासुकिस्तक्षः कर्कोटः पद्मकस्तथा।
महापद्मः शङ्खपालः कुलिकोऽष्टदले ततः।।११९।।

तद्बाह्येऽर्कदले पूज्या विमलाद्याश्च शक्तयः।
दिगीशैरायुधैश्चेति षडावरणपूजनम्।
प्रयोगाश्चात्र सिद्ध्यन्ति देवमन्त्रोदिताः परे ॥१२०॥

प्रथमतः अङ्गपूजन करने के उपरान्त षट्कोण में मणिकर्णी, गङ्गा, नर्मदा, सरस्वती, गोदावरी एवं कालिन्दी—इन छः नदियों का मुद्रा-प्रदर्शनपूर्वक पूजन करना चाहिये। उसके बाद अष्टदल में अनन्त, वासुकी, तक्षक, कर्कोटक, पद्मक, महापद्म, शंखपाल एवं कुलिक—इन आठ का पूजन करना चाहिये।
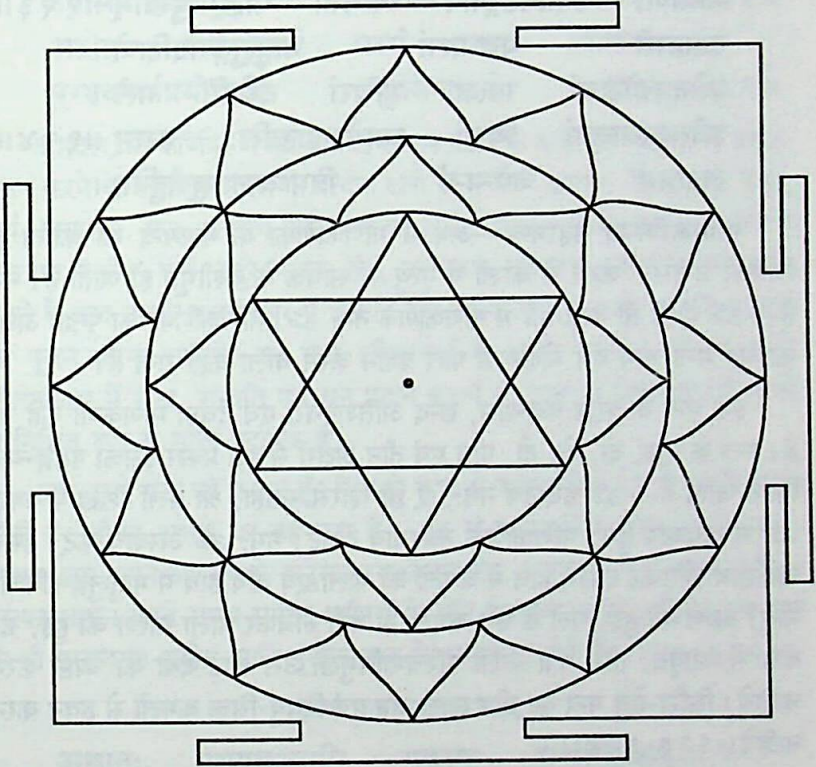
उसके बाहर द्वादशदल कमल में विमला आदि बारह शक्तियों का पूजन करने के उपरान्त दिक्पालों एवं उनके आयुधों का पूजन करने से छः आवरणों में इनका पूजन सम्पन्न होता है। वरुणमन्त्र में उक्त समस्त प्रयोग इस मन्त्र के सिद्ध होने पर सिद्ध होते हैं।।११८-१२०।।

मणिकर्णीमहामन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मणिकर्णीमहामनुम्।
यस्योपासनतो वश्यं मृत्युः काश्यां प्रजायते ॥१२१॥
ओमैं ह्रीं श्रीं कामबीजमों मं च मणिकर्णिके।
नम ॐ तिथिवर्णोऽयं भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥१२२॥
वेदव्यासो मुनिः प्रोक्तश्छन्दः स्यादतिशक्वरी।
मणिकर्णी देवतास्य कुद्विद्व्यक्षीषुवह्निभिः।
मन्त्रार्णैः स्यात्षडङ्गानि ध्यायेत्तां पश्चिमामुखीम् ॥१२३॥
दक्षहस्ते पद्ममालां मातुलुङ्गमदक्षिणे।
श्वेतपद्मोद्भवां मालां रुचिरां दधतीं गले।
श्वेतवस्त्रावृतां त्र्यक्षां ध्यायेद्बद्धाञ्जलिः पराम् ॥१२४॥
लक्षत्रयं जपेन्मन्त्रं त्रिमध्वक्ताम्बुजैर्हुनेत्।

मणिकर्णिका महामन्त्र—अब मैं मणिकर्णिका के महामन्त्र को कहता हूँ, जिसकी उपासना करने से काशी में मृत्यु भी साधक के वशीभूत हो जाती है। मन्त्र है—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं ॐ मं मणिकर्णिके नमः ॐ। मणिकर्णिका का पन्द्रह अक्षरों का यह मन्त्र भोग एवं मोक्षरूपी फल प्रदान करने वाला कहा गया है।

इस मन्त्र के ऋषि वेदव्यास, छन्द अतिशक्वरी एवं देवता मणिकर्णी कहे गये हैं। मन्त्र के एक, दो, दो, दो, पाँच एवं तीन अक्षरों से इस प्रकार इसका षडङ्गन्यास किया जाता है—ॐ हृदयाय नमः, ऐं ह्रीं शिरसे स्वाहा, श्रीं क्लीं शिखायै वषट्, ॐ मं कवचाय हुम्, मणिकर्णिके नेत्रत्रयाय वौषट्, नमः ॐ अस्त्राय फट्। इसके बाद हाथ जोड़कर दाहिने हाथ में कमलों की माला एवं बाँयें हाथ में मातुलुङ्ग (बिजौरा नीबू) ग्रहण की हुई, गले में श्वेत कमलों से बनी रुचिकर माला धारण की हुई, श्वेत वस्त्र से आवृत, तीन नेत्रों वाली पश्चिमाभिमुखी उस श्रेष्ठ देवी का ध्यान करना चाहिये। सिद्धि-हेतु मन्त्र का तीन लाख जप एवं त्रिमधु-सिक्त कमलों से हवन करना चाहिये।।१२१-१२४।।

लिखेदष्टदलं पद्मं कर्णिकायां तु षड्दलम् ॥१२५॥
अङ्गानि षड्दलेऽर्च्यानि पत्रमध्ये शिवं हरिम्।
विधिं सूर्यं पर्वतेशं मेनां चापि भगीरथम् ॥१२६॥
वरुणं च दलाग्रेषु मीनं कूर्मं च दर्दुरम्।
मकरांश्चापि हंसांश्च तथा कारण्डवानपि ॥१२७॥

चक्रवाकान् सारसांश्च तद्बहिर्भूपुरे यजेत्।
इन्द्रादींश्चापि वज्रादीन् मन्त्रोऽयं दक्षमार्गिणाम् ॥१२८॥
सुखानि सन्ततिं वित्तं जीवते सम्प्रयच्छति।
मन्त्रोऽयं मृत्युकाले तु काश्यां मुक्तिप्रदो ध्रुवम् ॥१२९॥
अथ मन्त्रान्तरं वक्ष्ये वामिनामपि सद्गतिः।
भवेद्यस्य प्रसादेन तारं मं मणिकर्णिके ॥१३०॥
प्रणवात्मिके हृच्चायं मन्त्रः स्याच्छक्रवर्णकः।
उपासनाध्यानपूजाः स्वीयाम्नायेन कल्पयेत् ॥१३१॥
अद्रोहः सर्वभूतानां परमं चास्य साधनम्।
पुरश्चर्य्याप्रयोगादि पूर्वमन्त्रसमं मतम् ॥१३२॥

अष्टदल की कर्णिका में षड्दल का अंकन करने के बाद उस षड्दल में षडङ्ग-पूजन करने के पश्चात् अष्टदल के प्रत्येक दलों के मध्य में क्रमश: शिव, हरि, ब्रह्मा, सूर्य, हिमालय, मेना, भगीरथ एवं वरुण का अर्चन करना चाहिये। तत्पश्चात् दलों के अग्रभाग में मीन, कूर्म, दर्दुर, मकर, हंस, कारण्डव, चक्रवाक एवं सारस का अर्चन करने के बाद उसके बाहर भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों एवं उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिये। यह मन्त्र दक्षिणमार्ग से अर्चन करने वालों को उनके जीवनकाल में सुख, सन्तति एवं धन प्रदान करता है; साथ ही मृत्युकाल में काशी में निश्चित रूप से मुक्ति-प्रदायक है।

अब दूसरे मन्त्र को कहता हूँ, जिसकी कृपा से वाममार्गियों को भी सद्गति प्राप्त होती है। चौदह अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ मं मणिकर्णिके प्रणवात्मिके नमः। साधक द्वारा अपने आम्नाय के अनुसार इसकी उपासना, ध्यान एवं पूजा करनी चाहिये। इसका साधन करते समय समस्त प्राणियों के प्रति प्रेमभाव रखना चाहिये। इस मन्त्र के भी पुरश्चरण-प्रयोग आदि पूर्वोक्त मन्त्र के समान ही होते हैं।।१२५-१३२।।

गङ्गाया मन्त्रपञ्चककथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि गङ्गाया मन्त्रपञ्चकम्।
पञ्चाम्नायैस्तत्क्रमेण चोपास्यं सिद्धिकारकम् ॥१३३॥
तारो नमो भगवति वाग्बीजं च हिलिद्वयम्।
मिलियुग्मं च गङ्गे मां पावयद्वितयं द्विठः ॥१३४॥
एकोनत्रिंशद्वर्णोऽयं जप्तव्यो दक्षिणक्रमैः।
त्रिवेदाङ्गाग्निषण्नेत्रैर्मन्त्रार्णैरङ्गकल्पनम् ॥१३५॥

शुभ्रवस्त्रां त्रिनेत्रां च वरं पद्मं च ,दक्षयोः ।
अभयं कलशं वामकरयोर्मकरस्थिताम् ॥१३६॥
अर्धेन्दुमुकुटां ब्रह्मविष्णुरुद्रस्वरूपिणीम् ।
नानालङ्कारशोभाढ्यां प्रसन्नवदनां भजे ॥१३७॥
पूजाद्यं मणिकर्णीवज्जपो लक्षं प्रकीर्तितः ।
तिलाज्याभ्यां भवेद्धोमो मन्त्रोऽयं भुक्तिमुक्तिदः ॥१३८॥

गङ्गा के पाँच मन्त्र—अब मैं गंगा के पाँच मन्त्रों को कहता हूँ, जो क्रमशः पाँचो आम्नायों से उपासना करने पर सिद्धिकारक होते हैं। ॐ नमो भगवति ऐ हिलि हिलि मिलि मिलि गङ्गे मां पावय पावय स्वाहा स्वाहा—उनतीस अक्षरों का यह मन्त्र दक्षिणमार्ग से जप करने योग्य है। मन्त्र के क्रमशः तीन, चार, नव, तीन, छः एवं दो वर्णों से इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार किया जाता है—ॐ नमो हृदयाय नमः, भगवति शिरसे स्वाहा, ऐं हिलि हिलि मिलि मिलि शिखायै वषट्, गङ्गे मां कवचाय हुम्, पावय पावय नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट्।

तदनन्तर इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—शुभ्र वस्त्र धारण की हुई, तीन नेत्रों वाली, दाहिने हाथों में वर एवं पद्म तथा बाँयें हाथों में अभय एवं कलश धारण की हुई, मुकुट में अर्धचन्द्र को स्थापित की हुई, व्रह्मा-विष्णु एवं रुद्र-स्वरूपिणी, अनेक अलंकारों की शोभा से समन्वित, प्रसन्न मुख वाली देवी की मैं उपासना करता हूँ।

मणिकर्णिका के समान ही इसका भी पूजन आदि किया जाता है। इसका जप एक लाख कहा गया है। जप के उपरान्त तिल एवं आज्य (गोघृत) से हवन करने पर यह मन्त्र भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाला होता है।।१३३-१३८।।

अथायमेव मन्त्रस्तु त्यक्तपूर्वनगाक्षरः ।
ऊर्ध्वाम्नायेन साध्यः स्यात्षडङ्गानि शरैः कृतैः ॥१३९॥
त्रित्रित्रिनेत्रमन्त्रार्णैर्ध्यानाद्यं पूर्ववन्मतम् ।
सर्वपापक्षयकरो भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ॥१४०॥

पूर्वोक्त मन्त्र के ही पहले सात अक्षरों का त्याग कर देने पर ऊर्ध्वाम्नाय द्वारा साधित करने वाला मन्त्र हो जाता है। (बाईस अक्षरों के मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार होता है—ऐं हिलि हिलि मिलि मिलि गङ्गे मां पावय पावय स्वाहा स्वाहा।) मन्त्र के पाँच, चार, तीन, तीन, तीन एवं दो वर्णों से क्रमशः इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार किया जाता है—ऐं हिलि हिलि हृदयाय नमः, मिलि मिलि शिरसे स्वाहा, गङ्गे मां शिखायै वषट्, पावय कवचाय हुं, पावय नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट्। इसके

ध्यान आदि पूर्वोक्त मन्त्र के समान ही कहे गये हैं। यह मन्त्र समस्त पापों का विनाशक होने के साथ-साथ भोग एवं मोक्षप्रदायक है।।१३९-१४०।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि पश्चिमाम्नायगं मनुम्।
तारो नमः शिवायै च नारायण्यै पदं वदेत्।।१४१।।
दशहरायै गङ्गायै स्वाहान्तो नखवर्णकः।
वेदव्यासो मुनिश्छन्दः कृतिर्गङ्गा च देवता।।१४२।।
त्रित्र्यब्धीषुत्रिनेत्राणैः षडङ्गान्यर्चनादिकम्।
निखिलं पूर्ववत्कुर्यान्निखिलाभीष्टदो मनुः।।१४३।।

अब मैं पश्चिमाम्नाय द्वारा उपास्य गङ्गामन्त्र को कहता हूँ। बीस अक्षरों का मन्त्र है—ॐ नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै गङ्गायै स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि वेदव्यास, छन्द कृति एवं देवता गङ्गा कही गई हैं। मन्त्र के तीन, तीन, चार, पाँच, तीन एवं दो वर्णों से इस प्रकार षडङ्गन्यास किया जाता है—ॐ नमः हृदयाय नमः, शिवायै शिरसे स्वाहा, नारायण्यै शिखायै वषट्, दशहरायै कवचाय हुम्, गङ्गायै नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट्। इसके अर्चन आदि समस्त कार्य पूर्ववत् ही किये जाते हैं। यह मन्त्र समस्त अभीष्टों को प्रदान करने वाला होता है।।१४१-१४३।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि पूर्वाम्नायगतं मनुम्।
ॐ ह्रीं श्रीं हृद्भगवति गङ्गे च दयिते नमः।।१४४।।
हुं फडष्टादशार्णोऽयं भजतामीप्सितप्रदः।
त्रिद्व्यब्धीषुद्विद्विवर्णैः षडङ्गविधिरीरितः।।१४५।।
ऋषिच्छन्दो देवतादि प्राग्वद्ध्यानं च पूजनम्।
वर्णलक्षं जपेद्धोमः प्राग्वत्सम्पत्करस्त्वयम्।।१४६।।

अब मैं पूर्वाम्नाय द्वारा उपास्य गङ्गामन्त्र को कहता हूँ। अट्ठारह अक्षरों का मन्त्र है—ॐ ह्रीं श्रीं नमो भगवति गङ्गे दयिते नमः हुं फट्। उपासना करने पर यह मन्त्र अभीष्ट प्रदान करने वाला है। मन्त्र के क्रमशः तीन, दो, चार, पाँच, दो, दो वर्णों से इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—ॐ ह्रीं श्रीं हृदयाय नमः, नमो शिरसे स्वाहा, भगवति शिखायै वषट्, गङ्गे दयिते कवचाय हुम्, नमः नेत्रत्रयाय वौषट्, हुं फट् अस्त्राय फट्। इस मन्त्र के ऋषि-छन्द-देवता-ध्यान-पूजन आदि पूर्ववत् ही होते हैं। वर्णलक्ष (अट्ठारह लाख) जप करने के बाद पूर्ववत् हवन करने से यह मन्त्र सम्पत्ति प्रदान करने वाला होता है।।१४४-१४६।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वाममार्गे प्रसिद्धिदम्।
हिलिद्वन्द्वं मिलिद्वन्द्वं गङ्गे देवि नमस्तथा।।१४७।।

तारादिस्तिथिवर्णोऽयं छन्दो मुन्यादि पूर्ववत्।
त्रिद्विद्व्यक्षियुगद्व्यर्णैः षडङ्गविधिरीरितः ॥१४८॥

अब मैं वाममार्ग में सिद्धि प्रदान करने वाले गंगामन्त्र को कहता हूँ। पन्द्रह अक्षरों का मन्त्र है—ॐ हिलि हिलि मिलि मिलि गङ्गे देवि नमः। इसके ऋषि-छन्द आदि पूर्ववत् ही होते हैं। मन्त्र के तीन, दो, दो, दो, दो, दो वर्णों से इसका षडङ्ग न्यास कहा गया है।

रेवामन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि रेवामन्त्रमघापहम्।
नर्मदायै नम इति षडर्णः परिकीर्तितः ॥१४९॥
युवतीं कच्छपारूढा वराभयघटाम्बुजैः।
लसद्धस्तां स्वर्णकान्तिं सालङ्कारां भजाम्यहम् ॥१५०॥
मुनिः शिवस्तु गायत्री छन्दो रेवा च देवता।
षडङ्गानि च मन्त्रार्णैः प्रजपेद्वर्णसङ्ख्यया ॥१५१॥
तिलाज्यहोमो मन्त्रेण सर्वपापप्रणाशनः।
इह सौख्यं परत्रापि शिवलोके महीयते ॥१५२॥
सरस्वत्यास्तु ये मन्त्रा नद्यास्ते परिकीर्तिताः।
सरस्वतीतटे जप्तास्त्वरितं सिद्धिदायकाः ॥१५३॥

रेवा-मन्त्र—अब मैं पापों को दूर करने वाली रेवा (नर्मदा) के मन्त्र को कहता हूँ। छः अक्षरों का मन्त्र है—नर्मदायै नमः। इसका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—युवावस्थापन्ना, कच्छप पर आरूढ़, वर अभय कलश एवं कमल से सुशोभित हाथों वाली, स्वर्ण-सदृश कान्तिमती, अलंकारों से समन्वित देवी रेवा का मैं स्मरण करता हूँ।

इस मन्त्र के ऋषि शिव, छन्द गायत्री एवं देवता रेवा कही गई हैं। मन्त्र के छः अक्षरों से इसका षडङ्ग-न्यास किया जाता है। सिद्धि-हेतु मन्त्र का छः लाख जप करके मन्त्रोच्चार-पूर्वक गोघृत-मिश्रित तिल से किया गया हवन समस्त पापों का विनाशक होता है। इस मन्त्र की उपासना करने वाला साधक इस लोक में सुखभोग करने के पश्चात् परलोक-गमन करने पर शिवलोक में पूजित होता है।

सरस्वती के जो मन्त्र हैं, वे नदी-स्वरूप कहे गये हैं। वे मन्त्र सरस्वती के तट पर जप करने से शीघ्र सिद्धिदायक होते हैं।।१४९-१५३।।

गोदावरीमन्त्रः

गङ्गामन्त्रेषु सर्वेषु गौतमीयपदं वदेत्।
गङ्गाशब्दस्य पूर्वे ते गोदाया मनवः स्मृताः ॥१५४॥

गोदावरी-मन्त्र—गंगा के समस्त मन्त्रों में 'गङ्गा' शब्द के पूर्व 'गौतमीय' पद लगाने से वे गोदावरी के मन्त्र बन जाते हैं।।१५४।।

यमुनामन्त्रः

ॐ नमः सूर्यतनये यमलोकनिवासिनि।
श्रीकृष्णखेलद्युनदि त्राहि मां त्वं भवार्णवात्॥१५५॥
यमुनायाः श्लोकरूपो मनुर्मुनिरहं स्मृतः।
छन्दोऽनुष्टुप्षडङ्गानि पादार्धार्धक्रमेण च॥१५६॥
गङ्गावत्पूजनं वर्णसहस्त्रं जप ईरितः।
तिलाज्याभ्यां हुनेन्मन्त्री भास्करिं नैव वीक्षते॥१५७॥

यमुना-मन्त्र—यमुना का श्लोकरूप मन्त्र इस प्रकार है—ॐ नमः सूर्यतनये यमलोकनिवासिनि। श्रीकृष्णखेलद्युनदि त्राहि मां त्वं भवार्णवात्। इस मन्त्र का ऋषि मैं (शिव) स्वयं कहा गया हूँ। इसका छन्द अनुष्टुप् एवं देवता यमुना कही गई हैं। षडङ्ग न्यास इस प्रकार किया जाता है—ॐ नमः सूर्यतनये हृदयाय नमः, यमलोकनिवासिनि शिरसे स्वाहा, श्रीकृष्णखेलद्युनदि शिखायै वषट्, त्राहि मां त्वं भवार्णवात् कवचाय हुम्, ॐ नमः सूर्यतनये नेत्रत्रयाय वौषट्, यमलोकनिवासिन अस्त्राय फट्। इसका पूजन गंगा के समान ही करना चाहिये। मन्त्र का वर्णसहस्त्र (बत्तीस हजार) जप कहा गया है। जप के उपरान्त गोघृत एवं तिल से हवन करने वाला मन्त्रज्ञ साधक सूर्यकिरणों को नहीं देखता अर्थात् उसका पुनर्जन्म नहीं होता।।१५५-१५७।।

समुद्रमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि हिमजेऽपाम्पतेर्मनुम्।
अमुकद्वीपावरकामुकद्रव्योदधे वदेत्॥१५८॥
अमुकम्मे देहि तथा दापयेत्यग्निगेहिनी।
समुद्रमन्त्र उद्दिष्टः सिन्धुद्वीपो मुनिर्मतः॥१५९॥
गायत्री छन्द उद्दिष्टन्तत्तत्सिन्धुश्च देवता।
पदैर्मनोः षडङ्गानि तत्तद्रूपं विचिन्तयेत्॥१६०॥
जपेद्वर्णसहस्त्राणि तत्तद्द्रव्यैस्तथा हुनेत्।
तत्तदन्तर्गतं वस्तु लभते साधको ध्रुवम्॥१६१॥

समुद्र-मन्त्र—अब मैं हिम से उत्पन्न समुद्र के मन्त्र को कहता हूँ। अमुकद्वीपावरक अमुकद्रव्योदधे अमुकं मे देहि दापय स्वाहा—यह समुद्रमन्त्र कहा गया है। (समुद्र चार प्रकार के होते हैं। उनमें से यदि क्षीरसागर का मन्त्र बनाना है तो वह इस प्रकार

बनेगा—ॐ क्षीरसागरद्वीपावरक्षीरद्रव्योदधे क्षीरं में देहि दापय स्वाहा। इसी प्रकार इक्षुरस आदि सागरों के भी मन्त्र बनेंगे।) इस मन्त्र के ऋषि सिन्धुद्वीप, छन्द गायत्री एवं देवता तत्तत् सिन्धु कहे गये हैं। मन्त्र के छः पदों से इसका षडङ्गन्यास कहा गया है। जिस द्रव्य वाले समुद्र की उपासना करनी हो, उसी रूप का ध्यान करना चाहिये। मन्त्र का वर्णसहस्र जप करने के उपरान्त उपास्य समुद्र के द्रव्य से ही हवन करना चाहिये। ऐसा करने से उपासित द्रव्य वाले समुद्र के गर्भ में अवस्थित वस्तु को अवश्य ही साधक प्राप्त कर लेता है।।१५८-१६१।।

वायुमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वायुमन्त्रं महाद्भुतम्।
तारं यं वायवे प्राणाधिपतये पदं वदेत्।।१६२।।
कृष्णवर्णायाङ्कुशेति हस्ताय मृगवाहना।
य नमो गोद्विवर्णोऽयं वायुमन्त्र उदीरितः।।१६३।।
गणकोऽस्य मुनिश्छन्दो निवृद्वायुश्च देवता।
पञ्चाङ्गानि मनोरस्य ओं यं बीजादिकैः पदैः।।१६४।।
कृष्णवर्णं धावमानं मृगस्थं वेगवत्तरम्।
सह्याद्रिं चापि शेषाद्रिं मैनाकं मन्दरन्तथा।
पाशाङ्कुशकरं प्रेतकृत्यापरिसरान्वितम्।।१६५।।
जपेद्वर्णसहस्राणि लाजाज्याभ्यां च होमयेत्।
सिद्धमन्त्रस्तु तत्कालं भवेद् भूमौ बलाधिकः।।१६६।।

वायु-मन्त्र—अब मैं अत्यन्त अद्भुत वायुमन्त्र को कहता हूँ। तीस अक्षरों का वायुमन्त्र इस प्रकार कहा गया है—ॐ यं वायवे प्राणाधिपतये कृष्णवर्णायाङ्कुशहस्ताय मृगवाहनाय नमः। इस मन्त्र के ऋषि गणक, छन्द निवृद् एवं देवता वायु कहे गये हैं। मन्त्र के प्रत्येक पदों के साथ 'ॐ यं' लगाकर पञ्चाङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—ॐ यं वायवे हृदयाय नमः, ॐ यं प्राणाधिपतये शिरसे स्वाहा, ॐ यं कृष्णवर्णायाङ्कुशहस्ताय शिखायै वषट्, ॐ यं मृगवाहनाय कवचाय हुम्, ॐ यं नमः अस्त्राय फट्।

इसके बाद सह्याद्रि, शेषाद्रि, मैनाक एवं मन्दराचल पर अत्यन्त वेग-पूर्वक दौड़ते हुये कृष्णमृग पर विराजमान, हाथों में पाश एवं अंकुश धारण किये हुये तथा चारो ओर से प्रेतों एवं कृत्याओं से घिरे हुये वायुदेव का ध्यान करना चाहिये।

तदनन्तर मन्त्र का वर्णसहस्र (तीस हजार) जप करने के उपरान्त धान के लावा

एवं गोघृत से हवन करना चाहिये। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक तत्काल ही पृथ्वी पर सर्वाधिक बलशाली हो जाता है।।१६२-१६६।।

महाकृत्यामहामनुनिरूपणम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महाकृत्यामहामनुम्।
यस्य विज्ञानमात्रेण नासाध्यं भुवनत्रये ।।१६७।।
माया महायोगिनीति गौरीति भुवनेति च।
भयङ्करि तथा हुं च षोडशार्णो मतो मनुः ।।१६८।।
अङ्गिराश्च मुनिर्देवी गायत्री छन्द ईरितम्।
सिंहवक्त्रा महाकृत्या भीतिदोक्ता च देवता ।।१६९।।
षड्दीर्घयुक्तबीजेन मन्त्रार्धेनास्त्रयोगिना।
हृदयन्तु ततोऽर्धेन मन्त्रार्धेन शिरः स्मृतम्।
शिखाकवचनेत्रास्त्रं पुनरेवं प्रकल्पयेत् ।।१७०।।
सिंहासनां कृष्णमुखीं लम्बमानपयोधराम्।
दंष्ट्राकरालवदनां त्रिनेत्रां सर्वतोज्वलाम् ।।१७१।।
कृष्णकञ्चुकसंवीतां विधूमाग्निसमप्रभाम्।
त्रिशूलचक्रचषकखट्वाङ्गकरपङ्कजाम् ।।१७२।।
लेलिहानमहाजिह्वां विद्युत्प्रेक्षणभीषणाम्।
वश्ये ध्यायेद्रक्तवर्णां रक्तपुष्पैश्च पूजिताम्।
मारणे कृष्णवर्णां च कृष्णपुष्पाम्बरावृताम् ।।१७३।।

महाकृत्या-मन्त्र—अब मैं महाकृत्या के महामन्त्र को कहता हूँ, जिसके ज्ञानमात्र से तीनों लोकों में कुछ भी असाध्य नहीं रह जाता। सोलह अक्षरों का महाकृत्या-मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—ह्रीं महायोगिनि गौरि भुवनभयङ्करि हुम्। इस मन्त्र के ऋषि अंगिरा, छन्द गायत्री एवं देवता भय प्रदान करने वाली सिंहमुखी महाकृत्या कही गई हैं। इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार किया जाता है—ह्रां महायोगिनि गौरि फट् हृदयाय नमः, ह्रीं भुवनभयङ्करि हुं शिरसे स्वाहा, ह्रूं महायोगिनि गौरि फट् शिखायै वषट्, ह्रैं भुवनभयङ्करि हुं कवचाय हुं, ह्रौं महायोगिनि गौरि फट् नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्रः भुवनभयङ्करि हुं अस्त्राय फट्।

तदनन्तर सिंहरूपी आसन वाली, कृष्णवर्ण मुख वाली, लटके हुये पयोधरों वाली, बड़े-बड़े दाँतों के कारण विकराल मुख वाली, तीन नेत्रों वाली, चारो ओर से प्रकाशमान, कृष्ण वर्ण के वस्त्र से आच्छादित, धूम-रहित अग्नि के समान कान्तिमान,

करकमलों में त्रिशूल चक्र चषक (मद्यपात्र) एवं खट्वांग (शीर्ष पर खोपड़ी-जटित दण्ड) धारण की हुई, सर्प-सदृश लम्बी जिह्वा वाली, चारो ओर विद्युत् का प्रक्षेप करने से अत्यन्त भयंकर महाकृत्या का ध्यान करना चाहिये। वशीकरण कार्य में रक्तपुष्पों से पूजित रक्तवर्ण वाली कृत्या का एवं मारणकर्म में कृष्णवर्ण वाले पुष्पों से आच्छादित कृष्ण वर्ण वाली कृत्या का ध्यान करना चाहिये।।१६७-१७३।।

चतुर्दलन्तथाष्टास्रं भुपुराढ्यं समुद्धरेत्।
अर्चायन्त्रं कर्णिकायां देवीं बाह्यचतुर्दले।
पूर्वस्मिञ्छाङ्करीं नाम शुभ्रवर्णाम्बरावृताम्॥१७४॥
द्विभुजां सौम्यवदनां पाशाङ्कुशधरां शिवाम्।
दक्षिणे मारिकां नाम लम्बजिह्वामधोमुखीम्॥१७५॥
कृष्णवर्णां रक्तकेशीं रक्तमाल्यानुलेपनाम्।
चतुर्भुजां सिंहनादां ज्वलच्छूलकपालिनीम्॥१७६॥
खड्गहस्तां शिरोमालां सर्वाभरणभूषिताम्।
पश्चिमे वारुणीं नाम स्वर्णवर्णां हसन्मुखीम्॥१७७॥
सुवर्णमालिकां शुभ्रदंष्ट्रामभयदां सदा।
उदीचि भीतिकां नाम चतुर्वक्त्रां भयङ्कराम्॥१७८॥
पूजयित्वा जपेन्मन्त्रं जुहुयाद्राजिका घृतैः।
ततः प्रयोगं कुर्वीत स्वेष्टं स च निगद्यते॥१७९॥

चतुर्दल, अष्टदल और भूपुर-युक्त पूजनयन्त्र बनाकर उसकी कर्णिका में देवी का अर्चन करने के बाद उसके बाहर चतुर्दल के पूर्व वाले दल में श्वेत वस्त्र से आच्छादित, दो भुजाओं वाली, सौम्य मुख वाली, पाश एवं अंकुश धारण की हुई शांकरी नाम वाली शिवा का यजन करना चाहिये। दक्षिण वाले दल में लम्बी जिह्वा वाली, अधोमुखी, कृष्ण वर्ण वाली, रक्तवर्ण के केशों वाली, रक्त माल्य एवं रक्त अनुलेप धारण की हुई, चार भुजाओं वाली, सिंह के सदृश गर्जन करने वाली, हाथों में तप्त शूल कपाल एवं खड्ग धारण की हुई, नरमुण्डों की माला धारण की हुई, समस्त आभूषणों से विभूषित, मारिका नामक देवी का पूजन करना चाहिये। पश्चिम दिशा-स्थित दल में स्वर्णवर्ण वाली, प्रफुल्लित मुख वाली, सुवर्ण की माला धारण की हुई, शोभन दाँतों वाली एवं सदा अभय प्रदान करने वाली वारुणी नाम वाली देवी का अर्चन करना चाहिये। उत्तर दिशा वाले दल में चार मुखों वाली भयदायिनी भीतिका नाम वाली देवी का यजन करना चाहिये।
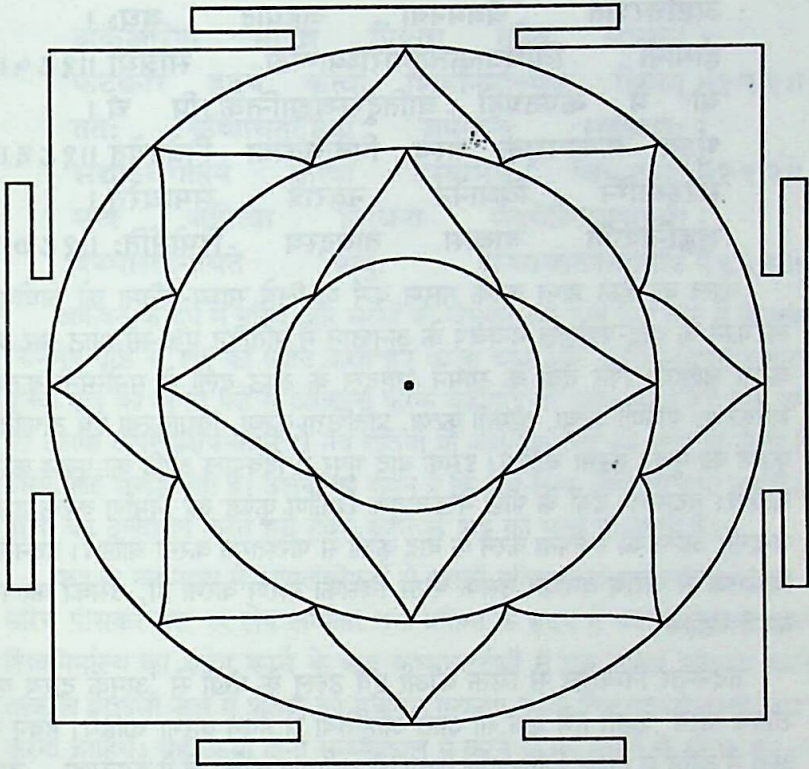
इस प्रकार पूजन करने के पश्चात् मन्त्र का जप करके राई एवं घृत से हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् प्रयोग करने पर जिन अभीष्टों की प्राप्ति होती है, उन्हें अब कहा जा रहा है।।१७४-१७९।।

कालं विदित्वा प्रतिमां मारणे चाप्यधोमुखीम्।
वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं नित्यमष्टोत्तरं शतम्॥१८०॥
देव्यग्रतो यजेदष्टदले कृत्यां मनोन्मनीम्।
सर्वकृत्यां भीषणीं च श्रीमतीं च प्रतिष्ठिताम्॥१८१॥
विद्यामुत्पादिनीं चेति दिगीशादींश्च भूपुरे।
तस्याधो मेखलायुक्तं त्रिकोणं वह्निकूर्चकम्॥१८२॥
चन्द्रगौरं विधायाग्निं परिस्तीर्य्य शरैस्ततः।
बिभीतकपरिध्या च कल्पयेद्यस्य मारणम्॥१८३॥
जुहुयान्निम्बतैलाक्तैः काकोलूककपक्षकैः।
दारयैनं शोषयैनं मारयेत्यभिधाय च॥१८४॥

अष्टोत्तरशतं चैवमनया जुहुयाद् बुधः ।
होमान्ते विधिवत्कृत्यामाराध्याग्नेश्च सन्निधौ ॥१८५॥
यो मे कण्ठग्रहो वातिदूरस्थश्चान्तिकेऽपि च ।
भुंक्ष्व क्रव्यमसृक् तस्य पिबेत्युक्त्वा निवेदयेत् ॥१८६॥
संरक्ष्याग्निं विधानेन नवरात्रं समाचरेत् ।
जुह्वन्तिष्ठति यावत्स तावदस्य रिपोर्मृतिः ॥१८७॥

काल का ज्ञान प्राप्त करके मारण कर्म के लिये साध्य-प्रतिमा को अधोमुख लटकाने के बाद वर्णलक्ष मन्त्रजप के अनुष्ठान में प्रतिदिन एक सौ आठ बार जप करना चाहिये। फिर देवी के सामने अष्टदल के आठ दलों में मनोन्मनी कृत्या, सर्वकृत्या, भीषणी कृत्या, श्रीमती कृत्या, प्रतिष्ठिता कृत्या, विद्याकृत्या एवं उत्पादिनी कृत्या का पूजन करना चाहिये। इसके बाद भूपुर में दिक्पाल आदि का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर देवी के पीछे मेखलायुक्त त्रिकोण कुण्ड का निर्माण करके उसमें चन्द्रगौर अग्नि की स्थापना करने के बाद कुशों से परिस्तरण करना चाहिये। तदनन्तर विभीतक से परिधि बनाकर उसके भीतर जिसका मारण करना हो, उसकी कल्पना करनी चाहिये।

तदनन्तर निम्बतैल से सिक्त कौआ एवं उल्लू के पंखों से 'अमुकं दारय एनं शोषय मारय' कहते हुये एक सौ आठ आहुतियों से हवन करना चाहिये। हवन के अन्त में अग्नि के निकट विधि-पूर्वक कृत्या की आराधना करके 'यो मे कण्ठग्रहो.....तस्य पिब' (जो दूर अथवा समीप रहते हुये भी मेरे लिये गलग्रह बना हुआ है, उसके मांस का तुम भक्षण करो एवं रक्त का पान करो) इस प्रकार कहते हुये आहुति निवेदित करना चाहिये। इस प्रकार नव दिनों तक उस अग्नि की रक्षा करते हुये रात्रि में उसमें तबतक हवन करते रहना चाहिये, जबतक कि शत्रु की मृत्यु न हो जाय।।१८०-१८७।।

अर्कक्षीरेण मरिचं पिष्ट्वा सिद्धार्थमेव च ।
जले संलोड्य मन्त्रेण रिपुं ध्यात्वा निरुद्धदृक् ॥१८८॥
कृष्णाम्बरोत्तरीयोऽग्रपादेनाक्रम्य तं रिपुम् ।
वज्रशूलमिति ध्यात्वाऽपस्तस्योपरि निःक्षिपेत् ।
नवरात्रोत्तरे शत्रुर्म्रियते नात्र संशयः ॥१८९॥
हरसिद्धेत्यृचा वह्नौ तैलसिक्तैर्बिभीतकैः ।
जुह्वतो म्रियते शत्रुः सत्यमौशनसं मतम् ॥१९०॥
रिपोः प्रतिकृतिं कृत्वा साध्यर्क्षामलके फले ।

अर्कक्षीरेण मरिचं पिष्ट्वा तत्रैव लेपयेत्।
फट्कारं हृदये कृत्वा शिवनिर्माल्यके क्षिपेत् ।।१९१।।
ततः कृष्णचतुर्दश्यां जपेन्मन्त्रं सहस्रशः।
सद्योऽवगाहनं कृत्वा तस्यामेव विचक्षणः ।।१९२।।
मन्त्रं जपित्वा विधिना भेदयेल्लिङ्गमुद्रया।
षण्मासान्म्रियते शत्रुः सन्ध्ययोरुभयोरपि ।।१९३।।

अकवन के दूध में मरिच और सरसों को पीसकर उसे मन्त्र द्वारा जल में मिलाकर निर्निमेष दृष्टि से शत्रु का ध्यान करते हुए काला वस्त्र और उत्तरीय (दुपट्टा) धारण करके शत्रु को अपने पैरों से आक्रान्त करके वज्रशूल का ध्यान करते हुये उक्त जल का उसके ऊपर प्रक्षेप करने से नव रात्रियों के बाद उस शत्रु की मृत्यु हो जाती है; इसमें कोई सन्देह नहीं है। उशना का कथन है कि तैल-सिक्त बिभीतक द्वारा 'हरसिद्ध' ऋचा का उच्चारण करते हुये हवन करने से शत्रु की मृत्यु हो जाती है।

शत्रु के नामनक्षत्र में आमलकीफल से उसकी प्रतिमा बनाकर अकवन के दूध में मरिच पीसकर उस पर लेप लगाकर उक्त प्रतिमा के हृदय में फट्कार करके उसमें शिवनिर्माल्य का प्रक्षेप करने के बाद कृष्णचतुर्दशी में एक हजार मन्त्रजप करके तत्काल ही उसी जल में प्रतिमा को डुबोकर मन्त्रजप करके लिङ्गमुद्रा से उसका भेदन करना चाहिये। यह क्रिया दोनों सन्ध्याकाल में करने से छः महीने के भीतर शत्रु की मृत्यु हो जाती है।।१८८-१९३।।

वायुना चोद्धृतं पत्रं शुभ्रं बैभीतकं ततः।
गृहीत्वा विलिखेन्मन्त्री कृष्णसर्पास्यशोणितैः।
उष्ट्रास्थ्ना च शवाङ्गारैः शत्रोरुच्चाटनं भवेत् ।।१९४।।
दूर्वागुडूच्या गव्यैश्च सर्पिषा तिलतण्डुलैः।
अन्नैः समिद्भिः पालाशैः शान्तिं कुर्याद्विचक्षणः ।।१९५।।
लक्ष्म्यै बिल्वफलैः पत्रैर्नन्द्यावर्तैः श्रिये तथा।
रक्तपुष्पैरपामार्गैरङ्गारैश्च सुभद्रकैः।
मधुरत्रयसंसिक्तैरेभिः कुर्याच्च वश्यकम् ।।१९६।।
शान्तिं कृत्वा विधानेन जपेत्परिमलं त्विमम्।
महाव्याधिप्रशमनं नित्यमष्टोत्तरं शतम् ।।१९७।।

तदनन्तर हवा के झोंके से गिरे बिभीतक के पते को लेकर उस पर काले सर्प के मुख से निकल रहे रक्त, ऊँट की हड्डी और चिता के कोयले द्वारा मन्त्र लिखने पर शत्रु

का उच्चाटन होता है। विद्वान् साधक द्वारा दूब, गुरुच, गोदुग्ध, गोघृत, तिल, चावल, अन्न से पलाश की अग्नि में हवन करने से उस उच्चाटन कर्म की शान्ति होती है।

लक्ष्मी-प्राप्ति के लिये बिल्वफलों द्वारा एवं श्री-प्राप्ति के लिये नन्द्यावर्त के पत्तों द्वारा हवन करना चाहिये। मधुरत्रय से संसिक्त रक्त पुष्प, अपामार्ग एवं देवदार की लकड़ी से हवन करने पर वशीकरण होता है। विधि-पूर्वक शान्ति करके इस मन्त्र का जप करने से वशीकरण का प्रभाव समाप्त हो जाता है। इस मन्त्र का प्रतिदिन एक सौ आठ बार जप करने से महाव्याधि का भी शमन होता है।।१९४-१९७।।

जपेदेकाग्रचित्तस्तु लोकवश्यकरं परम्।
मनसा चिन्तयेत्कृत्यां गजारूढामिभद्रवीम् ।।१९८।।
तस्य वश्यम्भवेत्सर्वमश्वारूढां तथैव च।
चौरव्याघ्रमृगादीनां सलिलादेर्भयापहम् ।।१९९।।
सप्ताभिमन्त्रितं तोयं पीत्वा मन्त्रञ्जपेद् बुधः।
मेधावी च भवेद्वाग्मी तावज्जापाभिषेकतः ।।२००।।
सप्ताभिमन्त्रितं कृत्वा विषमप्यमृतं भवेत्।
पक्षं मासं द्विमासं वा षण्मासं वत्सरं तु वा ।।२०१।।

एकाग्र चित्त से जप करने पर यह श्रेष्ठ मन्त्र लोक-वशीकरण करने वाला है। ऐसा करते समय हाथी को द्रवित करने वाली कृत्या के हाथी पर आरूढ़ स्वरूप का ध्यान करना चाहिये। इसी प्रकार घोड़े पर सवार कृत्या का चिन्तन करने से भी वशीकरण होता है। कृत्या का यह मन्त्र चोर, बाघ, मृग आदि के भय का एवं जलभय का निवारक है। इस मन्त्र के सात जप से अभिमन्त्रित जल का पान करके मन्त्रजप करने से साधक मेधावी होता है एवं सात जप से अभिमन्त्रित जल के अभिषेक से वाग्मी होता है। पन्द्रह दिनों तक, एक मास तक, दो मास तक, छः मास तक अथवा एक वर्ष तक मन्त्र के सात जप से अभिमन्त्रित विष भी अमृत हो जाता है।।१९८-२०१।।

कृत्याशान्तिविधिः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कृत्याशान्तिविधिक्रमम्।
कृत्यां समर्चयेद्धस्ते यथाविधिपुरःसरम् ।।२०२।।
षोडशारं लिखेत्पद्मं योनियुक्तं सबिन्दुकम्।
तन्मध्येऽष्टदलं न्यस्य यकारादीन्न्यसेत्क्रमात् ।।२०३।।
तन्मध्ये रसकोणन्तु लिखेन्मूलमनुं स्मरेत्।
चन्द्रबिम्बं लिखेत्पद्मं तस्योर्ध्वं प्रतिमां लिखेत् ।।२०४।।

तस्य मध्ये न्यसेत्कुम्भं रक्तवस्त्रविभूषितम् ।
कुम्भमध्ये न्यसेत्कृत्यां सर्वलक्षणसंयुताम् ॥२०५॥
अर्चयेच्च यथान्यायं पायसन्तु निवेदयेत् ।
परितोष्य च तान्यस्येदसिताङ्गादिभैरवान् ॥२०६॥
गन्धपुष्पादिभिश्चार्च्य तद्बाह्ये क्षेत्रपालकान् ।
लोकेशान्तं यजेद्देवि तदग्रे होममाचरेत् ॥२०७॥
तस्य दक्षिणपार्श्वे तु लक्ष्मीं ध्यायेद्यथाविधि ।
कुम्भमध्ये न्यसेद्देवीं दक्षिणे तु श्रियं स्मरेत् ॥२०८॥
वामपार्श्वे यजेद्देवीं हृल्लेखां परमेश्वरीम् ।
तस्या वै वामपार्श्वे तु पूजयेद् गणनायकम् ।
अयुतं मूलमन्त्रन्तु जपेन्मृत्युविनाशनम् ॥२०९॥
कृत्यामन्त्रः परिप्रोक्तः सर्वकामफलप्रदः ।
महाशान्तिकरे लोके दुःखदारिद्र्यनाशनः ॥२१०॥
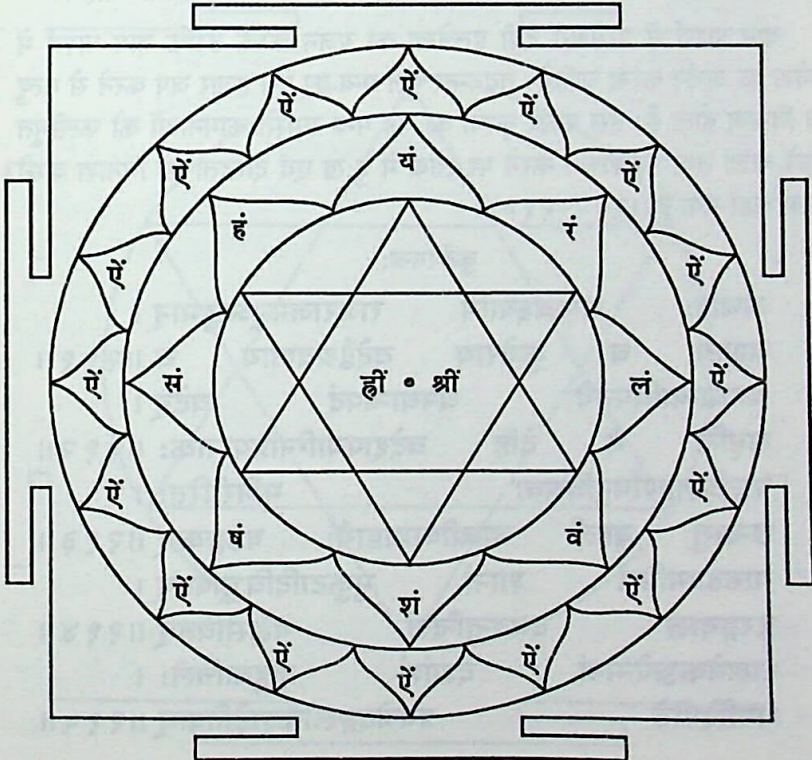
कृत्याशान्ति-विधि—अब मैं कृत्याशान्ति की विधि को क्रमशः कहता हूँ। हस्त नक्षत्र में सर्वप्रथम विधि-पूर्वक कृत्या का अर्चन करने के पश्चात् सबसे पहले बिन्दु-सहित योनियुक्त षोडशदल कमल का निर्माण करने के उपरान्त उसके मध्य में अष्टदल कमल बनाकर उसके आठो दलों में क्रमशः 'य र ल व श ष स ह' का अंकन करने के बाद उसके मध्य में षट्कोण का निर्माण करके उसमें मूल मन्त्र को अंकित करना चाहिये। फिर चन्द्रविम्ब में कमल बनाकर उसके ऊपर प्रतिमा बनानी चाहिये। तदनन्तर उसके मध्य में रक्त वस्त्र से विभूषित कलश की स्थापना करनी चाहिये। उस कलश में सभी लक्षणों से युक्त कृत्या का विधिपूर्वक विन्यास करने के पश्चात् नैवेद्य में पायस अर्पित करना चाहिये।

देवी कृत्या को सब प्रकार से सन्तुष्ट करने के उपरान्त असिताङ्गादि अष्टभैरवों को न्यस्त करने के बाद गन्ध-पुष्पादि से उनका पूजन करना चाहिये। हे देवि! तत्पश्चात् उसके बाहर क्षेत्रपालों एवं दिक्पालों का अर्चन करने के बाद उसके आगे हवन करना चाहिये। देवी के दक्ष पार्श्व में लक्ष्मी का ध्यान करते हुये कुम्भ के मध्य में विधि-पूर्वक देवी लक्ष्मी का न्यास करके उसके दाहिने श्री का स्मरण करना चाहिये।

वाम पार्श्व में परमेश्वरी देवी हृल्लेखा का यजन करके उसके वाम पार्श्व में गणेश का अर्चन करना चाहिये। तदनन्तर मूल मन्त्र का दस हजार जप करने से मृत्यु का विनाश होता है। इस प्रकार कृत्या का यह मन्त्र समस्त कामनाओं को फलीभूत करने वाला तथा महाशान्ति करने पर लोक में दुःख एवं दरिद्रता का विनाश करने वाला कहा गया है।।२०२-२१०।।

कुबेरमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि राजराजमनूञ्छुभान्।
यक्षाय च कुबेराय वदेद्वैश्रवणाय च॥२११॥
धनधान्याधिपतये धनधान्यपदं वदेत्।
समृद्धिं मे देहि वदेद्वापयाग्निप्रियान्तकः॥२१२॥
पञ्चत्रिंशद्वर्णमनुर्विश्रवा मुनिरीरितः।
छन्दस्तु बृहती त्र्यब्धीष्वष्टाष्टागैः षडङ्गकम्॥२१३॥
गारुडात्मनिभं शान्तं मुकुटादिविभूषितम्।
वरङ्गदाञ्च दधतन्तुन्दिलं यक्षसेवितम्॥२१४॥
लक्षमेकञ्जपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयात्तिलैः।
धर्मादिपीठे प्रयजेदङ्गलोकेशहेतिकम्॥२१५॥

शिवालये जपेन्मन्त्रमयुतं धनवृद्धये।
बिल्वमूलोपविष्टेन जप्तो लक्षं धनर्द्धिदः ॥२१६॥

कुबेर-मन्त्र—अब राजराजं कुबेर के शुभ मन्त्र को कहता हूँ। पैंतीस अक्षरों का मन्त्र है—यक्षाय कुबेराय वैश्रवणाय धनधान्याधिपतये धनधान्यसमृद्धिं मे देहि दापय स्वाहा।

इस मन्त्र के ऋषि विश्रवा, छन्द बृहती एवं देवता कुबेर कहे गये हैं। मन्त्र के तीन, चार, पाँच, आठ, आठ एवं छः वर्णों से इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—यक्षाय हृदयाय नमः, कुबेराय शिरसे स्वाहा, वैश्रवणाय शिखायै वषट्, धनधान्याधिपतये कवचाय हुम्, धनधान्यसमृद्धिं मे नेत्रत्रयाय वौषट्, देहि दापय स्वाहा अस्त्राय फट्। तदनन्तर सुवर्ण-सदृश प्रकाशमान, शान्त स्वरूप वाले, मुकुट आदि से विभूषित, हाथों में वर एवं गदा धारण किये हुये, बढ़े पेट वाले, यक्षों द्वारा सेवित कुबेर का ध्यान करना चाहिये।
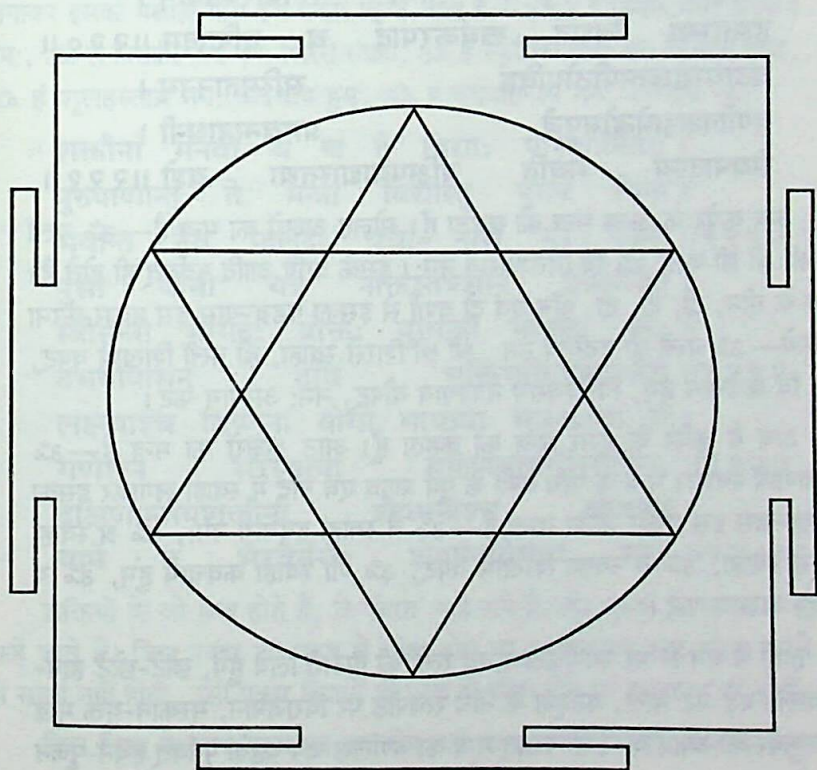
उक्त मन्त्र का एक लाख जप करके सिद्धि-हेतु कृत जप का दशांश (दस हजार) तिलों से हवन करना चाहिये। धर्मादि पीठ पर षडङ्ग-पूजन, दिक्पाल-पूजन एवं उनके अस्त्रों का पूजन करना चाहिये। धन-वृद्धि के लिये शिवालय में मन्त्र का दस हजार जप करना चाहिये। बेल वृक्ष की जड़ के निकट बैठकर मन्त्र का एक लाख जप करने से प्रचुर धन की प्राप्ति होती है।।२११-२१६।।

अथ मन्त्रान्तरं वक्ष्ये ॐक्लींह्रींश्रीं समुच्चरेत्।
श्रींह्रींक्लींॐ च विं वित्तेश्वराय नम इत्यपि ॥२१७॥
षोडशार्णोऽस्य मुन्यादिप्राग्वत्त्रिद्विद्विनेत्रकैः।
पञ्चाक्षिभ्यां षडङ्गं स्याद्ध्यानपूजादि पूर्ववत् ॥२१८॥
अथ मन्त्रान्तरं वक्ष्ये कुबेरस्य गजाक्षरम्।
तारो वैश्रवणायेति स्वाहा पञ्चाङ्गमत्र तु।
स्वाहान्तैः प्रणवाद्यैश्च पञ्चभिर्मन्त्रवर्णकैः ॥२१९॥
धनपूर्णं स्वर्णकुम्भं तथा रत्नकरण्डकम्।
हस्ताभ्यां बिभ्रतं खर्वकरपादं च तुन्दिलम् ॥२२०॥
वटाधस्ताद्रत्नपीठोपविष्टं सस्मिताननम्।
वर्णलक्षञ्जपेद्धोमपूजे प्राग्वन्महाधनी।
सेवनादस्य भवति यक्षिण्याद्यास्तथा वशे ॥२२१॥

अब कुबेर के अन्य मन्त्र को कहता हूँ। सोलह अक्षरों का मन्त्र है—ॐ क्लीं ह्रीं श्रीं श्रीं ह्रीं क्लीं ॐ विं वित्तेश्वराय नमः। इसके ऋषि आदि पूर्ववत् ही होते हैं। मन्त्र के तीन, दो, दो, दो, पाँच एवं दो वर्णों से इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—ॐ क्लीं ह्रीं हृदयाय नमः, श्रीं श्रीं शिरसे स्वाहा, ह्रीं क्लीं शिखायै वषट्, ॐ विं कवचाय हुम्, वित्तेश्वराय नेत्रत्रयाय वौषट्, नमः अस्त्राय फट्।

अब मैं कुबेर के दूसरे मन्त्र को कहता हूँ। आठ अक्षरों का मन्त्र है—ॐ वैश्रवणाय स्वाहा। मन्त्र के पाँच वर्णों के पूर्व प्रणव एवं बाद में स्वाहा लगाकर इसका पञ्चाङ्गन्यास इस प्रकार किया जाता है—ॐ वै स्वाहा हृदयाय नमः, ॐ श्र स्वाहा शिरसे स्वाहा, ॐ व स्वाहा शिखायै वषट्, ॐ णा स्वाहा कवचाय हुम्, ॐ य स्वाहा अस्त्राय फट्।

हाथों में धन से भरे स्वर्णकलश एवं रत्नों की पिटारी लिये हुये, छोटे-छोटे हाथ-पैर वाले, बड़े पेट वाले, वटवृक्ष के नीचे रत्नपीठ पर विराजमान, मुस्कान-युक्त मुख वाले कुबेर का ध्यान करने के पश्चात् मन्त्र का वर्णलक्ष जप करके पूर्ववत् हवन-पूजन

करने वाला साधक अत्यन्त धनवान होता है। साथ ही इस मन्त्र की उपासना करने से यक्षिणी आदि साधक के वशीभूत होती हैं।।२१७-२२१।।

ईशानमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि ईशानमनुमद्भुतम्।
प्रणवं हं समुच्चार्य चेशानाय वदेत्ततः ।।२२२।।
विद्याधिपतये चेति स्फटिकेति वदेत्ततः।
वर्णाय शूलहस्ताय ङेऽन्तश्च वृषवाहनः ।।२२३।।
नमोऽन्त एकत्रिंशद्भिर्वर्णैर्मन्त्र उदाहृतः।
ॐहमाद्यैर्नमोऽन्तैश्च पञ्चाङ्गं पञ्चभिः पदैः ।।२२४।।

ईशान-मन्त्र—अब मैं ईशान के अद्भुत मन्त्र को कहता हूँ। इकतीस अक्षरों का ईशानमन्त्र इस प्रकार कहा गया है—ॐ हं ईशानाय विद्याधिपतये स्फटिकवर्णाय शूलहस्ताय वृषवाहनाय नमः। मन्त्र के पाँच पदों के पूर्व 'ॐ हं' एवं अन्त में 'नमः' लगाकर इसका पञ्चाङ्गन्यास इस प्रकार किया जाता है—ॐ हं ईशानाय नमः हृदयाय नमः, ॐ हं विद्याधिपतये नमः शिरसे स्वाहा, ॐ हं स्फटिकवर्णाय नमः शिखायै वषट्, ॐ हं शूलहस्ताय नमः कवचाय हुम्, ॐ हं वृषवाहनाय नमः अस्त्राय फट्।

शक्तीनां मनवो ये च ते विद्याः परिकीर्तिताः।
पुरुषाणान्तु ते मन्त्रा विद्यास्तु पुरुषं विना।
भवन्ति नैव फलदा यथा नारी नरं विना ।।२२५।।
पुंसां योगो यत्र नोक्तस्तत्रेशानं प्रयोजयेत्।
स्त्रीमन्त्रो भोगदः प्रोक्तः पुम्मन्त्रो मोक्षदः परः।
उभयोपासनं देवि भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।।२२६।।
लक्ष्म्याश्च विष्णुना योगो गायत्र्या भास्करेण च।
गणेशेन सरस्वत्या यक्षिण्याद्याभिरात्मनः ।।२२७।।
दक्षिणाम्नायशक्तीनां शैवमन्त्रैश्च योजनम्।
वामे तु भैरवैर्मन्त्रैः शेषाम्नायेष्वयं मनुः ।।२२८।।

शक्तियों के जो मन्त्र होते हैं, वे 'विद्या' कहे गये हैं और पुरुषों के मन्त्र 'मन्त्र' कहे जाते हैं। जिस प्रकार स्त्री पुरुष से रहित होने पर सन्तानरूप फल प्रदान करने में समर्थ नहीं होती, उसी प्रकार विद्यायें भी पुरुष से रहित होने पर फलप्रद नहीं होतीं।

जिस विद्या के साथ पुरुषमन्त्र का योग नहीं कहा गया है, वहाँ ईशानमन्त्र का

संयोजन करना चाहिये। स्त्रीमन्त्र (विद्या) भोग प्रदान करने वाले एवं पुरुषमन्त्र मोक्ष प्रदान करने वाले कहे गये हैं। इसलिये हे देवि! दोनों की उपासना से भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त होते है।

लक्ष्मी का विष्णु के साथ, गायत्री का सूर्य के साथ, सरस्वती का गणेश के साथ एवं यक्षिणी आदि का परमात्मा के साथ योग करना चाहिये। दक्षिणाम्नाय की शक्तियों को शैव मन्त्रों के साथ युक्त करना चाहिये एवं वाममार्ग में शक्तियों का संयोजन भैरवमन्त्रों के साथ करना चाहिये। दोनों के अतिरिक्त अन्य आम्नायों की शक्तियों के साथ इस ईशानमन्त्र को युक्त करना चाहिये।।२२५-२२८।।

ब्रह्मणो मन्त्रसाधनविधिः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणो मन्त्रमद्भुतम्।
तारं पाशं ब्रह्मणे च लोकाधिपतये वदेत्।।२२९।।
रक्तवर्णायोर्ध्वलोकपालकाय वदेत्ततः।
पद्महस्ताय च पदं ङेऽन्तः स्याद्धंसवाहनः।
नमोऽन्तो बाणरामार्णो मन्त्रोऽयं परिकीर्तितः।।२३०।।
तारपाशादिकैः षड्भिः पदैरङ्गं हृदन्तकैः।
नास्य पूजाविधिः प्रायो जपोऽस्य परिकीर्तितः।।२३१।।
वर्णलक्षजपादेव निग्रहानुग्रहक्षमः।
दशपत्रे यजेदेनं प्रागीशान्तदले सुराः।
न तत्र मम शापोऽस्ति शापः केवलपूजने।।२३२।।

ब्रह्मा-मन्त्र—अब मैं ब्रह्मा के अद्भुत मन्त्र को कहता हूँ। पैंतीस अक्षरों का यह मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—ॐ आं ब्रह्मणे लोकाधिपतये रक्तवर्णायोर्ध्वलोकपालकाय पद्महस्ताय हंसवाहनाय नमः। आदि में 'ॐ आं' एवं अन्त में 'नमः' से संयुक्त मन्त्र के छः पदों से इस प्रकार षडङ्गन्यास करना चाहिये—ॐ आं ब्रह्मणे नमः हृदयाय नमः, ॐ आं लोकाधिपतये नमः शिरसे स्वाहा, ॐ आं रक्तवर्णाय नमः शिखायै वषट्, ॐ आं ऊर्ध्वलोकपालकाय नमः कवचाय हुम्, ॐ आं पद्महस्ताय नमः नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ आं हंसवाहनाय नमः अस्त्राय फट्। प्रायः इसके पूजन का कोई विधान नहीं है; अपितु इसका जप ही कहा गया है। ब्रह्मा-मन्त्र का वर्णलक्ष (पैंतीस लाख) जप निग्रह-अनुग्रह करने में समर्थ होता है। दसदल कमल में पूर्व से प्रारम्भ कर ईशान कोण-पर्यन्त दस दलों में देवों का पूजन करना चाहिये। देवताओं के साथ ब्रह्मा के पूजन में मेरा कोई शाप नहीं है; अपितु शाप केवल ब्रह्मा के पूजन में है।।२२९-२३२।।

शेषमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शेषस्य मनुमद्भुतम् ।
तारं मायामनन्ताय नागाधिपतये वदेत् ।
गौरवर्णायातलादिसप्तलोकेश्वराय च ॥२३३॥
चक्रहस्ताय गरुडवाहनाय नमोऽन्तकः ।
एकचत्वारिंशदर्णो मन्त्रोऽनन्तस्य कीर्तितः ॥२३४॥
मन्त्रम्प्रति चतुर्दश्याञ्चतुर्दशशतञ्जपेत् ।
दुग्धं हुत्वाऽथ विप्रेन्द्रान् भोजयेच्च चतुर्दश ॥२३५॥
कुर्याच्चतुर्दशीं भक्त्या धनधान्ययुतो भवेत् ।
राज्यभ्रष्ट इयाद्राज्यं विद्याकामस्तु पण्डितः ॥२३६॥
भाद्रशुक्लचतुर्दश्यां विशेषात्पूजनं मतम् ।
ईश्वरस्य च पूजायां खपृथिव्योः प्रपूजनम् ।
एवमुक्ता दिक्पमन्त्राः किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥२३७॥

इति श्रीमहामायामहाकालानुमते मेरुतन्त्रे शिवप्रणीते
दशदिगीशमन्त्रप्रकाशश्चतुर्विंशः ॥२४॥

●

शेष-मन्त्र—अब मैं शेष के अद्भुत मन्त्र को कहता हूँ। इकतालीस अक्षरों का अनन्त का मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—ॐ ह्रीं अनन्ताय नागाधिपतये गौरवर्णायातलादि-सप्तलोकेश्वराय चक्रहस्ताय गरुड़वाहनाय नमः। प्रत्येक चतुर्दशी तिथि को इस मन्त्र का चौदह सौ जप करने के उपरान्त दूध से हवन करने के बाद चौदह ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। भक्तिपूर्वक चतुर्दशी का व्रत करने वाला साधक धन-धान्य से परिपूर्ण रहता है; राज्य से च्युत राजा पुनः अपना राज्य प्राप्त कर लेता है एवं विद्या-प्राप्ति का इच्छुक व्यक्ति पण्डित हो जाता है। भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष की चतुर्दशी तिथि को विशेष रूप से इसका पूजन करना चाहिये। ईश्वर का पूजन करते समय आकाश एवं पृथिवी का भी विशेष रूप से पूजन करना चाहिये। इस प्रकार दिक्पालों के मन्त्रों को कहा गया; अब और क्या सुनना चाहती हो?॥२३३-२३७॥

इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र
में शिवप्रणीत 'दस दिगीशमन्त्रकथन'-नामक
चतुर्विंश प्रकाश पूर्णता को प्राप्त हुआ।

●

पञ्चविंशतितमो प्रकाशः

(दीपविधिकथनम्)

श्रीदेव्युवाच

देवदेव महादेव तेजोमात्रन्तु सूर्यजम्।
तथा दीपस्य मे मन्त्रं फलञ्च कृपया वद ॥१॥

दीप-विषयक प्रश्न—श्रीदेवी ने कहा कि हे देवदेव महादेव! तेज केवल सूर्य से ही उत्पन्न होता है। अतः कृपा करके दीप (तेज) के मन्त्र और उसके फल को आप मुझसे कहें।।१।।

गणेशदीपविधिकथनम्

ईश्वर उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि दीपस्य विधिमद्भुतम्।
आदौ गणेशदीपस्तु कार्याकार्यविनिर्णये ॥२॥
कर्तव्यस्तत्प्रवक्ष्यामि कार्यमष्टविधं स्मृतम्।
शान्तिकं पौष्टिकं वश्यं मारणं स्तम्भनन्तथा।
मोहोच्चाटौ द्वेषणञ्च तेषु दीपञ्चरेत्क्रमात् ॥३॥

गणेश को दीपदान करने की विधि—ईश्वर ने कहा कि हे देवि! मैं दीप की अद्भुत विधि को कहता हूँ, श्रवण करो। कार्य-अकार्य का विनिश्चय होने पर सर्वप्रथम गणेश को दीपदान करना चाहिये; अतः मैं उसे कहता हूँ। कार्य आठ प्रकार के कहे गये हैं—शान्तिक, पौष्टिक, वशीकरण, मारण, स्तम्भन, मोहन, उच्चाटन एवं विद्वेषण। इन सभी कार्यों में क्रमशः इस प्रकार दीपदान करना चाहिये।।२-३।।

गोधूमयवमाषाणां मृत्तिकास्वर्णभाण्डजम्।
ताम्रायसं क्रमात्पात्रं वर्तयः श्वेतपीतकैः।
कृष्णनीलारुणारक्तहरित्कपिशसूत्रकैः ॥४॥
पूर्वाशाद्यष्टकाष्ठानां क्रमात्सम्मुखमाचरेत्।
उदक्प्रागदक्षतोयेशाग्निरक्षोवायुशूलिदिक्।
सम्मुखन्तु मुखं कुर्यात्साधकः स्व-स्वकर्मणि ॥५॥

गव्याज्यं तिलतैलं च राजिकोत्थञ्च सार्षपम् ।
महिष्याज्यमुमातैलं वसातैलं कुसुम्भजम् ॥६॥

गेहूँ, यव (जौ), उड़द, मिट्टी, सुवर्ण, ताँबा एवं धातु से बने पात्र में क्रमश: श्वेत, पीले, काले, नीले, लाल, गुलाबी, हरे एवं कपिश वर्ण के धागों से निर्मित बत्ती रखनी चाहिये। इन्हें पूर्व से लेकर ईशान तक आठ दिशाओं में क्रमश: स्थापित करना चाहिये। अपने-अपने कर्म के अनुसार साधक को उन दीपकों का मुख उत्तर, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, अग्नि, नैर्ऋत्य, वायु एवं ईशान में रखना चाहिये। उन दीपकों में क्रमश: गाय का घी, तिल का तेल, राई का तेल, सरसों का तेल, भैंस का घी, उमा (सन) का तेल, वसा (चर्बी) का तेल एवं कुसुम्भ (केशर) का तेल ड़ालना चाहिये।।४-६।।

लिखेत्सूर्यदलं पद्मं लिप्तगोमयमण्डले ।
दीपस्य दिशमारभ्य गणेशं तत्र पूजयेत् ॥७॥
सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णक: ।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायक: ॥८॥
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजानन: ।
द्वादशैतानि नामानि य: पठेच्छृणुयादपि ॥९॥
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा ।
संग्रामे सङ्कटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ।
एतानत्र यजेद्विद्वान् पश्चाद्दीपं प्रदापयेत् ॥१०॥

गोबर से लिपी भूमि पर द्वादशदल कमल बनाकर दीपक की दिशा से आरम्भ करके उन दलों में गणेश का पूजन करना चाहिये। अक्षरारम्भ, विवाह, प्रवेश, निर्गमन, युद्ध एवं संकट की स्थिति में गणेश के सुमुख, एकदन्त, कपिल, गजकर्ण, लम्बोदर, विकट, विघ्ननाश, विनायक, धूम्रकेतु, गणाध्यक्ष, भालचन्द और गजानन—इन बारह नामों का जो उच्चारण करता है अथवा श्रवण करता है, उसे अपने कार्यारम्भ में किसी प्रकार का विघ्न नहीं होता। विद्वान् साधक को इन सबों का द्वादशदल कमल में पूजन करने के पश्चात् दीप प्रज्ज्वलित करना चाहिये।।७-१०।।

ऊर्ध्वाध: कम्पते दीपस्तदा कार्यं प्रसिद्ध्यति ।
तिर्यक्कम्पेन कार्यं स्यात्सम्यग्ज्योतिषि सत्वरम् ॥११॥
तेजोमान्द्ये विलम्बेन चात्र कौतुकमुच्यते ।
जातां देवगणे कन्यां कुमारं वा समानयेत् ॥१२॥
स्त्रियं वा शुद्धवेषाञ्च सम्यगानीय पूजयेत् ।
अधस्तात्स्थापेयत्पूतं विस्तीर्णं कांस्यभाजनम् ॥१३॥

जलपूर्णं च तन्मध्ये सा पश्येत्स्थिरदृक्ततः।
चिन्तयित्वा स्वीयकार्यं तदुपर्यक्षतान् क्षिपेत्।
कार्यानुसारं सा पश्येत्पुत्तलीनां च कौतुकम् ॥१४॥

दीपक का कम्पन यदि ऊपर-नीचे होता है तो कार्य की सिद्धि होती है। तिर्यक् कम्पन होने पर कार्य-सिद्धि होने में शंका रहती है। सम्यक् रूप से दीपक का लौ सीधा रहने से कार्यसिद्धि शीघ्र होती है। दीपशिखा का तेज मन्द होने पर कार्यसिद्धि में विलम्ब होता है।

यहाँ पर एक कौतुक बतलाता हूँ। देवगण में उत्पन्न कन्या, कुमार अथवा शुद्ध वेष वाली स्त्री को लाकर उसका सम्यक् रूप से पूजन करना चाहिये। तदनन्तर उसके सामने जमीन पर एक जलपूर्ण पवित्र विशाल काँसे का पात्र स्थापित करना चाहिये, जिसके मध्य में वह स्त्री स्थिर दृष्टि से देखे। इसके बाद अपने कार्य का चिन्तन करके उस स्त्री के ऊपर अक्षत का प्रक्षेप करने पर वह स्त्री कार्य के अनुसार अपनी आँखों से पुत्तलियों का कौतुक देखती है।।११-१४।।

बगलादीपविधिकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि बगलादीपमुत्तमम्।
कृतेन येन विघ्नौघो विलयं याति मन्त्रिणः ॥१५॥
शुद्धानि खलु बीजानि पक्षतुर्मुद्गरेण वा।
एकीकृत्य विधातव्यो दीपः सुस्निग्धशोभनः ॥१६॥
षट्त्रिंशत्तन्तुभिः कार्या दृढा वर्तिः सुरञ्जिता।
गव्यमाज्यञ्च कौसुम्भं तैलं वा दीपकर्मणि ॥१७॥
एतान्यानीय पूर्वन्तु ततो दीपं प्रदापयेत्।
हरिद्रया रक्तवस्त्रं परिधाय शुचिः क्षमी ॥१८॥
पीतासनोपविष्टश्च पीतमाल्यानुलेपनः।
उत्तरासम्मुखो भूत्वा हरिद्रालिप्तभूतले ॥१९॥
त्रिनेत्रं कारयित्वा तु दीपं संस्थाप्य यत्नतः।
घृतमापूर्य वर्त्तिं च दीपं प्रज्वालयेत्सुधीः ॥२०॥
मूलमन्त्रं समुच्चार्य चेति दीपन्ततो वदेत्।
सङ्कल्पन्यासपूर्वं तु जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥२१॥
एवं रात्रोपकुर्वाणो मासेनैकेन साधकः।

असाध्यान् साधयेत्कामान् वशयेदात्मनो रिपून्।
क्षोभयेत्स्तम्भयेच्चापि द्वेषयेत्प्रक्षिपेदपि ॥२२॥

बगला-दीपदान-विधि—अब मैं बगलामुखी के उत्तम दीपदान को कहता हूँ, जिसके करने से मन्त्रज्ञ साधक के समस्त विघ्न नष्ट हो जाते हैं। गेहूँ के शुद्ध बीजों को मूसल से कूटकर चूर्ण बनाकर उससे बनाये गये सुन्दर सुचिक्कण दीपक, छत्तीस धागों को हल्दी द्वारा अच्छी प्रकार से रंगकर बनाई गई मजबूत बत्ती एवं दीपक को जलाने के लिये गोघृत अथवा कुसुम्भ का तेल—इन सामग्रियों को एकत्र करने के पश्चात् विद्वान् साधक को हरिद्रा से रंगे वस्त्र धारण करने के बाद पीले रंग की माला धारण करके, पीला अनुलेप लगाकर पवित्र एवं अपने अनुकूल पीले रंग के आसन पर उत्तराभिमुख बैठकर हरिद्रा से लिप्त भूमि पर त्रिकोण बनाकर उस पर प्रयत्न-पूर्वक दीपक को स्थापित करने के उपरान्त उसे घृत से पूरित करने के बाद उसमें बत्ती ड़ालकर उसे घी से भरने के बाद उस दीपक को प्रज्वलित करना चाहिये। उस समय मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुये 'इति दीपम्' का उच्चारण करना चाहिये। इसके बाद संकल्प एवं न्यास-पूर्वक मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करना चाहिये। इस प्रकार प्रतिरात्रि एक मास तक करने वाला साधक असाध्य कार्यों का भी साधन कर सकता है। वह अपने शत्रु को वशीभूत कर सकता है, उसे क्षुब्ध कर सकता है अथवा स्तम्भित कर सकता है। वह साधक किन्हीं दो अभिन्न व्यक्तियों में विद्वेषण करा सकता है अथवा किसी का उच्चाटन भी कर सकता है।।१५-२२।।

बटुकदीपविधिकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सर्वतन्त्रेषु गोपितम्।
दीपं बटुकनाथस्य सर्वकामफलप्रदम्।
तारं मायां रमां कामं मायां लक्ष्मीं च वाग्भवम् ॥२३॥
सर्वज्ञाय प्रचण्डेति वदेत्पराक्रमाय च।
बटुकेति इमं दीपं गृहाण पदमुच्चरेत् ॥२४॥
सर्वकार्याणीति पदं साधयेति वदेत्तथा।
दुष्टान्नाशययुग्मञ्च त्रासयद्वितयञ्जपेत् ॥२५॥
सर्वतो मम रक्षां च कुरुयुग्मं च वर्त्म फट्।
स्वाहा फट् षष्टिवर्णोऽयं दीपमन्त्र उदाहृतः ॥२६॥
भवेद्भैरवमन्त्रस्य साधको य उपासकः।
तेन वर्त्तिः प्रकर्त्तव्या मन्त्रार्णमितसूत्रकैः ॥२७॥

आदौ तु लघुदीपेन ज्ञात्वा कार्यस्य साध्यताम्।
पश्चात्कुर्यात्तु साध्ये तु कार्यप्रोक्तन्तु दीपकम् ॥२८॥
साध्ये कार्यद्विगुणितं कष्टे तु त्रिगुणं मतम्।
असाध्ये नैव कर्तव्यो दीपस्त्रासप्रदो भवेत् ॥२९॥
यस्य कार्यस्य पात्रादि यदुक्तं लघुकर्मणि।
तदेव सर्वं विज्ञेयं द्विपलं पात्रमुच्यते ॥३०॥
अष्टसूत्रा भवेद्वर्त्तिः स्नेहः पलमितः स्मृतः।

बटुक-दीपदान-विधि—अब मैं समस्त तन्त्रों में गुप्त एवं समस्त अभीष्ट फलों को प्रदान करने वाले बटुकनाथ की दीपदान-विधि को कहता हूँ। 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ह्रीं श्रीं ऐं सर्वज्ञाय प्रचण्डपराक्रमाय बटुकभैरवाय इमं दीपं गृहाण सर्वकार्याणि साधय साधय दुष्टान्नाशय नाशय त्रासय त्रासय सर्वतो मम रक्षां कुरु कुरु हुं फट् स्वाहा'—यह साठ अक्षरों का दीपमन्त्र कहा गया है। जो साधक भैरवमन्त्र का उपासक होता है, उसके द्वारा मन्त्राक्षर-तुल्य धागों से बत्ती बनानी चाहिये। सर्वप्रथम छोटे दीपक द्वारा कार्य की साध्यता का ज्ञान करने के पश्चात् कार्य-साधन करने हेतु कथित विधि से मुख्य दीपक प्रज्वलित करना चाहिये। साध्य कार्य में द्विगुणित और कष्ट की स्थिति में त्रिगुणित दीपक जलाना चाहिये। असाध्य कार्य-हेतु दीपदान नहीं करना चाहिये; यतः वह भयदायक होता है। जिस कार्य के लिये जिन पात्रादि का विधान किया गया है, वे ही सब पात्र लघु कार्यों में भी प्रयुक्त होते हैं, ऐसा जानना चाहिये। वे पात्र दो पल प्रमाण वाले होने चाहिये। बत्ती आठ धागों से निर्मित होनी चाहिये एवं स्नेहद्रव्य (घृत अथवा तैल) एक पल होना चाहिये।।२३-३०।।

कार्यन्तु द्विविधं प्रोक्तं शुभं चाशुभमेव च ॥३१॥
यस्मिन्नान्यस्य कष्टं स्याच्छुभं तच्छान्तिपौष्टिकम्।
तत्रोच्यते भैरवस्य ध्यानं श्वेतं चतुर्भुजम् ॥३२॥
श्वेतवर्णं दक्षहस्ते वामे शृङ्गन्तु राजतम्।
ध्यात्वा मुकुटमौलिं च श्वेतकौपीनवाससम् ॥३३॥
त्रिनेत्रं श्वेततिलकं मुक्ताभरणभूषितम्।
वैरिणां दुःखजनकमशुभं मारणादिके ॥३४॥
नीलवर्णं मुक्तकेशं शिरोमालाविभूषितम्।
किङ्किणीमालया युक्तं त्रिनेत्रं च भयानकम् ॥३५॥
नागपाशं च घण्टां च वामयोर्दक्षयोः पुनः।
वरं कपालं दधतं ध्यायेत्तं क्रूरविग्रहम् ॥३६॥

शुभ एवं अशुभ के भेद से कार्य दो प्रकार के होते हैं। जिस कार्य के करने से किसी दूसरे को कष्ट न हो, वह शुभकार्य होता है; इसमें शान्तिक एवं पौष्टिक कर्म आते हैं। ऐसे कार्यों-हेतु शुक्लवर्ण चतुर्भुज स्वरूप वाले भैरव के ध्यान को कहा जा रहा है।

शुभ कर्मों में दाहिने हाथ में शुक्ल वर्ण वाले एवं बाँयें हाथ में रजत् वर्ण वाले शृङ्ग को धारण किये हुये, शीर्ष पर मुकुट से शोभायमान, श्वेत कौपीन-रूपी वस्त्र धारण किये हुये, तीन नेत्रों वाले, श्वेत तिलक लगाये हुये, मोतियों के आभूषण से विभूषित बटुकनाथ का ध्यान करना चाहिये।

मारणादि अशुभ कर्मों में बटुकदेव के शत्रुओं को कष्ट देने वाले स्वरूप का ध्यान करना चाहिये। वह इस प्रकार होता है—उनका वर्ण नील है, केश खुले हुये हैं, शीर्षभाग माला से विभूषित है, कमर में छोटी-छोटी घण्टियों से समन्वित करधनी धारण किये हुये हैं, भयानक तीन नेत्र वाले हैं, बाँयें दोनों हाथों में नागपाश एवं घण्टा तथा दाहिने दोनों हाथों में वर एवं कपाल धारण किये हुये हैं। इस प्रकार के क्रूरविग्रह बटुकदेव का ध्यान करना चाहिये।।३१-३६।।

सर्वस्मिञ्छुभकार्ये तु तैलं स्यात्पुष्पवासितम्।
गोधूमपिष्टजं पात्रमथवा तण्डुलोद्भवम्।
कर्तव्यं कुडवग्राहि शोधयेच्छ्वेतपर्वतम्।।३७।।
जलपूतन्तु तद्धान्यं सोमे कृत्वा विशोषयेत्।
कुमार्या हस्तकेनैव भौमे वेष्ट्यं समाचरेत्।
दीपपात्रं साधकस्तु भैरवं कवचं पठेत्।।३८।।
स्वष्टेमन्त्रस्य ये वर्णाः साध्यनामसमन्विताः।
कामप्रयोगे कर्तव्या वैदिकैस्तत्र तन्तुभिः।
तिस्रः पञ्च तथा सप्त वर्त्तयः कार्यगौरवात्।।३९।।
देवानामालये दीपः शुभकर्मणि शस्यते।
उत्तराभिमुखः शान्तौ प्राङ्मुखः पौष्टिके मतः।।४०।।

समस्त शुभ कार्यों में दीपक में पुष्पों के सुगन्ध से सुगन्धित तेल का प्रयोग करना चाहिये। एक प्रस्थ तेल रखने लायक गेहूँ अथवा चावल के आटे से बना हुआ दीपक होना चाहिये। वह दीपक सफेद चावलों के ढ़ेर से शोधित होना चाहिये। जल से पवित्र किया हुआ वह धान्य वायु के द्वारा शुष्क किया हुआ होना चाहिये। कुमारी के द्वारा लायी गयी मिट्टी से उस दीपक में लेप लगाना चाहिये। साधक को भैरवकवच के पाठ से उस दीपपात्र को रक्षित कर देना चाहिये।

काम्य प्रयोगों में अपने इष्टमन्त्र के प्रत्येक वर्ण को साध्य के नाम से समन्वित करके जप करते हुये वेदज्ञ ब्राह्मण द्वारा कार्य की लघुता-गुरुता के अनुरूप धागों से निर्मित तीन, पाँच अथवा सात बत्तियों का प्रयोग करना चाहिये। शुभ कार्यों में देवालय में दीपदान करना उत्तम होता है। उस दीपक का मुख शान्तिकर्म में उत्तर की ओर तथा पौष्टिक कर्म में पूरब की ओर रखना चाहिये।।३७-४०।।

दीपमन्त्रदीपयन्त्रादिनिरूपणम्

दीपमन्त्रमथो वक्ष्ये कुर्याद् वृत्तत्रयं शुभम्।
महत्त्रिकोणकस्योर्ध्वङ्कोणेष्वस्य च संलिखेत्।।४१।।
षट्कोणं षोडशदलयुक्तं तस्य च बाह्यतः।
लिखेदष्टदलं पद्मं दीपयन्त्रमुदाहृतम्।।४२।।
परीक्षार्थं नित्यदीपे काम्यकर्मकमुच्यते।
पुष्पं वासिततैलं वा सर्वकामफलप्रदम्।।४३।।
माषगोधूममुद्गाश्च तिलतण्डुलकाः शुभाः।
तैर्निर्मितं दीपपात्रं सर्वकामफलप्रदम्।।४४।।
एकविंशतिसूत्रैश्च श्वेतैः स्यात्सर्वकामदः।
निकटे भैरवस्यापि शालग्रामस्य सन्निधौ।।४५।।
तथा स्फटिकलिङ्गस्य निकटे सर्वकामदः।
अश्वत्थतरुमूले च सर्वकामसमृद्धये।।४६।।

अब मैं दीपमन्त्र को कहता हूँ। सुन्दर तीन वृत्त बनाकर उसके बाहर बृहदाकार त्रिकोण बनाने के बाद उसके ऊपर वाले कोण में षोडशदल-युक्त षट्कोण का निर्माण करना चाहिये। फिर उसके बाहर अष्टदल कमल बनाने से दीपयन्त्र का स्वरूप बन जाता है। काम्य कर्म में परीक्षा के लिये नित्य दीपक जलाना चाहिये। अथवा पुष्पों से सुवासित तेल का दीपक सभी कर्म को फलीभूत करने वाला होता है।

उड़द, गेहूँ, मूँग, तिल अथवा चावल के पिष्ट से निर्मित दीपक समस्त कार्यों में फलप्रद होता है। श्वेत इक्कीस सूत्रों से निर्मित बत्ती समस्त कामनाओं को फलीभूत करने वाली होती है। भैरव, शालग्राम एवं स्फटिक-निर्मित लिङ्ग की सन्निधि में किया गया दीपदान समस्त कामनाओं को देने वाला होता है। समस्त कामनाओं की समृद्धि के लिये अश्वत्थ वृक्ष (पीपल) के जड़ में (नीचे) दीपदान करना चाहिये।

शतान्यष्टौ तथा चाष्टगुरुकार्ये पलानि तु।
मध्यमेऽष्टांशरहितैः साध्येष्टाविंशसम्मितैः।।४७।।

सहस्रसूत्रजा वर्त्तिर्महाकार्येऽथ मध्यमे।
शतत्रयेण कर्तव्या लघुकार्ये शतेन तु॥४८॥
श्रीकामस्तिलतैलेन पात्रं कस्तूरिकाभवम्।
यद्वा लवङ्गकर्पूरत्वगेलानां समुद्भवम्।
दीपं कुर्यान्नृपद्वारे वर्षात्स्यान्महती रमा॥४९॥
दरिद्रस्ताम्रपात्रे वा कस्तूर्यादिकलेपिते।
पथिकागमनार्थन्तु तिलतैलेन दीपकम्॥५०॥
गोधूमतण्डुलसमं चूर्णपात्रं प्रशस्यते।
राजद्वारे चरेद्दीपमेकविंशतिसूत्रकम्।
वर्णतश्चैव धवलं विघ्नमार्गादिकं जयेत्॥५१॥

गुरुकार्य में आठ पल स्नेहपदार्थ वाले एक सौ आठ दीपक, मध्यम कार्य में पूर्वोक्त से अष्टांश-रहित स्नेहपदार्थ वाले एक सौ आठ दीपक एवं साध्य कार्य में अट्ठाईस दीपक प्रशस्त होते हैं। हजार सूत्रों से निर्मित बत्ती गुरुकार्य में, तीन सौ सूत्रों से निर्मित बत्ती मध्यम कार्य में एवं एक सौ सूत्रों से निर्मित बत्ती लघुकार्य में बनानी चाहिये।

धन की कामना वाले को कस्तूरी, लवङ्ग, कपूर अथवा इलायची के छिलके से बनाये गये दीपक में तिलतैल ड़ालकर राजा के द्वार पर एक वर्ष तक दीपक जलाने से प्रभूत लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। अथवा धनहीन व्यक्ति को कस्तूरी आदि से लिप्त ताम्बे का दीपक जलाना चाहिये। पथिक के आगमन-हेतु गेहूँ एवं चावल के चूर्ण को बराबर-बराबर लेकर उससे दीपक बनाकर उसमें तिलतैल ड़ालकर दीपक जलाना चाहिये। राजद्वार पर इक्कीस श्वेत सूत्रों का दीपक जलाने से मार्ग में विघ्न नहीं होता।

वश्यार्थमतसीतैलं पात्रं तण्डुलपिष्टकम्।
राजद्वारे चरेद्दीपं वर्तिः कौसुम्भरक्तिका॥५२॥
सार्षपं राजनाशाय तैलं पात्रन्तु मुद्गजम्।
हनुमत्सन्निधौ दीपो वर्तिः कौसुम्भरक्तिका॥५३॥
मारणे राजिकातैलं यद्वा बैभीतकोद्भवम्।
दीपं दद्यान्मारणार्थं राजद्वारे पितुर्गृहे॥५४।
दक्षिणाभिमुखं दीपं लोहपात्रे प्रकल्पयेत्।
शत्रोर्मृत्युकरे कार्ये वर्तिः स्यात्कृष्णतन्तुभिः॥५५॥
करञ्जतैलमुच्चाटे पात्रं कृष्णतिलोद्भवम्।
वर्तिश्च कृष्णसूत्रस्य राजद्वारे चरेदिमम्॥५६॥

मधूकतैलं विद्वेषे पात्रञ्चात्र कुलत्थजम्।
चतुष्पथे दीपदानं वर्तिः स्यादत्र कर्बुरा ॥५७॥
मोहने चाढकीपात्रं माञ्जिष्ठं सूत्रमुच्यते।
प्रदीपे तिलतैलं स्यान्नृपद्वारे चरेदिमम् ॥५८॥

वशीकरण के लिये राजद्वार पर चावल के आटे से निर्मित दीपक में तीसी का तेल ड़ालकर कुसम्भी लाल रंग की बत्ती का दीपक जलाना चाहिये।

राजा के विनाश के लिये मूँग के चूर्ण से निर्मित दीपपात्र में कुसुम्भी लाल रंग की बत्ती रखकर सरसों के तेल का हनुमान् की मूर्त्ति के निकट दीपक जलाना चाहिये।

मारणकर्म में राजद्वार पर अथवा श्मशान में लोहे के दीपपात्र में राई अथवा बहेड़े के तेल से दक्षिणाभिमुख दीपक जलाना चाहिये। शत्रुमारण के लिये काले धागों की बत्ती जलानी चाहिये।

उच्चाटन के लिये राजद्वार पर काले तिलपिष्ट से निर्मित दीपपात्र में करञ्जतैल ड़ालकर काले धागों की बत्ती का दीपक जलाना चाहिये।

विद्वेषण कर्म में चौराहे पर कुल्थी-पिष्ट से निर्मित दीपपात्र में महुये का तेल ड़ालकर रंग-बिरङ्गे सूत्रों से बनी बत्ती का दीपक जलाना चाहिये।

मोहनकर्म में राजद्वार पर आढकी से निर्मित दीपपात्र में मजीठ रंग के सूत्रों की बत्ती बनाकर तिल के तेल का दीपक जलाना चाहिये।।५२-५८।।

संग्रामविजयार्थं तु पात्रं स्यान्माषपिष्टजम्।
दुर्गायाः सन्निधौ देया रक्तसूत्रैश्च वर्त्तिका ॥५९॥
सन्धौ त्रिपिष्टजं पात्रं वा नदीकूलमृद्भवम्।
दीपञ्च सङ्गमे दद्याद्वर्तित्रिगुणरूपिकाम् ॥६०॥
एकविंशतिसङ्ख्याकास्तन्तवोऽध्यध्यतिस्मृताः।
पात्रं च मृण्मयं कुर्याद्दीपदाने चतुष्पथे ॥६१॥
बालग्रहे च भूतादौ खेटेषु विषमेषु च।
शैलकूले देवतायाः सन्निधौ दीपमाचरेत् ॥६२॥
मारणादिकषट्कर्मसाधने वा चतुष्पथे।
माहिषेण घृतेनैव पात्रं नरकपालजम् ॥६३॥

युद्ध में विजय-प्राप्ति के लिये देवी दुर्गा के सम्मुख उड़दपिष्ट से निर्मित दीपपात्र में रक्तवर्ण सूत्रों से निर्मित बत्ती ड़ालकर तिलतैल का दीपक जलाना चाहिये।

सन्धि कराने के लिये नदियों के संगम-स्थल पर त्रिपिष्ट-निर्मित अथवा नदी के किनारे की मिट्टी से बने दीपपात्र में तिलतैल ड़ालकर त्रिगुणित बत्ती का दीपक जलाना चाहिये। सन्धि के लिये चौराहे पर इक्कीस सूत्रों की बत्ती का दीपक मिट्टी से निर्मित दीपपात्र में तिलतैल ड़ालकर जलाना चाहिये।

बालग्रह, भूतादि के प्रकोप एवं ग्रहों की विपरीत अवस्था में लगने पर, ग्रहों के विपरीत होने पर पहाड़ की तलहटी में देवता के समीप दीपक जलाना चाहिये। मारण आदि षट्कर्मों के साधन में चौराहे पर नरकपाल में भैंस का घी भरकर दीपक जलाना चाहिये।।५९-६३।।

विद्याकामो गणेशस्य सन्निधौ दन्तपात्रके।
श्वेतां वर्त्तिं गोघृतेन चतुर्थ्यां तु समाचरेत्।।६४।।
राजद्वारे बन्धमुक्तौ कारागेहेऽथ वा चरेत्।
पात्रे तु ताम्रजे दीपं धूम्रवर्णां तु वर्तिकाम्।।६५।।

विद्या की कामना से गणेश की सन्निधि में हाथी-दाँत से बने दीपपात्र में गोघृत से श्वेत बत्ती वाला दीपक चतुर्थी तिथि को जलाना चाहिये। बन्धन से मुक्ति के लिये राजद्वार पर अथवा कारागृह के द्वार पर ताँबे के बने दीपपात्र में गोघृत ड़ालकर धूम्र वर्ण की वत्ती जलानी चाहिये।।।६४-६५।।

कार्याकार्यविनिर्णये विशेषतो दीपचिह्नानि

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि दीपयोर्लघुकाम्ययोः।
शुभाशुभादिचिह्नानि यैः कार्याकार्यनिर्णयः।।६६।।
विप्रादिदर्शने दीपारम्भे सिद्धीः क्रमेण च।
पूर्णा पादोनितार्धा च पादतुल्याथ वर्तिका।।६७।।
म्लेच्छादिदर्शने प्रोक्तं मार्जरादिकदर्शनम्।
मध्यमं नीलकण्ठादेः श्रीकीर्तिविजयप्रदम्।।६८।।

लघु काम्य कर्मों में दीपदान—अब मैं लघु एवं काम्य कर्मों में किये जाने वाले दीपदान के शुभ-अशुभ आदि लक्षणों को कहता हूँ, जिनके द्वारा कार्याकार्य का निर्णय किया जाता है। दीपक प्रज्वलित करने के समय विप्र आदि (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) का दर्शन होने पर कार्य की सिद्धि क्रमशः पूर्ण, तीन चौथाई, आधा एवं एक चौथाई होती है। म्लेच्छ आदि एवं मार्जार आदि का दर्शन होने पर मध्यम कार्यसिद्धि जाननी चाहिये। दीप प्रज्वलित करते समय नीलकण्ठ आदि का दर्शन लक्ष्मी, कीर्ति एवं विजय प्रदान करने वाला होता है।।६६-६८।।

दीपज्वाला समा श्लक्ष्णा जायते च प्रदक्षिणा।
अष्टभिर्दिवसैस्तस्य कार्यसिद्धिर्न संशयः ॥६९॥
खरकण्टप्रभा ज्वाला मरणं बान्धवैः सह।
कृष्णा ज्वाला तदा शत्रोः कार्यं नैव प्रजायते ॥७०॥
दीपे नादः सुपूर्णे च कार्यसिद्धिर्विलम्बतः।
यदा चरचरेद्दीपः कार्यं नष्टं तदा भवेत् ॥७१॥
दीपस्य वपने चौर्यं गोनाशः पात्रसम्भवे।
दीपवर्येषु तद्दीपनयनान्मन्दनेत्रता ॥७२॥
कृत्वा न्यासादिकं सर्वं प्राङ्मुखो दीपमाचरेत्।
एतद्दीपविधानं तु बटुकस्य प्रकीर्तितम् ॥७३॥

प्रज्वलित दीपक की ज्वाला यदि एक समान, चमकदार एवं प्रदक्षिणक्रम वाली होती है तो विचारित कार्य की सिद्धि आठ दिनों में हो जाती है; इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिये। दीपक की ज्वाला यदि रूक्ष एवं काँटेदार हो तो बन्धु-बान्धवों के साथ-साथ स्वामी का भी मरण होता है। ज्वाला यदि कृष्ण वर्ण की हो तो शत्रु-सम्बन्धी कार्य किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं होता। दीपक यदि शब्दयुक्त होता है तो विलम्ब से कार्यसिद्धि का सूचक होता है। दीपक से यदि 'चर-चर' की ध्वनि निकलती है तो कार्य नष्ट होने का लक्षण होता है। दीपक के उलटने से चोरी होती हैं। पात्र से द्रव्य स्रवित होने पर गौओं का विनाश होता है। बहुत दीपों में से मुख्य दीपक की ज्वाला स्वल्प होने पर नेत्रों की दृष्टि मन्द होती है।

समस्त न्यास आदि करने के उपरान्त पूर्व की ओर मुख करके दीपदान करना चाहिये। बटुकदेव का यह दीप-विधान कहा गया है।।६९-७३।।

शक्तिदीपदानविधिः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शक्तीनां तुष्टिकारकम्।
पात्रे त्रिकोणे शक्त्यर्थं दीपदानं प्रकल्पयेत् ॥७४॥
दक्षिणाम्नायशक्तीनां त्रिलोहान्यतमं भवेत्।
ऊर्ध्वाम्नाये पिष्टपात्रं काचपाषाणसम्भवम् ॥७५॥
पश्चिमाम्नायदेवीनां प्राच्यानां मार्त्तिकं मतम्।
नृकपालं वामगानां क्रमाद्वै गोघृतं तथा ॥७६॥
तैलं च सार्षपं प्रोक्तं वसा चेति यथाक्रमम्।
श्वेतरक्तहरित्पीतकृष्णसूत्रास्तु वर्तिका: ॥७७॥

शक्ति-दीपदान—अब मैं शक्तियों को सन्तुष्टि प्रदान करने वाले दीप-दान की विधि को कहता हूँ। शक्ति के लिये त्रिकोण पात्र में दीपदान करना चाहिये। दक्षिणाम्नाय की शक्तियों के लिये वह पात्र त्रिलोह (सोना, चाँदी या ताम्बा) का होना चाहिये। ऊर्ध्वाम्नाय की शक्तियों के लिये पिष्टपात्र का पश्चिमाम्नाय की देवियों के लिये दीपपात्र काँच या पत्थर का तथा पूर्वाम्नाय का पात्र मिट्टी का होना चाहिये।

वाममार्गियों के लिये क्रमशः नृकपाल का पात्र होना चाहिये। दीपक में स्नेहद्रव्य क्रमशः गोघृत, तिलतैल, सरसों का तेल और वसा (चर्बी) का होना चाहिये। बत्ती क्रमशः श्वेत, कृष्ण, हरे, पीले एवं काले सूत्रों की होनी चाहिये।।७४-७७।।

देवाम्नायमुखा दीपाः कर्त्तव्या देवताप्तये।
देवागारे सरित्तीरे राजगेहे चतुष्पथे ।।७८।।
श्मशाने च कृता दीपास्तत्तद्दैवततुष्टिदाः।
गणेशवत्परीक्षात्र कार्याकार्यविनिर्णये ।।७९।।

देवता की प्रसन्नता के लिये आम्नाय के अनुसार तत्तत् देवताओं की ओर दीपक का मुख रखना चाहिये। तत्तत् देवताओं की सन्तुष्टि के लिये दीपदान देवालय में, नदी-तट पर, राजगृह में, चौराहे पर या श्मशान में करना चाहिये। कार्य एवं अकार्य के निश्चय-हेतु गणेश के समान ही दीप-परीक्षा करनी चाहिये।७८-७९।।

शिवदीपविधिकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शिवदं शिवदीपकम्।
सर्वपापप्रशमनं सर्वोपद्रवनाशनम् ।।८०।।
शून्ये तु वह्निसूत्राणां दीपवर्तिं प्रकल्पयेत्।
बिल्वपत्रोद्भवं पात्रं दद्याद्दीपं शिवालये ।।८१।
एवं द्वादशवर्षाणि प्रज्वलेद्दिनरात्रकम्।
तस्य वंशे न दारिद्र्यं नाकालमरणं भवेत् ।।८२।।
पूर्वद्वारे श्रिये दीपः स्वर्गमोक्षाय दक्षिणे।
पश्चिमे वृष्टये देयः शेषकार्येषु चोत्तरे ।।८३।।
गोघृतेन कृतो दीपः शिवस्यातिप्रियङ्करः।
तिलतैलेनाभिचारे तारतम्यं विचारयेत् ।।८४।।

शिव-दीपदान—अब मैं समस्त पापों का नाश करने वाले, समस्त उपद्रवों का विनाश करने वाले कल्याण-दायक शिवदीपक को कहता हूँ। हाथ में लेकर तीन सूत्रों की बत्ती बनकर बेल के पत्तों का दीपक बनाकर शिवालय में दीपदान करना चाहिये।

इस प्रकार बारह वर्षों तक अहर्निश दिन-रात दीपक जलाना चाहिये। ऐसा करने से उस साधक के कुल में न कभी दरिद्रता आती है और न ही किसी की अकालमृत्यु होती है।

लक्ष्मी-प्राप्ति के लिये चार द्वारों वाले शिवालय के पूर्वद्वार पर, स्वर्ग एवं मोक्ष-प्राप्ति के लिये दक्षिणद्वार पर, वृष्टि की कामना से पश्चिमद्वार पर एवं शेष कार्यों में उत्तरद्वार पर दीपक जलाना चाहिये। गोघृत का दीपक शिव को अतिशय प्रसन्न करने वाला होता है। अभिचारकर्म में तारतम्य से तिलतैल आदि का विचार करना चाहिये।।८०-८४।।

रोगहरभानुदीपविधिः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि रोगघ्नं भानुदीपकम्।
कुर्यात्स्वर्णमये पात्रे तदभावेऽपि ताम्रके ।।८५।।
कुसुम्भवर्त्या कृतया सूत्रैर्द्वादशभी रवौ।
द्वादशाङ्गुलदीर्घा सा कुडवन्तु घृतं स्मृतम् ।।८६।।
ज्वलयित्वा सकृद्दीपं न स्पृशेत्तं यदाखिलम्।
घृतं प्रज्वाल्य शान्तश्चेद्रोगनाशस्तदा ध्रुवम् ।।८७।।
पलमारभ्य खार्यन्तं दृष्ट्वा रोगबलाबलम्।
कल्पयेद्दीपद्रव्यस्य मानं लोकानुसारतः ।।८८।।

व्याधि-हारक सूर्य-दीपदान—अब मैं रोगनाशक सूर्यदीपदान को कहता हूँ। सुवर्ण अथवा ताम्बे के दीपपात्र में एक कुड़व (एक प्रस्थ) घृत रखकर कुसुम्भी रंग के बारह सूत्रों से निर्मित बारह अंगुल लम्बी बत्ती ड़ालने के बाद उसे एक बार जलाकर तबतक नहीं स्पर्श करना चाहिये, जबतक पात्र का पूरा घृत जल न जाय। घृत के पूरी तरह से जल जाने पर जब वह दीपक शान्त हो जाता है तो निश्चित ही रोग का भी शमन हो जाता है। रोग के बलाबल को देखकर दीपक के स्नेहद्रव्य की मात्रा लोक में प्रचलित मान के अनुसार एक पल से लेकर एक खारी तक होनी चाहिये।।८५-८८।।

विष्णुदीपविधिः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि विष्णोर्दीपं महाद्भुतम्।
सर्वकामो गोघृतेन मारणं माहिषेण च ।।८९।।
विद्वेषादिषु बर्कर्यास्त्रिषु पात्रं क्रमाद्भवेत्।
ताम्रजं लोहजं काचं क्रमात्त्रिषु च कर्मसु ।।९०।।
विष्णोस्तु प्रीतये कुर्यादामलोत्थरजोभवे।
दुःस्वप्नोत्पातभूतानि नश्यन्त्यच्युतदीपतः ।।९१।।

विष्णु-दीपदान—अब मैं अत्यन्त अद्भुत विष्णु के दीपदान को कहता हूँ। विष्णु के लिये समस्त कामनाओं में गोघृत का दीपक जलाना चाहिये। मारणकर्म में भैंस के घृत का दीपक जलाना चाहिये। विद्वेषण आदि कर्म में बकरी आदि के घृत का दीपक जलाना चाहिये। तीनों कर्मों में दीपपात्र क्रमश: ताँबे, लोहे और काँच का रखना चाहिये। विष्णु की प्रसन्नता के लिये आमलकी (आँवला) के चूर्ण से दीपपात्र बनाकर दीपक जलाना चाहिये। विष्णु को दीपदान करने से दु:स्वप्न एवं उत्पातजन्य क्लेशों का विनाश होता है।।८९-९१।।

अथात: सम्प्रवक्ष्यामि सर्वतन्त्रेषु गोपितम्।
गोपनीयं प्रयत्नेन न वाच्यं यस्य कस्यचित्॥९२॥
शक्त्याद्यहर्गणार्केषु भक्तो वर्णात्प्रजायते।
मन्त्रवर्णस्य दिवसे क्रमाद्दीपं प्रकल्पयेत्॥९३॥
सायन्तु कुडवाज्यस्य वर्तय: पञ्च तन्तुभि:।
यावज्ज्वलति दीपोऽसौ तावत्तस्य मनुं जपेत्॥९४॥
मन्त्रार्णसङ्ख्यदीपेषु ज्वलितेषु च तद्दिने।
पुनर्दीपे कृते या तु दीपं सम्पश्यति स्फुटा॥९५॥
इष्टं स्वकीयं कथयेद्यावद्यन्मानसेप्सितम्।
तदादिदेवता तुष्टा गुप्तमेतत्प्रकाशितम्॥९६॥
कार्तवीर्यसमोऽन्यो न भवेद्दीपप्रिय: सुर:।
तन्त्रेषु तद्दीपविधिर्बहुधा सम्प्रकीर्तित:॥९७॥
इति ते भास्करस्योक्तो विधिर्दीपसमन्वित:।
अत: परं यदिष्टं त्वं पृच्छ तत्तच्च मां प्रति॥९८॥

इति श्रीमहामायामहाकालानुमते मेरुतन्त्रे श्रीशिवप्रणीते
दीपविधिप्रकाश: पञ्चविंश: ॥२५॥

●

मन्त्रवर्णानुसार दीपदान—अब मैं समस्त तन्त्रों में प्रच्छन्न, प्रयत्न-पूर्वक गोपनीय एवं जिस-किसी से न कहने योग्य तत्त्व को कहता हूँ। शक्ति के अहर्गणों (दिनों) में वर्ण के अनुसार विभाग होता है। मन्त्रवर्ण के दिन में क्रमश: दीपदान करना चाहिये। सायंकाल में एक कुड़व गोघृत में पाँच सूत्रों की बत्ती द्वारा दीपक जलाकर जब तक वह दीपक जलता रहे तब तक शक्ति के मन्त्र का जप करना चाहिये। उस दिन मन्त्रवर्णों की संख्या के बराबर दीपक जलाने के पश्चात् पुन: दीपक जलाकर साधक यदि उस

स्फुटित दीपक को ध्यान से देखता है एवं अपने मनोगत अभीष्ट को कहता है तो देवता प्रसन्न होकर गुप्त रूप से उसे प्रकाशित करते हैं।

कार्तवीर्य के समान अन्य कोई देवता दीप-प्रिय नहीं है। तन्त्रों में उनके दीपदान की विधि का वर्णन बहुधा किया गया है। इस प्रकार भास्कर को दीपदान-विधि का वर्णन किया गया; अब इसके पश्चात् तुम्हें जो जानना अभीष्ट हो, उनके बारे में मुझसे पूछो।।९२-९८।।

इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र में शिवप्रणीत 'दीपविधिकथन'-नामक पञ्चविंश प्रकाश पूर्णता को प्राप्त हुआ।

षड्विंशतितमः प्रकाशः

(दशावतारमन्त्रविधिकथनम्)

श्रीदेव्युवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि कल्पे कस्मिन्भवन्ति वै।
दशावताराः श्रीविष्णोस्तान् समस्तान् वद प्रभो ॥१॥

श्रीदेवी ने कहा कि हे भगवन्! मैं यह सुनना चाहती हूँ कि किस कल्प में श्रीविष्णु के दश अवतार होते हैं; हे प्रभो! उन्हें सविस्तार कहने की कृपा करें।।१।।

मत्स्यावतारमन्त्रविधिः

श्रीशङ्कर उवाच

एकत्र भाव उत्पन्नो मत्स्यो वै कल्प आदिमे।
तस्य मन्त्रं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥२॥
तारो नमो भगवते मं मत्स्याय रमां वदेत्।
द्वादशाक्षरमन्त्रोऽयं मुनिर्ब्रह्मा समीरितः ॥३॥
गायत्रं छन्द उद्दिष्टं देवता मीनविग्रहः।
भगवान्स रमानाथो बीजं श्रीं मं च कीलकम् ॥४॥
नात्यघोरो हि न सम आकण्ठं वा नराकृतिः।
घनश्यामश्चतुर्बाहुः शङ्खचक्रगदाधरः ॥५॥
शृङ्गिमत्स्यनिभो मूर्धा लक्ष्मीर्वक्षसि राजते।
पद्मचिह्नितसर्वाङ्गः सुन्दरश्चारुलोचनः ॥६॥

मत्स्यावतार-मन्त्रविधि—शिव ने कहा कि प्रथम कल्प में निश्चित रूप से एकमात्र मत्स्यभाव उत्पन्न हुआ अर्थात् मत्स्यावतार हुआ; अतः उसके भोग-मोक्षप्रदायक मन्त्र को कहता हूँ। भगवान् मत्स्य का द्वादशाक्षर मन्त्र है—ॐ नमो भगवते मं मत्स्याय श्रीम्। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री एवं देवता मत्स्य शरीरधारी भगवान् लक्ष्मीपति हैं। इसका बीज श्रीं एवं मं कीलक है। इसके बाद मत्स्य भगवान् का इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—उनकी आकृति न तो अत्यन्त भयानक है और न ही एक

समान है। कण्ठ-पर्यन्त उनकी आकृति मनुष्य के समान है। मेघ-सदृश श्याम वर्ण वाले हैं। उनकी चार भुजायें हैं, जिनमें वे शंख, चक्र एवं गदा धारण किये हुये हैं। उनकी मूर्धा शृङ्ग-युक्त मत्स्य के समान है। उनके वक्ष:स्थल पर लक्ष्मी शोभायमान हैं। उनका सम्पूर्ण सुन्दर शरीर कमलचिह्न से चिह्नित है। उनके नेत्र अत्यन्त सुन्दर हैं।

जपेद् द्वादशसाहस्रं त्रिमध्वक्तैस्तिलैर्हुनेत्।
प्रत्यहं तद्दशांशेन वैशाखे कार्तिके तथा ॥७॥
माघे च मार्गशीर्षे च हविष्याशी जितेन्द्रियः।
आरभ्य भाद्रबहुलामष्टमीं षोडशाहकम् ॥८॥
लक्ष्मीमनुं जपेन्नित्यं त्विमं वापि कलाशतम्।
तथैव होमः कर्तव्यस्तथान्यदिवसेषु तु ॥९॥
तर्पयेद् द्वादशशतं तिलतण्डुलचन्दनैः।
आद्यन्तयोः शतान्यष्टौ तर्पयेच्च तथा श्रियम् ॥१०॥
रक्तोत्पलैर्वा पद्मैर्वा मालत्यादिसुगन्धिभिः।
एवं कृते चैकवर्षान्मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ॥११॥
नित्यं द्वादशविप्रांश्च श्रीरूपां च सुवासिनीम्।
भोजयेत्पूजनं चास्य चरेत्तोयाशये सदा ॥१२॥

वैशाख, कार्तिक, मार्गशीर्ष (अगहन) एवं माघ मास में प्रतिदिन हविष्य का भक्षण करते हुये जितेन्द्रिय रहकर उक्त मन्त्र का बारह हजार जप करने के उपरान्त त्रिमधु-सिक्त तिलों से कृत जप का दशांश हवन करना चाहिये। भाद्रपद मास की बहुल अष्टमी से आरम्भ करके सोलह दिनों तक प्रतिदिन लक्ष्मीमन्त्र का अथवा इस मन्त्र का सोलह सौ जप करके पूर्ववत् हवन करना चाहिये। इसी प्रकार अन्य दिनों में भी हवन करना चाहिये। इसके बाद तिल, चावल एवं चन्दन से बारह सौ तर्पण करके तिल एवं चन्दन से अथवा रक्तकमल से अथवा कमल अथवा सुगन्धित मालतीपुष्पों से लक्ष्मी के लिये आठ सौ तर्पण करना चाहिये। एक वर्ष तक इस प्रकार करने से मन्त्रसिद्धि हो जाती है। प्रतिदिन बारह विप्रों एवं लक्ष्मीरूपा सुवासिनियों को भोजन कराना चाहिये एवं बराबर जलाशय में मत्स्य भगवान् का पूजन करना चाहिये।।७-१२।।

षट्पत्रकर्णिकायान्तु श्रीयुतं देवमर्चयेत्।
षट्पत्रेषु षडङ्गानि यजेद् बाह्यचतुर्दले ॥१३॥
मण्डूकं मकरं कूर्मं शिशुमारं च पूर्वतः।
तद्बाह्यगदले पूज्याः क्षीराद्याः सप्तसिन्धवः ॥१४॥

तद्बाह्येऽष्टदले पूज्या वासुक्याद्याः फ़णीश्वराः ।
तस्य बाह्ये शक्रदले रत्नानि तु चतुर्दश ॥१५॥
समुद्रजानि पूज्यानि लक्ष्मीकौस्तुभकानि च ।
गङ्गाद्याः षोडश ततो पूजयेच्च महापगाः ॥१६॥
ततश्चाष्टदले वेदानुपवेदसमन्वितान् ।
दिगीशांश्च तदस्त्राणि नवावरणपूजनम् ॥१७॥
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री जायते सिद्धिभाजनम् ।
एतं सुसंस्कृतं मन्त्रञ्जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥१८॥
तद्देवतादिने सिद्धः पुस्तकादेव जायते ।
अकुण्ठितः प्रयोगेण न पुनस्तस्य संस्कृतिः ॥१९॥

षट्पत्र की कर्णिका में लक्ष्मी-सहित मत्स्य भगवान् का अर्चन करने के पश्चात् षट्पत्रों में षडङ्ग-पूजन करना चाहिये। फिर उसके बाहर चतुर्दल में पूर्वादि क्रम से मण्डूक, मकर, कूर्म एवं शिशुमार का पूजन करने के बाद उसके बाहर क्षीरसमुद्र आदि सात समुद्रों का पूजन करना चाहिये।
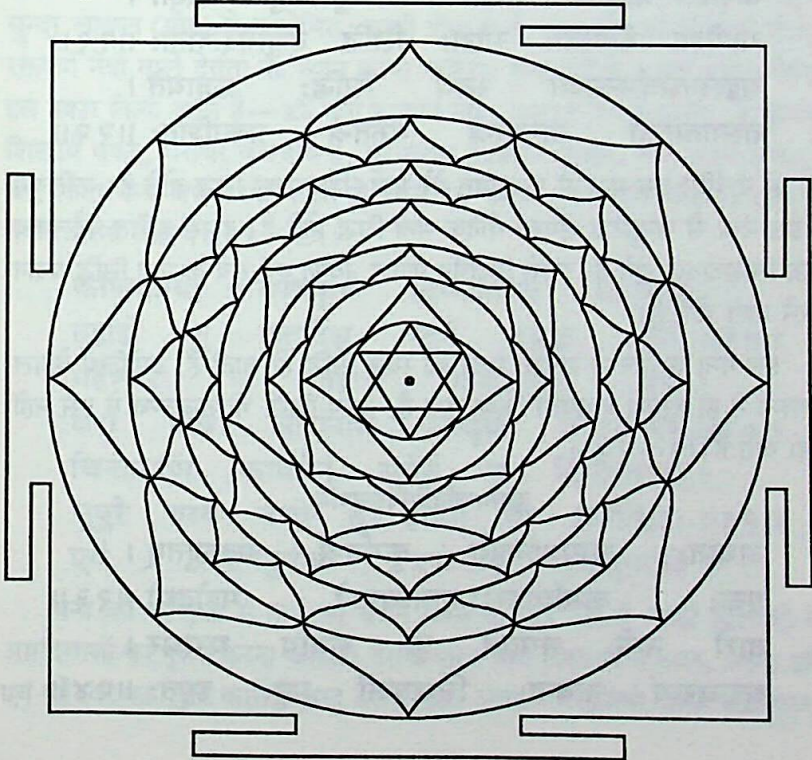
तदनन्तर उसके बाहर अष्टदल में वासुकि आदि आठ नागों का पूजन करने के उपरान्त उसके बाहर चतुर्दश दल में समुद्र से उत्पन्न चौदह रत्नों का पूजन करके लक्ष्मी एवं कौस्तुभ मणि का भी पूजन करना चाहिये। इसके बाद गंगा आदि सोलह नदियों का पूजन करना चाहिये।

इसके बाद अष्टदल में उपवेदों के सहित वेदों का पूजन करने के पश्चात् भूपुर में दिक्पालों एवं उनके अस्त्रों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार नव आवरणों में यह पूजन सम्पन्न होता है।

इस प्रकार सिद्ध किये गये मन्त्र से मन्त्रज्ञ साधक सिद्धि प्राप्त करने का पात्र हो जाता है। इस सुसंस्कृत मन्त्र का प्रतिदिन एक सौ आठ बार जप करना चाहिये। मन्त्र के देवता के दिन पुस्तक से ही यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है। प्रयोग के द्वारा अकुण्ठित अर्थात् जागृत मन्त्र का पुनः संस्कार नहीं किया जाता।१३-१९।।

एतत्पल्लविता मन्त्रा मम सिध्यन्ति पार्वति।
एतत्सम्पुटिताः सर्वे वैदिकाः सिद्धिदाः कलौ ॥२०॥
अनेन ग्रथिता जप्ताः कौलेषु द्रुतसिद्धिदाः।
गाणेशा वैष्णवाः सौराः सिद्धिं दद्युर्विदर्भिताः ॥२१॥
यद्बलात्सर्वमन्त्राणां स्वयं सिद्धिः प्रजायते।
तस्मात्प्रोक्तो नान्यतन्त्रे मेरुतन्त्रे प्रकाशितः ॥२२॥

हे पार्वति! इस मन्त्र से पल्लवित मेरे मन्त्र (शिवमन्त्र) सिद्ध होते हैं। कलियुग में इस मन्त्र से सम्पुटित समस्त वैदिक मन्त्र सिद्ध होते हैं। इससे ग्रथित कौलमन्त्र शीघ्र सिद्धिदायक होते हैं। इससे विदर्भित गणेश, विष्णु एवं सूर्य के मन्त्र सिद्धि प्रदान करने वाले होते हैं।

इस मन्त्र के बल से समस्त मन्त्रों की स्वयं सिद्धि हो जाती है; इसीलिये केवल मेरुतन्त्र में ही इसका प्रकाशन किया गया है, अन्य किसी भी तन्त्रग्रन्थ में इसे नहीं कहा गया है।।२०-२२।।

कूर्ममन्त्रविधिनिरूपणम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कूर्ममन्त्रं महाद्भुतम्।
एकः कूर्मावतारोऽभून्मथ्यमाने महोदधौ ॥२३॥
तारो नमो भगवते कुं कूर्माय धराधर।
धुरन्धराय नत्यन्तः सिद्धवर्णो मनुः स्मृतः ॥२४॥

प्रकृतिश्छन्द उद्दिष्टं कश्यपोऽस्य मुनिर्मतः ।
देवता भगवान्विष्णुर्जातः कच्छपरूपधृक् ॥२५॥
धराधरेत्यादिशक्तिः कुं बीजं स्वेष्टसिद्धये ।
नियोगो देवताध्यानं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥२६॥
पीताम्बरं कूर्मपृष्ठं लसल्लाङ्गूलशोभितम् ।
दीर्घग्रीवं महाग्राहं गिरन्तं रक्तलोचनम् ॥२७॥
मन्त्रवर्णैः षडङ्गानि जपो लक्षचतुष्टयम् ।
आज्यहोमस्तर्पणन्तु चन्दनोत्पलवारिभिः ॥२८॥

कूर्ममन्त्र एवं उसकी विधि—अब मैं अत्यन्त अद्भुत कूर्ममन्त्र को कहता हूँ। समुद्रमन्थन के समय एक कूर्मावतार हुआ था; उसका बाईस अक्षरों का मन्त्र कहा गया है—ॐ नमो भगवते कुं कूर्माय धराधरधुरन्धराय नमः। इस मन्त्र के ऋषि कश्यप, छन्द प्रकृति एवं देवता कच्छप-रूपधारी भगवान् विष्णु कहे गये हैं। धराधर इत्यादि शक्ति एवं कुं बीज कहा गया है। इष्ट-सिद्धि के लिये इसका विनियोग किया जाता है। शंख चक्र एवं गदा धारण करने वाले, पीत वस्त्र-धारी, कूर्म-सदृश पृष्ठ वाले, सुन्दर लाङ्गूल (पूँछ) से सुशोभित, लम्बी ग्रीवा वाले, महाग्राहों को निगलने वाले, रक्तवर्ण नेत्रों वाले देवता का ध्यान करना चाहिये। मन्त्रवर्णों से इसका षडङ्ग-न्यास इस प्रकार किया जाता है—ॐ नमो हृदयाय नमः, भगवते शिरसे स्वाहा, कुं कूर्माय शिखायै वषट्, धराधर कवचाय हुं, धुरन्धराय नेत्रत्रयाय वौषट्, नमः अस्त्राय फट्। चार लाख मन्त्र-जप करके गोघृत से हवन एवं चन्दन तथा कमल-मिश्रित जल से तर्पण करना चाहिये।।२३-२८।।

कर्णिकायां यजेत्कूर्मं दिग्गजांश्च दिगष्टके ।
तद्बाह्ये तु चतुर्दिक्षु मदनं बभ्रुकं हरिम् ॥२९॥
महेश्वरं च तद्बाह्ये यजेदष्टदले पुनः ।
धरां शेषं क्षीरनिधिं मण्डूकं देवताद्रुमम् ॥३०॥
चिन्तामणिं कामधेनुं सुमेरुं च दिगीश्वरान् ।
भूपुरे तस्य बाह्ये तु हेतयो वा समीरिताः ॥३१॥
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगान् कर्तुमर्हति ।

यन्त्र की कर्णिका में कूर्म का यजन करने के बाद उसकी आठो दिशाओं में अष्टदिग्गजों का पूजन करना चाहिये। उसके बाहर चारो दिशाओं में मदन, ब्रह्मा, हरि एवं महेश्वर का पूजन करने के बाद उसके बाहर अष्टदल में पृथिवी, शेष, क्षीरसागर,

मण्डूक, कल्पवृक्ष, चिन्तामणि, कामधेनु एवं सुमेरु का पूजन करना चाहिये। इसके बाद भूपुर में दिक्पालों का पूजन करके उसके बाहर उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये।
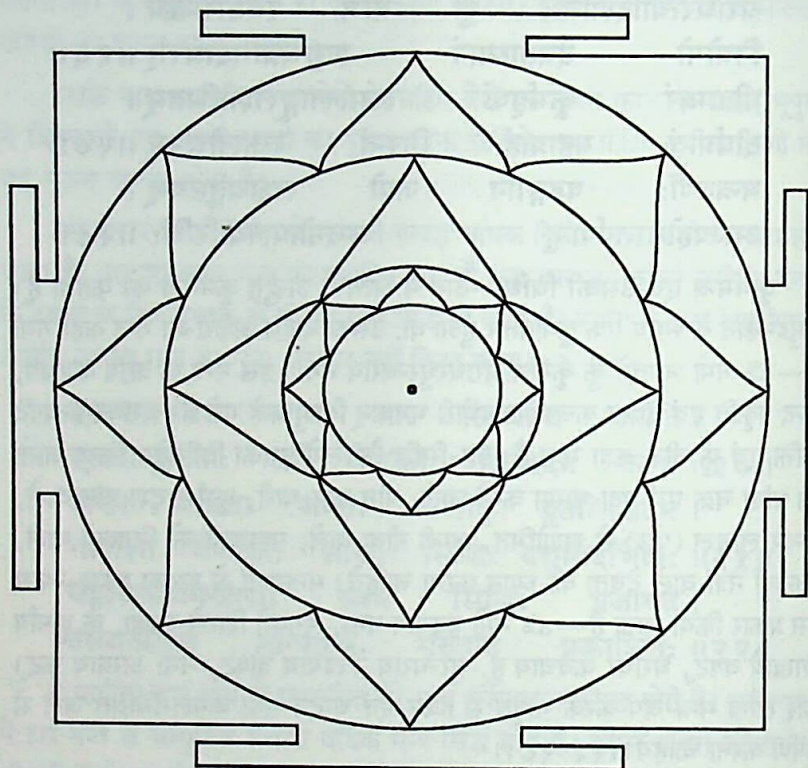
इस प्रकार से सिद्ध मन्त्र के द्वारा प्रयोग करने में साधक सक्षम हो जाता है।।२९-३१।।

श्मशाने कूर्मचक्रस्य शत्रुनामादिवर्गतः ।।३२।।
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां भौमे क्रूरोग्रभे तथा ।
राजिकाप्रतिमां कुर्याच्छत्रुपांशुसमन्विताम् ।।३३।।
अष्टोत्तरशताङ्गानि तत्तैलाक्तानि होमयेत् ।
आदौ वामं ततो दक्षं स्त्रिया चैतद्विपर्ययात् ।।३४।।

कूर्मचक्र के शत्रुनाम वाले वर्ग से भौमवार-युक्त अष्टमी अथवा चतुर्दशी तिथि को क्रूर एवं उग्र नक्षत्र रहने पर श्मशान में जाकर शत्रु की पदधूलि से समन्वित राई से उसकी प्रतिमा बनाकर उस प्रतिमा को एक सौ आठ टुकड़ों में विभक्त करने के बाद उन टुकड़ों को तैल-सिक्त करके उनसे हवन करना चाहिये। पुरुष-प्रतिमा रहने पर

पहले उसके वाम अङ्ग के टुकड़ों से हवन करने के उपरान्त दक्षिण अङ्ग के टुकड़ों से हवन करना चाहिये एवं स्त्री-प्रतिमा होने पर पहले दक्षिणाङ्ग से हवन करने के बाद वामाङ्ग से हवन करना चाहिये।।३२-३४।।

पादाङ्गुलीनां दशकं प्रपदौ पादमध्यके।
पार्ष्णिगुल्फकजङ्घोरुयुगं सक्थियुगं तथा ॥३५॥
आदौ लिङ्गगुदौ स्फिक्के बस्तिर्नाभिस्तथोदरम्।
कटित्रिकं च हृदयं हुनेत्पार्श्वद्वयं ततः ॥३६॥
दशाङ्गुल्यश्च करभगोत्रद्रव्यायुषा तथा।
रेखास्थानानि चोच्चार्य मणिबन्धप्रकोष्ठकौ ॥३७॥
कूर्परौ तु भुजौ कक्षौ स्तनौ वक्षःस्थलं गलम्।
हनुद्वयं तथा चोष्ठौ चोर्ध्वाधःस्थं रदद्वयम् ॥३८॥
अश्रुकूर्चं तथा नासां कपोलौ गण्डशङ्खकौ।
नेत्रे भ्रूमध्यकं भालं ब्रह्मरन्ध्रमिति क्रमात् ॥३९॥
एवं कृते त्रिसप्ताहाद्याति शत्रुर्यमालयम्।
न ब्राह्मणे प्रयोक्तव्या यतोऽसौ विष्णुदैवतम् ॥४०॥

सर्वप्रथम पैर की दस अंगुलियों, पैर के दो अग्रभाग, पैर के दो मध्यभाग, दो एँडियों, दो गुल्फों, दो घुटनों, दो जङ्घाओं, दो ऊरुओं, दो सक्थियों, लिङ्ग, गुदा, दो स्फिक्, बस्ति, नाभि, उदर, कमर के तीन एवं हृदय के एक टुकड़े से हवन करने के बाद दोनों पार्श्वों, दस करांगुलियों, हथेलियों के तीन-तीन, दो मणिबन्ध, दो प्रकोष्ठ, दो केहुनी, दो भुजा, दो कुक्षि, दो स्तन, वक्षःस्थल, गला, कण्ठ, दो हनु, दो ओष्ठ, ऊर्ध्वदन्तपंक्ति, अधोदन्तपंक्ति, दो आँख, दो नासाच्छिद्र, दो कपोल, दो कान, दो शङ्ख, भ्रूमध्य, भाल एवं ब्रह्मरन्ध से क्रमशः हवन करना चाहिये। इस प्रकार से तीन हफ्तों तक हवन करने से शत्रु की मृत्यु हो जाती है। ब्राह्मण पर इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये; क्योंकि वह विष्णुस्वरूप होता है।।३५-४०।।

अङ्कोलफलपिष्टेन कृत्येयं मोहकारिणी।
हरिद्रया कृतं चेदं स्तम्भयेदखिलं जगत् ॥४१॥
विद्वेषे रक्तसंयुक्तपादधूपादितो भवेत्।
श्मशानस्य मृदोच्चाटे गोधूमैर्वश्यता भवेत् ॥४२॥
सहस्रमयुतं वापि लक्षं कार्यानुसारतः।
सत्कार्ये प्रजपेन्मन्त्रं सिद्धिः स्यान्नात्र संशयः ॥४३॥

अंकोलफल (पिश्ता) के पिष्ट से निर्मित मूर्ति के हवन से सम्मोहन होता है। हल्दी-चूर्ण से निर्मित मूर्ति के हवन से समस्त जगत् का स्तम्भन होता है। रक्त-युक्त पादधूप आदि से विद्वेषण होता है। श्मशान की मिट्टी से निर्मित मूर्ति के हवन से उच्चाटन होता है। गेहूँ के आटे की मूर्ति के हवन से वशीकरण होता है। सत्कार्यों के सम्पादन-हेतु कार्य की लघुता-गुरुता के अनुसार एक हजार, दस हजार अथवा एक लाख मन्त्रजप करने से कार्यसिद्धि होती है; इसमें कोई संशय नहीं है।।४१-४३।।

वराहमन्त्रविधिकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वराहस्य मनूञ्छुभान्।
कल्पजाताश्चतुर्वर्णा अवतारा रमापते ।।४४।।
तारो नमो भगवते वराहेति च संवदेत्।
रूपाय भूर्भुवः सुवः पतये भूपतीति च ।।४५।।
त्वं मे देहि दापयेति स्वाहान्तः सुरवर्णकः।
ऋष्याद्या भार्गवानुष्टुब्वराहाः परिकीर्तिताः ।।४६।।
पञ्चाङ्गान्येकशृङ्गाय नमश्चोक्त्वा हृदि न्यसेत्।
मां व्योल्काय नमः शीर्षे तेजोऽधिपतये नमः ।।४७।।
शिखाया कवचं तस्य विश्वरूपाय वै नमः।
महादंष्ट्राय च नमोऽस्त्रमेतत्पल्लवान्वितम् ।।४८।।
सप्तषट्सप्तपञ्चाष्टमूलार्णैश्च पुनश्चरेत्।
न्यासः केशवमात्राख्यो न्यासो नित्यस्तु वैष्णवे ।।४९।।

वराहमन्त्र-विधि—अब मैं लक्ष्मीपति के चातुर्वर्ण्य कल्प में हुये अवतार-स्वरूप वराह के कल्याणदायक मन्त्रों को कहता हूँ। तैंतीस अक्षरों का मन्त्र है—ॐ नमो भगवते वराहरूपाय भूर्भुवःसुवःपतये भूपतित्वं मे देहि दापय स्वाहा। इसके ऋषि भार्गव, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता वराह कहे गये हैं। इसका पञ्चाङ्गन्यास इस प्रकार किया जाता है—एकशृङ्गाय नमः हृदयाय नमः, मां व्योल्काय नमः शिरसे स्वाहा, तेजोधिपतये नमः शिखायै वषट्, विश्वरूपाय नमः कवचाय हुम्, महादंष्ट्राय नमः अस्त्राय फट्। तत्पश्चात् मन्त्र के सात, छः, सात, पाँच एवं आठ वर्णों से पुनः पञ्चाङ्गन्यास करना चाहिये। वैष्णव मार्ग में प्रतिदिन केशवमातृका न्यास करना चाहिये।।४४-४९।।

पादाग्राज्जानुपर्यन्तं स्वर्णाभं च ततः स्मरेत्।
आनाभिकर्पूरनिभं नाभितस्तु गलावधि ।।५०।।
अग्निवर्णं मस्तके च पूर्णचन्द्रसमद्युतिम्।
शङ्खारिखड्गांश्च गदां वरशक्ती तथैव च ।।५१।।

अभयं दंष्ट्रया क्षोणीं दधतं श्वसनेऽनिलम्।
वागीशां हुंकृतौ बाह्वोश्चन्द्रसूर्यौ शिवं मुखे ।।५२।।

तदनन्तर इस प्रकार वराह भगवान् का स्मरण करना चाहिये—उनका शरीर पादाग्र से जानु-पर्यन्त स्वर्ण-सदृश कान्तिमान है। जानु से नाभि-पर्यन्त कर्पूर के समान, नाभि से ग्रीवा-पर्यन्त अग्निवर्ण-सदृश एवं ग्रीवा से मस्तक-पर्यन्त पूर्ण चन्द्र-सदृश कान्तिमान है। वे अपने हाथों में शंख, चक्र, खड्ग, गदा, वर, शक्ति एवं अभय धारण किये हुये हैं। दाँतों पर पृथिवी को एवं श्वास में वायु को धारण किये हैं। वे अपने हुंकार में सरस्वती को, बाहुओं में चन्द्र-सूर्य को एवं मुख में शिव को धारण किये हैं।।५०-५२।।

पद्ममष्टदलं कृत्वा मध्ये देवं समर्चयेत्।
दंष्ट्रायां तस्य वसुधां दिक्पत्रेषु यजेत्क्रमात् ।।५३।।
ईशानपूर्वयोर्मध्ये पञ्चाङ्गानि विदिक्षु च।
पुनः कोणेषु पूज्यानि रक्षः प्राच्यन्तरान्तिमम् ।।५४।।
दलाग्रेषु क्रमाच्चक्रं शङ्खं खड्गं च खेटकम्।
गदा शक्तिं वरं चैव चापं बाह्येषु दिक्पतीन् ।।५५।।
भूपुरेऽथ तदस्त्राणि पूजाक्रम इतीरितः।
लक्षं जपेच्च पद्मानि स्वाद्वक्तानि च होमयेत् ।।५६।।
तर्पणादि ततः कुर्यान्मन्त्रसिद्धिः प्रजायते।
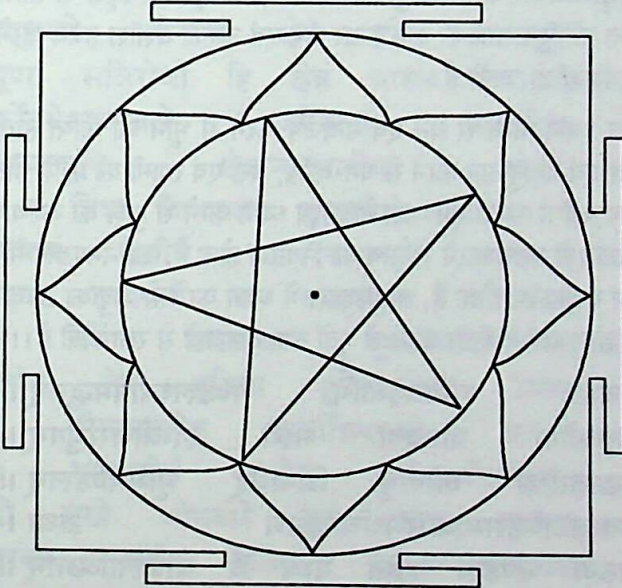
तदनन्तर अष्टदल पद्म बनाकर उसके मध्य में वराह का सम्यक् रूप से अर्चन करना चाहिये। उनके दाँतों पर वसुधा का अर्चन करने के पश्चात् चारो दिशाओं एवं ईशान-पूर्व के मध्य में पञ्चाङ्ग-पूजन करना चाहिये।

अष्टपत्रों में क्रमशः चक्र, शंख, खड्ग, खेटक, गदा, शक्ति, वर एवं चाप का अर्चन करके उसके बाहर भूपुर में दस दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये। यही इनका पूजनक्रम कहा गया है।

इसके बाद मन्त्र का एक लाख जप करने के पश्चात् त्रिमधु-सिक्त कमलों से हवन करना चाहिये। तदनन्तर तर्पण आदि करने से मन्त्रसिद्धि होती है।।५३-५६।।

अथास्यान्यप्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते ।।५७।।
बिल्ववृक्षस्य सान्निध्ये जपेन्मासंसहस्रकम् ।
दशांशं जुहुयादग्नौ पुरश्चरणवान्भवेत् ।।५८।।
अर्थो ध्यानाज्जपाद् भूमिर्जपपूजाहुतिव्रतैः ।
धनधान्यधरालक्ष्म्यो भवन्त्यत्र न संशयः ।।५९।।
भूमण्डले सदा ध्यातः प्रयच्छति कुले शुभम् ।
वारुणे मृत्युतः शान्तिराग्नेये ज्वरवश्यता ।।६०।।
वायुमण्डल उच्चाटे खे भूतग्रहरक्षणम् ।

अब दूसरे प्रकार से इसके पुरश्चरण को कहता हूँ। बिल्ववृक्ष के सान्निध्य में एक मास-पर्यन्त प्रतिदिन मन्त्र का एक हजार जप एवं उसका दशांश हवन करने से इसका पुरश्चरण सिद्ध हो जाता है।

इनका ध्यान करने से धन एवं मन्त्रजप करने से भूमि की प्राप्ति होती है। जप, पूजा, हवन एवं व्रतानुष्ठान करने से धन-धान्य, धरा एवं लक्ष्मी की प्राप्ति होती है; इसमें कोई संशय नहीं है। सदा भूमण्डल में इनका ध्यान करने से कुल का कल्याण होता है, वारुण मण्डल में ध्यान करने से मृत्यु का निवारण होता है, अग्निमण्डल में ध्यान करने से ज्वर का वशीकरण होता है, वायुमण्डल में ध्यान करने से शत्रु का उच्चाटन होता है एवं आकाशमण्डल में ध्यान करने से भूतों तथा दुष्ट ग्रहों से रक्षा होती है।।५७-६०।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मण्डलध्यानमद्भुतम् ।।६१।।
चतुष्कोणं पीतवर्णं मध्ये लम्बीजसंयुतम् ।
नन्द्यावर्तांश्च कोणेषु चिन्तयेद् भूमिमण्डलम् ।।६२।।
कुक्कुटाण्डसमाकारमर्धचन्द्रनिभं तथा ।
वारुणं मण्डलं श्वेतं मध्ये वं बीजलाञ्छितम् ।।६३।।

रक्तवर्णं त्रिकोणं च मध्ये रं बीजमत्र हि।
तैजसं मण्डलं प्रोक्तं ध्येयं भावुकसत्तमैः ॥६४॥
यंबीजसंयुतं मध्ये वृत्तं षड्बिन्दुलाञ्छितम्।
समीरमण्डलं धूम्रवर्णं ध्येयं सदा जनैः ॥६५॥
आकाशमण्डलं वृत्तं मध्ये हंबीजसंयुतम्।
नीलवर्णं महाशून्यमनाहतरवं स्मरेत् ॥६६॥

मण्डल-ध्यान—अब मैं अत्यन्त अद्भुत मण्डल-ध्यान को कहता हूँ। चौकोर, पीत वर्ण वाले, मध्य में 'लं' बीज से युक्त तथा कोणों में नन्द्यावर्तों से समन्वित भूमण्डल का ध्यान करना चाहिये। मध्य में 'वं' बीज से चिह्नित कुक्कुटाण्ड़ के समान आकृति वाले एवं अर्धचन्द्र-सदृश श्वेत वारुण मण्डल का ध्यान करना चाहिये। मध्य में 'रं' बीज से समन्वित रक्त वर्ण वाले त्रिकोण अग्निमण्ड़ल का ध्यान करना चाहिये। मध्य में 'यं' बीज से समन्वित, धूम्र वर्ण वाले, गोलाकार एवं छः बिन्दुओं से लाञ्छित वायुमण्ड़ल का लोगों द्वारा सदा ध्यान करना चाहिये। मध्य में 'हं' बीज से युक्त, नील वर्ण वाले, गोलाकार, महाशून्य-स्वरूप एवं अनाहत रव अर्थात् मध्यमा वाक् वाले आकाशमण्डल का ध्यान करना चाहिये।।६१-६६।।

सिंहगे शुक्लपक्षे हि रवौ श्वेतशिलां शुभाम्।
पञ्चगव्यपरिक्षिप्तां जपितामयुतेन च ॥६७॥
उदङ्मुखो जपेन्मन्त्रं क्षेत्रे तां निखनेत्पुनः।
शत्रूणां सन्निरोधो हि क्षेत्रं चास्य विनश्यति ॥६८॥
अर्कोदयेऽङ्गारवारे जपेन्मन्त्रं समाहितः।
वैरिरुद्धादपि क्षेत्रान्मृदमानीय यत्नतः ॥६९॥
तां च त्रिधा विभज्यात्र चुल्लमेकं विलिप्य च।
पाकपात्रं द्वितीयं च पयस्यन्नं तथापरम् ॥७०॥
संस्कृते हव्यवाहे च तण्डुलैश्च पचेच्चरुम्।
तत्र देवं यथावच्च धूपदीपादिभिर्यजेत् ॥७१॥
साज्येन तेन हविषा हुनेदष्टाधिकं शतम्।
एवं भौमाष्टवारेषु कुर्यान्नियतधीः क्रमात् ॥७२॥
ततः शत्रुगृहीतं तत्क्षेत्रं सम्प्राप्यतेऽचिरात्।
अह्नो मुखे भौमवारे मृदं संगृह्य पूर्ववत् ॥७३॥
पूर्ववच्च चरुं कृत्वा जुहुयात्प्रोक्तवर्त्मना।
बलिं च दद्यात्क्षेत्रस्य विरोधो नश्यति क्षणात् ॥७४॥

देवस्य हुतशेषेण बलिदानमिहोदितम् ।
सप्तभिर्दिवसैश्चात्र डाकिनीविकृतिं हरेत् ।।७५।।

शुक्लपक्ष के रविवार को सूर्य जब सिंह राशि में हो तब सुन्दर श्वेत शिला को पञ्चगव्य में डुबोकर मन्त्र का दस हजार जप करने के उपरान्त उत्तरमुख होकर मन्त्र का जप करने के बाद उस शिला को शत्रुक्षेत्र में गाड़ देने से शत्रु का सन्निरोध (गति अवरुद्ध) हो जाता है एवं उसके क्षेत्र का विनाश हो जाता है।

मंगलवार को सूर्योदय के समय एकाग्रचित्त से मन्त्र का जप करने के बाद शत्रु द्वारा निरुद्ध क्षेत्र से भी यत्न-पूर्वक मिट्टी को लाकर उसे तीन भाग में विभक्त करने के बाद एक भाग से चूल्हा, दूसरे भाग से पाकपात्र एवं तीसरे भाग से दूध और अन्न को शुद्ध करने के पश्चात् संस्कृत अग्नि में चावलों से चरु (हविष्य) का पाक करके वहीं पर धूप, दीप आदि से यथावत् देवता का अर्चन करने के बाद उस हविष्य में आज्य (गोघृत) मिलाकर एक सौ आठ बार हवन करना चाहिये। स्थिर बुद्धि से अनवरत आठ मंगलवार को इस क्रिया को करने से शत्रु द्वारा अधिकृत क्षेत्र शीघ्र ही साधक को प्राप्त हो जाता है।

मंगलवार को सूर्योदय के समय पूर्वोक्त रीति से मिट्टी को लाकर उसी प्रकार चरु का पाक करके पूर्वकथित रीति से ही हवन करके क्षेत्रपाल के लिये बलि प्रदान करने से तत्क्षण ही विरोध का शमन हो जाता है। यहाँ पर देवता का हवन करने के उपरान्त अवशिष्ट चरु से बलिदान करने का निर्देश किया गया है। इस क्रिया को सात दिनों तक करने से डाकिनी-जन्य विकृति का शमन हो जाता है।।६७-७५।।

तामेव मृत्तिकां दुग्धे विलोड्याज्येन संहुनेत् ।
अष्टाधिकशतं मन्त्री शालिभिर्द्विनिशं सुधीः ।।७६।।
तत्तु संवत्सरात्पूर्णं शालिभिश्च गृहं भवेत् ।
अनेन जुहुयादाज्यं सहस्रं प्रत्यहं नरः ।।७७।।
तेन सर्वसमृद्धिः स्यादङ्कूल्याश्च प्रसूनकैः ।
सहस्रं स्वादुसंयुक्तैर्वाससां सिद्धिरुच्यते ।।७८।।
लाजहोमाच्च कन्याप्तिर्बिल्वजैः श्रीर्भवत्यलम् ।
जिनादिक्षेत्रमासाद्य वादिनः प्रजयेत्सदा ।।७९।।
तत्रासीनो जपेन्मन्त्रं चाष्टोत्तरसहस्रकम् ।
एवं कृते ततस्तस्य भूमिवादो विनश्यति ।।८०।।

उसी मिट्टी को दुग्ध से विलोड़ित करके उसमें घृत, चावल एवं हल्दी मिलाकर एक वर्ष-पर्यन्त हवन करने वाले मन्त्रज्ञ साधक का घर चावल से परिपूर्ण हो जाता है।

इसी प्रकार जो साधक प्रतिदिन आज्य से एक हजार आहुतियों द्वारा हवन करता है, उसे सम्स्त समृद्धियाँ प्राप्त होती हैं। त्रिमधुराक्त लाजवन्ती-पुष्पों से प्रतिदिन एक हजार आहुतियों द्वारा हवन करने से वस्त्रसिद्धि होती है।

लाजवन्ती के हवन से कन्या की प्राप्ति होती है। बिल्वपुष्प के हवन से पर्याप्त धन-प्राप्ति होती है। विजित क्षेत्र को प्राप्त करने पर प्रतिवादियों पर सदा विजय मिलती है। वहाँ पर बैठकर मन्त्र का एक हजार आठ जप करने से भूमि-सम्बन्धी विवाद समाप्त हो जाता है।।७६-८०।।

स्वात्मानं मेरुसदृशं कोलरूपं विचिन्तयेत्।
अङ्गारवारे प्रजपेत्क्षेत्रं कुर्यात्प्रदक्षिणम्।।८१।।
ततो मृदं प्रगृह्णीयात्स्वस्य क्षेत्रं क्षिपेच्च ताम्।
नित्यं भूमिं स्पृशन्मन्त्री जपेदष्टसहस्रकम्।
विन्दते महतीं लक्ष्मीं शमयेत्सर्वकण्टकान्।।८२।।
प्रतिष्ठाभूमिकामस्तु भृगौ भौमेऽधिकं जपेत्।
नित्यमष्टसहस्रं च यो जपेद्धरिमर्चयन्।
महतीं श्रियमाप्नोति महाराजो भवत्यलम्।।८३।।
लक्षं होमो जपान्ते स्याद्द्रव्यैश्चैव सपायसैः।
सप्तद्वीपानवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा।।८४।।
दधिमध्वाज्यसिक्ताश्च चतुरङ्गुलसम्मिताः।
गुडूचीरष्टसाहस्रं हुनेद् व्याधिर्विनश्यति।
आम्रपर्णैर्हुते नित्यं ज्वरशान्तिः प्रजायते।।८५।।
गृहीत्वा हस्तयोर्नीरं जपेदक्षरसङ्ख्यया।
मुखप्रक्षालनं कृत्वा मुखश्रीस्तस्य वर्द्धते।
एवं प्रोक्तो वराहस्य मनुः सर्वार्थसिद्धिदः।।८६।।

स्वयं को सुमेरु पर्वत के समान विशाल वराहरूप समझते हुये मंगलवार के दिन मन्त्रजप करने के बाद क्षेत्र की प्रदक्षिणा करने के बाद वहाँ से मिट्टी को लाकर अपने क्षेत्र में डाल देने के बाद प्रतिदिन उस भूमि का स्पर्श करते हुये मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करने से महती लक्ष्मी की प्राप्ति होती है एवं समस्त बाधाओं का शमन हो जाता है। प्रतिष्ठा एवं भूमि-प्राप्ति के लिये शुक्रवार एवं भौमवार को अधिक जप करना चाहिये।

जो साधक प्रतिदिन विष्णु का पूजन करते हुये इस मन्त्र का आठ हजार जप

करता है, वह प्रभूत धन प्राप्त करके महाराजा के समान हो जाता है। जप के अन्त में पायस-सहित द्रव्यों से एक लाख हवन करने वाला साधक सातो द्वीपों को प्राप्त कर लेता है; इसमें कुछ भी विचारणीय नहीं है।

दही, मधु एवं आज्य से सिक्त चार अंगुल लम्बे गुरुचखण्डों से हवन करने पर व्याधियों का नाश होता है। प्रतिदिन आम्रपल्लवों के हवन से ज्वरशान्ति होती है। हाथों में जल लेकर मन्त्रवर्णों की संख्या के बराबर अर्थात् तैंतीस बार मन्त्रजप करके जो मुख का प्रक्षालन करता है, उसकी मुखकान्ति बढ़ती है। इस प्रकार वराह का मन्त्र सर्वार्थ-सिद्धिदायक कहा गया है।।८१-८६।।

वराहस्याष्टाक्षरमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वराहाष्टाक्षरम्परम्।
ॐ भूर्वराहाय नमो मुनिर्ब्रह्मा समीरितः ।।८७।।
जगती छन्द उद्दिष्टं वराहो देवता स्मृतः।
पदैः समस्तमन्त्रेण पञ्चाङ्गानि प्रकल्पयेत् ।।८८।।
कृष्णाङ्गं नीलवस्त्रं च मलिनं पद्मसंस्थितम्।
पृथ्वीशक्तियुतं ध्यायेच्छङ्खचक्राम्बुजं गदाम् ।।८९।।
भूलक्ष्मीकान्तिभिश्चैव समस्तैः परिवारितम्।
चर्मासिमद्भिश्च कलौ द्रुतसिद्धिप्रदायकम् ।।९०।।
जपपूजादिकं सर्वमस्य पूर्ववदाचरेत्।
एवम्मनुं यः प्रभजेत्स भवेच्च धरापतिः ।।९१।।

वराह का अष्टाक्षर मन्त्र—अब मैं वराह के अष्टाक्षर मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—ॐ भूर्वराहाय नमः। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द जगती एवं देवता वराह कहे गये हैं। मन्त्र के समस्त पदों से इसका पञ्चाङ्ग न्यास किया जाता है। तत्पश्चात् कृष्णवर्ण शरीर वाले, नीले रंग का वस्त्र धारण किये हुये, मलिन पद्म पर विराजमान, पृथिवीरूपी शक्ति से समन्वित, हाथों में शंख चक्र पद्म एवं गदा धारण किये हुये, पृथिवी लक्ष्मी कान्ति आदि सबसे घिरे हुये एवं चर्म (रज्जु) तथा असि धारण करके कलियुग में शीघ्र सिद्धि प्रदान करने वाले भगवान् वराह का ध्यान करना चाहिये। इस मन्त्र के जप-पूजन आदि समस्त कृत्य पूर्ववत् सम्पन्न करना चाहिये। जो साधक इस मन्त्र की उपासना करता है, वह पृथिवीपति होता है।।८७-९१।।

वराहस्यैकाक्षरमन्त्रः

इमित्येकाक्षरो मन्त्रो वराहस्य प्रकीर्तितः।
हयग्रीवो मुनिः प्रोक्तश्छन्दोऽनुष्टुप् च देवता ।।९२।।

वराहो दीर्घयुक्तेन बीजेनैवाङ्गकल्पनम्।
प्राग्वद्ध्यायेद्रक्तवर्णं पूजाद्यं पूर्ववद्भवेत् ॥९३॥
भूरित्येकाक्षरं बीजं सर्वं प्राग्वत्समीरितम्।
पीतवर्णं सदा ध्यायेद् द्वापरे द्रुतसिद्धिदम् ॥९४॥
एषाञ्चतुर्णां शक्तिस्तु पृथिवी परिकीर्त्तिता।
क्रमाद्वक्ष्ये हि तन्मन्त्रान् वराहस्य प्रियानति ॥९५॥

वराह का एकाक्षर मन्त्र—वराह का एकाक्षर मन्त्र 'इं' कहा गया है। इस मन्त्र के ऋषि हयग्रीव, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता वराह कहे गये हैं। बीजमन्त्र (इं) के पाँच दीर्घ स्वरूपों से इसका पञ्चाङ्गन्यास करना चाहिये। इस मन्त्र की उपासना में रक्तवर्ण वराह का पूर्ववत् ध्यान करना चाहिये। इसका पूजन आदि पूर्व के समान ही होता है।

वराह का एक अन्य एकाक्षर बीजमन्त्र है—भूः। इसके उपासना की समस्त क्रियायें पूर्ववत् ही कही गई हैं। द्वापर में शीघ्र सिद्धि प्रदान करने वाले पीतवर्ण स्वरूप वाले वराह का ध्यान करना चाहिये। वराह के इन चारो स्वरूपों की शक्ति पृथिवी कही गई है। अब वराह को अतिशय प्रिय पृथिवी के उन मन्त्रों को क्रमशः कहता हूँ।।९२-९५।।

पृथिवीमन्त्राः

ॐ नमो भगवत्यै च धरण्यै धरणीधरा।
धृषे स्वाहेति मन्त्रोऽयमूनविंशतिवर्णकः ॥९६॥
धराहृदयमन्त्रोऽयं भूपतित्वप्रदायकः।
मुनिर्वराहोऽस्य निवृच्छन्दो देवी धरा मता।
त्र्यब्धित्रीषुद्विद्विवर्णैः षडङ्गविधिरीरितः ॥९७॥
इन्दीवरयुतां शालिमञ्जरीं दधतीं शुकम्।
धरां पद्मासनां ध्यायेन्नानाभूषणभूषिताम् ॥९८॥

पृथिवी-मन्त्र—पृथिवी का उन्नीस अक्षरों का मन्त्र है—ॐ नमो भगवत्यै धरण्यै धरणीधरा धृषे स्वाहा। पृथिवी का यह हृदयमन्त्र है, जो भूपतित्व प्रदान करने वाला है। इस मन्त्र के ऋषि वराह, छन्द निवृत् एवं देवता पृथिवी कही गई हैं। मन्त्र के तीन, चार, तीन, पाँच, दो, दो वर्णों से इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—ॐ नमो हृदयाय नमः, भगवत्यै शिरसे स्वाहा, धरण्यै शिखायै वषट्, धराधरायै कवचाय हुम्, धृषे नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट्। तदनन्तर कमल से समन्वित, आँचल में धान्यमञ्जरी को धारण की हुई, अनेक आभूषणों से विभूषित, कमल पर आसीन पृथिवी का ध्यान करना चाहिये।।९६-९८।।

पूजा तु वैष्णवे पीठे पूर्वमङ्गानि पूजयेत्।
ततो यजेदष्टदले पूर्वतः कुं च भूकलाः ॥९९॥
वह्निं वह्निकलाश्चैव तोयं सूर्यं च तत्कलाः।
इन्द्रादींश्चापि वज्रादीनिति पूजाविधिः स्मृतः ॥१००॥
लक्षञ्जपेत्प्रजुहुयाद् घृतसिक्तौदनेन च।
तर्पणं मार्जनं कुर्याद्विप्राणां तर्पणन्तथा।
विधिना तेन संसिद्धे मनौ काम्यानि कारयेत् ॥१०१॥

इसका पूजन वैष्णवपीठ पर करना चाहिये। सर्वप्रथम षडङ्ग-पूजन करने के बाद अष्टदल में पूर्वादिक्रम से क्रमशः कु, भूकला, वह्नि, वह्निकला, जल, जलकला, सूर्य, सूर्यकला का अर्चन करना चाहिये। इसके बाद भूपुर में इन्द्रादि दस दिक्पालों एवं उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिये। यही इसकी पूजा-विधि कही गई है। तदनन्तर मन्त्र का एक लाख जप करके घृत-सिक्त चावल से हवन करने के बाद तर्पण एवं मार्जन करने के पश्चात् ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये। इस विधि से मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर काम्य कर्मों का साधन करना चाहिये।।९९-१०१।।

रक्तोत्पलानि जुहुयात्स्वाद्वक्तानि सहस्रकम्।
इष्टां भुवमवाप्नोति तद्वन्नीलोत्पलैर्हुनेत् ॥१०२॥
प्रियङ्गुपुष्पहोमेन मधुराक्तेन मन्त्रवित्।
बहुधान्यधराश्रीणां सत्यम्भवति भाजनम् ॥१०३॥
मधुरार्द्रतरां हुत्वा नूतनां शालिमञ्जरीम्।
धरापतिर्भवेन्मन्त्री मण्डलेन न संशयः ॥१०४॥
प्रातर्भृगुदिने मन्त्री साध्यक्षेत्रान्मृदं हरेत्।
शुद्धतोये समालोड्य तां च तत्र पचेच्चरुम् ॥१०५॥
अग्नौ दुग्धघृतात्यक्तं जुहुयात्तं यथाविधि।
मासषट्कं भृगोर्वारि ह्येवं कृत्वा लभेद्धराम् ॥१०६॥

त्रिमधु-सिक्त रक्त अथवा नील कमलों से एक हजार हवन करने वाले साधक को अभीष्ट भूमि की प्राप्ति होती है। जो मन्त्रज्ञ साधक मधुराक्त प्रियङ्गुपुष्पों से हवन करता है, वह प्रभूत धान्य, धरा एवं धन का पात्र होता है। चालीस दिनों तक नूतन धान्यमञ्जरी को त्रिमधु में भिगोकर हवन करने वाला साधक पृथिवीपति होता है; इसमें कोई संशय नहीं है।

शुक्रवार को प्रातःकाल साध्य क्षेत्र की मिट्टी को लाकर शुद्ध जल से आलोडित

करके अग्नि पर उससे चरु का पाक करने के बाद उस चरु को दुग्ध एवं घी से सिक्त करके छः मास तक प्रत्येक शुक्रवार को यथाविधि हवन करने वाले मन्त्रज्ञ साधक को भूमि की प्राप्ति होती है।।१०२-१०६।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि धरामन्त्रं महाद्भुतम्।
ॐ महीं ग्लौं नमः प्रोच्य भगवत्यै पदं वदेत्।।१०७।।
धरायै धरणीं प्रोच्य धरेयुग्माग्निगेहिनीम्।
ग्लौं ह्रीं तारं समुच्चार्य चतुर्विंशाक्षरो मनुः।।१०८।।
चतुर्वर्णैः षडङ्गानि ध्यानादि पूर्ववन्मतम्।
एष उक्तस्तु वाराहो मन्त्रः सिद्धोऽखिलेष्टदः।।१०९।।

द्वितीय धरा-मन्त्र—अब अत्यन्त अद्भुत धरामन्त्र को कहता हूँ। चौबीस अक्षरों का मन्त्र है—ॐ लं ग्लौं नमः भगवत्यै धरायै धरणिधरे धरे स्वाहा ग्लौं ह्रीं ॐ। लं ग्लौं नमः इन चार वर्णों से षडङ्गन्यास करना चाहिये। इसके ध्यान आदि पूर्ववत् ही कहे गये हैं। यह वाराह मन्त्र समस्त अभीष्टों को प्रदान करने वाला कहा गया है।।१०७-१०९।।

ग्लौमित्येकाक्षरो मन्त्रः प्राग्वत्पूजादिकं भवेत्।
षड्दीर्घयुक्तबीजेन षडङ्गविधिरीरितः।।११०।।

तृतीय धरा-मन्त्र—'ग्लौं' इस एकाक्षर धरामन्त्र के पूजन आदि पूर्ववत् ही होते हैं। बीज (ग्लौं) के छः दीर्घ स्वरूपों से इसका षडङ्गन्यास कहा गया है।।११०।।

लमित्येकाक्षरं बीजं सर्वाभीष्टप्रदायकम्।
सर्वं प्राग्वत्षडङ्गानि दीर्घषट्कान्वितेन च।।१११।।

चतुर्थ धरा-मन्त्र—धरा का 'लं' यह एकाक्षर बीजमन्त्र समस्त अभीष्टों को प्रदान करने वाला है। इसके पूजन आदि सबकुछ पूर्ववत् ही होते हैं। बीज के छः दीर्घ स्वरूपों से षडङ्गन्यास किया जाता है।।१११।।

नारसिंहमन्त्रविधिः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि नृसिंहस्य मनून्द्भुतम्।
प्रतिमन्वन्तरं वायमवतारो हरेर्भवेत्।।११२।।
द्वीपान्तरे नृसिंहस्तु चतुर्दशसु मूर्तिषु।
आकल्पं विद्यते तत्र भक्तानुग्रहकारकः।।११३।।
आदिमन्वन्तरे जातो नृसिंहो वक्ष्यतेऽधुना।
द्वात्रिंशदर्णको गोप्यो भुक्तिमुक्तिप्रदो मतः।।११४।।

उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम्।
नृसिंहं भीषणं रुद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् ॥११५॥
ब्रह्मा मुनिरनुष्टुप्च च्छन्दोऽस्ति नृहरिः सुरः।
मन्त्रस्य तु पदैश्चैव प्रणवेनाङ्गपञ्चकम्।
प्रथमो न्यास उद्दिष्टः सर्वाभीष्टप्रदायकः ॥११६॥
वेदवेदार्णषट्षट्कवेदार्णैः स्यात्षडङ्गकम्।
षडङ्गाख्यो द्वितीयोऽयमङ्गन्यास उदाहृतः ॥११७॥

नृसिंह-मन्त्र—अब मैं नृसिंहमन्त्र को कहता हूँ। विष्णु का यह अवतार प्रत्येक मन्वन्तर में होता है। चौदहों मन्वन्तरों में चौदह रूपों में भक्तों पर अनुग्रह करने वाले भगवान् नृसिंह कल्प-पर्यन्त विद्यमान रहते हैं। इस समय प्रथम मन्वन्तर में अवतरित नृसिंह के मन्त्र को कहा जा रहा है। अत्यन्त गोपनीय बत्तीस अक्षरों वाला यह मन्त्र भोग एवं मोक्ष को प्रदान करने वाला है। मन्त्र है—उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम्। नृसिंहं भीषणं रुद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्।

इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता नृसिंह कहे गये हैं। मन्त्र के प्रत्येक पदों के साथ प्रणव (ॐ) लगाकर इसका पञ्चाङ्गन्यास किया जाता है। यह प्रथम न्यास समस्त अभीष्टों को प्रदान करने वाला कहा गया है। इसके बाद मन्त्र के चार, चार, आठ, छः, छः, चार वर्णों से दूसरा षड्ङ्गन्यास किया जाता है।।११२-११७।।

शीर्षे भाले दक्षनेत्रे वामनेत्रे मुखे क्रमात्।
दक्षिणे बाहुमूले च तन्मध्ये मणिबन्धके ॥११८॥
दक्षाङ्गुलीनां मूले च तदग्रे वामगे भुजे।
तन्मध्ये मणिबन्धे चाङ्गुलीमूले तदन्तके ॥११९॥
दक्षोरुजानुगुल्फेषु चाङ्गुलीमूलकेऽग्रके।
कण्ठे हृदि तथा नाभौ दक्षपार्श्वे च वामके ॥१२०॥
पृष्ठे ककुदि मन्त्रस्य न्यसेद्वर्णान् भयापहान्।
तृतीयो न्यास उदितः साक्षाद्देवमयो भवेत् ॥१२१॥
दक्षाङ्गुष्ठं समारभ्य कनिष्ठान्तं त्रिपर्वसु।
वामां कनिष्ठामारभ्य वामाङ्गुष्ठावधिं न्यसेत् ॥१२२॥
एवं दक्षकरतले वामेऽपि करजं हरेत्।
पातकं तुर्य उदितो न्यासोऽङ्गुल्यादिकः परः ॥१२३॥

इसके बाद क्रमशः शीर्ष, ललाट, दक्ष नेत्र, वाम नेत्र, मुख, दक्ष भुजमूल, दक्ष

कूर्पर, दक्ष मणिबन्ध, दक्षांगुलिमूल, दक्षांगुल्यग्र, वाम भुजमूल, वाम कूर्पर, वाम मणिबन्ध, वामांगुलिमूल, वामांगुल्यग्र, दक्ष ऊरु, दक्ष जानु, दक्ष गुल्फ, दक्ष पादाङ्गुलिमूल, दक्ष पादाङ्गुल्यग्र, वाम ऊरु, वाम जानु, वाम गुल्फ, वाम पादाङ्गुलिमूल, वाम पादाङ्गुल्यग्र, कण्ठ, हृदय, नाभि, दक्ष पार्श्व, वाम पार्श्व, पृष्ठ एवं ककुद में भय को दूर करने वाले मन्त्र के बत्तीस वर्णों का न्यास करना चाहिये। यह तृतीय (मन्त्रवर्ण) न्यास करने से साधक साक्षात् देवस्वरूप हो जाता है।

इसके बाद चतुर्थ अङ्गुल्यादि न्यास करना चाहिये। दाहिने हाथ के अंगूठे से आरम्भ कर कनिष्ठा-पर्यन्त प्रत्येक अंगुलियों के तीनों पर्वों में और उसके बाद बाँयें हाथ की कनिष्ठा से आरम्भ कर अङ्गुष्ठ-पर्यन्त प्रत्येक अंगुलियों के तीनों पर्वों में तथा इसी प्रकार दक्ष एवं वाम करतल में भी मन्त्र के प्रत्येक वर्णों का न्यास करना चाहिये। यह श्रेष्ठ अंगुल्यादि न्यास हाथ के द्वारा किये गये समस्त पापों का विनाशक होता है।।११८-१२३।।

ब्रह्मरन्ध्रे च शिरसि भाले भ्रूमध्यके ततः।
नयने नयनाधश्च कपोले कर्णमूलके ॥१२४॥
दन्तपङ्क्तौ च चिबुके उत्तरोष्ठेऽधरोष्ठके।
कण्ठे नाभौ भुजे दक्षे वामे च हृदये स्तने ॥१२५॥
एवं दक्षकरतले वामे वापि कटौ ततः।
लिङ्गे चोरौ तथा जानौ जङ्घायां चापि गुह्यके ॥१२६॥
पादाङ्गुलीषु सर्वासु तथा हस्ताङ्गुलीषु च।
सर्वाङ्गे रोमकूपेषु रक्तहृत्पललास्थिषु ॥१२७॥
मज्जाशुक्रे क्रमाद्वर्णान्मन्त्रस्यैकैकशो न्यसेत्।
अयन्तु पञ्चमो न्यासः सर्वारिष्टनिवारकः ॥१२८॥
पादयोर्गुल्फयोश्चैव जङ्घयोर्जानुनोस्तथा।
ऊर्वोः कटिद्वये नाभौ हृदि बाह्वोस्तथा गले ॥१२९॥
चिबुके दन्तपङ्क्त्योश्चौष्ठाग्र्योश्च कपोलयोः।
कर्णयोर्वदने नासाद्वयेऽक्ष्णोश्चापि मूर्द्धनि।
पादादिवर्णन्यासोऽयं पञ्चमः परिकीर्तितः ॥१३०॥
मनोभवबलाकर्षी नृहरेरतिवल्लभः।

तत्पश्चात् समस्त अरिष्टों का निवारक पञ्चम न्यास करना चाहिये। इसमें शरीर के ब्रह्मरन्ध्र, शिर, ललाट, भ्रूमध्य, दोनों नेत्र, नेत्रों के नीचे, कपोल, कर्णमूल, दन्तपंक्ति,

चिबुक, उत्तरोष्ठ-अधरोष्ठ, कण्ठ, नाभि, दक्ष-वाम बाहु, हृदय, स्तन, दक्ष-वाम करतल, कटि, लिङ्ग, ऊरु, जानु, जङ्घा, गुह्य, समस्त पादांगुलि, समस्त हस्तांगुलि, सर्वाङ्ग, रोमकूप, रक्त, हृन्मांस, अस्थि, मज्जा एवं शुक्र में मन्त्र के एक-एक वर्णों का क्रमशः न्यास करना चाहिये।

पादद्वय, गुल्फद्वय, जङ्घाद्वय, जानुद्वय, ऊरुद्वय, कटिद्वय, नाभि, हृदय, बाहुद्वय, गला, चिबुक, दोनों दन्तपंक्ति, ओष्ठद्वय, कपोलद्वय, कर्णद्वय, मुख, नासापुटद्वय, नेत्रद्वय एवं मूर्धा—इस प्रकार पाद से प्राम्भ कर मूर्धा-पर्यन्त मन्त्रवर्णों का न्यास पञ्चम न्यास कहलाता है। यह न्यास भगवान् नृसिंह को अतिशय प्रिय है तथा कामदेव को हठात् आकर्षित करने वाला है।।१२४-१३०।।

मुखे मूर्द्धनि नासायां नेत्रे श्रोत्रे तथा मुखे।
हृदि नाभौ कटौ जान्वोः पादयोः क्रमतो न्यसेत् ।।१३१।।
षष्ठोऽयन्तु पदन्यासो भुक्तिमुक्तिप्रदायकः।
अस्मिन्न्यासे कृते देहे रोगैः स्थातुं न शक्यते ।।१३२।।
नासाग्रे नयनद्वन्द्वे नाभौ हृदि च मूर्द्धनि।
बाह्वोश्चरणयोर्न्यस्येन्मन्त्रार्णानां चतुष्ककम् ।।१३३।।
सप्तमोऽयं न्यास उक्तश्चतुर्वर्णात्मको हरेः।
धर्मार्थकाममोक्षाणां दायको नात्र संशयः ।।१३४।।
मूर्ध्नि वक्षसि नाभौ च सर्वाङ्गे वा प्रवेशयेत्।
पादन्यासोऽष्टमश्चायं सिंहव्याघ्रभयापहः ।।१३५।।

मन्त्रपदों का क्रमशः मुख, मूर्धा, नासिका, नेत्रद्वय, कर्णद्वय, मुख, हृदय, नाभि, कटिद्वय, जानुद्वय, पादद्वय में किया गया षष्ठ पदन्यास भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाला होता है। इस न्यास को करने से मनुष्य के शरीर में विविध रोग अपना स्थान नहीं बना पाते।

सप्तम न्यास में मन्त्र के चार-चार वर्णों का क्रमशः नासिका के अग्र भाग, दोनों नेत्र, नाभि, हृदय, मूर्धा, भुजद्वय एवं पादद्वय में न्यास किया जाता है। यह सप्तम न्यास भगवान् विष्णु का चतुर्वर्णात्मक न्यास कहलाता है। यह धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को देने वाला है; इसमें कोई संशय नहीं है।

आठवें न्यास में मन्त्र के चार पादों का क्रमशः मूर्धा, वक्षःस्थल, नाभि एवं सर्वाङ्ग में न्यास किया जाता है। पादन्यास-स्वरूप यह अष्टम न्यास सिंह-व्याघ्र के भयों का हरण करने वाला होता है।।१३१-१३५।।

पादतो हृदयाच्चापि न्यसेदर्धद्वयं मनोः ।
अर्द्धन्यासोऽयमुदितो नवमोऽघसमूहहृत् ॥१३६॥
उग्रादिपदमाभाष्य द्वितीयान्ते नमाम्यहम् ।
अन्ते ब्रूयान्नवस्थाने न्यसेदास्ये च मस्तके ॥१३७॥
नासायां नेत्रयोः श्रोत्रे ब्रह्मरन्ध्रे तथा हृदि ।
नाभौ कट्यादिपादान्तं न्यासोऽयं दशमः स्मृतः ॥१३८॥
नृसिंहपूर्वाण्याभाष्य चोग्रादीनि पदानि च ।
नमाम्यहं ततः प्रोच्य नवस्वङ्गेषु विन्यसेत् ॥१३९॥
पूर्वोक्तेष्वेव डाकिन्यादिकभीतिहरो भवेत् ।
अयमेकादशो न्यासो नृहरेरतिपावनः ॥१४०॥
उग्रादिकपदैरेवं पूर्वदत्तैर्भवेत्पुनः ।
न्यासश्चाष्टविधोऽप्येवमूनविंशप्रकारकः ॥१४१॥
आनाभिमूलाधाराच्च न्यसेद्वर्णत्रयं बुधः ।
नाभेर्हृदयपर्यन्तं न्यसेद्वर्णचतुष्टयम् ॥१४२॥
हृदो भ्रूमध्यपर्यन्तं वर्णषट्कं प्रविन्यसेत् ।
मूर्द्धादिपादपर्यन्तं चिन्तयेन्नृहरिं विभुम् ॥१४३॥
एवं विंशतिरुद्दिष्टा न्यासानां पातकापहा ॥१४४॥

पैर से हृदय-पर्यन्त मन्त्र के दोनों आधे भाग का किया गया न्यास अर्धन्यास कहलाता है। यह नवम न्यास समस्त पापों का हरण करने वाला होता है।

मन्त्र के नव द्वितीयान्त पदों—'उग्रं, वीरं, महाविष्णुं, ज्वलन्तं, सर्वतोमुखं, नृसिंहं, भीषणं, रुद्रं, मृत्युमृत्युं' के पश्चात् 'नमाम्यहम्' का उच्चारण करके क्रमशः मस्तक, नासिका, नेत्रद्वय, कर्णद्वय, ब्रह्मरन्ध्र, हृदय, नाभि एवं कटि से पाद-पर्यन्त न्यास करना दशम न्यास कहा गया है।

सर्वप्रथम 'नृसिंह' पद का उच्चारण करने के पश्चात् मन्त्रोक्त 'उग्रं' आदि नव पदों का उच्चारण करके अन्त में 'नमाम्यहम्' कहकर पूर्वोक्त नव अंगों में न्यास करने से डाकिनी आदि के भय का निवारण होता है। यह ग्यारहवाँ न्यास नृसिंह का अत्यन्त पवित्र न्यास कहा गया है। इसी प्रकार उग्रादि पदों के द्वारा आठ प्रकार के अन्य और न्यास होते हैं। इस प्रकार सब मिलाकर उन्नीस प्रकार के न्यास होते हैं।

इसके बाद नाभि से मूलाधार तक मन्त्र के तीन वर्णों का, नाभि से हृदय तक मन्त्र के चार वर्णों का एवं हृदय से भ्रूमध्य तक छः वर्णों का न्यास करना चाहिये।

तत्पश्चात् मूर्धा से पाद-पर्यन्त सर्वव्यापक भगवान् नृसिंह का चिन्तन करना चाहिये। इस प्रकार पापों को दूर करने वाले कुल बीस प्रकार के न्यासों को कहा गया है।।१३६-१४४।।

यस्मान्नृसिंहो भगवान् पापं कृत्वास्य सेवके।
तत्कालं कुरुते कोपं विक्षिप्तं कुरुते जगत् ॥१४५॥
तस्मादपरिहार्यैनमज्ञातानां तु पाप्मनाम्।
न्यासैर्भवति नाशोऽतः सर्वन्यासान् समाचरेत् ॥१४६॥

क्योंकि भगवान् नृसिंह अपने सेवक को कष्ट देने वाले पर सद्य: कुपित हो जाते हैं एवं सम्पूर्ण जगत् को विक्षिप्त कर देते हैं; अत: सर्वथा अपरिहार्य इन न्यासों को न जानने वाले पापियों का इन न्यासों के द्वारा विनाश हो जाता है; इसलिये नृसिंह-साधक को समस्त न्यासों का सम्पादन करना चाहिये।।१४५-१४६।।

वामेऽरिशङ्खा दक्षे तु जानुविन्यस्तबाहुकम्।
ग्रसन्तं दैत्यराजानं कृशानूपमतेजसा ॥१४७॥
दंष्ट्राप्रदीप्तवदनं ललज्जिह्वं त्रिलोचनम्।
सुरैश्च मुनिभिर्लक्ष्म्या कृताञ्जलिकया शुभम् ॥१४८॥
मूर्तिं मूलेन सङ्कल्प्य देवमावाह्य पूजयेत्।
वामाङ्गे नृहरेः पूज्या लक्ष्मीर्भूषणभूषिता ॥१४९॥
वामे पद्मधरा दक्षबाहुना नृहरिं विभुम्।
आश्लिष्यन्ती शान्तिमूर्तिस्ततोऽङ्गानि प्रपूजयेत् ॥१५०॥
यजेदाशासु गरुडं शिवानन्तौ विधिं क्रमात्।
श्रियं ह्रियं धृतिं पुष्टिं तथा वह्निदिगादिषु।
तृतीयेऽष्टदले पूज्यं नृसिंहानान्तथाष्टकम् ॥१५१॥
शङ्खिनञ्चक्रिणं स्वर्णं श्यामं वा शुभवाससम्।
नृसिंहस्तम्भनाख्यं तु श्वेतम्प्राच्यां समर्चयेत् ॥१५२॥
सिन्दूरारुणमाग्नेये यजेद्वश्यनृसिंहकम्।
बाणचापधरं लक्ष्म्या सेवितं मकरध्वजम् ॥१५३॥
दक्षे यजेदब्जमालाशङ्खार्यसिगदाधरम्।
भिन्नदैत्यहृदं कृष्णं त्रिनेत्रं मारणक्षमम्।
विद्वेषोच्चाटनकरं नीलोत्पलसमप्रभम् ॥१५४॥
वायवीये तथा कोणे शङ्खचक्रगदाधरम्।
विप्राणां पुष्टिदं नेत्रत्रितयालंकृताननम् ॥१५५॥

उदग्दले नृसिंहं तं पाञ्चजन्यं सुदर्शनम्।
गदां निधिं च बिभ्राणं लक्ष्म्या युक्तं निधिप्रदम्॥१५६॥
विद्याभूतिमुदक्पूर्वे क्षीराभम्पीतवाससम्।
पाशाङ्कुशस्फुरद्बाहुं शङ्खचक्रधरम्प्रभुम्॥१५७॥
हृत्सरोरुहमध्यस्थं चन्द्रपुञ्जसुनिर्मलम्।
लक्ष्म्या युक्तं नारसिंहं पूजयेत्साधक: सदा॥१५८॥

इसके बाद बाँयें हाथ में चक्र एवं शंख धारण किये हुये तथा दाहिने हाथ को घुटने पर रखे हुये, अग्नि-सदृश तेज के द्वारा दैत्यराज को ग्रसित करते हुये, दाँतों से दीप्त मुख वाले, जिह्वा को मुख से बाहर निकाले हुये, तीन नेत्रों वाले, हाथ जोड़े हुये देवताओं, मुनियों एवं लक्ष्मी के स्तूयमान नृसिंह की मूर्ति को मूल मन्त्र से कल्पित करके देवता का आवाहन कर पूजन करना चाहिये।

नृहरि के बाँयें भाग में वाम हाथ में कमल धारण की हुई तथा दाहिने हाथ से सर्वव्यापक भगवान् नृसिंह का आलिङ्गन करती हुई आभूषणों से भूषित लक्ष्मी के शान्त स्वरूप का पूजन करने के बाद अङ्ग-पूजन करना चाहिये। इसके बाद प्रथम आवरण में षडङ्ग-पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् द्वितीय आवरण में पूर्वादि दिशाओं में गरुड़, शिव, अनन्त और ब्रह्मा का तथा आग्नेयादि विदिशाओं में श्री, ह्री, धृति और पुष्टि का पूजन करना चाहिये। इसके बाद तृतीय आवरण में अष्टदल में अष्टनृसिंहों का इस प्रकार पूजन करना चाहिये—

शंख एवं चक्र धारण किये हुये, स्वर्ण-सदृश अथवा श्याम वर्ण वाले, सुन्दर वस्त्र धारण किये हुये श्वेत स्तम्भ-स्वरूप नृसिंह का अष्टदल के पूर्व दिशा-स्थित दल में पूजन करना चाहिये। सिन्दूर-सदृश रक्त वर्ण वाले, हाथों में बाण एवं धनुष धारण किये हुये, लक्ष्मी द्वारा सेवित, कामदेव-स्वरूप वश्यनृसिंह का अग्निकोण-स्थित दल में यजन करना चाहिये। दक्षिण दिशा-स्थित दल में हाथों में कमल, माला, शंख, चक्र, खड्ग एवं गदा धारण किये हुये, दैत्य का हृदय विदीर्ण करते हुये, कृष्ण वर्ण वाले, तीन नेत्रों वाले, मारण कर्म में सक्षम नृसिंह का पूजन करना चाहिये। विद्वेषण एवं उच्चाटन कर्म में नीलकमल के सदृश कान्तिमान नृसिंह का नैर्ऋत्य कोण-स्थित दल में पूजन करना चाहिये। पश्चिम दिशा-स्थित दल में हाथों में शंख, चक्र एवं गदा धारण किये हुये, ब्राह्मणों के लिये पुष्टिप्रद, तीन नेत्रों से अलंकृत मुख वाले नृसिंह का पूजन करना चाहिये। उत्तर दिशा-स्थित दल में हाथों में पाञ्चजन्य शंख, सुदर्शन चक्र, गदा एवं निधि को धारण किये हुये तथा लक्ष्मी से समन्वित, साधकों को निधि प्रदान करने वाले नृसिंह का पूजन करना चाहिये। उत्तर-पूर्व अर्थात् ईशान कोण-स्थित

दल में विद्यारूपी ऐश्वर्य वाले, पाश एवं अंकुश से फड़कती भुजाओं वाले, दुग्ध-सदृश आभा वाले, पीत वस्त्र धारण किये हुये, शंख-चक्रधारी प्रभु नृसिंह का यजन करना चाहिये। हृदयकमल के मध्य में विराजमान, चन्द्रपुञ्ज के समान अत्यन्त निर्मल एवं लक्ष्मी से समन्वित नृसिंह का साधक को सदा पूजन करना चाहिये।।१४७-१५८।।

चक्रं शङ्खं महापद्मं मुसलं देवदक्षिणे।
शङ्खं खेटं गदां शार्ङ्गं पूजयेद्देववामतः ।।१५९।।
चतुर्थावरणञ्चैतल्लक्ष्म्यादिभिरनन्तरम्।
लक्ष्मीदक्षिणतस्तुष्टिं वामे तत्रैव कौस्तुभम् ।।१६०।।
श्रीवत्सं दक्षिणे मध्ये वनमालां च पूजयेत्।
पीताम्बरं ब्रह्मसूत्रं नाभिपद्मं किरीटकम् ।।१६१।।
भूषणानि च सर्वाणि पुरोभागे प्रपूजयेत्।
षष्ठी श्रद्धादिभिः श्रद्धा मेधा तुष्टिश्च कार्मुका ।।१६२।।
भीमाक्षी चैव सभया चक्राक्षी दीप्तिलक्षणा।
एवं सम्पूज्य विधिवत्साधकोऽभीष्टमाप्नुयात् ।।१६३।।

फिर देवता के दक्षिण पार्श्व में चक्र, शङ्ख, महापद्म एवं मूसल का तथा वाम पार्श्व में शङ्ख, बाण, गदा एवं शार्ङ्ग धनुष का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार यह चतुर्थ आवरण का पूजन होता है।

इसके बाद लक्ष्मी आदि का पूजन करना चाहिये। लक्ष्मी के दक्षिणपार्श्व में तुष्टि का और वामपार्श्व में कौस्तुभ का पूजन करना चाहिये। दक्षिण में श्रीवत्स का एवं मध्य में वनमाला का पूजन करना चाहिये। पीताम्बर, ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत), नाभिकमल, किरीट एवं सभी आभूषणों का पूजन देव के अग्रभाग में करना चाहिये। यह पञ्चम आवरण का पूजन होता है।

षष्ठ आवरण में श्रद्धा, मेधा, तुष्टि, कार्मुका, भीमाक्षी, सभया, चक्राक्षी एवं दीप्ति-लक्षणा—इन आठ देवियों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार विधिवत् पूजन करने वाला साधक अपने अभीष्ट को प्राप्त कर लेता है।।१५९-१६३।।

अष्टलक्षं जपेन्मन्त्रं दीक्षितो विजितेन्द्रियः।
तत्सहस्रं प्रजुहुयाद् घृताक्तहविषानले ।।१६४।।
तर्पणं मार्जनं कृत्वा ब्राह्मणाराधनन्ततः।
कुर्यात्संसिद्धमन्त्रस्तु प्रयोगानाचरेत्ततः ।।१६५।।

काम्यप्रयोगसिद्ध्यर्थं ध्यानभेदान् वदाम्यहम्।
उद्यत्सहस्रार्कभासं त्रिनेत्रं भीषणाकृतिम् ॥१६६॥
वज्रतुल्येक्षणं वह्निकान्तिं नानाभुजैर्वृतम्।
नखैर्दारितदैत्येशं रक्तधाराक्तकायकम् ॥१६७॥
क्रूरकर्मादिविषये स्मरेद्देवं भयानकम्।
विश्वरूपमयं ध्यानं नृहरे: प्रोच्यतेऽधुना ॥१६८॥
नृसिंहं तं महाभीमं कालानलसमप्रभम्।
अन्त्रमालाधरं रौद्रं कण्ठे हारेण शोभितम् ॥१६९॥
नागयज्ञोपवीतं च पञ्चाननसुशोभितम्।
चन्द्रमौलिं नीलकण्ठं प्रतिवक्त्रे त्रिलोचनम् ॥१७०॥
भुजै: परिघसङ्काशैर्दशभिश्चोपशोभितम्।
अक्षसूत्रं गदां पद्मं शङ्खं गोक्षीरसन्निभम् ॥१७१॥
धनुश्च मुसलं चैव बिभ्राणं चक्रमुत्तमम्।
खड्गं शूलं च बाणं च नृहरिं रुद्रगोपनम् ॥१७२॥
इन्द्रनीलकनीलाभं चन्द्राभं वर्णसन्निभम्।
पूर्वोदयोत्तरज्वालादूर्ध्वास्यं सर्ववर्णकम्।
एवमुग्रहरिं ध्यायेत् सर्वव्याधिनिवृत्तये ॥१७३॥

तदनन्तर दीक्षा-प्राप्त जितेन्द्रिय साधक को मन्त्र का आठ लाख जप करने के बाद घृत-सिक्त हविष्य से अग्नि में कृत जप का दशांश (अस्सी हजार) हवन करना चाहिये। इसके बाद तर्पण-मार्जन करके ब्राह्मणों की आराधना अर्थात् ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये। इस प्रकार सिद्ध किये गये मन्त्र से प्रयोगों का सम्पादन करना चाहिये।

अब मैं काम्य प्रयोगों की सिद्धि के लिये ध्यानभेदों को कहता हूँ। क्रूर कर्मों में भगवान् नृसिंह के भयानक स्वरूप का ध्यान करना चाहिये; जो इस प्रकार है— भगवान् नृसिंह की आभा उदित होते हुये हजारों सूर्यों के समान है, उनके तीन नेत्र हैं एवं आकृति भयानक है। उनकी दृष्टि वज्र के समान है। वे अग्नि के समान दीप्तिमान हैं। उनकी अनेक भुजायें हैं। वे अपने नखों से दैत्यराज को विदारित कर रहे हैं एवं उनका सम्पूर्ण शरीर रक्त की धारा से संसिक्त है।

अब भगवान् नृसिंह के विश्वरूपमय ध्यान को कहता हूँ। वे भगवान् नृसिंह अत्यन्त भयानक कालाग्नि से समान प्रभा वाले हैं, आँतों की माला धारण किये हुये उनका स्वरूप अत्यन्त भयानक है, उनके कण्ठ में हार शोभायमान है, नागों का यज्ञोपवीत

धारण किये हैं। वे पाँच मुखों से सुशोभित हैं एवं शीर्ष पर चन्द्रमा को धारण किये हैं। उनका कण्ठ नीला है एवं उनके प्रत्येक मुख पर तीन-तीन आँखें हैं। परिघ-सदृश दस भुजाओं से वे सुशोभित हैं। वे अपने दस हाथों में अक्षसूत्र, गदा, पद्म, गोदुग्ध-सदृश धवल शंख, धनुष, मूसल, उत्तम चक्र, खड्ग, शूल एवं बाण धारण किये हुये हैं।

समस्त व्याधियों की निवृत्ति के लिये उग्र हरि का इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—भगवान् नृसिंह छिपे हुये रुद्र के समान हैं, उनकी आभा इन्द्रनील के सदृश नीली है, चन्द्रमा की कान्ति के सदृश उनका वर्ण है, पूर्व में उदित उत्तरायण सूर्य की ज्वाला के समान उनका मुख ऊपर की ओर उठा हुआ है। समस्त वर्णों से मिला-जुला उनका स्वरूप है।।१६४-१७३।।

ध्येयो यदा महत्कर्म तदा षोडशहस्तवान्।
नृसिंहः सर्वलोकेशः सर्वाभरणभूषितः ।।१७४।।
द्वौ विदारणकर्माणौ द्वौ जनोद्धरणक्षमौ।
शङ्खचक्रधरौ रम्यावन्यौ बाणधनुर्धरौ ।।१७५।।
खड्गखेटधरावन्यौ द्वौ गदापद्मधारिणौ।
पाशाङ्कुशधरावन्यौ द्वौ रिपोर्मुकुटार्पितौ ।।१७६।।
इति षोडशदोर्दण्डमण्डितं नृहरिं विभुम्।
ध्यायेदम्बुजनीलाभमुग्रकर्मण्यनन्यधीः ।।१७७।।

जब कोई महान् उग्र कर्म सम्पादित करना हो तब साधक को एकाग्रचित्त होकर भगवान् नृसिंह का इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—सोलह हाथों वाले समस्त लोकों के स्वामी नृसिंह सब प्रकार के आभूषणों से विभूषित हैं। वे अपने दो हाथों से विदारण कर्म कर रहे हैं, दो हाथों से लोगों का उद्धार कर रहे हैं, रमणीय दो हाथों में शंख-चक्र धारण किये हैं, अन्य दो हाथों में धनुष-बाण धारण किये हैं, अन्य दो हाथों में खड्ग एवं खेट (मूसल) धारण किये हैं, दो हाथों में गदा एवं पद्म धारण किये हैं, दो हाथों में पाश एवं अंकुश धारण किये हैं तथा शेष दो हाथों से शत्रु का मुकुट पकड़े हैं। इस प्रकार दण्ड-सदृश सोलह भुजाओं से मण्ड़ित सर्वव्यापक नृसिंह के नीलकमल-सदृश स्वरूप का ध्यान करना चाहिये।।१७४-१७७।।

ध्येयो महत्तमे कार्ये तदा षड्विंशहस्तवान्।
नृसिंहः सर्वभूषाढ्यः सर्वसिद्धिकरः प्रभुः ।।१७८।।
दक्षिणे खड्गचक्रे च परशुं पाशमेव च।
हलं च मुसलं सम्यगभयं चाङ्कुशं तथा ।।१७९।।

पट्टिशं भिन्दिपालं च खेटतोमरमुद्गरान्।
वामभागकरैः शङ्खं खड्गं पाशं च शूलकम् ॥१८०॥
हुताशनवरं शक्तिं सम्यङ्मृण्मयकुण्डिकाम्।
कार्मुकं तर्जनीमुद्रां गदां डमरुमर्थिकान्।
करद्वन्द्वैः क्रमाच्छत्रोर्जानुमस्तकपत्तलम् ॥१८१॥
ऊर्ध्वीकृताभ्यां हस्ताभ्यां चान्त्रमालाधरं हरिम्।
अध:स्थिताभ्यां हस्ताभ्यां हिरण्यकविदारणम् ॥१८२॥
प्रियङ्करञ्च भक्तानां दैत्यानां च भयङ्करम्।
नृसिंहं संस्मरेन्नित्यं महामृत्युभयापहम् ॥१८३॥

जब कोई अतिशय महान् कार्य सम्पादित करना हो तब इस प्रकार का ध्यान करना चाहिये—वे प्रभु नृसिंह छब्बीस हाथों वाले हैं, समस्त आभूषणों से अलंकृत हैं एवं समस्त सिद्धियों को देने वाले हैं। वे अपने दाहिने हाथों में खड्ग, चक्र, परशु (कुठार), पाश, हल, मूसल, अभय, अंकुश, पट्टिश (नोकदार भाला), भिन्दिपाल, खेट, तोमर (बर्छी) एवं मुद्गर तथा बाँयें हाथों में शंख, खड्ग, पाश, शूल, अग्नि, वर, शक्ति, मिट्टी की कुण्डिका, कार्मुक (धनुष), तर्जनी मुद्रा, गदा, डमरु एवं अर्थिका धारण किये हुये हैं।

दोनों ऊपर वाले हाथों से क्रमश: शत्रु के जानु एवं मस्तक को पकड़े हुये, नीचे वाले दो हाथों से हिरण्यकशिपु को विदीर्ण करते हुये, आँतों की माला धारण किये हुये, भक्तों का प्रिय करने वाले एवं दैत्यों के लिये भयंकर, महामृत्यु-रूपी भय का हरण करने वाले भगवान् नृसिंह का प्रतिदिन स्मरण करना चाहिये।।१७८-१८३।।

अथोच्यते ध्यानमन्यन्मुखारोगभयङ्करम्।
विषरोगभियां मृत्योर्हरं शत्रुभयापहम् ॥१८४॥
स्वर्णौघतुल्यगरुडे स्थितं पूर्णेन्दुचन्द्रकम्।
सुमुखं विद्युदाभासं नेत्रत्रयविराजितम् ॥१८५॥
सुभूषं पीतवसनं शङ्खचक्राभयावरान्।
धारयन्तं चतुर्भिश्च करैः क्षेत्रादिनाशकम्।
अपमृत्युमहाकृत्यानाशकं नृहरिं स्मरेत् ॥१८६॥

अब मैं नृसिंह के अन्य ध्यान को कहता हूँ, जो भयंकर मुखरोग, विषोत्पन्न रोग एवं मृत्यु का हरण करने वाला तथा शत्रुभय को दूर करने वाला है। स्वर्णसमूह-सदृश गरुड़ पर विराजमान, पूर्णिमा के चन्द्र-सदृश सुन्दर मुख वाले, विद्युत् के समान

चमकते तीन नेत्रों से सुशोभित, सुन्दर आभूषणों से अलंकृत, पीत वस्त्र धारण किये हुये, चार हाथों के द्वारा शंख चक्र अभय एवं वर को धारण किये हुये, क्षेत्र आदि के विनाशक, अपमृत्यु-महाकृत्या आदि का नाश करने वाले नृसिंह का स्मरण करना चाहिये।।१८४-१८६।।

लक्ष्मीफलैस्त्रिमधुरैः सुगन्धैः कुसुमैर्हुनेत्।
अयुतं मधुराद्यैश्च दरिद्रो न भवेत्कलौ ।।१८७।।
उदुम्बरसमिद्धोमाद्धान्यसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम्।
अपूपलक्षहोमेन धनदेन समो भवेत् ।।१८८।।
क्रुद्धस्य सन्निधौ राज्ञो जपेदष्टोत्तरं शतम्।
सद्यो नैर्मल्यमाप्नोति प्रसादं चाधिगच्छति ।।१८९।।
कुन्दप्रसूनहोमेन स सौन्दर्यमवाप्स्यति।
मधूकपुष्पहोमेन चेष्टसिद्धिः प्रजायते ।।१९०।।
तुलसीपत्रहोमेन कीर्तिर्भवति नान्यथा।
शतहोमेन कालीनां वशीकरणमुत्तमम् ।।१९१।।
हरिद्राखण्डहोमेन स्तम्भनम्भवति ध्रुवम्।
बदरीफलहोमेन सर्वविघ्नः प्रणश्यति ।।१९२।।

श्रीफल, मधुरत्रय एवं सुगन्धित पुष्पों से हवन करना चाहिये। मधुरादि से दस हजार हवन करने वाला साधक कलियुग में दरिद्र नहीं होता। गूलर की समिधा के हवन से निश्चित धान्य-प्राप्ति होती है। एक लाख अपूपों के हवन से साधक कुबेर के समान हो जाता है।

क्रुद्ध राजा के निकट जाकर इस मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करने पर तत्काल ही राजा का क्रोध समाप्त हो जाता है एवं वह प्रसन्न हो जाता है। कुन्दपुष्पों के हवन से साधक सौन्दर्य प्राप्त करता है। महुआ के पुष्पों के हवन से इष्टसिद्धि होती है। तुलसीपत्रों के हवन से कीर्ति प्राप्त होती है। कृष्ण तुलसी के एक सौ हवन से उत्तम वशीकरण होता है। हल्दी के टुकड़ों से हवन करने पर निश्चित स्तम्भन होता है। बेर के फलों से हवन करने पर समस्त विघ्नों का नाश होता है।।१८७-१९२।।

रोगे मध्वाज्यसिक्ताश्च गुडूचीश्चतुरङ्गुलाः।
जुहुयादयुतं योऽसौ चिरञ्जीवति वत्सरान् ।।१९३।।
शनैश्चरदिनेऽश्वत्थं स्पृष्ट्वा चाष्टोत्तरं शतम्।
जपेज्जित्वा स मृत्युं वै शतवर्षाणि जीवति ।।१९४।।

श्रीप्रसूनैः प्रजुहुयात्तत्काष्ठैर्ज्वलितेऽनले ।
सहस्रमात्रेण ततो लक्ष्मीमाप्नोति निश्चितम् ।
दूर्वाहोमादरोगी स्याल्लक्ष्मीवाञ्छ्रीफलैर्भवेत् ॥१९५॥
अनेन मनुना जप्तान्वहं भूतिः शिवस्य च ।
वशिता प्रातरुत्थाय वाक्सिद्धिं सा प्रयच्छति ॥१९६॥

रोग से आक्रान्त होने पर जो साधक मधु एवं आज्य से सिक्त गुरुच के चार अंगुल लम्बे टुकड़ों से दस हजार हवन करता है, वह अनेक वर्षों तक जीवित रहता है। शनिवार को पीपल को स्पर्श करके जो साधक मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करता है, वह मृत्यु को जीतकर सौ वर्षों तक जीवित रहता है।

जो साधक लवङ्ग की लकड़ी से प्रज्वलित अग्नि में लवङ्गों से एक हजार हवन करता है, वह निश्चित ही लक्ष्मी प्राप्त करता है। दूर्वा के हवन से आरोग्य और श्रीफल के हवन से लक्ष्मी-प्राप्ति होती है। प्रतिदिन इस मन्त्र का जप करने वाले साधक को शिवैश्वर्य की प्राप्ति होती है। प्रातः उठकर जप करने से वाक्सिद्धि अधिगत होती है।।१९३-१९६।।

जले नृसिंहं सम्पूज्य चन्दनेन सुपुष्पकैः ।
अष्टोत्तरशतं नित्यं दूर्वाभिर्जुहुयात्सुधीः ॥१९७॥
क्षुद्रभूतज्वरास्तस्य विनश्यन्त्युपसर्गजाः ।
रात्रौ दृष्टे तु दुःस्वप्ने मन्त्री स्नात्वा मनुं जपेत् ।
रक्षां करोति दुष्टेभ्यो दुस्तरेभ्योऽपि मन्त्रिणः ॥१९८॥
मनुमेतं जपेद्यस्तु तस्य नाशयति क्षणात् ।
प्रेतग्रहमहारोगान् घोरं चैवाभिचारकम् ।
गदानन्यान् भयोत्पातदुःखानि हरते ध्रुवम् ॥१९९॥
मनुं प्रजपतो दुःखं नाशमेति सुमन्त्रिणः ।

प्रतिदिन चन्दन एवं सुन्दर पुष्पों से जल में नृसिंह का पूजन करने के पश्चात् जो विद्वान् साधक दूर्वा से एक सौ आठ बार हवन करता है, उसके क्षुद्र भूत-जन्य एवं उपसर्ग-जन्य ज्वरों का विनाश हो जाता है। मन्त्रज्ञ साधक को रात्रि में यदि दुःस्वप्न दिखाई दे तो उसे स्नान करके इस मन्त्र का जप करना चाहिये। ऐसा करने से उस मन्त्रज्ञ की दुष्टों एवं दुस्तरों से रक्षा होती है।

इस मन्त्र का जो जप करता है, निश्चित रूप से उसके प्रेत, ग्रह, महारोग, घोर अभिचार कर्म, अन्य रोग एवं भयोत्पादक दुःखों का विनाश हो जाता है। इस मन्त्र का जप करने वाले श्रेष्ठ मन्त्रज्ञ के दुःख नाश को प्राप्त हो जाते हैं।।१९७-१९९।।

क्रूरं नृसिंहं सञ्चिन्त्य शत्रुञ्च मृगशावकम् ॥२००॥
कन्धरायां गृहीत्वार्तं क्षिपन्तं दिक्षु चिन्तयेत्।
सबान्धवस्य झटिति तस्योच्चाटः प्रजायते ॥२०१॥
कृत्वावाग्दिशमुत्तानं युगपद्धरिणा स्वयम्।
नखरैर्दीर्यमाणं तं संस्मरेन्निशितैर्द्रुतम् ॥२०२॥
अष्टाधिकशतं चामुं जपेन्मनुमनन्यधीः।
भवेन्मण्डलमध्येऽयं दिवाकरसुतातिथिः ॥२०३॥
करवीरभवैः काष्ठैः सम्यक्सन्दीपितेऽनले।
रिपुसङ्क्षयकरं नृसिंहं चन्दनादिभिः ॥२०४॥
सम्यगभ्यर्च्य जुहुयाच्छरान् साग्रान् सशूलकान्।
सहस्रमेकं च मनुं भक्षयेच्छत्रुमुत्कटम् ॥२०५॥
एवं शरान् विनिःक्षिप्य शत्रुसेनां विदारयेत्।

जो साधक नृसिंह के क्रूर स्वरूप का ध्यान करते हुये मृगशावक-रूप शत्रु को गरदन से पकड़कर दिशाओं में फेंकता हुआ चिन्तन करता है, उस शत्रु का परिवार-सहित अकस्मात् उच्चाटन हो जाता है।

हरि द्वारा एक ही समय में दक्षिण दिशा की ओर सीधे लेटे हुये एवं तीक्ष्ण नखों से विदीर्ण करते हुये उनके स्वरूप का ध्यान करके एकाग्र मन से इस मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करने से बीस दिनों के भीतर शत्रु दिवाकरपुत्र (यमराज) का अतिथि हो जाता है।

शत्रुओं के विनाशक नृसिंह का कनेर की लकड़ी से प्रज्वलित अग्नि में चन्दन आदि से सम्यक् रूप से पूजन करने के पश्चात् अग्रभाग पर शूल लगे बाणों से मन्त्र द्वारा एक हजार आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करने से उत्कट शत्रु का भी विनाश हो जाता है। उन बाणों को फेंककर साधक शत्रुसेना को विदीर्ण कर देता है।।२००-२०५।।

जुहुयात्सप्तदिवसांस्ततो राज्ञश्चमूं सुधीः ॥२०६॥
सुदिने च शुभे लग्ने शत्रुसैन्यजिगीषया।
प्रस्थापयेत्तां सुदृढां रक्षितां बलिभिर्नरैः ॥२०७॥
तदग्रे चिन्तयेद्देवं नृसिंहं शत्रुसञ्चयम्।
भक्षयन्तं यजेन्मन्त्री कुर्यादायाति सा चमूः ॥२०८॥
यावत्तावद्रिपुं जित्वा सर्वान् राजश्रिया सह।
आगच्छेद् भूपतिः शूरः पश्चान्मन्त्रिणमादरात् ॥२०९॥

तोषयेत्क्षेत्रवसुभिर्वस्त्रालङ्करणैः शुभैः ।
मन्त्रिणो यदि सन्तोषो न भवेद्भूपतेस्तदा ।।२१०।।
अनर्थः सुमहानेव जायते दुःसहो भृशम् ।

सात दिनों तक हवन करने के बाद शुभ दिन और शुभ लग्न में शत्रुसेना को जीतने की इच्छा से बलशाली पुरुषों द्वारा दृढ़ता-पूर्वक रक्षित राजसेना को भेजकर 'उस राजसेना के आगे चल रहे भगवान् नृसिंह शत्रुसेना का भक्षण कर रहे हैं' इस प्रकार चिन्तन करते हुये मन्त्रज्ञ साधक द्वारा देवता का पूजन करना चाहिये। जबतक वह मन्त्रज्ञ साधक देवता का पूजन समाप्त करता है, उतने ही समय में राजसेना शत्रुसेना को विजित करके राजलक्ष्मी के साथ वापस लौट आती है। इसके बाद वीर राजा द्वारा आदर-पूर्वक मन्त्रज्ञ साधक को क्षेत्र, धन, वस्त्र, आभूषण आदि प्रदान करके सन्तुष्ट करना चाहिये। मन्त्रज्ञ साधक यदि सन्तुष्ट नहीं होता तो राजा के लिये महान् अनर्थकारी होता है, जो सर्वथा असहनीय होता है।।२०६-२१०।।

नृसिंहस्यैकाक्षरमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि द्वितीयं नृहरिं विभुम् ।।२११।।
क्ष्रौमित्येकाक्षरो मन्त्रो मुनिरत्रिः प्रकीर्तितः ।
गायत्री छन्द उद्दिष्टं देवता नृहरिः स्मृतः ।।२१२।।
षड्दीर्घयुक्तबीजेन षडङ्गानि समाचरेत् ।
एकलक्षं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी जितेन्द्रियः ।।२१३।।
जुहुयात्तद्दशांशं तु घृताक्तैः पायसैः शुभैः ।
तर्पयेत्क्षुद्रसलिलैः कृत्वा चात्माभिषेचनम् ।।२१४।।
ब्राह्मणान् सम्यगाराध्य सिद्धमन्त्रः समाचरेत् ।
मन्त्रराजोदितान् सर्वान् प्रयोगानत्र साधकः ।।२१५।।

नृसिंह का एकाक्षर मन्त्र—अब भगवान् नृसिंह के दूसरे एकाक्षर मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—क्ष्रौं। इस एकाक्षर मन्त्र के ऋषि अत्रि, छन्द गायत्री एवं देवता नृसिंह कहे गये हैं। बीजमन्त्र के छः दीर्घ स्वरूपों से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। हविष्य भक्षण करने वाले जितेन्द्रिय साधक को इस मन्त्र का एक लाख जप करने के बाद घृत-सिक्त पायस से कृत जप का दशांश (दस हजार) हवन करना चाहिये। इसके बाद सामान्य जल से तर्पण करने के बाद स्वयं का अभिषेक (मार्जन) करना चाहिये। तत्पश्चात् ब्राह्मणभोजन कराकर सिद्ध मन्त्र द्वारा पूर्वमन्त्र के साथ कथित समस्त प्रयोगों का इस मन्त्र से भी सम्पादन करना चाहिये।।२११-२१५।।

अष्टाधिकसहस्रेण जपितैः कलशोदकैः।
विषार्तमभिषिञ्चेत मुच्यते हि विषेण सः ॥२१६॥
मुच्यतेऽन्यैस्तथा तैस्तु लूतामूषकजैरपि।
बहुपद्वृश्चिकोत्थैश्च विषैर्मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ॥२१६॥
जपितं मनुनानेन भस्म चाष्टोत्तरं शतम्।
शिरोऽक्षिकर्णहृत्कुक्षिकण्ठरोगान् विनाशयेत् ॥२१८॥
विसर्पञ्च वमिं हिक्कां ज्वरांश्चैव विनाशयेत्।
मन्त्रौषधादिसम्भूतानभिचारान् विकारकान्।
शमयेद्भस्मसंलिप्तं नात्र कार्या विचारणा ॥२१९॥
मृत्युस्थाने लिखेन्मन्त्री संसाध्यं च दहन्निव।
क्रूरेण चक्षुषा पश्यञ्जपेदष्टदिनावधि।
अष्टाधिकसहस्रञ्च म्रियते रिपुरस्य हि ॥२२०॥
वश्यमाकर्षविद्वेषौ महाचण्डादिकर्म च।
कुर्यादयुतजापेन तत्तदर्हणकर्मणा।
अयमेकाक्षरो मन्त्रः प्रोक्तः सर्वसमृद्धिदः ॥२२१॥

एक हजार आठ मन्त्रजप से अभिमन्त्रित कलशजल द्वारा अभिषेक करने से विषार्त्त व्यक्ति विष से मुक्त हो जाता है; साथ ही लूता-मूषक-वृश्चिक आदि अन्य जन्तुओं के विषों से भी मुक्ति मिल जाती है।

इस मन्त्र के एक सौ आठ जप से अभिमन्त्रित भस्म शिर, आँख, कान, हृदय, कुक्षि और कण्ठ के रोगों को विनष्ट कर देता है; साथ ही वीसर्प, वमि, हिक्का एवं ज्वरों का भी नाश कर देता है। इस भस्म का लेप लगाने से मन्त्र-औषध आदि से उत्पन्न विकार वाले अभिचारों का भी शमन हो जाता है; इसमें कोई शंका नहीं करनी चाहिये।

साध्य का नाम मृत्युस्थान में लिखकर उसे जलाते हुये के समान क्रूर दृष्टि से देखते हुये आठ दिनों तक प्रतिदिन मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करने से शत्रु की मृत्यु हो जाती है। वशीकरण, आकर्षण, विद्वेषण, महाचण्ड आदि कर्मों में तत्सम्बन्धी पूजन कर्म का सम्पादन करते हुये मन्त्र का दस हजार जप करने से शान्ति होती है। यह एकाक्षर मन्त्र समस्त समृद्धियों को देने वाला कहा गया है।।२१६-२२१।।

षडक्षरनृसिंहमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि तृतीयं नृहरेर्मनुम्।
आं ह्रीं ज्रौं क्रौं ह्रां फडिति षडर्णो मन्त्र ईरितः ॥२२२॥

पंक्तिश्छन्दो मुनिर्ब्रह्मा श्रीनृसिंहस्तु देवता।
मन्त्रवर्णैरङ्गषट्कं कृत्वा ध्यायेन्नृसिंहकम् ॥२२३॥
भीषणास्य: क्रोधदीप्तो रक्तवर्णेन्दुशेखर:।
सोमसूर्याग्निनेत्रश्च नानामणिविभूषित: ॥२२४॥
दक्षाद्यूर्ध्वक्रमेणैव चक्रशङ्खौ गुणाङ्कुशौ।
वज्रं गदां दारयन्तं द्वाभ्यां दैत्येश्वरोदरम् ॥२२५॥

षडक्षर नृसिंह-मन्त्र—अब मैं नृसिंह के तीसरे मन्त्र को कहता हूँ। छ: अक्षरों का मन्त्र है—आं ह्लीं ज्रों क्रों ह्रां फट्। इस मन्त्र के मुनि ब्रह्मा, छन्द पंक्ति एवं देवता श्रीनृसिंह कहे गये हैं। मन्त्र के छ: वर्णों से षडङ्गन्यास करने के पश्चात् नृसिंह का इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—उनका मुख भयंकर है, क्रोध से धधक रहे हैं, वे रक्त वर्ण के हैं, उनके माथे पर चन्द्रमा है, सोम-सूर्य एवं अग्निस्वरूप तीन नेत्र हैं एवं वे अनेक मणियों से विभूषित हैं। दाहिने उपरि क्रम से उनके छ: हाथों में चक्र शंख प्रत्यञ्चा अंकुश वज्र एवं गदा सुशोभित है तथा दो हाथों से वे दैत्यराज के उदर को विदीर्ण कर रहे हैं।।२२२-२२५।।

पूर्वोदिते यजेत्पीठे मूर्तिं मूलेन कल्पयेत्।
तस्यां सम्पूज्य नृहरिं कुर्यादावरणार्चनम् ॥२२६॥
तद्बाह्ये षड्दलेऽङ्गानि तदस्त्राण्यष्टपत्रके ॥२२७॥
अरि शङ्खं गुणं चैव सृणिं च कुलिशं गदाम्।
खड्गं खेटं च तद्बाह्ये भूपुरे तु दिगीश्वरान् ॥२२८॥
तदायुधानि तद्बाह्ये नृहरेरिति पूजनम्।
लक्षषट्कं जपेन्मन्त्रं केवलेन घृतेन च ॥२२९॥
जुहुयात्षट्सहस्राणि तर्पणादि ततश्चरेत्।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगानाचरेत्तत: ॥२३०॥

पूर्वोक्त पीठ पर पूजन करके मूल मन्त्र से मूर्ति की कल्पना करके उस मूर्ति में नृसिंह का पूजन करने के उपरान्त आवरण-पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् उसके बाहर षड्दल में षडङ्ग-पूजन करने के बाद अष्टपत्र में उनके अस्त्रों—चक्र, शंख, प्रत्यञ्चा, सृणि, कुलिश, गदा, खड्ग एवं खेट का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर उसके बाहर भूपुर में दिक्पालों का पूजन करने के बाद उसके बाहर उनके अस्त्रों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार नृसिंह का पूजन सम्पन्न हो जाता है। इसके बाद मन्त्र का छ: लाख जप करने के पश्चात् केवल घृत से छ: हजार हवन करना चाहिये। तदनन्तर तर्पण

आदि करना चाहिये। इस प्रकार सिद्ध मन्त्र से मन्त्रज्ञ साधक को प्रयोगों का सम्पादन करना चाहिये।।२२६-२३०।।

अपामार्गसमिद्भिश्च पूताभिः पञ्चगव्यकैः।
जुहुयाच्च सहस्रैकं सप्ताहं भूतशान्तये ॥२३१॥
गुडूचीसमिधो दुग्धलोडिताश्च सहस्रकम्।
चतुर्दिनं प्रजुहुयाज्ज्वरशान्तिः प्रजायते ॥२३२॥
रक्तोत्पलैः प्रत्यहं यो मधुरत्रयलोडितैः।
सहस्रसङ्ख्यं जुहुयात्पायसेनेष्टमाप्नुयात्।
मन्त्रजापी वत्सरेण धनधान्यसमृद्धियुक् ॥२३३॥
प्रफुल्लैस्तरुणाम्भोजैर्मधुरत्रयलोडितैः।
सहस्रद्वादशमितं हुत्वा सर्वजनप्रियः ॥२३४॥
प्रातस्त्रिमधुरोपेतलाजैर्हि पक्षमात्रकम्।
सहस्रं जुहुयात्कन्यां कन्यार्थी लभते ध्रुवम्।
वरार्थिनी लभेदाशु वरं सर्वमनोहरम् ॥२३५॥
तिलराजैरपामार्गैः पायसान्नैर्हुनेद् ध्रुवम्।
स दीर्घायुरवाप्नोति विमुक्तः सकलैर्गदैः।
कलत्रमित्रपुत्राद्यैर्धनधान्यसमन्वितः ॥२३६॥

भूतों की शान्ति के लिये सात दिनों तक प्रतिदिन अपामार्ग की समिधा को पञ्चगव्य से पवित्र करके एक हजार आहुतियों द्वारा हवन करना चाहिये। ज्वर की शान्ति के लिये चार दिनों तक प्रतिदिन गुरुच की समिधा को दूध में भिंगोकर एक हजार आहुतियों द्वारा हवन करना चाहिये।

जो साधक प्रतिदिन त्रिमधु-सिक्त रक्तकमलों एवं पायस से एक हजार की संख्या में हवन करता है, वह अपने अभीष्ट को प्राप्त कर लेता है। एक वर्ष तक प्रतिदिन इस मन्त्र का जप करने वाला साधक धन-धान्य से समृद्ध हो जाता है। त्रिमधु-सिक्त सद्यः विकसित कमलों से बारह हजार आहुतियों द्वारा हवन करने वाला साधक सबका प्रिय हो जाता है।

पक्षमात्र अर्थात् पन्द्रह दिनों तक प्रतिदिन त्रिमधु-सिक्त लाजा (धान का लावा) से एक हजार आहुतियों द्वारा हवन करने वाला (विवाहार्थ) कन्या-प्राप्ति का इच्छुक साधक निश्चित ही कन्या प्राप्त कर लेता है एवं वर-प्राप्ति की कामना वाली कन्या सर्वाङ्गसुन्दर वर प्राप्त करती है।

तिल, राई, अपामार्ग एवं पायसान्न से हवन करने वाला साधक समस्त रोगों से रहित रहते हुये पत्नी, मित्र, पुत्र के साथ-साथ धन-धान्य से समन्वित होकर दीर्घायु प्राप्त करता है।।२३१-२३६।।

तुल्यमन्वन्तरोद्भूतनृसिंहमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि तुल्यमन्वन्तरोद्भवम्।
ज्वालामालं नृसिंहं तु शत्रुभूतादिनाशकम्॥२३७॥
ॐ क्ष्रौं नमो भगवते नारसिंहाय संवदेत्।
ज्वालेति मालिने दीप्तदंष्ट्रायाग्निपदं वदेत्॥२३८॥
नेत्राय सर्वरक्षोघ्नाय सर्वपदमुच्चरेत्।
भूतविनाशनो ङेऽन्तः सर्वघोरविनाशनः॥२३९॥
ङेऽन्त एव द्विर्दहेति पच रक्षयुगं तथा।
हुंफट् स्वाहेति मन्त्रोऽयं षष्टिषट्काक्षरो मतः॥२४०॥
ऋषिः प्रजापतिश्छन्दो गायत्री नृहरिः सुरः।
विश्वदिग्भवधृत्याशावेदार्णैः स्यात्षडङ्गकम्॥२४१॥
उद्यत्कालानलनिभं प्रलयाब्दसमस्वनम्।
शङ्खं चक्रमसिं खेटं दधानं दैवतैस्तुतम्॥२४२॥
षडक्षरोक्तविधिना पूजाद्यं चास्य कीर्तितम्।
लक्षं जपेद्दशांशं तु कपिलासर्पिषा हुनेत्॥२४३॥
तर्पणादि ततः कुर्यात्प्रयोगो मन्त्रराजवत्।
विशेषतोऽयं भूतादिज्वरहा परिकीर्तितः॥२४४॥

तुल्य मन्वन्तर में उद्भूत नृसिंह का मन्त्र—अब मैं शत्रु-भूत आदि के विनाशक, तुल्य मन्वन्तर में उद्भूत नृसिंह के ज्वालामालामन्त्र को कहता हूँ। छियासठ अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ क्ष्रौं नमो भगवते नारसिंहाय ज्वालामालिने दीप्तदंष्ट्रायाग्निनेत्राय सर्वरक्षोघ्नाय सर्वभूतविनाशनाय सर्वघोरविनाशनाय दह दह पच पच रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि प्रजापति, छन्द गायत्री एवं देवता नृसिंह कहे गये हैं। मन्त्र के चौदह, दस, ग्यारह, सोलह, दस, चार वर्णों से क्रमशः इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये। इसके बाद उदीयमान प्रलयाग्नि के समान, प्रलयकालीन मेघ के सदृश ध्वनि वाले, हाथों में शंख चक्र खड्ग एवं खेट धारण किये हुये, देवताओं द्वारा स्तुत नृहरि का ध्यान करना चाहिये। इसका पूजन आदि षडक्षर मन्त्र के समान कहा गया है।

पूजन के उपरान्त इस मन्त्र का एक लाख जप करने के पश्चात् कपिला गौ के

घृत से दस हजार हवन करना चाहिये। इसके बाद तर्पण-मार्जन आदि करना चाहिये। मन्त्रराज के समान ही इसके प्रयोग कहे गये हैं। यह मन्त्र विशेषतया भूतादि ज्वर का विनाशक कहा गया है।।२३७-२४४।।

लक्ष्मीनृसिंहमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि यो जातश्चरमे विभुः।
मन्वन्तरे सलक्ष्मीकः सेव्यते यो गृहस्थितैः ।।२४५।।
ओं श्रींह्लींश्रीं जय लक्ष्मीप्रियाय नित्यशब्दतः।
प्रमुदितपदं प्रोच्य चेतसे च ततो वदेत् ।।२४६।।
लक्ष्मीश्रितार्धदेहाय श्रीं ह्लीं श्रीं च ततो नमः।
देववर्णो मनुः प्रोक्तो जपतां सर्वकामदः ।।२४७।।
लक्ष्मीनृसिंहो देवोऽस्य छन्दोऽनुष्टुप्प्रकीर्तितम्।
मुनिः प्रजापतिः प्रोक्तः श्रींबीजेन षडङ्गकम् ।।२४८।।
पुरस्तात्केशवः पातु शङ्खचक्रगदाधरः।
पश्चान्नारायणः शश्वन्नीलजीमूतसन्निभः ।।२४९।।
इन्दीवरदलश्याम ऊर्ध्वं मे माधवो गदी।
गोविन्दो दक्षिणे पार्श्वे धन्वी चन्द्रप्रभो महान् ।।२५०।।
उत्तरे हलधृग्विष्णुः पद्मकिञ्जल्कसन्निभः।
आग्नेय्यामरविन्दाक्षो मुसली मधुसदनः ।।२५१।।
त्रिविक्रमः खड्गपाणिनैर्ऋत्यां ज्वलनप्रभुः।
वायव्यां वामनो वज्री तरुणादित्यदीप्तिमान् ।।२५२।।
ऐशान्यां पुण्डरीकाक्षः श्रीधरः पट्टिशायुधः।
विद्युत्प्रभो हृषीकेशो वायव्यां दिशि मूर्द्धनि ।।२५३।।
हृत्पद्मं पद्मनाभो मे सहस्रार्कसमप्रभः।
सर्वायुधः सर्वशक्तिः सर्वज्ञः सर्वतोमुखः ।।२५४।।
इन्द्रगोपकसङ्काशः पाशहस्तोऽपराजितः।
सबाह्याभ्यन्तरं देहं व्याप्य दामोदरः स्थितः ।।२५५।।
एवं सर्वत्र निश्छिद्रं नामद्वादशपञ्जरम्।
प्रविष्टोऽहं न मे किञ्चिद्भयमस्ति कदाचन ।।२५६।।
इति न्यासं विधायादौ लक्ष्मीनरहरिं स्मरेत्।

लक्ष्मीनृसिंह मन्त्र—अब मैं अन्तिम मन्वन्तर में अवतरित एवं गृहस्थों द्वारा

लक्ष्मी-सहित आराधना किये जाने वाले लक्ष्मीनृसिंह के मन्त्र को कहता हूँ। जपमात्र से समस्त कामनाओं को प्रदान करने वाला तैंतीस अक्षरों का वह मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं जय लक्ष्मीप्रियाय नित्यप्रमुदितचेतसे लक्ष्मीश्रितार्धदेहाय श्रीं ह्रीं श्रीं नमः। इस मन्त्र के ऋषि प्रजापति, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता लक्ष्मीनृसिंह कहे गये हैं। श्रीं बीज से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये।

इसके बाद मूलोक्त कवच का पाठ करना चाहिये; जिसका भावार्थ इस प्रकार है—सामने से शंख चक्र एवं गदा धारण करने वाले केशव मेरी रक्षा करें। पीछे से स्वर्ण-सदृश कान्तिमान नारायण रक्षा करें। ऊपर से कमलदल-सदृश श्याम वर्ण वाले गदाधारी माधव मेरी रक्षा करें। दाहिनी दिशा में चन्द्रमा के समान कान्तिमान धनुर्धारी गोविन्द मेरी रक्षा करें। उत्तर में कमलपुष्प-सदृश हल-धारी विष्णु मेरी रक्षा करें। अग्निकोण में मूसलधारी कमलनयन मधुसूदन मेरी रक्षा करें। हाथों में खड्ग धारण किये हुये जाज्वल्यमान प्रभु त्रिविक्रम नैर्ऋत्य कोण में तथा तरुण सूर्य के समान दीप्तिमान वज्रधारी वामन वायव्य कोण में मेरी रक्षा करें। ईशान कोण में पट्टिशरूपी अस्त्रधारी पुण्डरीकाक्ष श्रीधर मेरी रक्षा करें तथा पश्चिम दिशा में विद्युत् के समान कान्तिमान हृषीकेश मेरे मूर्धा की रक्षा करें। मेरे हृदयकमल की रक्षा हजारो सूर्य के समान् कान्तिमान पद्मनाभ करें। समस्त आयुधों एवं शक्तियों से समन्वित, सबकुछ जानने वाले, चारो ओर मुख वाले, इन्द्रगोप-सदृश वर्ण वाले, हाथ में पाश धारण किये हुये, किसी से भी पराजित न होने वाले भगवान् दामोदर बाहर-भीतर से मेरे सम्पूर्ण शरीर को व्याप्त करके स्थित रहें। इस प्रकार भगवान् के बारह नामों द्वारा छिद्र-रहित शरीररूपी पिंजड़े में मैं प्रविष्ट हूँ और मुझे कभी भी कोई भय नहीं है। इस प्रकार से न्यास करने के बाद प्रभु लक्ष्मीनृसिंह का ध्यान करना चाहिये।।२४५-२५६।।

सर्पेन्द्रभोगशयनः सर्पेन्द्राभोगछत्रवान् ।।२५७।।
आलिङ्गितश्च रमया दीप्तभासेन्दुसन्निभः ।
पद्मचक्रवराभीतिधरस्त्र्यक्षेन्दुशेखरः ।।२५८।।
एवं ध्यात्वा यजेत्पीठे पूर्वोक्ते तु गृहाश्रमी ।
अङ्गानि षड्दलेऽभ्यर्च्य शक्तीश्चाष्टदले यजेत् ।।२५९।।
भास्वरी भास्करी चित्रा द्युतिरुन्मीलिनी तथा ।
रमा कान्तिर्धृतिश्चेति भूपुरे तु दिगीश्वरान् ।।२६०।।
तदायुधानीति भवेच्चतुरावृतिपूजनम् ।
षष्ट्युत्तरं त्रिलक्षं च प्रजपेत्तत्सहस्रकम् ।।२६१।।
मध्वक्तमल्लिकापुष्पैर्जुहुयान्मन्त्रवित्तमः ।
अभ्यर्च्य सलिले देवं तर्पयेन्मन्त्रनामतः ।।२६२।।

अभिषिञ्चेच्च मूर्द्धानं ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः।
ततः प्रयोगान् कुर्वीत साधको निजवाञ्छितान्॥२६३॥
मल्लिकाकुसुमैर्होमः सर्वकामकरः शुभः।
अनुष्टुबुक्तांस्तत्रापि सर्वान् कुर्याद् गृहाश्रमी॥२६४॥

नागराज पर शयन करने वाले, नागराज के फणों का छत्र धारण किये हुये, लक्ष्मी द्वारा आलिङ्गित, प्रकाशमान चन्द्रमा के सदृश कान्तिमान, हाथों में पद्म चक्र वर एवं अभय धारण किये हुये, तीन नेत्रों वाले, शीर्ष पर चन्द्रमा को धारण किये हुये भगवान् लक्ष्मीनृसिंह का ध्यान करके गृहस्थ साधक को पूर्वोक्त पीठ पर देवता का यजन करके षड्दल में षडङ्ग-पूजन करना चाहिये। इसके बाद अष्टदल में भास्वरी, भास्करी, चित्रा, द्युति, उन्मीलिनी, रमा, कान्ति एवं धृति—इन आठ शक्तियों का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् भूपुर में दिक्पालों का एवं उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार चार आवरणों में इनका पूजन सम्पन्न होता है।

पूजन के उपरान्त मन्त्रज्ञ साधक को तीन लाख साठ हजार मन्त्रजप करके मध्वक्त मल्लिकापुष्पों से छत्तीस हजार हवन करना चाहिये। तदनन्तर जल में देवता का पूजन करने के उपरान्त नाममन्त्र से तर्पण करने के बाद मूर्धा पर अभिषेक करना चाहिये। इसके बाद ब्राह्मणों को भोजन कराकर साधक को अपने अभीष्ट प्रयोगों का सम्पादन करना चाहिये। मल्लिकापुष्पों के हवन से समस्त शुभ कार्य सम्पन्न होते हैं। गृहस्थ साधक को अनुष्टुप् मन्त्र में कथित समस्त प्रयोगों का भी इस मन्त्र से साधन करना चाहिये।।२५७-२६४।।

षष्ठमन्वन्तरोद्भूतलक्ष्मीनृसिंहमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि षष्ठे मन्वन्तरेऽभवत्।
लक्ष्म्या सह नृसिंहो यस्तन्मन्त्रं सर्वकामदम्॥२६५॥
ॐ श्रीं लक्ष्मीनृसिंहाय मनुरष्टाक्षरो मतः।
मुनिः प्रजापतिश्छन्दो लक्ष्मीर्वा नृहरिः सुरः॥२६६॥
षड्दीर्घयुक्तक्ष्रौंबीजैः षडङ्गविधिरीरितः।
ध्यानपूजादिकं सर्वं षडक्षरवदीरितम्॥२६७॥
वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं घृतप्लुतैः।
पायसैर्जुहुयात्तत्र मन्त्रतर्पणमाचरेत्॥२६८॥

षष्ठ मन्वन्तरोद्भूत लक्ष्मीनृसिंह मन्त्र—अब मैं छठे मन्वन्तर में अवतरित लक्ष्मी-नृसिंह के सर्वकामप्रद मन्त्र को कहता हूँ। वह अष्टाक्षर मन्त्र है—ॐ श्रीं लक्ष्मीनृसिंहाय।

इस मन्त्र के ऋषि प्रजापति, छन्द लक्ष्मी एवं देवता नृसिंह कहे गये हैं। 'क्ष्रौं' बीज के छः दीर्घ स्वरूपों (क्ष्रां क्ष्रीं क्ष्रूं क्ष्रैं क्ष्रौं क्ष्रः) से इसका षडङ्गन्यास कहा गया है। इसके ध्यान-पूजन आदि सबकुछ पूर्वोक्त षडक्षर मन्त्र के समान कहे गये हैं। इस मन्त्र का आठ लाख जप करने के बाद घृत-प्लुत पायस से कृत जप का दशांश (अस्सी हजार) हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् तर्पण-मार्जन करना चाहिये।।२६५-२६८।।

सप्तममन्वन्तरोद्भूतनृसिंहमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि यो जातः सप्तमे हरिः।
जयजयश्रीनृसिंह मनुरष्टाक्षरो मतः ॥२६९॥
ऋष्याद्यष्टार्णवत्प्रोक्तं पूजा चास्य षडर्णवत्।
एकार्णवत्प्रयोगांश्च गृहस्थः साधयेच्छुचिः ॥२७०॥

सप्तम मन्वन्तरोद्भूत नृसिंह का मन्त्र—अब मैं सातवें मन्वन्तर में अवतरित नृसिंह के मन्त्र को कहता हूँ। वह अष्टाक्षर मन्त्र कहा गया है—जय जय श्रीनृसिंह। इस मन्त्र के ऋषि-छन्द आदि पूर्वोक्त अष्टाक्षर मन्त्र के समान कहे गये हैं। इसका पूजन षडक्षर मन्त्र के समान होता है। गृहस्थ साधक को पवित्र होकर एकाक्षर मन्त्र में कथित प्रयोगों का इस मन्त्र से भी सम्पादन करना चाहिये।।२६९-२७०।।

अष्टममन्वन्तरोद्भूतनृसिंहमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि त्वष्टमे यस्त्वजायत।
दशावतारो नृहरिर्दक्षसावर्णिकोऽत्र चेत् ॥२७१॥
ॐक्ष्रौं नमो भगवते नरसिंहाय संवदेत्।
ॐक्ष्रौं च मत्स्यरूपाय ॐक्ष्रौं कूर्मोऽपि ङेऽन्तकः ॥२७२॥
ॐक्ष्रौं वराहरूपाय ॐक्ष्रौं चैव पुनर्वदेत्।
तथा नृसिंहरूपाय ॐक्ष्रौं वामनतस्तथा ॥२७३॥
रूपाय ॐॐॐक्ष्रौंक्ष्रौंक्ष्रौं रामायेति कीर्तयेत् ॥२७४॥
ॐक्ष्रौं कृष्णाय ॐक्ष्रौं च कल्किने संवदेत्ततः।
नयशब्दद्वयान्ते तु शालग्रामनिवासिने ॥२७५॥
दिव्यसिंहायेति चोक्त्वा वदेत्पश्चात्स्वयंभुवे।
पुरुषाय नम ॐक्ष्रौं एकोनशतवर्णकः ॥२७६॥
छन्दोतिजगती प्रोक्तं ऋषिरत्रिः प्रकीर्तितः।
दशावतारनृहरिर्देवता सर्वकामदः ॥२७७॥

षड्दीर्घयुक्तबीजेन षडङ्गानि प्रकल्पयेत्।
मन्त्रराजवदेतस्य ध्यानपूजादिकं भवेत् ॥२७८॥
यजेत्षडङ्गपूजान्ते मत्स्यादीनवतारकान्।
अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं साधयेद्धविषा ततः ॥२७९॥
जुहुयात्तद्दशांशेन तर्पणादि ततश्चरेत्।
काम्यकर्माणि सर्वाणि मन्त्रराजवदेव हि ॥२८०॥
अस्य संसेवनाद्विप्रा ब्रह्मचर्यादिविच्युताः।
नृसिंहरूपतां प्राप्य जाताः स्थाने नृसिंहकाः ॥२८१॥
प्रविशन्ति च ते नेह सम्यक्कुर्वन्ति पूजिताः।
अत्र बीजाक्षरत्यागान्नानाबीजादियोजनात्।
जायन्ते कोटिशो मन्त्राः शूद्रसिद्धिविधायकाः ॥२८२॥
लोभाधिक्यात्कलियुगे न गुरुर्न च देवता।
एकं श्रेयस्करं प्रोक्तं नृहरेर्नामगर्जनम् ॥२८३॥

अष्टम मन्वन्तरोद्भूत नृसिंह-मन्त्र—अब मैं दक्षसावर्णि मनु के आठवें मन्वन्तर में नृसिंह के जो दस अवतार हुये थे, उनके मन्त्र को कहता हूँ। निन्यानबे अक्षरों का मन्त्र है—ॐ क्ष्रौं नमो भगवते नरसिंहाय ॐ क्ष्रौं मत्स्यरूपाय ॐ क्ष्रौं कूर्मरूपाय ॐ क्ष्रौं वराहरूपाय ॐ क्ष्रौं नृसिंहरूपाय ॐ क्ष्रौं वामनरूपाय ॐ ॐ ॐ क्ष्रौं क्ष्रौं क्ष्रौं रामाय ॐ क्ष्रौं कृष्णाय ॐ क्ष्रौं कल्किने नय नय शालग्रामनिवासिने दिव्यसिंहाय स्वयम्भुवे पुरुषाय नमः ॐ क्ष्रौं।

इस मन्त्र के ऋषि अत्रि, छन्द अतिजगती एवं देवता सर्वकामप्रद दशावतार नृहरि कहे गये हैं। बीजमन्त्र (क्ष्रौं) के छः दीर्घ स्वरूपों (क्ष्रां क्ष्रीं क्ष्रूं क्ष्रैं क्ष्रौं क्ष्रः) से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये। एकाक्षर मन्त्रराज के समान इसके ध्यान-पूजन आदि होते हैं। षडङ्ग-पूजन करने के बाद मत्स्यादि दस अवतारों का पूजन करके मन्त्र का दस हजार जप करना चाहिये। इसके बाद हविष्य से कृत जप का दशांश (एक हजार) हवन करने के उपरान्त तर्पण-मार्जन आदि करना चाहिये। तत्पश्चात् एकाक्षर मन्त्रराज के समान ही समस्त काम्य कर्मों का सम्पादन करना चाहिये।

सम्यक् रूप से नृसिंह का पूजन करके इस मन्त्र की आराधना करने वाले ब्रह्मचर्य आदि से विच्युत ब्राह्मण नृसिंहरूपता को प्राप्त कर नृसिंह लोक में गमन करते हैं और वे पुनः इस लोक में जन्म-ग्रहण नहीं करते। इस मन्त्र में उक्त बीजाक्षर का त्याग करके अनेक बीज आदि का संयोजन करने से शूद्रों को सिद्धि प्रदान करने वाले करोड़ों मन्त्र

बनते हैं। लोभ की अधिकता के कारण कलियुग में न कोई गुरु होता है और न ही कोई देवता होते हैं; अपितु नृसिंह के नाम का उद्घोष ही एकमात्र कल्याणकारी होता है।।२७१-२८३।।

नवममन्वन्तरोद्भूतनृसिंहमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि जायते नवमे तु यः।
नरसिंहो वीरनामा शृणु तत्साधनं प्रिये ॥२८४॥
बाले च तरुणे वृद्धे प्रयोगार्थं मनुत्रयम्।
तारो नमो भगवते वीरान्ते नृपदं वदेत् ॥२८५॥
तद्युक्तं च वदेत्पश्चान्ङेऽन्तं सिंहपदं ततः।
पीनोर्ध्वाङ्गाय चेत्युक्त्वा चाग्निनेत्राय संवदेत् ॥२८६॥
सर्वभूतविनाशेति नायेत्युक्त्वा द्विधा दह।
रक्षयुग्मं च ह्रींयुग्मं रक्षरक्षाग्निगेहिनी ॥२८७॥
एवं हि प्रथमो मन्त्रो नृसिंहस्य समुद्धृतः।
वर्णास्त्रयोदश प्रोच्य नीलदीप्तपदं वदेत् ॥२८८॥
दंष्ट्राय चाग्निनेत्राय सर्वरक्षो वदेत्ततः।
घ्नायोक्त्वा सर्वभूतेति वदेद् ङेऽन्तं विनाशनम् ॥२८९॥
सर्वघोरविनाशाय हनद्वन्द्वं दहद्वयम्।
पचयुग्मं वधयुग्मं फट्स्वाहान्तो द्वितीयकः ॥२९०॥
तृतीयमथ वक्ष्यामि पूर्वोक्ताश्च त्रयोदश।
सर्वभूतेति सम्प्रोच्य ङेऽन्तं चैव विनाशनम् ॥२९१॥
सर्वघोरेति पूर्वोक्तं तथा सर्वपदं वदेत्।
रक्षोघ्नाय पदं चोक्त्वा हनद्वन्द्वं दहद्वयम् ॥२९२॥
पचद्वयं वधद्वन्द्वं रक्षयुग्मं च मां तथा।
हुंफट् स्वाहा तृतीयोऽयं मन्त्रश्चात्र समुद्धृतः ॥२९३॥
मन्त्रराजोक्तवच्चेषां पूजाद्यं सम्प्रकीर्तितम्।
मालामन्त्रा इमे ख्याता द्वैतसिद्धिविधायकाः ॥२९४॥

नवम मन्वन्तरोद्भूत नृसिंह-मन्त्र—हे प्रिये! अब मैं नवम मन्वन्तर में अवतरित वीर-नामक नृसिंह के साधन को कहता हूँ; तुम श्रवण करो। बालक, युवा एवं वृद्धों के प्रयोग के लिये इनके तीन प्रकार के मन्त्र होते हैं। नृसिंह का प्रथम मन्त्र इस प्रकार

कहा गया है—ॐ नमो भगवते वीरनृसिंहाय पीनोर्ध्वाङ्गाय अग्निनेत्राय सर्वभूतविनाशनाय दह दह रक्ष रक्ष ह्रीं ह्रीं रक्ष रक्ष स्वाहा।

आरम्भ के तेरह वर्णों (ॐ नमो भगवते वीरनृसिंहाय) का उच्चारण करके 'नीलदीप्तदंष्ट्रायाग्निनेत्राय सर्वरक्षोघ्नाय सर्वभूतविनाशनाय सर्वघोरविनाशाय हन हन दह दह पच पच वध वध फट् स्वाहा' का उच्चारण करने से नृसिंह का द्वितीय मन्त्र होता है।

अब तृतीय मन्त्र को कहता हूँ। पूर्वोक्त त्रयोदश वर्णों (ॐ नमो भगवते वीरनृसिंहाय) का उच्चारण करने के पश्चात् 'सर्वभूतविनाशनाय सर्वघोरविनाशनाय सर्वरक्षोघ्नाय हन हन दह दह पच पच वध वध रक्ष रक्ष मां हूँ फट् स्वाहा' का उच्चारण करने से तीसरा मन्त्र होता है।

पूर्वोक्त मन्त्रराज के समान ही इन तीनों मन्त्रों के पूजन आदि कहे गये हैं। ये तीनों ही मन्त्र द्वैतसिद्धि (लक्ष्मीनृसिंह की सिद्धि) प्रदान करने के लिये ख्यात हैं।।२८४-२९४।।

दशममन्वन्तरोद्भूतनृसिंहमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि दशमे जायते तु यः।
ॐक्ष्रौं महानृसिंहाय नमोऽन्तो दशवर्णकः ॥२९५॥
वामदेवो मुनिश्छन्दो विराड्देवो नृसिंहकः।
षड्दीर्घयुक्स्वबीजेन षडङ्गन्यासमाचरेत् ॥२९६॥
ध्यानपूजापुरश्चर्या होमो लक्ष्मीनृसिंहवत्।
वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं प्रयोगोऽष्टाक्षरोदितः ॥२९७॥

दशम मन्वन्तरोद्भूत नृसिंह-मन्त्र—अब मैं दशम मन्वन्तर के नृसिंह को कहता हूँ। दस अक्षरों का इनका मन्त्र है—ॐ क्ष्रौं महानृसिंहाय नमः। इस मन्त्र के ऋषि वामदेव, छन्द विराट् एवं देवता नृसिंह कहे गये हैं। इसके बीजमन्त्र (क्ष्रौं) के छः दीर्घ स्वरूपों (क्ष्रां क्ष्रीं क्ष्रूं क्ष्रैं क्ष्रौं क्ष्रः) से षडङ्गन्यास किया जाता है। इसके ध्यान, पूजन, पुरश्चरण एवं हवन लक्ष्मीनृसिंह मन्त्र के समान होते हैं। इस मन्त्र का वर्णलक्ष अर्थात् दस लाख जप किया जाता है एवं अष्टाक्षर मन्त्र के समान प्रयोग किया जाता है।।२९५-२९७।।

एकादशमन्वन्तरोद्भूतनृसिंहमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रमेकादशस्य तु।
ॐक्ष्रौं नमो भगवते नरसिंहाय मन्त्रकः।
त्रयोदशार्णा उद्दिष्टो भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ॥२९८॥
वामदेवो मुनिः प्रोक्तो जगती छन्द ईरितम्।

देवता नरसिंहोऽत्र स्वबीजेनाङ्गकल्पनम्।
ध्यानपूजाप्रयोगादि षडक्षरवदीरितम् ॥२९९॥

एकादश मन्वन्तरोद्भूत नृसिंह-मन्त्र—अब मैं एकादश मन्वन्तर के नृसिंह-मन्त्र को कहता हूँ। भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाला तेरह अक्षरों का यह मन्त्र है—ॐ क्षौं नमो भगवते नरसिंहाय। इस मन्त्र के ऋषि वामदेव, छन्द जगती एवं देवता नरसिंह कहे गये हैं। 'क्षौं' बीज के छः दीर्घ स्वरूपों से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये। इस मन्त्र के ध्यान-पूजन-प्रयोग आदि षडक्षर मन्त्र के समान कहे गये हैं।।२९८-२९९।।

द्वादशमन्वन्तरोद्भूतनृसिंहमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि द्वादशे योऽभिजायते।
काश्यां स नित्यं वसते दुष्टबुद्धिप्रचारकः ॥३००॥
तारं सहस्रारज्वालावर्त्तिने क्षां हनद्वयम्।
हुंफट् स्वाहा चोनविंशवर्णो मन्त्र उदीरितः ॥३०१॥
मुनिर्जयन्त आख्यातश्छन्दो गायत्रमीरितम्।
सुदर्शननृसिंहोऽस्य देवता परिकीर्तितः ॥३०२॥
चक्रराजाय हृत्प्रोक्तं ज्वालाचक्राय वै शिरः।
जगच्चक्राय च शिखा कवचं त्वस्य सम्मतम् ॥३०३॥
असुरान्तकचक्राय ह्यस्त्राय फडितीरितम्।
सुदर्शनायेति मनुः पञ्चाङ्गं समुदीरितम् ॥३०४॥
चक्राणां तु सभामध्ये कालाग्निसदृशप्रभम्।
चतुर्भुजं विवृत्तास्यं चतुश्चक्रधरं हरिम्।
तप्तकाञ्चनसङ्काशं त्रिनेत्रं चाद्यविग्रहम् ॥३०५॥
ध्यायेत्समस्तदुःखघ्नं तादृग्लक्ष्म्या समन्वितम्।
पूर्वोक्ते वैष्णवे पीठे पूजयेदुक्तवर्त्मना।
विदिक्ष्वग्रे च पञ्चाङ्गं क्रमाद्दिक्षु प्रपूजयेत् ॥३०६॥
जयां च विजयां पश्चादजितां चापराजिताम्।
विदिक्षु पूजयेत्पश्चान्मुदितां मोदिनीं तथा।
सहस्रां सिद्धिसञ्ज्ञां च लोकेशानायुधानि च ॥३०७॥
रविलक्षं जपेन्मन्त्रं दशांशैस्तु तिलैः शुभैः।
हुनेत्पुष्पैस्ततश्चापि चत्वारिंशत्सहस्रकैः ॥३०८॥

पुनराज्येन जुहुयात्सहस्रेण नमस्क्रियाम्।
तर्पणादि ततः कृत्वा प्रयोगानाचरेत्पुनः ॥३०९॥

द्वादश मन्वन्तरोद्भूत नृसिंह-मन्त्र—अब मैं काशी में नित्य निवास करने वाले तथा दुष्ट बुद्धि का प्रचार करने वाले द्वादश मन्वन्तर के नृसिंहमन्त्र को कहता हूँ। उन्तीस अक्षरों का इनका मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—ॐ सहस्रारज्वालावर्त्तिने क्ष्रां हन हन हुं फट् स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि जयन्त, छन्द गायत्री एवं देवता सुदर्शन नृसिंह कहे गये हैं। इसका पञ्चाङ्गन्यास इस प्रकार किया जाता है—चक्रराजाय नमः हृदयाय नमः, ज्वालाचक्राय शिरसे स्वाहा, जगच्चक्राय शिखायै वषट्, असुरान्तकचक्राय कवचाय हुम्, सुदर्शनाय अस्त्राय फट्।

तदनन्तर राष्ट्रों की सभा के मध्य में प्रलयाग्नि-सदृश दीप्तिमान, चार भुजाओं वाले, खुले हुये चार मुखों वाले, चक्र को धारण किये हुये, तीन नेत्रों वाले, तप्त स्वर्ण-सदृश, समस्त दुःखों का हरण करने वाले, लक्ष्मी से समन्वित आद्यविग्रह हरि का ध्यान करके पूर्वोक्त वैष्णवपीठ पर यथाविधि पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् विदिशाओं में और उनके आगे पञ्चाङ्ग-पूजन करने के बाद अष्टदल की पूर्वादि दिशाओं वाले दलों में जया, विजया, अजिता और अपराजिता का तथा आग्नेयादि कोणों वाले दलों में मुदिता, मोदिनी, सहस्रा एवं सिद्धि का पूजन करना चाहिये। इसके बाद भूपुर में इन्द्रादि दस दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन करने से इनका पूजन पूर्ण होता है।

पूजन के उपरान्त मन्त्र का बारह लाख जप सम्पन्न करके तिलों से कृत जप का दशांश (एक लाख बीस हजार) हवन करने के बाद पुनः तिलपुष्पों से चालीस हजार हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् पुनः गोघृत से मन्त्र के अन्त में नमः लगाकर एक हजार हवन करने के बाद तर्पण आदि करके प्रयोगों का सम्पादन करना चाहिये।।३००-३०९।।

विप्रो जपितुमीक्षेत कुशानास्तीर्य भूतले।
तस्मिन्देशे समाराध्य सुदर्शननृसिंहकम् ॥३१०॥
मन्त्रं सहस्रावृत्त्या तु जुहुयाद्देवसन्निधौ।
सहस्रं मूलमन्त्रेण ह्यपामार्गसमिद्वरैः ॥३११॥
तद्भस्म तिलकं कृत्वा निर्गच्छेच्छत्रुसन्निधौ।
दासवत्कुरुते शत्रून् सर्वान्नास्त्यत्र संशयः ॥३१२॥
अथ शत्रुमनुं स्मृत्वा तर्पणं चापि कारयेत्।
अयुतं जयमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥३१३॥
अथौदुम्बरपीठे च देवदेवं निवेशयेत्।
तस्याग्रे वर्त्तुले कुण्डे होतव्याज्यादिभिः शमीम् ॥३१४॥

अयुतं यो घृताक्तां तु मध्वक्तां वा जितेन्द्रियः।
जयमाप्नोति संग्रामे नित्यं परशुरामवत् ॥३१५॥
मन्त्रेणानेन जपितं तारहेमादिकञ्च यत्।
तेनाङ्गुलीयकं कृत्वा जपहोमादिसाधितम् ॥३१६॥
धारयेद्दक्षिणे हस्ते मृत्युरोगाञ्जयेदरीन्।
राज्ञः सकाशात्पूजां च लभते धारयेत्सदा ॥३१७॥

ब्राह्मण यदि इस मन्त्र का जप करना चाहता है तो भूतल पर कुशों का आसन बिछाकर उसी स्थान पर सुदर्शन नृसिंह की आराधना करके मन्त्र का एक हजार जप करने के पश्चात् देवता के समीप ही अपामार्ग की समिधा द्वारा मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुये एक हजार आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करना चाहिये। अनन्तर उस हवन के भस्म से तिलक लगाकर शत्रु के समीप जाने पर समस्त शत्रुओं को वह अपने दास के समान बना लेता है; इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिये। मन्त्र के साथ शत्रु का नाम जोड़कर दस हजार तर्पण करने वाला साधक शत्रु पर निश्चित विजय प्राप्त करता है।

औदुम्बर पीठ (गूलर की लकड़ी से निर्मित पीढ़ा) पर देवदेव का आवाहन करके उनके आगे गोलाकार कुण्ड बनाकर उसमें आज्य-सिक्त शमी की समिधाओं से हवन करना चाहिये। जो जितेन्द्रिय साधक घृत-सिक्त अथवा मधु-सिक्त शमी की समिधाओं से प्रतिदिन दस हजार हवन करता है, वह परशुराम के समान युद्ध में विजय प्राप्त करता है।

चाँदी, सुवर्ण आदि को इस मन्त्र के जप से अभिमन्त्रित करने के पश्चात् उससे अंगूठी बनवाकर उसे मन्त्रजप-होम आदि द्वारा सिद्ध करके जो साधक दाहिने हाथ में धारण करता है, वह मृत्यु-रोगादि शत्रुओं को जीत लेता है और सदा धारण करने से राजा द्वारा पूजनीय होता है।।३१०-३१७।।

जलं त्रिसप्तजपितं सर्वोदरगदान्तकृत्।
पुनर्नवाशिफानिष्कत्रयं लवणसंयुतम् ॥३१८॥
स्पृष्ट्वा जप्तं तच्च हरेद् गुल्मशूलादि मासतः।
मासमेकं प्रतिदिनं दुर्वाहोमसहस्रकम्।
कृत्वा सम्पूजयेद्देवं राजयक्ष्मा प्रणश्यति ॥३१९॥
तैलैर्वा मधुना वापि तादृग्घोमः प्रमेहहृत्।
नेत्ररोगः सहस्रेण पद्महोमेन नश्यति ॥३२०॥

द्विसप्तजप्ततोयेन क्षालनं नेत्ररोगहृत्।
दशधा जपततोयेन करकेणैव सेचयेत् ॥३२१॥
तावत्सम्मन्त्रितेनापि नवनीतेन लेपनात्।
सप्ताहमध्यात्सद्यो हि नाशयेत्तु विसर्पकान् ॥३२२॥
अपामार्गेण जुहुयान्नित्यमष्टोत्तरं शतम्।
यस्तु तावन्नमस्कारान् कुर्यान्न्यासमतन्द्रितः।
अपस्मारादिकान् सर्वान् ग्रहानन्यान् विनाशयेत्॥३२३॥
शुद्धाद्भिः पूरिते कुम्भे चन्द्रमण्डलमध्यगम्।
सुदर्शननृसिंहन्तु सुधाविग्रहधारिणम्।
यथावच्चिन्तयेत्तत्र पूजयेदुपचारकैः ॥३२४॥
जप्त्वा शतं सहस्रञ्च दष्टं तेनैव सेचयेत्।
तथा स्पृशेद्वामहस्तं ह्यङ्गस्पर्शाद्विषं हरेत् ॥३२५॥

इस मन्त्र के इक्कीस जप से अभिमंन्त्रित जल उदर के समस्त रोगों का नाशक होता है। लवण से संयुक्त तीन निष्क (अड़तालीस माशा) पुनर्नवा एवं कमलमूल का स्पर्श करके मन्त्रजप करने के पश्चात् एक मास-पर्यन्त उसका सेवन करने से गुल्म-शूल आदि नष्ट हो जाते हैं। एक मास-पर्यन्त प्रतिदिन दूर्वा से एक हजार आहुतियों द्वारा हवन करके देवता का पूजन करने पर राजयक्ष्मा का नाश हो जाता है।

इसी प्रकार से तेल अथवा मधु से सिक्त दूर्वा का हवन प्रमेह को नष्ट करने वाला होता है। एक हजार कमलों के हवन से नेत्ररोग समाप्त होते हैं। मन्त्र के चौदह जप से अभिमन्त्रित जल द्वारा प्रक्षालन करने से नेत्ररोग समाप्त होते हैं। दस जप द्वारा अभिमन्त्रित जल से करक (कमण्डलु) द्वारा ही सिंचन करने से एवं दस मन्त्रजप से ही अभिमन्त्रित मक्खन का लेप करने से एक सप्ताह के भीतर ही विसर्प रोग का नाश हो जाता है। जो साधक आलस्य-रहित होकर प्रतिदिन अपामार्ग की एक सौ आठ आहुतियों से हवन करता है एवं उतना ही नमस्कार करता है, वह अपस्मार आदि रोगें के साथ-साथ अन्य ग्रह-कृत रोगों का भी विनाश कर देता है।

शुद्ध जल से पूरित कुम्भ में चन्द्रमण्डल के मध्य में अमृतशरीरधारी सुदर्शन नृसिंह का चिन्तन करके वहीं पर विविध उपचारों से उनका पूजन करने के पश्चात् एक सौ अथवा एक हजार मन्त्रजप करके विषधर द्वारा दष्ट स्थान पर उक्त घटजल से सेचन करने एवं उसके बाँयें हाथ का स्पर्श करने से विष का प्रभाव समाप्त हो जाता है।।३१८-३२५।।

त्रयोदशमन्वन्तरोद्भूतनृसिंहमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्।
जातं त्रयोदशे देवं नृसिंहं क्ष्रौं तु सम्पुटम्॥३२६॥
मायया भोगदाता स्यात्प्रणवेन च मोक्षदः।
अस्य पूजाप्रयोगाद्यमेकाक्षरसमं भवेत्॥३२७॥

त्रयोदश मन्वन्तरोद्भूत नृसिंह-मन्त्र—अब मैं भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाले त्रयोदश मन्वन्तर में अवतरित नृसिंह के मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—क्ष्रौं। माया (ह्रीं) द्वारा सम्पुटित करने से यह मन्त्र भोग प्रदान करने वाला तथा प्रणव (ॐ) द्वारा सम्पुटित करने से मोक्ष प्रदान करने वाला होता है। इस मन्त्र के पूजन, प्रयोग आदि एकाक्षर मन्त्र के समान होते हैं।।३२६-३२७।।

चतुर्दशमन्वन्तरोद्भूतनृसिंहमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि जातं मन्वन्तरे विभुम्।
अभयाक्षो नृसिंहोऽयं समस्तभयनाशनः॥३२८॥
तारो नमो भगवते नरसिंहाय हृद्भवेत्।
तेजस्तेजस इत्युक्त्वा आविराविर्भवेति च॥३२९॥
वज्रनख वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् द्वीरन्धय।
तमोद्विर्ग्रसवह्निस्त्रीं वदेदभयमात्मनि॥३३०॥
भूयिष्ठा ॐक्ष्रौमिति च द्विषष्ट्यर्णो मनुर्मतः।
मुनिः शुकोऽतिजगती छन्दः प्राग्वद्द्विवाखिलम्॥३३१॥
चतुर्दशनृसिंहानां साधनं वेदबोधितम्।
तदत्र कथितं देवि भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्॥३३२॥

चतुर्दश मन्वन्तरोद्भूत नृसिंह-मन्त्र—अब मैं समस्त भय-विनाशक चौदहवें मन्वन्तर के अभयाक्ष नृसिंह-मन्त्र को कहता हूँ। बासठ अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमः तेजस्तेजस आविराविर्भव वज्रनख वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रन्धय रन्धय तमो ग्रस ग्रस स्वाहा अभयमात्मनि भूयिष्ठा ॐ क्ष्रौं। इस मन्त्र के ऋषि शुक, छन्द अतिजगती एवं देवता नृसिंह कहे गये हैं। इस मन्त्र की उपासना-सम्बन्धी समस्त क्रियायें पूर्ववत् होती हैं। हे देवि! इस प्रकार भुक्ति एवं मुक्ति-प्रदायक चौदह नृसिंहों के साधन की जो विधि वेद द्वारा निर्दिष्ट की गई है, उसे यहाँ कहा गया।।३२८-३३२।।

वामनमन्त्राणां विधिः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वामनस्य शुभान् मनून्।
मन्वन्तरन्तु प्रत्येकं सुरेशादपहृत्य वै॥३३३॥

पुनर्ददाति हरये त्रैलोक्यं स बलिर्नृपः ।
एकमन्वन्तरे शक्रः स्वयमेवाऽभवद्बलिः ॥३३४॥
एवं षड्वामनाः कल्पे तेषां मन्त्रान् वदाम्यहम् ।
ॐ नमो विष्णवे ब्रूयात्सुरान्ते पतये महा ॥३३५॥
बलाय वह्निगृहिणीं धृतिवर्णो मनुर्मतः ।
मुनिरिन्दुर्विराट् छन्दो देवता चैव वामनः ॥३३६॥
एकद्वित्र्याशुगशरनेत्रार्णैरङ्गकल्पनम् ।
भ्रूमध्यकण्ठहृदयनाभ्यङ्घ्र्याधारकेषु च ॥३३७॥
न्यसेन्मनोः षट् पदानि पदन्यासोऽयमीरितः ।
मूर्ध्नि नेत्रद्वये कर्णद्वये नसि मुखे तथा ॥३३८॥
कण्ठे हृदि तथा बाह्वोर्नाभौ पृष्ठे च गुह्यके ।
जान्वोश्च पादयोरग्निकाष्ठाङ्गन्यास ईरितः ॥३३९॥
मूर्ध्नि भाले दृशोः श्रोत्रे नस्यास्ये तालुकण्ठयोः ।
बाहुहृज्जठरे नाभौ गुह्योर्वोर्जानुजङ्घयोः ।
पादे पृष्ठे न्यसेद्वर्णान् वर्णन्यासोऽयमीरितः ॥३४०॥

वामन-मन्त्र—अब मैं वामन के कल्याणप्रद मन्त्रों को कहता हूँ। प्रत्येक मन्वन्तर में तीनों लोकों को इन्द्र से हस्तगत कर पुनः हरि के लिये जो दान कर देते हैं, वे राजा बलि हैं। एक मन्वन्तर में स्वयं बलि ही इन्द्र हुये थे। इस प्रकार एक कल्प में छः वामन होते हैं; उनके मन्त्रों को मैं कहता हूँ। अट्ठारह अक्षरों का मन्त्र है—ॐ नमो विष्णवे सुरपतये महाबलाय स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि चन्द्रमा, छन्द विराट् एवं देवता वामन कहे गये हैं।

मन्त्र के एक, दो, तीन, पाँच, पाँच एवं दो वर्णों से इसका षडङ्गन्यास करने के पश्चात् क्रमशः भ्रूमध्य, कण्ठ, हृदय, नाभि, पाद एवं मूलाधार में मन्त्र के छः पदों का न्यास करना चाहिये। यही पदन्यास कहा गया है। इसके बाद मूर्धा, दक्ष-वाम नेत्र, दक्ष-वाम कर्ण, नासिका, मुख, कण्ड, हृदय, दक्ष-वाम बाहु, नाभि, पृष्ठ, गुह्य, दक्ष-वाम जानु एवं दक्ष-वाम पाद—इन अट्ठारह स्थानों में मन्त्र के अट्ठारह वर्णों का न्यास करना चाहिये; यह अग्निकाष्ठाङ्ग न्यास कहलाता है।

इसके पश्चात् मूर्धा, ललाट, दोनों नेत्र, दोनों कर्ण, नासिका, मुख, तालु, कण्ठ, भुजद्वय, हृदय, उदर, नाभि, गुह्य, ऊरुद्वय, जानुद्वय, जंघाद्वय, पादद्वय एवं पृष्ठ में मन्त्र के प्रत्येक वर्णों का न्यास करना चाहिये; यह मन्त्रवर्णन्यास कहलाता है।।३३३-३४०।।

ज्वलन्मयूखकनकच्छत्राधः पुण्डरीकगम्।
पूर्णचन्द्रनिभं ध्यायेच्छ्रीभूम्याश्लिष्टपार्श्वकम्॥३४१॥
द्वीष्वङ्गुल्युच्छ्रयायामो मयूखस्फटिकप्रभः।
दध्यन्नं वामहस्तेन स्वर्णस्य चषकं दधत्।
पीयषपूर्णस्वर्णस्य कलशं दक्षिणे दधत्।
वैष्णवे पूजयेत्पीठे तत्र सूर्याग्निमण्डले॥३४२॥
सोमस्य मण्डलं पृष्ठं योगपीठस्वरूपकम्।
विष्णवे सह सोमाय त्रैलोक्याप्यायनाय च।
मन्त्रो ह्योङ्कारहृत्पूर्वः स्वाहान्तो नववर्णकः॥३४३॥
अनेन योगपीठस्य पूजनं समुदीरितम्।
ततः षड्दलमध्ये तु पूजयेद्वामनं विभुम्॥३४४॥
षड्दलेषु षडङ्गानि बाह्ये षोडशपङ्क्तके।
पूषा सुमनसा प्रीतिः पुष्टिस्तुष्टिस्तथैव च॥३४५॥
ऋद्धिर्धृतिश्च सौम्या च मरीचिर्मुण्डमालिनी।
शशिनी सुभगा चैव लक्ष्मीरिच्छा तथैव च॥३४६॥
सम्पूर्णमनुका चैवममृता षोडशी मता।
ततश्चाष्टदले पूजेत् पूजाद्यैर्वासुदेवकम्॥३४७॥
तदर्धं वा तदर्धं वा जपेन्मन्त्रमनन्यधीः।
दशांशं पायसं हुत्वा तर्पणादि समाचरेत्॥३४८॥

प्रकाशित किरणों वाले स्वर्णछत्र के नीचे कमल पर विराजमान, पूर्ण चन्द्र के समान कान्तिमान, पार्श्वभाग से भूमि पर लेटे हुये, दो अंगुल ऊँचे एवं विस्तृत स्फटिककिरणों की प्रभा से सम्पन्न, बाँयें हाथ में दधि-ओदन एवं स्वर्णचषक तथा दाँयें हाथ में अमृतपूर्ण स्वर्णकलश को धारण किये हुये वामन भगवान् का ध्यान करके वैंष्णवपीठ पर पूजन करना चाहिये। वहीं पर विष्णं के साथ सोम एवं त्रैलोक्य को तृप्त करने के लिये 'ॐ नमो वामनाय स्वाहा' इस नवाक्षर मन्त्र से सूर्याग्नि मण्डल में योगपीठ-स्वरूप सोममण्डलरूपी पीठ का पूजन करना चाहिये।

इसके बाद छः दलों के मध्य में सर्वव्यापक भगवान् वामन का पूजन करने के उपरान्त छः दलों में षडङ्ग-पूजन करना चाहिये। तदनन्तर उसके बाहर षोडशदल में पूषा, सुमनसा, प्रीति, पुष्टि, तुष्टि, ऋद्धि, धृति, सौम्या, मरीचि, मुण्डमालिनी, शशिनी, सुभगा, लक्ष्मी, इच्छा, सम्पूर्णमनुका एवं अमृता—इन सोलह देवियों का
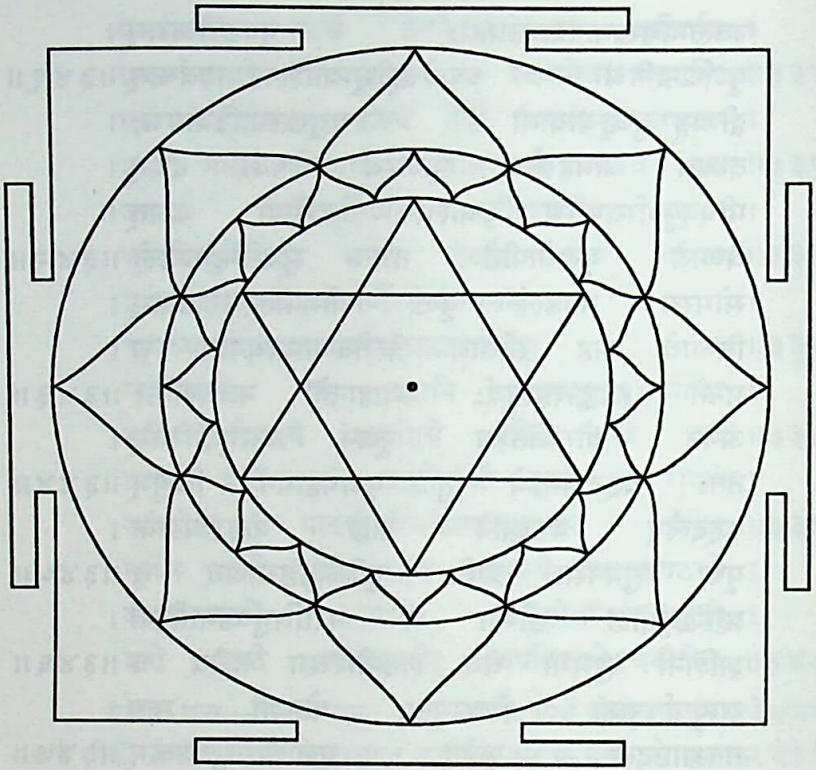
पूजन करना चाहिये। इसके बाद अष्टदल में वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध का पूर्वादि चार दिशाओं में पूजन करने के पश्चात् आग्नेयादि चार दिशाओं में शान्ति, श्रीं, सरस्वती एवं रति का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर मन्त्रवर्णों का आधा अर्थात् नव लाख अथवा उसका आधा (चार लाख पचास हजार) मन्त्रजप करने के बाद पायस से उसका दशांश (नब्बे हजार अथवा पैंतालीस हजार) हवन करके तर्पण आदि करना चाहिये।।३४१-३४८।।

स्वगृहे मण्डलं कृत्वा तन्मध्ये वामनं यजेत्।
दध्योदनं निशापक्वं नैवेद्यं स्याद्विभूतिकृत् ।।३४९।।
अन्नकामो हुनेन्नित्यमष्टाविंशतिसङ्ख्यया।
सितान्नं घृतसम्मिश्रं प्राप्नुयादन्नमक्षयम् ।।३५०।।
अपूपं षड्रसोपेतं हुनेदष्टसहस्रकम्।
अलक्ष्मीर्नाशमायाति महतीं श्रियमाप्नुयात् ।।३५१।।

अयुतं मन्त्रविद्धुत्वा दध्यन्नं शर्करान्वितम्।
अन्नपर्वतमाप्नोति यत्र यत्र स गच्छति ॥३५२॥
हुनेद्बिल्वसमीपस्थः पद्माक्षैरयुतं नरः।
वसुधारां महालक्ष्मीं वर्षाद्वर्षति तत्र च ॥३५३॥
विद्यार्थी प्रजपेल्लक्षं ध्यायन्देवं जनार्दनम्।
जुहुयात्पायसं मन्त्री साक्षाद्वागीश्वरो भवेत् ॥३५४॥
पुत्रकामो जपेल्लक्षं पुत्रजीवदलैर्हुनेत्।
तत्काष्ठदीपिते वह्नौ स सत्पुत्रमवाप्नुयात् ॥६५५॥

अपने घर में मण्डल बनाकर उसके मध्य में वामन का पूजन करने के उपरान्त रात में पाक किये गये (बासी) दधिओदन का नैवेद्य प्रदान करने से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। अन्न की आकांक्षा वाला साधक घृत-मिश्रित श्वेत अन्न से प्रतिदिन अट्ठाईस आहुतियाँ प्रदान करके अक्षय अन्न प्राप्त करता है। षड्रस-युक्त अपूपों द्वारा आठ हजार हवन करने से दरिद्रता का नाश होता है और प्रचुर धन की प्राप्ति होती है।

मन्त्रवित् साधक यदि शर्करा-युक्त दधिओदन द्वारा दस हजार हवन करता है तो वह जहाँ-जहाँ जाता है, वहाँ-वहाँ उसे अन्न का पहाड़ (ढ़ेर) प्राप्त होता है। बिल्ववृक्ष के समीप बैठकर मनुष्य कमलगट्टों से यदि दस हजार हवन करता है तो वहाँ पर एक वर्ष के भीतर कुबेर महालक्ष्मी (प्रभूत धन) की वर्षा करता है।

विद्याकामी मन्त्रज्ञ साधक यदि भगवान् जनार्दन का ध्यान करते हुये मन्त्र का एक लाख जप करने के पश्चात् पायस से हवन करता है तो वह साक्षात् वागीश्वर हो जाता है। मन्त्र का एक लाख जप करके पुत्रजीवा की लकड़ी से प्रज्वलित अग्नि में पुत्रजीवा के दलों से हवन करने वाले पुत्रकामी व्यक्ति को सत्पुत्र की प्राप्ति होती है।।३४९-३५५।।

ध्यात्वा त्रिविक्रमं देवं रक्ताभं करवीरकैः।
हुनेदयुतसङ्ख्यैश्च सर्वत्र विजयी भवेत् ॥३५६॥
रक्षाकामोऽपि पद्मानामयुतं जुहुयात्ततः।
ध्यात्वा चैन्द्रपदं राज्यं लभेदाशु ह्यकण्टकम् ॥३५७॥
अपामार्गदलैर्हुत्वा लवङ्गैर्वा मधुप्लुतैः।
अयुतं साध्यनामाद्यं स वश्यो भवति ध्रुवम् ॥३५८॥
आरोग्यकामो जुहुयादपामार्गशतं शतम्।
सप्ताहान्मुच्यते रोगैस्तावदेवं जपेत्सुधीः ॥३५९॥
आयुष्कामस्त्रिमध्वक्तैस्तिलदूर्वांकुशोक्षितैः।
अयुतं जुहुयात्तावज्जपेदायुर्लभेत वै ॥३६०॥

स्मृत्वा त्रिविक्रमं रूपं चाष्टोत्तरसहस्त्रकम्।
जपान्निर्मुक्तबन्धः स्याद्वामनस्य प्रसादतः ॥३६१॥
दधिवामनसेवातो नासाध्यं भुवनत्रये।

रक्तवर्ण आभा वाले भगवान् त्रिविक्रम का ध्यान करके लाल कनैल से दस हजार हवन करने वाला साधक सर्वत्र विजयी होता है। अपनी रक्षा चाहने वाले साधक को भी इसी प्रकार हवन करना चाहिये। इन्द्रपद का ध्यान करके कमलों से दस हजार हवन करने वाला साधक शीघ्र ही निष्कण्टक राज्य प्राप्त करता है।

मन्त्र के आदि में साध्य-नाम का उच्चारण करते हुये मधु-प्लुत अपामार्ग के पत्तों अथवा लवङ्गों के द्वारा दस हजार हवन करने से वह साध्य निश्चित ही साधक के वशीभूत हो जाता है।

आरोग्य की कामना वाला साधक प्रतिदिन अपामार्ग से दस हजार हवन एवं दस हजार मन्त्रजप करके एक सप्ताह में रोगमुक्त हो जाता है। आयु की कामना वाला साधक त्रिमध्वक्त तिल, दूर्वा एवं कुश से दस हजार हवन एवं उतना ही जप करके निश्चित ही आयु प्राप्त करता है। त्रिविक्रम के रूप का स्मरण करके मन्त्र के एक हजार आठ जप से साधक भगवान् वामन की कृपा से बन्धनमुक्त हो जाता है। दधिवामन की उपासना से तीनों लोकों में कुछ भी असाध्य नहीं रहता।।३५६-३६१।।

सर्वज्ञेश्वरवामनमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सर्वज्ञेश्वरवामनम् ॥३६२॥
ॐक्लींश्रींवं समायोज्य पूर्वमन्त्रो मनुर्मतः।
च्यवनो मुनिराख्यातो गायत्रं छन्द ईरितम् ॥३६३॥
देवता चास्य सम्प्रोक्तः सर्वज्ञेश्वरवामनः।
द्वाविंशत्यर्णकोऽङ्गानि षड्दीर्घान्वितकामतः ॥३६४॥
कर्पूरधवलं देवं निविष्टं सरसीरुहे।
प्रसन्नञ्च सुनेत्रञ्च चारुस्मितमनोहरम् ॥३६५॥
दण्डं चामृतकुम्भञ्च शरच्चन्द्रसमप्रभम्।
दधिभक्तं सोपदंशं वसुपात्रं पवित्रकम्।
चिन्तयेज्जगतां नाथं सर्वस्यार्तिहरं हरिम् ॥३६६॥
अस्य पूजादिकं सर्वं पूर्वोक्तेनैव वर्त्मना।
कुर्यात्ततो मन्त्रसिद्धः काम्यान् स्वाभीष्टदायकान् ॥३६७॥

सर्वज्ञेश्वर वामन का मन्त्र—अब मैं सर्वज्ञेश्वर वामन के मन्त्र को कहता हूँ।

पूर्वमन्त्र में 'ॐ क्लीं श्रीं वं' का संयोजन करने से इनका मन्त्र बनता है। इस प्रकार बाईस अक्षरों का मन्त्र होता है—ॐ क्लीं श्रीं वं ॐ नमो विष्णवे सुरपतये महाबलाय स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि च्यवन, छन्द गायत्री एवं देवता सर्वज्ञेश्वर वामन कहे गये हैं। बाईस अक्षरों वाले इस मन्त्र का मायाबीज (क्लीं) के छः दीर्घ स्वरूपों (क्लां क्लीं क्लूं क्लैं क्लौं क्लः) से षडङ्ग न्यास करना चाहिये।

इसके बाद कर्पूर के समान धवल, कमल पर आसीन, विकसित सुन्दर नेत्रों वाले, मनोज्ञ मुस्कान से मनोहर मुख वाले, हाथों में दण्ड, शरत् चन्द्र के समान कान्तिमान अमृतकुम्भ, बुभुक्षा को बढ़ाने वाले दधिओदन एवं पवित्र रत्नपात्र लिये हुये, जगत् के स्वामी, सबके कष्टों का हरण करने वाले श्रीहरि का ध्यान करना चाहिये। इसके पूजन आदि सबकुछ पूर्व मन्त्र के समान ही होते हैं। तदनन्तर मन्त्र सिद्ध हो जाने पर अभीष्टायक काम्य कर्मों का सम्पादन करना चाहिये।।३६२-३६७।।

सहस्रं हविषा होमो लक्ष्मीदो धान्यलाभकृत् ।।३६८।।
धान्यहोमोऽन्नबीजैश्च शतपत्रसमुद्भवैः ।
सहस्रहोमाद्भीतीनां नाशो भवति निश्चितम् ।।३६९।।
दध्यक्ताज्येन जुहुयाद् दुर्गत्या मुच्यते नरः ।
त्रैविक्रमं वामनस्य रूपं ध्यायेन्मनुं स्मरेत् ।।३७०।।
घोरोत्पातैर्मुच्यतेऽसौ देवेशञ्च पटे लिखेत् ।
भित्तौ वालिख्य गन्धाढ्यैः पूजयेद्यज्ञवामनम् ।
महतीं श्रियमाप्नोति यद्यदन्यदभीप्सितम् ।।३७१।।

हविष्य से एक हजार आहुतियों द्वारा हवन करने पर कुबेर धन-लाभ कराते हैं। अन्नबीजों के हवन से धान्य-लाभ होता है। कमलगट्टों द्वारा एक हजार हवन करने से निश्चित ही सभी प्रकार के भय का नाश होता है। दधि-मिश्रित आज्य के हवन से मनुष्य दुर्गति से मुक्त हो जाता है।

भगवान् वामन के त्रिविक्रम रूप का ध्यान करके मन्त्रजप करने से मनुष्य भयंकर उत्पातों से मुक्त हो जाता है। वस्त्र पर अथवा दीवाल पर देवेश्वर का चित्र बनाकर गन्ध आदि उपचारों से भगवान् यज्ञवामन का पूजन करने से प्रभूत धन के साथ-साथ अन्य जो भी साधक को अभीप्सित होता है, वह उसे प्राप्त होता है।।३६८-३७१।।

भोगवामनमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि तृतीयं भोगवामनम् ।
तारो नमो भगवते विष्णवे च दशाक्षरः ।।३७२।।

संयुक्तः पूर्वमन्त्रश्चेद्भवेद् द्वाविंशदर्णकः।
ऋषिः कपिल आख्यातो गायत्रं छन्द ईरितम् ॥३७३॥
उदीरितः सर्ववन्द्यो देवता भोगवामनः।
त्रिवेदत्रीषुबाणद्विमन्त्रार्णैरङ्गकल्पनम् ॥३७४॥
नीलवर्णश्चतुर्बाहुः शङ्खचक्रगदाब्जभृत्।
सर्वान् भोगान् ददात्येष भक्तानां भोगवामनः ॥३७५॥
अस्य पूजादिकं सर्वं मन्त्री पूर्ववदाचरेत्।
एतादृशस्तु नास्त्यन्यो जन्मन्यस्मिन् फलप्रदः ॥३७६॥

भोगवामन-मन्त्र—अब मैं तीसरे भोगवामन के मन्त्र को कहता हूँ। दस अक्षरों का मन्त्र है—ॐ नमो भगवते विष्णवे। पूर्व मन्त्र से संयुक्त करने पर यही मन्त्र बाईस अक्षरों का हो जाता है। मन्त्र-स्वरूप होता है—ॐ नमो भगवते विष्णवे सुरपतये महाबलाय स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि कपिल, छन्द गायत्री एवं देवता सर्ववन्ध भोगवामन कहे गये हैं। मन्त्र के तीन, चार, तीन, पाँच, पाँच एवं दो वर्णों से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। नीले वर्ण वाले, चार भुजाओं वाले, शंख चक्र गदा एवं पद्म धारण किये हुये ये भोगवामन भक्तों को समस्त भोग प्रदान करते हैं। मन्त्रज्ञ साधक को इस मन्त्र का पूजन आदि सबकुछ पूर्ववत् करना चाहिये। इस मन्त्र के समान दूसरा कोई फलप्रद मन्त्र इस सृष्टि में नहीं है।।३७२-३७६।।

बालकवामनमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि तुर्यं बालकवामनम्।
तारो हृदयमाये च बालकान्ते विधे पदम् ॥३७७॥
पूर्वमन्त्राग्रिमाद्वर्णाद् द्वाविंशत्यक्षरो मनुः।
त्र्यङ्कषट्पञ्चपञ्चद्विमन्त्रार्णैरङ्गकल्पनम् ॥३७८॥
पीताम्बरोत्तरीयोऽसौ मौञ्जीकौपीनधृग्घरिः।
कमण्डलुं च दध्यन्नं दण्डं छत्रं करैर्दधत्।
यज्ञोपवीती नीलाभो ध्यातव्यश्छद्मवामनः ॥३७९॥
पूजादिकं पूर्ववच्च कुर्यान्मन्त्री यथाविधि।
अन्नविद्याभूमिदोऽयं भक्तानामभयप्रदः ॥३८०॥
नाश्नीयात्तण्डुलीशाकं तथा चौदुम्बरं फलम्।
श्राद्धान्नं कर्कटीं चैव भक्षयेन्न कदाचन ॥३८१॥
पद्मपत्रे न भुञ्जीत तथा चार्कदलेष्वपि।
तुषकार्पासबीजानि न स्पृशेच्च कदाचन ॥३८२॥

वल्मीकं गोमयं विप्रच्छायामपि न लङ्घयेत्।
देवाग्निगुरुपूजां च कुर्याद्भक्तिसमन्वितः।
एवं यो नियमैर्युक्तस्तस्य मन्त्रः प्रसिध्यति ॥३८३॥

बालक वामन-मन्त्र—अब मैं चतुर्थ बालकवामन के मन्त्र को कहता हूँ। बाईस अक्षरों का मन्त्र है—ॐ नमः ह्रीं बालकविष्णवे सुरपतये महाबलाय स्वाहा। मन्त्र के तीन, एक, छः, पाँच, पाँच एवं दो वर्णों से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। तत्पश्चात् पीत वस्त्र का उत्तरीय तथा मूँज-निर्मित कटिसूत्र एवं कौपीन धारण किये हुये, हाथों में कमण्डलु दध्यन्न दण्ड एवं छत्र लिये हुये, यज्ञोपवीत-युक्त, नीली आभा वाले हरि के छद्मवामन रूप का ध्यान करना चाहिये। मन्त्रज्ञ साधक को पूर्व के समान ही विधिवत् इनका पूजन आदि करना चाहिये। अन्न, विद्या एवं भूमि प्रदान करने वाला यह मन्त्र भक्तों को अभय प्रदान करने वाला है।

इस मन्त्र के उपासकों को तण्डुली शाक, गूलर का फल, श्राद्ध का अन्न एवं कर्कटी (ककड़ी अथवा तरोई) का कभी भी भक्षण नहीं करना चाहिये। उसे कभी भी कमल अथवा पलाश के पत्ते पर भोजन नहीं करना चाहिये एवं कभी भी बहेड़े अथवा कपास के बीजों का स्पर्श नहीं करना चाहिये। दीमक का घर, गोबर एवं विप्रों की छाया का लङ्घन नहीं करना चाहिये। भक्तिपूर्वक देवता, अग्नि एवं गुरु का पूजन करना चाहिये। इन नियमों से जो युक्त रहता है, उसे यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है।।३७७-३८३।।

विश्वरूपवामनमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि विश्वरूपं तु वामनम्।
तारो नमो भगवते मायाबालेति विष्णवे।
तदग्रिमे पूर्वमन्त्रः षड्विंशत्यक्षरो मनुः ॥३८४॥
ब्रह्मा मुनिश्च गायत्री छन्दो बीजं ध्रुवः स्मृतः।
स्वाहा शक्तिर्देवता श्रीमायाबालकवामनः ॥३८५॥
त्रिवेदनागपञ्चेषुद्विवर्णैरङ्गकल्पनम्।
ध्यानपूजाप्रयोगादि सर्वं पूर्ववदाचरेत्।
अन्नविद्याभूमिदोऽयं भक्तानामभयङ्करः ॥३८६॥

विश्ववामन-मन्त्र—अब मैं पाँचवें विश्वरूप वामन को कहता हूँ। छब्बीस अक्षरों का इनका मन्त्र है—ॐ नमो भगवते मायाबालविष्णवे सुरपतये महाबलाय स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री, बीज ॐ, शक्ति स्वाहा एवं देवता श्रीमाया बालकवामन कहे गये हैं। मन्त्र के तीन, चार, ग्यारह, पाँच, पाँच एवं दो

वर्णों से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। इस मन्त्र के ध्यान-पूजन-प्रयोग आदि सबकुछ पूर्ववत् ही होते हैं। अन्न, विद्या एवं भूमि-प्रदायक यह मन्त्र भक्तों को अभय प्रदान करने वाला है।।३८४-३८६।।

बलिवामनमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि षष्ठन्तु बलिवामनम्।
तारो नमो भगवते वदेच्च बलिवामनम्॥३८७॥
सर्वापत्तिपदं प्रोच्य ङेऽन्तं विनाशनं वदेत्।
ततः श्रीबीजमाभाष्य त्रयोविंशतिवर्णकः॥३८८॥
वाङ्मुनिर्जगती छन्दो देवता बलिवामनः।
पदैः षड्भिः षडङ्गानि शेषं पूर्ववदीरितम्॥३८९॥

बलिवामन-मन्त्र—अब मैं छठे बलिवामन को कहता हूँ। तेईस अक्षरों का इनका मन्त्र है—ॐ नमो भगवते बलिवामनाय सर्वापत्तिविनाशनाय श्रीम्। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द जगती एवं देवता बलिवामन कहे गये हैं। मन्त्र के छः पदों से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। शेष पूजन आदि सबकुछ पूर्ववत् कहा गया है।।३८७-३८९।।

परशुराममन्त्रविधिः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि राममन्त्रं समाहृतम्।
आकल्पमेक एवायं जामदग्न्यो महाबलः।
दुष्टक्षत्रतमोध्वंसी रेणुकोद्भूतभास्करः॥३९०॥
ब्रह्मक्षत्राय विद्महे क्षत्रियान्ताय धीमहि।
तन्नो रामः प्रचोदयात्॥३९१॥
भरद्वाजो मुनिः प्रोक्तो गायत्रं छन्द ईरितम्।
श्रीमान्परशुरामोऽस्य देवता भक्तवत्सलः।
अष्टेषुत्र्यक्षिवेदार्णैर्मनोः प्रोक्तं षडङ्गकम्॥३९२॥
नेत्रयोः कर्णयोर्नासाद्वये चाधरयुग्मके।
स्तनयोर्भुजयोः पार्श्वद्वयेऽङ्घ्र्योर्विन्यसेत्पदम्॥३९३॥
आधारे हृदये मूर्ध्नि क्रमात्पादान् प्रविन्यसेत्।
के दृशि श्रोत्रनासायां कपोले हनुवक्त्रयोः॥३९४॥
कण्ठांसबाहुहस्तेषु पार्श्वहृत्पृष्ठकोदरे।
नाभिकट्योर्गुदे लिङ्गे ऊर्वोर्वा जानुजङ्घयोः॥३९५॥
पादे च विन्यसेद्वर्णांस्ततो ध्यायेत्त्रिधा तनुम्।

परशुराम-मन्त्र—अब मैं राममन्त्र का वर्णन करता हूँ। सम्पूर्ण कल्प में ये एक ही जमदग्निपुत्र, महाबलशाली, दुष्ट क्षत्रियरूप अन्धकार के विनाशक, रेणुका से समुत्पन्न, सूर्य-सदृश तेजःसम्पन्न राम हुये हैं। इनका मन्त्र है—ब्रह्मक्षत्राय विद्महे क्षत्रियान्ताय धीमहि तन्नो रामः प्रचोदयात्।

इस मन्त्र के ऋषि भारद्वाज, छन्द गायत्री और देवता भक्तवत्सल परशुराम कहे गये हैं। क्रमशः मन्त्र के आठ, पाँच, तीन, दो, दो एवं चार अक्षरों से इसका षडङ्गन्यास कहा गया है।

मन्त्र के पदों को क्रमशः दोनों नेत्र, दोनों कर्ण, दोनों नासाछिद्र, दोनों ओष्ठ, दोनों स्तनं, दोनों भुजा, दोनों पार्श्व एवं दोनों चरणों में न्यस्त करना चाहिये।

इसी प्रकार मन्त्र के तीनों पादों में से 'ब्रह्मक्षत्राय विद्महे' का मूलाधार में, 'क्षत्रियान्ताय धीमहि' का हृदय में एवं 'तन्नो रामः प्रचोदयात्' का मूर्धा में न्यास करना चाहिये।

तदनन्तर मन्त्र के चौबीस वर्णों को क्रमशः मूर्धा, नेत्रद्वय, कर्णद्वय, नासिकाद्वय, कपोल, ठुड्डी, मुख, कण्ठ, बाहु, केहुनी, मणिबन्ध, हाथ, पार्श्व, हृदय, पीठ, पेट, नाभि, कमर, गुदा, लिङ्ग, ऊरु, जानु, जंघा एवं पैरों में न्यस्त करना चाहिये। तत्पश्चात् उनके तीन विग्रहों का ध्यान करना चाहिये।।३९०-३९५।।

सात्त्विके श्वेतवर्णं च भस्मोद्धूलितविग्रहम्।।३९६।।
किरीटिनं कुण्डलिनं वरं स्वक्षवराभयान्।
करैर्दधानं तरलं विप्रं क्षत्रवधोद्यतम्।
पीताम्बरधरं कामरूपं बालानिरीक्षितम्।।३९७।।
ध्यायेच्च तामसं क्षत्ररुधिराक्तपरश्वधम्।
आरक्तनेत्रकर्णस्थब्रह्मसूत्रं यमप्रभम्।।३९८।।
धनुष्टङ्कारनिर्घोषसन्त्रस्तभुवनत्रयम्।
चतुर्बाहुं मुसलिनं राजसं क्रुद्धमेव च।।३९९।।

सात्त्विक ध्यान में परशुराम के स्वरूप का चिन्तन इस प्रकार करना चाहिये—उनका वर्ण श्वेत है, वे अपने शरीर पर भस्म लपेटे हुये हैं, किरीट एवं कुण्डल धारण किये हुये हैं, हाथों में अक्षमाला वर एवं अभय धारण किये हुये हैं, उत्तम ब्राह्मण हैं, क्षत्रियों के वध-हेतु उद्यत हैं, पीला वस्त्र धारण किये हुये हैं, उनका रूप मनोहर है एवं बाला त्रिपुरा द्वारा दृश्यमान हैं।

तामस ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—उनके हाथ में क्षत्रियों के रक्त से लिप्त

परशु है, क्रोध के कारण उनके नेत्र लाल हैं, कानों पर ब्रह्मसूत्र है, वे यमराज-सदृश दीप्तिमान हैं तथा अपने धनुष के टंकार की ध्वनि से तीनों भुवनों को त्रस्त कर रहे हैं।

राजस ध्यान में चार भुजाओं से समन्वित, मुसल धारण किये हुये क्रुद्ध स्वरूप का चिन्तन करना चाहिये।।३९६-३९९।।

वैष्णवे तु यजेत्पीठे देवाग्राच्च चतुर्दले।
जमदग्निं च कालं च रेणुकां काममर्चयेत्।।४००।।
तद्दलेषु षडङ्गानि तद्बाह्येऽष्टदले यजेत्।
दिक्षु वेदान् विदिक्पत्रषूपवेदांस्ततो यजेत्।।४०१।।
ततश्चाष्टदले पूज्या विद्बुद्धाश्चावतारकाः।
ब्रह्मास्त्रं वैष्णवास्त्रं च रौद्रं वायव्यमेव च।।४०२।।
आग्नेयं चैव नागास्त्रं मोहनं स्तम्भनं तथा।
ऐन्द्रपालिकमस्त्रं च महापाशुपतं तथा।।४०३।।
पूजयेद्दशपत्रेषु द्वादशारे ततोऽर्चयेत्।
कश्यपं च भरद्वाजं विश्वामित्रं च गौतमम्।।४०४।।
वसिष्ठं नारदं चात्रिं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
याज्ञवल्क्यं भार्गवं च षोडशारे ततो यजेत्।।४०५।।
संहिताश्च पुराणानि मीमांसां न्यायमेव च।
साङ्ख्यं पातञ्जलं शिल्पं वेदाङ्गानि च षट् क्रमात्।।४०६।।
सर्वाण्युपपुराणानि चेतिहासपुराणकम्।
स्मृतीस्तु भूपुराग्रे च दिगीशानायुधानि च।।४०७।।

वैष्णवपीठ पर चतुर्दल कमल पर देवता के आगे से आरम्भ कर क्रमशः जमदग्नि, काल, रेणुका एवं कामदेव का पूजन करना चाहिये।

तत्पश्चात् उसके बाहर षट्कोण में षडंग-पूजन करने के उपरान्त उसके बाहर अष्टदल की पूर्वादि दिशाओं में ऋक्, यजुः, साम एवं अथर्ववेद का तथा आग्नेयादि विदिशाओं में उपवेदों का अर्चन करना चाहिये।

तदनन्तर अष्टदल में ही अवतारों का पूजन करने के बाद दश पत्रों में ब्रह्मास्त्र, वैष्णवास्त्र, रौद्रास्त्र, वायव्यास्त्र, आग्नेयास्त्र, नागास्त्र, मोहनास्त्र, स्तम्भनास्त्र, ऐन्द्रपालिकास्त्र एवं महापाशुपतास्त्र का पूजन करना चाहिये।

तत्पश्चात् द्वादशपत्र में कश्यप, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, वशिष्ठ, नारद,
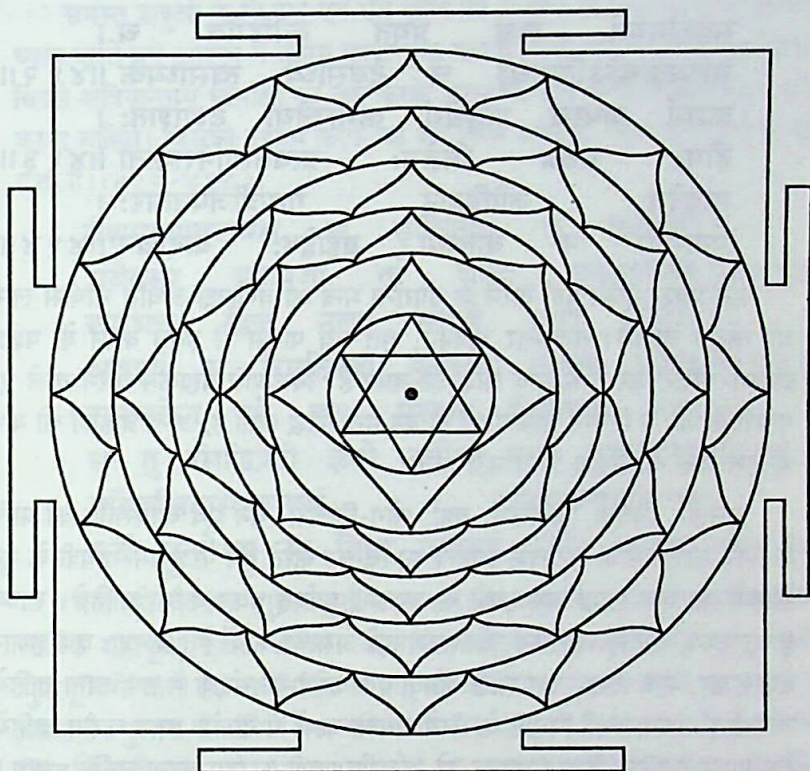
अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, याज्ञवल्क्य एवं भार्गव का पूजन करना चाहिये। पुनः षोडशार में संहिता, पुराण, मीमांसा, न्याय, सांख्य, पातञ्जल, शिल्प, शिक्षा, छन्द, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, कल्प, समस्त उपपुराण, इतिहासपुराण एवं स्मृति—इन सोलह का पूजन करना चाहिये। अन्त में भूपुर में इन्द्रादि लोकपालों एवं उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये।।४००-४०७।।

वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं सिताढ्यघृतपायसैः ।
हुनेद् ब्राह्मणभोज्यान्तं कृत्वा सिद्धो भवेन्मनुः ॥४०८॥
ब्रह्मकर्मरतो नित्यं गायत्रीजपतत्परः ।
स एव जायते सिद्धो नान्यविप्रः कदाचन ॥४०९॥
गायत्रीप्रथमं पादं पूर्वं कृत्वा जपेन्मनुम् ।
लक्षं प्राग्वद्धुनेद्रामं सात्त्विकं तत्र चिन्तयेत् ॥४१०॥
सन्तानार्थं विवाहार्थं कृष्यर्थं वर्षणाय च ।
विषयार्थं धनार्थं च वाक्सिद्ध्यर्थमुदाहृतम् ॥४११॥

सहस्रमयुतं लक्षं प्रयुतं कोटिमेव च।
साध्यकृच्छ्रेऽतिकृच्छ्रे च दैवसाध्ये त्वसाध्यके ॥४१२॥
कार्या जपस्य सङ्ख्येयं क्रमाज्ज्ञेया दशांशतः।
होमः सर्वत्र विज्ञेयः प्रत्यवायनिराकृतौ ॥४१३॥
तावदेव जपेद्विद्वान् गायत्रीजपतत्परः।
मनागपि न कर्तव्यो ब्रह्मद्वेषः कदाचन ॥४१४॥

इस प्रकार पूजन पूर्ण करने के उपरान्त मन्त्र का वर्णलक्ष अर्थात् चौबीस लाख जप करना चाहिये। तदनन्तर शक्कर, घृत एवं पायस से हवन करने के पश्चात् ब्राह्मण-भोजन कराने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है। नित्यप्रति ब्रह्मकर्म करने वाले एवं गायत्री के जप में निमग्न ब्राह्मण को ही यह मन्त्र सिद्ध होता है; अन्य ब्राह्मण को कभी भी इस मन्त्र की सिद्धि प्राप्त नहीं होती।

सन्तान, विवाह, कृषिकर्म, वर्षा, भोग-विलास, धन एवं वाक्सिद्धि की प्राप्ति के लिये परशुराम के सात्त्विक स्वरूप का चिन्तन करते हुये परशुराम-गायत्री के मूल स्वरूप का एक लाख जप करने के उपरान्त पूर्ववत् हवन करना चाहिये। साध्य, कृच्छ्रसाध्य, अतिकृच्छ्रसाध्य, दैवसाध्य एवं असाध्य कार्यों हेतु क्रमशः एक हजार, दश हजार, एक लाख, दश लाख अथवा एक करोड़ की संख्या में जप करना चाहिये। तत्पश्चात् प्रत्यवाय की निवृत्ति के लिये समस्त कार्यों में दशांश हवन करना चाहिये। इस प्रकार व्रतनिष्ठ विद्वान् साधक को परशुरामगायत्री का जप करना चाहिये; साथ ही उसे कभी भी ब्राह्मणों से थोड़ा-सा भी द्वेष नहीं करना चाहिये।।४०८-४१४।।

गायत्रीमध्यचरणयुक्तं मन्त्रं जपेद्धुनेत्।
तिलौदनाज्यं रामं तु राजसं तत्र भावयेत् ॥४१५॥
देशग्रामपुरादीनां बालानां च गवामपि।
रक्षणं स्यान्महामारीशीतलाशान्तये तथा ॥४१६॥
गायत्र्यन्तिमपादेन युक्तं मन्त्रं जपेद् ध्रुवम्।
होमः सर्षपतैलाक्तैस्तामसं चिन्तयेद्विभुम् ॥४१७॥
सर्वशत्रुविनाशः स्याद्रोगादीनां तथा क्षयः।
एवं कुर्याद्यमुद्दिश्य तस्य नाशो भवेद् ध्रुवम् ॥४१८॥

देश, ग्राम, नगर आदि के साथ-साथ बालकों एवं गौओं की रक्षा तथा महामारी एवं शीतला की शान्ति के लिये परशुराम के राजस स्वरूप का ध्यान करते हुये आरम्भ में मध्य चरण-युक्त गायत्री (क्षत्रियान्ताय धीमहि ब्रह्मक्षत्राय विद्महे तन्नो रामः प्रचोदयात) का जप करने के बाद तिल, चावल एवं गाय के घी से हवन करना चाहिये।

समस्त शत्रुओं के विनाश एवं रोग आदि की समाप्ति के लिये तामस स्वरूप का ध्यान करते हुये आरम्भ में तृतीय चरण-युक्त गायत्री (तन्नो रामः प्रचोदयात् ब्रह्मक्षत्राय विद्महे क्षत्रियान्ताय धीमहि) का जप करके सरसों के तेल से सिक्त हविष्य से हवन करना चाहिये। जिसको उद्देश्य करके यह जप किया जाता है, अवश्य ही उसका नाश होता है।।४१५-४१८।।

वैशाखशुक्लपक्षे च तृतीयायां तु वार्षिकी।
भवेदस्य महापूजा तां भक्तः प्रयतश्चरेत् ।।४१९।।
रामभक्तं द्विजं नत्वा संग्रामे याति चेन्नृपः।
अवश्यं स रिपूञ्जित्वा कुशली स्वगृहं व्रजेत् ।।४२०।।
रामभक्तेन यो दत्तः पुस्तके लिखितो मनुः।
स तु सिद्धिप्रदो ज्ञेयो नास्ति तस्य पुरस्क्रिया ।।४२१।।
यत्किञ्चित्पुस्तकारूढं रामभक्तमुखोद्गतम्।
यन्त्रं मन्त्रोऽथ वा विद्या तत्सिद्धं नास्ति संशयः ।।४२२।।

भक्त को वैशाख शुक्ल तृतीया अर्थात् अक्षयतृतीया को यत्न-पूर्वक इनकी वार्षिक महापूजा करनी चाहिये। जो राजा परशुराम-भक्त द्विज को प्रणाम करके युद्धभूमि में जाता है, वह निश्चित ही शत्रु को जीतकर सकुशल अपने घर वापस आ आता है। पुस्तक में अंकित मन्त्र यदि रामभक्त द्वारा प्रदान किया जाता है तो वह मन्त्र सिद्ध होता है एवं उसके पुरश्चरण की कोई आवश्यकता नहीं होती। पुस्तक में अंकित जो कुछ भी यन्त्र, मन्त्र अथवा विद्या रामभक्त के मुख से निःसृत होता है, वह सिद्ध रहता है; इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिये।।४१९-४२२।।

ज्ञात्वा षोडशसंस्कारैः संस्कृतं चार्यवंशजम्।
कुलद्वयविशुद्धं तु राममन्त्राधिकारिणम् ।।४२३।।
फिरङ्गा यवनाश्चीनाः खुरासानाश्च म्लेच्छजाः।
रामभक्तं प्रदृष्ट्वैव त्रस्यन्ति प्रणमन्ति च ।।४२४।।
कृत्वा तु वालुकामूर्तिं श्रीरामस्यार्चयेद्वने।
शान्तं शत्रुमदं कुर्यात्कुसुमानि च वै हुनेत् ।।४२५।।
राज्ञोऽमुकस्य कटकं जुहोमीति तथा वदेत्।
सप्ताहावक्तिस्य सैन्यं नष्टं तावन्मितं भवेत् ।।४२६।।

षोडश संस्कारों का ज्ञान प्राप्त करके उनके द्वारा संस्कृत प्रतिष्ठित कुल में उत्पन्न एवं दोनों कुलों (मातृकुल एवं पितृकुल) से विशुद्ध व्यक्ति ही राममन्त्र का अधिकारी

होता है। फिरंगी, यवन, चीनी, खुरासानी एवं म्लेच्छ लोग रामभक्त को देखते ही भयभीत होकर उसे प्रणाम करते हैं।

अरण्य में बालू से श्रीराम की प्रतिमा बनाकर उसका अर्चन करने वाला साधक शत्रुमद को शान्त कर देता है। प्रतिदिन अर्चना के उपरान्त 'अमुकस्य राज्ञः कटकं जुहोमि' (इस राजा की सेना का हवन करता हूँ) कहते हुये फूलों से हवन करने से एक सप्ताह के भीतर उस राजा का सैन्यबल नष्ट हो जाता है।।४२३-४२६।।

महेन्द्राग्रे च काश्यां च यो जपेन्निर्जने वने।
वर्षादर्वाक् तस्य रामः प्रत्यक्षो जायते ध्रुवम् ।।४२७।।
सोमवारे काशिकायां गयायां पितृपक्षके।
सूर्पारके पौर्णमास्यां प्रयागे तु मृगे रवौ ।।४२८।।
गोदावर्यां सिंहगेऽर्के गङ्गाद्वारे घटस्थिते।
सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे रामो गच्छति सर्वदा ।।४२९।।

जो साधक प्रतिदिन महेन्द्र पर्वत के आगे, काशी में अथवा निर्जन वन में मन्त्रजप करता है, उस साधक के समक्ष एक वर्ष के भीतर निश्चित ही राम प्रत्यक्ष हो जाते हैं। सोमवार को काशी में, पितृपक्ष में गया में, पूर्णिमा को सूर्पारक (?) में, मकर राशि में सूर्य के रहने पर प्रयाग में, सिंह राशि में सूर्य के रहने पर गोदावरी में, कुम्भ राशि में सूर्य के रहने पर हरिद्वार में, सूर्यग्रहण के समय कुरुक्षेत्र में परशुराम सदैव विद्यमान रहते हैं।।४२७-४२९।।

आद्यो रामो जामदग्न्यः क्षत्रियाणां कुलान्तकः।
परश्वधधरो दाता मातृहा मातृजीवकः ।।४३०।।
समुद्रतीरनिलयो महेशपठिताखिलः।
गोत्राणकृद् गोप्रदाता विप्रक्षत्रियकर्मकृत् ।।४३१।।
द्वादशैतानि नामानि त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः।
नापमृत्युर्न दारिद्र्यं न च वंशक्षयो भवेत् ।।४३२।।
श्रीमत्परशुरामस्य गायत्र्येषा महाद्भुता।
राज्यकृत्कलिभूपानां सर्वतन्त्रेषु गोपिता ।।४३३।।

राम, जामदग्न्य, क्षत्रियकुलान्तक, परश्वधधर, दाता, मातृहा, मातृजीवक, समुद्रतीर-निलय, महेशपठिताखिल, गोत्राणकृत्, गोप्रदाता एवं विप्रक्षत्रियकर्मकृत्—परशुराम के इन बारह नामों का तीनों सन्ध्याओं में जो पाठ करता है, उसकी न तो अपमृत्यु होती है, न उसके पास दरिद्रता आती है और न ही उसके वंश का क्षय होता है।

समस्त तन्त्रों में गुप्त श्रीमान् परशुराम की यह गायत्री अत्यन्त अद्भुत है और कलियुग में राजाओं को राज्य प्रदान करने वाली है।।४३०-४३३।।

श्रीराममन्त्रविधिः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदायकान्।
राममन्त्रान् स भगवन् प्रतिमन्वन्तरे ह्यभूत्।।४३४।।
युगानां परिवर्तेन कल्पे रामावतारकः।
ततो ह्यस्य प्रवक्ष्यामि मन्त्रराजं षडक्षरम्।।४३५।।
रामाय नम इत्येष रांक्लींह्रींऐंप्रपूर्वकः।
श्रींताराद्यश्च षड्वर्णो मन्त्रोऽयं षड्विधो मतः।।४३६।।
ब्रह्मा सम्मोहनः शक्तिर्दक्षिणामूर्तिरिव च।
अगस्त्यः श्रीशिवः प्रोक्ता मुनयोऽनुक्रमादिमे।।४३७।।
छन्दो गायत्रसंज्ञं च श्रीरामो देवता मतः।
पञ्चाशन्मातृकामन्त्रवर्णप्रत्येकपूर्वकः।।४३८।।
लक्ष्मादिर्वाग्भवादिश्च मन्मथादिर्ध्रुवादिकः।
रामचन्द्रमनोर्भेदाः शतद्वयमिता अमी।।४३९।।

श्रीराम-मन्त्रविधि—अब मैं प्रत्येक मन्वन्तरों में हुये उन भगवान् राम के भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाले मन्त्रों को कहता हूँ। युगों के परिवर्त्तन से कल्प में राम का अवतार होता है; इसलिये इसके षडक्षर मन्त्रराज को कहता हूँ। 'रामाय नमः' यह मन्त्र आरम्भ में 'रां क्लीं ह्रीं ऐं श्रीं ॐ' इन छः बीजों में से किसी एक बीज के संयुक्त करने से छः अक्षर का हो जाता है। इस प्रकार अलग-अलग छहों बीजों के संयुक्त करने से छः प्रकार के षडक्षर मन्त्र बनते हैं, जो इस प्रकार होते हैं—रां रामाय नमः, क्लीं रामाय नमः, ह्रीं रामाय नमः, ऐं रामाय नमः, श्रीं रामाय नमः, ॐ रामाय नमः। इन मन्त्रों के ऋषि क्रमशः ब्रह्मा, सम्मोहन, शक्ति, दक्षिणामूर्ति, अगस्त्य एवं शिव कहे गये हैं। इनके छन्द गायत्री एवं देवता श्रीराम कहे गये हैं। पचास मातृकाओं में से प्रत्येक को रामाय नमः के पहले लगाने से एवं उन सबके पूर्व पृथक्-पृथक् 'श्री ऐं क्लीं ॐ' बीजों को लगाने से दो सौ प्रकार के राममन्त्र बनते हैं।।४३४-४३९।।

रामभद्रेतिशब्देन चैवं भेदाः शतद्वयम्।
रमाबीजादिकानां तु विश्वामित्रो मुनिर्मतः।।४४०।।
वाग्बीजपूर्वकाणां तु दक्षिणामूर्तिरुच्यते।
कामबीजादिपूर्वाणां मुनिः सम्मोहनो मतः।।४४१।।

तारादिपूर्वकाणां तु श्रीशिवः प्रोच्यते मुनिः।
श्रीमायामन्मथैकैकबीजाद्यन्तर्गतो यदा।
रामभद्रो रामचन्द्रः षोढा षड्वर्ण उच्यते ॥४४२॥
षोढा नमोऽन्तः प्राक्प्रोक्तः फट्कारान्तः स एव हि।
षोढा स्याद्वह्निजायान्तः स एवं षड्विधो मतः ॥४४३॥
चतुर्विंशतिसङ्ख्याका भेदास्तेन निरूपिताः ॥४४४॥

रामभद्र शब्द से भी दो सौ प्रकार के राममन्त्र बनते हैं। आरम्भ में रमाबीज (श्री) लगे मन्त्रों के ऋषि विश्वामित्र, वाग्बीज (ऐं) युक्त मन्त्रों के ऋषि दक्षिणामूर्ति, कामबीज (क्लीं) से युक्त मन्त्रों के ऋषि सम्मोहन एवं तार (ॐ) से युक्त मन्त्रों के ऋषि श्रीशिव कहे गये हैं। रामभद्र एवं रामचन्द्र के आदि एवं अन्त में श्रीं ह्रीं क्लीं में से एक-एक बीजों को लगाने से छः षडक्षर मन्त्र बनते हैं। छः मन्त्र अन्त में नमः लगाने से बनते हैं, जो पूर्व में कहे गये हैं। छः मन्त्र अन्त में फट् लगाने से बनते हैं (श्रीं रामाय फट्, ह्रीं रामाय फट्, क्लीं रामाय फट् इत्यादि)। इसी प्रकार छः मन्त्र अन्त में स्वाहा लगाने से भी बनते हैं (श्रीं रामाय स्वाहा, ह्रीं रामाय स्वाहा इत्यादि)। इस प्रकार कुल चौबीस प्रकार के मन्त्रभेद कहे गये हैं।।४४०-४४४।।

ब्रह्मरन्ध्रे भ्रुवोर्मध्ये हृन्नाभ्योर्गुह्यपादयोः।
बीजैः षड्दीर्घसंयुक्तैः षडङ्गविधिरीरितः ॥४४५॥
वीरासनसमारूढं व्याख्यामुद्रोपशोभितम्।
वामोरुन्यस्ततद्धस्तं सीतालक्ष्मणसंयुतम् ॥४४६॥
वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं दशांशं मधुरप्लुतैः।
बिल्वपत्रैः फलैः पुष्पैस्तिलैर्वा पङ्कजैर्हुनेत् ॥४४७॥

ब्रह्मरन्ध्र, भ्रूमध्य, हृदय, नाभि, गुह्य एवं दोनों पैरों में बीजमन्त्र के छः दीर्घ स्वरूपों से षडङ्ग-न्यास करना कहा गया है। वीरासन पर विराजमान, व्याख्या मुद्रा से सुशोभित हाथ को बाँयीं जाँघ पर रखे हुये एवं सीता तथा लक्ष्मण से समन्वित श्रीराम का ध्यान करते हुये मन्त्र का वर्णलक्ष अर्थात् छः लाख जप करना चाहिये। तत्पश्चात् मध्वक्त बिल्वपत्र, बिल्वफल, बिल्वपुष्प, तिल अथवा कमलों से कृत जप का दशांश साठ हजार हवन करना चाहिये।।४४५-४४७।।

पूजयेद्वैष्णवे पीठे मूर्तिं मूलेन कल्पयेत्।
श्रीं सीतायै द्विठान्तेन वामपार्श्वगतां यजेत् ॥४४८॥
ततस्त्रिकोणकोशाग्रे पृष्ठतो लक्ष्मणं यजेत् ॥४४९॥

वामपार्श्वत्रिकोणस्थं शार्ङ्गं दक्षिणतः शरान् ।
ततः षड्दलमध्ये तु षडङ्गानि प्रपूजयेत् ॥४५०॥
तद्बाह्येऽष्टदलं प्रोक्तं पूजयेदिष्टदिक्षु च ॥४५१॥
आत्मानं च निवृत्तिं च ह्यन्तरात्मानमेव च ।
प्रतिष्ठां परमात्मानं ततो विद्यां प्रपूजयेत् ॥४५२॥
नानात्मानं तथा शान्तिं केशरेषु प्रपूजयेत् ॥४५३॥
दलमध्ये वासुदेवं श्रियं सङ्कर्षणं तथा ।
शान्तिं प्रद्युम्नमग्रेऽनिरुद्धं च रतिमर्चयेत् ॥४५४॥
हनूमन्तं च सुग्रीवं भरतं च बिभीषणम् ॥४५५॥
निषादाङ्गदशत्रुघ्नाञ्जाम्बवन्तं दलाग्रतः ।
आञ्जनेयं तदग्रे च वाचयन्तं कृताञ्जलिम् ॥४५६॥
धृतिं जयन्तं विजयं सुराष्ट्रं राष्ट्रवर्द्धनम् ।
अकोपं धर्मपालाख्यं मन्त्रिणश्च क्रमाद्यजेत् ॥४५७॥

मूल मन्त्र से मूर्ति की कल्पना करके वैष्णवपीठ पर श्रीराम का पूजन करना चाहिये। श्रीं सीतायै स्वाहा मन्त्र से राम के वाम पार्श्व में सीता का पूजन करना चाहिये। इसके बाद त्रिकोण में सीताराम के पीछे लक्ष्मण का पूजन करने के उपरान्त राम के वाम पार्श्व में शार्ङ्ग का और दक्षिण पार्श्व में बाणों का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर षट्कोण में षडङ्ग-पूजन करना चाहिये। फिर उसके बाहर अष्टदल की आठो दिशाओं में आत्मा, निवृत्ति, अन्तरात्मा, प्रतिष्ठा, परमात्मा, विद्या, नानात्मा और शान्ति का पूजन करना चाहिये। यह पूजन अष्टदलों के केशरों में किया जाता है। फिर दलों के मध्य में वासुदेव, श्री, संकर्षण, शान्ति, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, रति एवं सरस्वती का पूजन करना चाहिये। फिर उनके आगे हनुमान, सुग्रीव, भरत, विभीषण, निषाद, अंगद, शत्रुघ्न और जामवन्त का दलों के अग्रभाग में पूजन करना चाहिये। भगवान् राम के आगे बद्धाञ्जलि होकर स्तुतिरत हनुमान का अर्चन करना चाहिये। पुन: अष्टदल में ही क्रमश: धृति, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्द्धन, अकोप, धर्मपाल एवं मन्त्रियों का पूजन करना चाहिये।

वसिष्ठं वामदेवं च जाबालिं गौतमं तथा ।
भरद्वाजं काश्यपं च वाल्मीकिं कौशिकं तथा ॥४५८॥
नारदं सनकं चैव सनातनमतः परम् ।
सनत्कुमारं च यजेत्तद्बाह्ये द्वादशारके ॥४५९॥
नीलं नलं सुषेणं च मैन्दं च शरभं ततः ।
द्विविदं च गवाक्षं च सकिरीटं सकुण्डलम् ॥४६०॥

श्रीवत्सं कौस्तुभं शङ्खं गदाचक्रे च पद्मकम्।
अर्चयेत्षोडशदले पूर्वतस्तु कृताञ्जलीन् ॥४६१॥

पुन: उसके बाहर द्वादशदल कमल में वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, गौतम, भरद्वाज, काश्यप, वाल्मीकि, कौशिक, नारद, सनक, सनातन एवं सनत्कुमार का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर षोडशदल कमल में पूर्व से आरम्भ का अञ्जलिबद्ध नील, नल, सुषेण, मैन्द, शरभ, द्विविद, गवाक्ष, किरीट, कुण्डल, श्रीवत्स, कौस्तुभ, शंख, गदा, चक्र एवं पद्म का पूजन करना चाहिये।

ध्रुवो धरश्च सोमश्च आपश्चैवानिलोऽनलः।
प्रत्यूषश्च प्रभातश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ॥४६२॥
वीरभद्रश्च शण्डश्च गिरीशश्च महायशाः।
अजैकपादहिर्बुध्न्यः पिनाकी चापराजितः ॥४६३॥
भुवनाधीश्वरश्चैव कपाली च दिशाम्पतिः।
स्थाणुर्भगश्च भगवान् रुद्रा एकादश स्मृताः ॥४६४॥
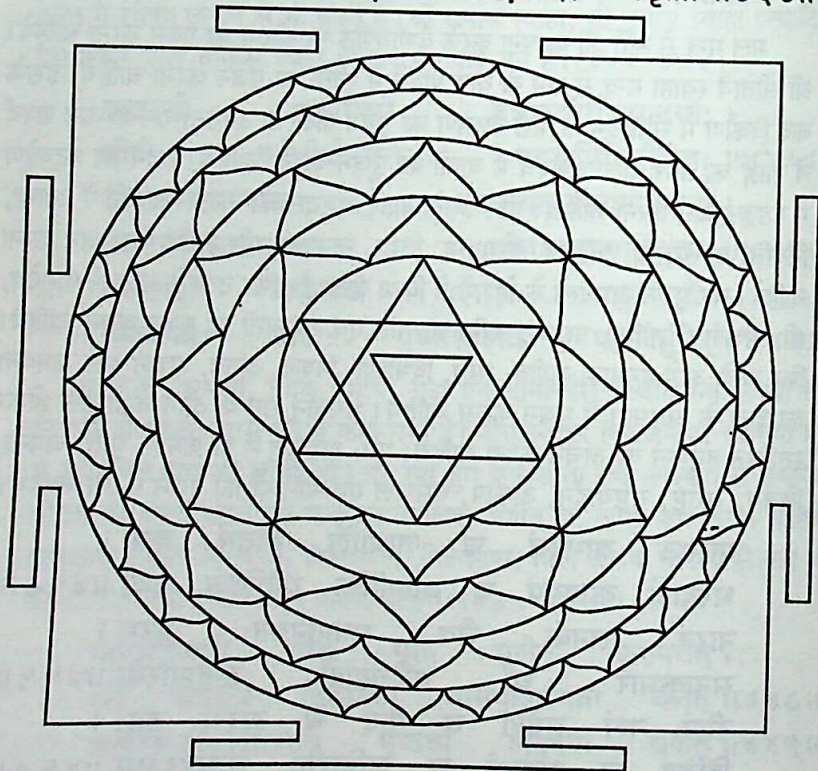
विवस्वान् सूर्यवेदाङ्गौ भानुरिन्द्रो रविस्तथा।
गभस्तिस्तु यमः सर्वसाक्षी चापि दिवाकरः ॥४६५॥
चित्रो विष्णुरिति प्रोक्ता आदित्या द्वादश क्रमात् ॥४६६॥
धातारमन्ते प्रयजेद् द्वात्रिंशत्पत्रकेष्विमान् ॥४६७॥
इन्द्रादीन् भूगृहे बाह्ये तदस्त्राणि च संयजेत् ॥४६८॥
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगान् कर्तुमर्हति ॥४६९॥

तत्पश्चात् बत्तीस दलों वाले कमल में इन बत्तीस का पूजन करना चाहिये—ध्रुव, धर, सोम, आप, अनिल, अनल, प्रत्यूष, प्रभात—ये अष्टवसु; महायशस्वी वीरभद्र, शण्ड़, गिरीश, अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, अपराजित पिनाकी, भुवनाधीश्वर, कपाली, दिक्पाल, स्थाणु, भग—ये एकादश रुद्र; विवस्वान्, सूर्य, वेदांग, भानु, इन्द्र, रवि, गभस्ति, यम, सर्वसाक्षी, दिवाकर, चित्र, विष्णु—ये द्वादश सूर्य तथा धाता।

इसके बाद भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार से मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर साधक प्रयोगों को सम्पन्न करने में समर्थ हो जाता है।।४६२-४६९।।

धनाय कमलैर्जातीपुष्पैश्चन्दनलोलितैः।
भवेद्धनाधिपतिवन्नीलोत्पलहुतेन च ॥४७०॥
वशयेद्विश्वमखिलं बिल्वपुष्पैर्घनात्यये ॥४७१॥
हुता दीर्घायुषे दूर्वा रक्ताब्जैर्धनवृद्धये ॥४७२॥

धन-प्राप्ति के लिये चन्दनाक्त कमल एवं जातिपुष्पों से हवन करना चाहिये। नीलकमल के हवन से साधक कुबेर के समान हो जाता है। शरद् ॠतु में बिल्वपुष्पों के हवन से समस्त विश्व को वशीभूत किया जा सकता है। दीर्घायु-प्राप्ति के लिये दूर्वा से हवन करना चाहिये। धन-वृद्धि के लिये लाल कमलों से हवन करना चाहिये।।४७०-४७२।।

आधाय कुण्डे विधिवदग्निं पूर्वोक्तवर्त्मना।
ततो देवं समावाह्य पूजयेदुपचारकैः ॥४७३॥
पञ्चभिर्वा षोडशभिः पूजोपकरणैः पृथक्।
पलाशाश्वत्थखदिरोदुम्बराम्रवटेन्धनैः।
अग्निं हुत्वालये सम्यग्यज्ञियैरथवेन्धनैः ॥४७४॥
तत्र सम्पूजयेत्सम्यग्राघवं प्रोक्तवर्त्मना ॥४७५॥
लक्षन्तदर्धमथ वा जापयित्वा दशांशतः।
तिलैर्हुत्वा यद्यदिष्टं तत्तदेवाप्नुयान्नरः ॥४७६॥

बिल्वप्रसूनैरैश्वर्यमर्चितेऽग्नौ हुते भवेत् ॥४७७॥
पलाशकुसुमैर्हुत्वा मन्त्री वै वेदविद्भवेत् ॥४७८॥
दूर्वाभिश्च गुडूचीभिः प्रत्येकमपि वा हुतैः ।
निरामयश्च दीर्घायुर्भवत्येव न संशयः ॥४७९॥

पूर्वकथित रीति से कुण्ड में विधिवत् अग्नि को स्थापित करने के उपरान्त उसमें देवता का सम्यक् रूप से आवाहन करके पञ्चोपचार अथवा षोडशोपचार से पूजन करने के बाद पलाश, पीपल, खैर, गूलर, आम एवं वट की समिधा से अलग-अलग अथवा यज्ञीय समिधा से प्रज्वलित अग्नि में हवन करने के पश्चात् वहीं पर पूर्वकथित विधि से सम्यक् रूप राघव का पूजन करना चाहिये।

तदनन्तर एक लाख अथवा पचास हजार मन्त्रजप करने के बाद तिलों से कृत जप का दशांश हवन करने से मनुष्य अपने अभीष्ट को प्राप्त कर लेता है। उस अर्चित अग्नि में बिल्वपुष्पों के हवन से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। पलाशपुष्पों के हवन से मन्त्रज्ञ साधक वेदों का ज्ञाता होता है। दूर्वा और गुरुच को एक साथ मिलाकर अथवा दोनों से अलग-अलग हवन करने से निश्चित रूप से आरोग्य-प्राप्ति के साथ-साथ दीर्घ आयु अवाप्त होती है।।४७३-४७९।।

ध्यात्वाथ मन्मथं रामं सीतामपि रतिं स्मरेत् ।
कवचस्य प्रयोगे यो जपहोमादिकर्मसु ॥४८०॥
रामं च बोधदातारं स्मरन्नाराध्य भक्तितः ।
उपैति सदृशीं कन्यां लाजहोमेन साधकः ॥४८१॥
रामं विधिवदाराध्य ज्वलितेऽग्नौ प्रयोगवित् ।
मधुरत्रययुक्तैर्हि पायसैर्जुहुयात्सुधीः ।
सर्वाधिपत्यं वै द्रव्यं भवेदेव न संशयः ॥४८२॥
तिलैश्च तण्डुलैराज्यैर्हुत्वा लोकाभिपूजितम् ।

जप तथा हवन-काल में राम को कामदेव-स्वरूप एवं सीता को रति-स्वरूपा ध्यान करना चाहिये। कवच के प्रयोग में जो जप-हवन आदि कर्म होते हैं, उस समय राम को भक्ति-सहित ज्ञान-प्रदाता के रूप में स्मरण करना चाहिये। लाजा के हवन से साधक अपने अनुरूप पत्नी को प्राप्त करता है।

प्रयोग के ज्ञाता विद्वान् साधक को विधि-पूर्वक राम की आराधना करके प्रज्वलित अग्नि में मधुरत्रय से समन्वित पायस से हवन करना चाहिये। इससे उसे समस्त द्रव्यों का आधिपत्य प्राप्त होता है; इसमें कोई संशय नहीं है। आज्य-मिश्रित तिल एवं तण्डुल के हवन से साधक लोकपूज्य होता है।।४८०-४८२।।

आरात्संवत्सरं यावत्षट्सहस्रं दिने दिने ॥४८३॥
जपेच्च जुहुयादग्नौ तद्दशांशं घृतान्धसा।
अयमेवान्नदो लोके सर्वेषामपि जायते ॥४८४॥
बिल्वप्रसूनैः कुमुदैस्तथा बिल्वदलैरपि।
हुत्वा तु लभते लक्ष्मीमचिरादत्र साधकः ॥४८५॥
आराध्य रामं साङ्गं च विधिवद्वत्सरात्सुधीः।
उदयाद्यावदस्तं स्याज्जपेन्मन्त्रमनन्यधीः।
फलम्भवति तस्याशु देवानामपि दुर्लभम्।
वैराज्येनाधिपत्येन मर्त्यानामुत्तमो भवेत् ॥४८६॥

एक वर्ष तक प्रतिदिन छः हजार जप करने के बाद घृत एवं समिधा से अग्नि में दशांश हवन करने से साधक को इस लोक में समस्त अन्नों की प्राप्ति होती है। बिल्वपुष्पों, कुमुदपुष्पों एवं बिल्वपत्रों के हवन से साधक को थोड़े ही दिनों में लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

विद्वान् साधक एक वर्ष तक प्रतिदिन यदि अंगों के सहित राम की सविधि आराधना करते हुये सूर्योदय से सूर्यास्त तक एकाग्र मन से जप करता है तो उसे शीघ्र ही देवताओं को भी दुर्लभ फल प्राप्त होता है। वह राज्य का आधिपत्य प्राप्त करके मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ होता है।।४८३-४८६।।

पूर्णिमायां निशीथिन्यामुदयास्तमनं विधोः।
संवत्सरं प्रकुर्वीत जपहोमादिकं बुधः ॥४८७॥
रात्रौ यजेद्दिवा होमं कुर्यादेवं परेऽहनि।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु व्रतमेतत्समापयेत् ॥४८८॥
सोमसूर्यादिकं यस्तु व्रतं कुर्वीत मानवः।
भुक्तिं मुक्तिं च लभते त्विहलोके परत्र च ॥४८९॥

विद्वान् साधक को प्रत्येक पूर्णिमा की रात्रि में चन्द्रोदय से चन्द्रास्त तक संवत्सर-पर्यन्त जप-हवन करना चाहिये। रात्रि में पूजन एवं दिन में हवन करके अपराह्न में ब्राह्मणों को भोजन कराते हुये वर्ष के अन्त में व्रत का समापन करना चाहिये। जो मनुष्य वर्ष-पर्यन्त सोम-सूर्यादिक व्रत करता है, वह इस लोक में भोग प्राप्त करके परलोक में मुक्ति प्राप्त करता है।।४८७-४८९।।

रक्तपद्मैश्च बन्धूकैस्तथा रक्तोत्पलैरपि।
अभीष्टलोकवश्यार्थं जुहुयादर्चितेऽनले ॥४९०॥

बाह्यैश्वर्याय भोगार्थं जपेल्लक्षमनन्यधीः ।
पत्रैर्बिल्वप्रसूनैर्वा दशांशं जुहुयात्सुधीः ॥४९१॥
समुद्रतीरे गोष्ठे वा लक्षजापी पयोव्रतः ।
पायसेनाज्ययुक्तेन हुत्वा विद्यानिधिर्भवेत् ॥४९२॥
मन्त्रवित्स्वाधिपत्यार्थं शाकाहारो जलान्तरे ।
जपेल्लक्षं च जुहुयाद्बिल्वपत्रैर्दशांशतः ।
तदेव पुनरायाति स्वाधिपत्यं न संशयः ॥४९३॥

अभीष्ट लोक को वशीभूत करने के लिये अर्चित अग्नि में लाल कमल, वन्धूक एवं लाल कुमुद से हवन करना चाहिये। बाह्य ऐश्वर्य एवं भोग-प्राप्ति के लिये एकाग्रचित्त से मन्त्र का एक लाख जप करके बिल्वपुष्पों अथवा बिल्वपत्रों से कृत जप का दशांश हवन करना चाहिये। मात्र दुग्धाहार करते हुये समुद्रतट अथवा गोशाला में मन्त्र का एक लाख जप करके आज्ययुक्त पायस से हवन करने वाला साधक विद्यानिधि होता है।

मन्त्रज्ञ को अपने आधिपत्य-प्राप्ति के लिये शाकाहारी रहते हुये जल में खड़े होकर मन्त्र का एक लाख जप करने के बाद बिल्वपत्रों से कृत जप का दशांश हवन करना चाहिये। ऐसा करने से उसे पुनः अपना आधिपत्य प्राप्त हो जाता है, इसमें कोई संशय नहीं है।।४९०-४९३।।

उपोष्य गङ्गामध्यस्थो राममभ्यर्च्य सञ्जपेत् ।
लक्षञ्जपित्वा जुहुयात्कमलान्यथवा तिलान् ।
जातीपुष्पाणि मधुरत्रितयाक्तानि संहुनेत् ॥४९४॥
मन्दभाग्यः स्थिरम्भाग्यमथ रामार्चनाल्लभेत् ।
जपित्वा जुहुयादिन्दुं राज्यश्रियमवाप्नुयात् ।
वैशाखे राघवं कुर्यात्पश्यन्ननिमिषे क्षणः ॥४९५॥
निराहारो जपेल्लक्षं मौनी पञ्चाग्निमध्यगः ।
दशांशं कमलैर्हुत्वा स चारोगी भवेद् ध्रुवम् ॥४९६॥
माघमासे जले स्थित्त्वा कन्दमूलफलाशनः ।
जपेल्लक्षं च जुहुयात्पायसेनार्चितेऽनले ॥४९७॥
दशांशं पुत्रपौत्राद्यैरुपेतः प्राप्नुयाच्छ्रियम् ।
श्रीरामसदृशः पुत्रपौत्राढ्योऽपि प्रजायते ॥४९८॥

उपवास करके गंगा में खड़े होकर राम का अर्चन करके मन्त्र का सम्यक् रूप से एक लाख जप करने के बाद त्रिमधु-सिक्त कमल, तिल अथवा जातिपुष्पों से विधि-पूर्वक

हवन करना चाहिये। इस प्रकार के रामार्चन से मन्द भाग्य वाला व्यक्ति भी सौभाग्यशाली हो जाता है। जप करने के उपरान्त कपूर से हवन करने पर राज्यश्री की प्राप्ति होती है।

वैशाख मास में निराहार रहते हुये निर्निमेष दृष्टि से राघव को देखते हुये मन्त्र का एक लाख जप करने के उपरान्त पञ्चाग्नि के मध्य में स्थित होकर मौन धारण करके कमलों द्वारा कृत जप का दशांश हवन करने वाला निश्चित ही रोगमुक्त हो जाता है।

माघ मास में कन्द-मूल का आहार ग्रहण करते हुये जल में खड़े होकर मन्त्र का एक लाख जप करने के पश्चात् अर्चित अग्नि में पायस से दशांश हवन करने वाला पुत्र-पौत्रादि से समन्वित साधक लक्ष्मी प्राप्त करता है; साथ ही वह श्रीराम के समान पुत्र-पौत्रों से सम्पन्न होता है।।४९४-४९८।।

बलिष्ठैः शत्रुभिर्मन्त्री परिभूतार्थमानसः।
तदा हनहनेत्युक्त्वा तन्नामान्तरितं जपेत्।।४९९।।
ध्यात्वा रघुपतिं क्रुद्धं कालानलमिवापरम्।
आकर्णसशराकृष्टकोदण्डभुजमण्डितम् ।।५००।।
नाशयन्तं रिपून् सर्वांस्तीव्रमार्गणवृष्टिभिः।
रक्तनेत्रं महावीरवर्यमैन्द्रे रथे स्थितम्।।५०१।।
लक्ष्मणादिमहावीरैर्वृतं हनुमदादिभिः।
कोटिकोटिमहावीरैः करोद्धृततरूत्तमैः।।५०२।।
वज्राङ्गैरपि हुङ्कारभीकारसुमहारवैः।
नदद्भिरभिधावद्भिः समरेऽरिगणं प्रति।।५०३।।
एवं ध्यात्वा निराहारो मारणाय रिपोः पुनः।
जुहुयाच्छाल्मलीपुष्पैर्दशांशं मन्त्रसाधकः।
अत्यन्तसुसमृद्धोऽपि न शत्रुरवशिष्यते।।५०४।।
वैरिणं रावणं ध्यात्वा तथात्मानं रघूद्वहम्।
विधाय पूर्ववत्सर्वमनायासेन मारयेत्।।५०५।।

बलवान् शत्रु से पराजित मन्त्री को उस शत्रु के पराभव की इच्छा से मन्त्र के मध्य में उसके नाम के साथ 'हन हन' का उच्चारण करते हुये मन्त्र का जप करना चाहिये।

कर्ण-पर्यन्त बाणों के सहित आकृष्ट धनुष से विभूषित भुजाओं वाले, इन्द्र के रथ पर आरूढ़, लाल-लाल आँखों वाले महावीर, तीव्र बाणवर्षा करते हुये शत्रुओं का विनाश करते हुये द्वितीय कालाग्नि-सदृश क्रुद्ध राम लक्ष्मण आदि महावीरों से चारो ओर से घिरे हुये हैं; युद्धक्षेत्र में हाथों में उत्तम वृक्षों को लिये हुये वज्र-सदृश अंगों

वाले हनुमान आदि करोड़ों वीर अपने गर्जन से भयंकर शब्द करते हुये शत्रुओं के प्रति दौड़ रहे हैं—इस प्रकार ध्यान करके निराहार रहते हुये शत्रु के मारण के लिये साधक द्वारा शाल्मली (सेमर)-पुष्पों से कृत जप का दशांश हवन करने से अत्यन्त समृद्ध शत्रु भी अवशिष्ट नहीं रहता अर्थात् समस्त शत्रुओं का विनाश हो जाता है।

शत्रुओं का रावणरूप में एवं स्वयं का रामरूप में ध्यान करते हुये पूर्ववत् अनुष्ठान करने से साधक अनायास ही समस्त शत्रुओं को नष्ट कर देता है।।४९९-५०५।।

सीताहरणशोकाच्च क्रुद्धीभूतमचेतसम्।
जपेद्रघुपतिं ध्यायन्निराहारो जले वसन्।
दशांशं च तिलैर्हुत्वा स्तम्भयेच्छत्रुसंहतिम् ।।५०६।।
निधाय वायुबीजेन यन्नम त्रासयेति च।
जपेन्मन्त्रं निराहारो जुहुयाच्च तिलैरपि ।।५०७।।

निराहार रहते हुये जल में खड़े होकर सीताहरणरूप शोक के कारण क्रुद्ध होकर चेतना-रहित रघुपति का ध्यान करते हुये मन्त्र का जप करना चाहिये। तत्पश्चात् कृत जप का दशांश तिल से हवन करने से शत्रु-समूह का स्तम्भन होता है। एतदर्थ मन्त्र के साथ 'यं नमः त्रासय' जोड़कर निराहार रहकर मन्त्र का जप करके तिलों से भी हवन किया जा सकता है।।५०६-५०७।।

रामं ध्यात्वा विषण्णन्तं सीतान्वेषणकातरम्।
रामभद्रं चिरं साक्षाद्रावणं चापि वैरिणम् ।।५०८।।
समुद्रतीरे लङ्कायां हेमप्राकारसन्निधौ।
सुग्रीवादिभिरन्यैश्च दैवतैर्नारदादिभिः ।।५०९।।
उपास्यमानं सदसि ध्यात्वा देवं सलक्ष्मणम्।
बिभीषणायागताय ददतं शरणार्थिने ।।५१०।।
वरदानं जपेल्लक्षं जुहुयात्पङ्कजैरपि।
स्वस्थानमानयेच्छीघ्रं राजानमथवा प्रभुम् ।।५११।।
निमील्य चक्षुः स्नेहात्तु चोपलभ्य पुनः पुनः।
प्रमोदयन्तं सहसा त्वचिरादानयेत्प्रियम् ।।५१२।।
रामं ध्यात्वा जपेल्लक्षं हुत्वा रक्ताम्बुजैरपि।
सम्मोहयति वेगेन राजानमपि वा प्रभुम् ।।५१३।।

विषण्ण एवं सीता के अन्वेषण-हेतु कातर राम का उनके शत्रु रावण के सहित ध्यान करके, समुद्रतट पर लंका में सुवर्णप्राकार के निकट सुग्रीवादि अन्य वीरों के

साथ-साथ देवताओं एवं नारद आदि ऋषियों द्वारा अपने-अपने आवास-स्थान पर उपास्यमान भगवान् राम का लक्ष्मण-सहित ध्यान करके, साथ ही शरण में आये हुये विभीषण को वर प्रदान करते हुये राम का ध्यान करके मन्त्र का एक लाख जप करने के पश्चात् कमलपुष्पों से कृत जप का दशांश हवन करने वाला साधक राजा अथवा अपने स्वामी को शीघ्र ही अपने स्थान पर साक्षात् उपस्थित पाता है। वे राजा अथवा प्रभु उसे प्राप्त करके उसके प्रति अतिशय स्नेह के कारण उसे बार-बार आनन्दित करते हैं एवं अचानक ही उसके द्वारा अभीप्सित वस्तु को उसके समक्ष उपस्थित कर देते हैं।

राम का ध्यान करके मन्त्र का एक लाख जप करने के उपरान्त लाल कमलों से हवन करने वाला साधक शीघ्रता-पूर्वक अपने राजा अथवा प्रभु श्रीराम को सम्मोहित कर लेता है।।५०८-५१३।।

तारादिर्मुक्तये मन्त्रो रमादिर्भुक्तये भवेत्।
वाक्सिद्धये च वागादिः सर्ववश्याय मन्मथः।
ताराद्यैः पुटितान् मन्त्रान् सर्वार्थान् विनियोजयेत्।।५१४।।

मुक्ति-प्राप्ति के लिये 'रामाय नमः' मन्त्र के आरम्भ में तार (ॐ) का संयोजन करके जप करना चाहिये। इसी प्रकार भोग-प्राप्ति के लिये मन्त्र के आदि में 'श्रीं' का, वाक्सिद्धि के लिये 'ऐं' का एवं सभी को वशीभूत करने के लिये 'क्लीं' का संयोजन करके जप करना चाहिये। ॐ आदि से पुटित मन्त्रों का सर्वार्थ-सिद्धि के लिये विनियोग करना चाहिये।।५१४।।

एकाक्षररराममन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि स्वारोचिषसमुद्भवम्।
रामस्यैकाक्षरं मन्त्रं कीर्त्यते स तु रामिति।।५१५।।
ब्रह्मा मुनिः स्याद्गायत्रं छन्दो रामोऽस्य देवता।
मूर्तिपञ्जरनामानं तत्त्वन्यासं च कारयेत्।।५१६।।
षड्दीर्घसुसमायुक्तबीजेनैव षडङ्गकम्।
ध्यानपूजादिकं प्राग्वद्रामलक्षं जपेन्मनुम्।।५१७।।

राम का एकाक्षर मन्त्र—अब मैं स्वारोचिष मन्वन्तर में अवतरित राम के एकाक्षर मन्त्र को कहता हूँ; वह मन्त्र है—'रां'। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री एवं देवता राम हैं। इसमें मूर्तिपञ्जर-नामक तत्त्वन्यास करना चाहियें। बीजमन्त्र के छः दीर्घ स्वरूपों से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये। इस मन्त्र का ध्यान-पूजन आदि सबकुछ पूर्ववत् करके मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिये।।५१५-५१७।।

द्व्यक्षररामममन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि तृतीयं तु मनोर्विधिम्।
राम इत्येष कथितो द्व्यक्षरो भुक्तिमुक्तिदः ॥५१८॥
एकाक्षरोक्तमृष्यादि स्यादाद्यन्तं षडङ्गकम्।
ध्यानपूजाप्रयोगादि सर्वं ज्ञेयं षडर्णवत् ॥५१९॥

द्व्यक्षर राम-मन्त्र—अब मैं राम के दो अक्षरों वाले मन्त्र की विधि को कहता हूँ। 'राम' यह द्व्यक्षर मन्त्र भुक्ति एवं मुक्ति प्रदान करने वाला कहा गया है। इस मन्त्र के ऋषि आदि एकाक्षर मन्त्र के समान ही होते हैं। 'रा' एवं 'म' की तीन आवृत्ति से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये। इस मन्त्र के ध्यान-पूजन-प्रयोग आदि सबकुछ षडक्षर मन्त्र के समान जानना चाहिये।।५१८-५१९।।

श्रीवेदशतविंशानामयुतस्य लिखेत्क्रमात्।
एकोपचयकोष्ठेषु मन्त्रमेनं प्रपूजयेत्।
उपचारैः षोडशभी रामं ध्यात्वा यथाविधि ॥५२०॥
कृष्णपक्षतिमारभ्य पौर्णमास्यां समापयेत्।
जायन्ते तेन कार्याणि ह्यनुश्लोकदलैः प्रिये ॥५२१॥

हे प्रिये! कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से आरम्भ करके पूर्णिमा-पर्यन्त प्रतिदिन क्रमशः एकाधिक कोष्ठों में अलग-अलग एक हजार चार सौ बीस बार राम का नाम लिखने के पश्चात् राम का ध्यान करके समस्त कोष्ठों में इस मन्त्र के द्वारा षोडश उपचारों से विधिपूर्वक पूजन करने से निम्न श्लोकों के दलों में कथित कार्य सम्पन्न होते हैं।।५२०-५२१।।

गजाश्ववृषबालानां क्षुद्ररोगो विनश्यति।
षड्कर्माणि विनश्यन्ति कृत्याश्चारिप्रणोदिताः ॥५२२॥
बन्धमोक्षो रोगनाशः सन्तानोद्यमलब्धयः।
गतराज्यधनादीनां प्राप्तिः ख्यातिर्धनागमः।
विधानं वा महासिद्धिर्भवेद्वा चक्रवर्तिता ॥५२३॥

हाथी, घोड़े, बैल और बालकों के क्षुद्र रोगों का विनाश होता है; आभिचारिक आदि षट्कर्मों के साथ-साथ शत्रु द्वारा प्रेरित कृत्याओं का विनाश होता है। बन्धन से मुक्ति होने के साथ-साथ रोगों का विनाश होता है एवं सन्तान तथा उद्यम की प्राप्ति होती है। परहस्तगत राज्य एवं धन की प्राप्ति होती है। ख्याति-प्राप्ति के साथ-साथ धनागम होता है। महासिद्धि-विधान अथवा चक्रवर्तित्व की प्राप्ति होती है।।५२२-५२३।।

त्र्यक्षरराममन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि चतुर्थन्तु मनोर्विधिम् ।
तारमायारमानङ्गवाक्स्वबीजैश्च षड्विधः ।
द्व्यक्षरो मन्त्रराजस्तु त्र्यक्षरः परिजायते ॥५२४॥
न्यासपूजाप्रयोगादि सर्वं पूर्ववदाचरेत् ॥५२५॥

त्र्यक्षर राम-मन्त्र—अब मैं राम के चतुर्थ मन्त्र की विधि को कहता हूँ। 'राम' इस द्व्यक्षर मन्त्र के साथ क्रमशः ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं एवं रां लगाने से तीन अक्षरों के छः मन्त्र बनते हैं (जैसे—ॐ राम, ह्रीं राम, श्रीं राम, क्लीं राम, ऐं राम और रां राम)। इन सभी मन्त्रों का न्यास, पूजन, प्रयोग आदि सब कुछ पूर्ववत् करना चाहिये।।५२४-५२५।।

पञ्चाक्षरराममन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि षष्ठमन्वन्तरोद्भवम् ।
रामाय नम इत्येष मन्त्रः पञ्चाक्षरो मतः ॥५२६॥
विश्वामित्रो मुनिः प्रोक्तः पङ्क्तिश्छन्दोऽस्य देवता ।
रामभद्रो बीजशक्ती प्रथमार्णस्ततोऽन्तिमः ॥५२७॥
भ्रूमध्ये हृदि नाभ्यंघ्रोः पादयोर्विन्यसेन्मनुम् ।
षडङ्गं पूर्ववत्कार्यं मन्त्रार्णैर्मनुनास्त्रकम् ॥५२८॥

पञ्चाक्षर राम-मन्त्र—अब मैं छठे मन्वन्तर में उद्भूत राम के पञ्चाक्षर मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—रामाय नमः। इस मन्त्र के ऋषि विश्वामित्र, छन्द पंक्ति, देवता रामभद्र, बीज रा एवं म शक्ति है। मन्त्रवर्ण रा का भ्रूमध्य में, मा का हृदय में, य का नाभि में, न का कन्धों में और मः का पैरों में न्यास करना चाहिये। मन्त्रवर्णों से पूर्ववत् षडंगन्यास करके 'रामाय नमः' मन्त्र से अस्त्रन्यास करना चाहिये।।५२६-५२८।।

मध्ये वने कल्पतरोर्मूले वै पुष्पकासने ।
लक्ष्मणेन प्रगुणितं चाक्ष्णः कोणेन सायकम् ।
अवेक्षमाणं जानक्या कृतव्यजनमीश्वरम् ॥५२९॥
जटाभारलसच्छीर्षं श्यामं मुनिगणावृतम् ।
लक्ष्मणेन धृतच्छत्रमथ वा पुष्पकोपरि ॥५३०॥
दशास्यमथनं शान्तं ससुग्रीवबिभीषणम् ।
विजयार्थी विशेषेण वर्णलक्षं जपेन्मनुम् ।
प्राग्वद्धोमस्तर्पणादि प्रयोगाद्यं च साधयेत् ॥५३१॥

कानन के मध्य में कल्पवृक्ष के नीचे पुष्प के आसन पर विराजमान, लक्ष्मण द्वारा सीधे किये गये बाण को तिरछी नजरों से देखते हुये, जानकी द्वारा पंखा झले जाते हुये, माथे पर जटाओं से सुशोभित, मुनिगणों से घिरे हुये एवं लक्ष्मण द्वारा छत्र धारण किये हुये अथवा दशमुख का वध करने वाले, सुग्रीव-सहित विभीषण के साथ पुष्पक विमान पर शान्त मुद्रा में विराजमान राम का ध्यान करते हुये विजय की कामना वाले को मन्त्र का वर्णलक्ष (पाँच लाख) जप करने के उपरान्त पूर्ववत् होम-तर्पण आदि करने के पश्चात् प्रयोगादि का साधन करना चाहिये।।५२९-५३१।।

सप्तममन्वन्तरोद्भूतराममन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सप्तमे जातमन्त्रकम्।
रामचन्द्रो रामभद्रो ङेऽन्तो नतियुतो द्विधा।।५३२।।
सप्ताक्षरो निगदितो मन्त्रः सप्तर्षिसेवितः।
ध्यानपूजाप्रयोगादि निखिलन्तु षडर्णवत्।।५३३।।

सप्तम मन्वन्तरोद्भूत राम-मन्त्र—अब मैं सातवें मन्वन्तर में अवतरित राम के मन्त्र को कहता हूँ। सप्तर्षियों द्वारा उपासित सात अक्षरों वाला यह मन्त्र दो प्रकार का कहा गया है, जो इस प्रकार है—रामचन्द्राय नमः एवं रामभद्राय नमः। इस मन्त्र के ध्यान, पूजन, प्रयोग आदि सभी कुछ षडक्षर मन्त्र के समान होते हैं।।५३२-५३३।।

सावर्णिमन्वन्तरोद्भूतराममन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रं सावर्णिकोद्भवम्।
तारादिषड्भिः संयुक्तो द्विधा सप्ताक्षरो मतः।।५३४।।
अष्टाक्षरो द्वादशधा कीर्तितो वाञ्छितार्थदः।
सर्वं षडर्णवज्ज्ञेयं ध्यानपूजाजपादिकम्।।५३५।।

सावर्णि मन्वन्तरोद्भूत राम-मन्त्र—अब मैं सावर्णि मन्वन्तर में उद्भूत राम के मन्त्र को सम्यक् रूप से कहता हूँ। सप्ताक्षर मन्त्र में ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं रां लगाने से उपरोक्त दोनों मन्त्रों के आठ अक्षरों वाले बारह भेद होते हैं; जो कि वाञ्छितार्थ-प्रदायक कहे गये हैं। इन मन्त्रों के ध्यान, पूजन, जप आदि सभी कुछ षडक्षर मन्त्र के समान जानने चाहिये।।५३४-५३५।।

नवममन्वन्तरोद्भूतराममन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रान्नवमसम्भवान्।
तारो रामश्चतुर्थ्यन्तः क्रोधान्तो वह्निवल्लभः।।५३६।।
अष्टार्णोऽयं परो मन्त्रो मुन्यादिः स्यात्षडर्णवत्।
नाशनः सर्वदोषाणां संग्रामे विजयप्रदः।।५३७।।

नवम मन्वन्तरोद्भूत राम-मन्त्र—अब मैं नवम मन्वन्तर में होने वाले राम के मन्त्र को कहता हूँ। आठ अक्षरों का यह श्रेष्ठ मन्त्र है—ॐ रामाय क्रुद्धाय नमः। इस मन्त्र के ऋषि आदि षडक्षर मन्त्र के समान होते हैं। यह मन्त्र समस्त दोषों का विनाशक होने के साथ-साथ युद्ध में विजय प्रदान करने वाला होता है।।५३६-५३७।।

दशममन्वन्तरोद्भूतराममन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रान् दशमसम्भवान्।
क्रूंह्रीं नमश्च रामाय ह्रीमित्यष्टाक्षरः परः ॥५३८॥
ऋषिः सदाशिवः प्रोक्तो गायत्रं छन्द उच्यते।
रामचन्द्रोऽस्य मन्त्रस्य देवता परिकीर्तितः ॥५३९॥
नमो रामाय ह्रीं हृच्च नमो रामाय ह्रीं शिरः।
दीर्घया माययाङ्गानि तारपञ्चार्णयुक्तया ॥५४०॥
रामं त्रिनेत्रं सोमार्धधारिणं शूलिनं वरम्।
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं कपर्दिनमुपास्महे ॥५४१॥
रामाभिरामां सौन्दर्यसीमां सोमावतंसिनीम्।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरां ध्यायेत्त्रिलोचनाम्।
रामशक्तिन्तु सीताख्यां वर्णलक्षं जपेन्मनुम् ॥५४२॥
होमपूजादिकं सर्वं षडक्षरवदीरितम्।
विशेषतो भोगदोऽसौ संग्रामे विजयप्रदः ॥५४३॥

दशम मन्वन्तरोद्भूत राम-मन्त्र—अब मैं दशम मन्वन्तर में होने वाले राम के मन्त्र को कहता हूँ। आठ अक्षरों का वह श्रेष्ठ मन्त्र है—क्रूं ह्रीं नमः रामाय ह्रीं। इसके ऋषि सदाशिव, छन्द गायत्री एवं देवता रामचन्द्र कहे गये हैं। इसका षडङ्ग न्यास इस प्रकार करना चाहिये—नमो रामाय ह्रीं हृदयाय नमः, नमो रामाय ह्रीं शिरसे स्वाहा, ह्रूं ॐ नमो रामाय शिखायै वषट्, ह्रैं ॐ नमो रामाय कवचाय हुम्, ह्रौं ॐ नमो रामाय नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्रः ॐ नमो रामाय अस्त्राय फट्।

तत्पश्चात् तीन नेत्रों वाले, अर्धचन्द्र एवं उत्तम शूल को धारण करने वाले, समस्त अंगों में भस्म लपेटे हुये कपर्दी-स्वरूप राम की मैं उपासना करता हूँ। साथ ही अत्यन्त मनोहर, सौन्दर्य की पराकाष्ठा, शीर्ष पर चन्द्रमा को धारण की हुई, हाथों में पाश अंकुश धनुष एवं बाण धारण की हुई, तीन नेत्रों वाली सीता-नाम्नी राम की शक्ति का ध्यान करके मन्त्र का वर्णलक्ष अर्थात् आठ लाख की संख्या में जप करना चाहिये। इसके बाद हवन-पूजन आदि सब कुछ षडक्षर मन्त्र के समान करना चाहिये। यह मन्त्र विशेषतः भोग प्रदान करने वाला एवं युद्ध में विजय प्रदान करने वाला है।।५३८-५४३।।

एकादशमन्वन्तरोद्भूतराममन्त्राः

अथैकादशसम्भूतान् राममन्त्रान् वदाम्यहम्।
सप्तार्णो यो मनुः प्रोक्तः षड्भिस्तारादिकैः पृथक् ॥५४४॥
सम्पुटिता द्वादशधा नवार्णा मनवः स्मृताः।
ध्यानपूजादिकं सर्वं तेषां सप्तार्णवच्चरेत् ॥५४५॥

एकादश मन्वन्तरोद्भूत राम-मन्त्र—अब मैं एकादश मन्वन्तर में समुद्भूत राम के मन्त्र को कहता हूँ। तार आदि छः बीजों से सम्पुटित सप्ताक्षर मन्त्र से ही इनके बारह मन्त्र बनते हैं, जिनमें नव अक्षर होते हैं; जैसे—ॐ रामचन्द्राय नमः ॐ, ह्रीं रामचन्द्राय नमः ह्रीं, श्रीं रामचन्द्राय नमः श्रीं, क्लीं रामचन्द्राय नमः क्लीं, ऐं रामचन्द्राय नमः ऐं, रां रामचन्द्राय नमः रां, ॐ रामभद्राय नमः ॐ, ह्रीं रामभद्राय नमः ह्रीं, श्रीं रामभद्राय नमः श्रीं, क्लीं रामभद्राय नमः क्लीं, ऐं रामभद्राय नमः ऐं, रां रामभद्राय नमः रां। इन मन्त्रों के ध्यान, पूजन आदि सभी कुछ सप्ताक्षर मन्त्र के समान ही होते हैं।।५४४-५४५।।

द्वादशमन्वन्तरोद्भूतराममन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि द्वादशान्तरसम्भवम्।
जानकीवल्लभो ङेऽन्तः स्वाहान्तश्च हुमादिकः ॥५४६॥
दशाक्षरोऽयं मन्त्रः स्याद्वसिष्ठोऽस्य मुनिः स्वराट्।
छन्दश्च देवता रामः सीतापाणिपरिग्रहः ॥५४७॥
आदिबीजं द्विषः शक्तिरङ्गं षड्दीर्घके मतम्।
शिरोललाटभ्रूमध्यनेत्रकण्ठस्तनेष्वपि ॥५४८॥
नाभ्यूरुजानुपादेषु दशार्णान् विन्यसेन्मनोः।
अयोध्यानगरे चैव विचित्रे स्वर्णमण्डपे ॥५४९॥
मन्दारपुष्पैराबद्धविताने तोरणाञ्चिते।
सिंहासने समारूढं पुष्पकोपरि राघवम् ॥५५०॥
रक्षोभिर्हरिभिर्देवैर्दिव्ययानगतैः शुभैः।
संस्तूयमानं मुनिभिः प्रहृष्टैरुपसेवितम् ॥५५१॥
सीतालंकृतवामाङ्गं लक्ष्मणेनोपशोभितम्।
श्यामं प्रसन्नवदनं सर्वाभरणभूषितम् ॥५५२॥
ध्यायन्नेवं जपेन्मन्त्रं वर्णलक्षमनन्यधीः।
जपपूजाप्रयोगादि सर्वमस्य षडर्णवत् ॥५५३॥

द्वादश मन्वन्तर के राम-मन्त्र—अब मैं बारहवें मन्वन्तर में समुद्भूत राम के मन्त्र का निरूपण करता हूँ। वह दशाक्षर मन्त्र है—हुं जानकीवल्लभाय स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि वशिष्ठ, छन्द स्वराट् एवं देवता सीतापाणि-परिग्रह राम हैं। हुं बीज और स्वाहा शक्ति है। हां हीं हूं हैं हौं ह: से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। मन्त्र के दश वर्णों से क्रमश: शिर, ललाट, भ्रूमध्य, नेत्र, कण्ठ, स्तन, नाभि, ऊरु, जानु एवं चरण—इन दश अंगों में वर्णन्यास करना चाहिये।

तदनन्तर अयोध्या-नामक नगरी में मन्दार-पुष्प-ग्रथित चँदोवा एवं तोरणों से सुसज्जित विचित्र स्वर्णमण्डप में सिंहासन के ऊपर विकीर्ण पुष्पों पर विराजमान, रक्षक-स्वरूप वानरों एवं दिव्य यानों पर आरूढ़ देवताओं द्वारा सम्यक् रूप से स्तूयमान, चारो ओर से प्रसन्नचित्त मुनियों द्वारा घिरे हुये, सीता से अलंकृत वाम अंग वाले, लक्ष्मण के द्वारा सुशोभित, श्याम वर्ण वाले, प्रसन्न मुख वाले, समस्त आभरणों से विभूषित राघव का ध्यान करते हुये मन्त्र का वर्णलक्ष अर्थात् दश लाख की संख्या में एकाग्रचित्त होकर जप करना चाहिये। इस मन्त्र के जप, पूजन, प्रयोग आदि समस्त कृत्य पूर्वोक्त षडक्षर मन्त्र के समान होते हैं।।५४६-५५३।।

त्रयोदशमन्वन्तरोद्भूतराममन्त्र:

अथ त्रयोदशे जातं राममन्त्रं वदाम्यहम्।
रामो ङेऽन्तो धनुष्पाणिस्तथा स्याद्वह्निसुन्दरी।।५५४।।
दशाक्षरो मुनिर्ब्रह्मा विराट् छन्दोऽस्य देवता।
राक्षसान्तकरो रामो रां बीजं परिकीर्तितम्।।५५५।।
स्वाहा शक्ति: स्वबीजेन षडङ्गानि समाचरेत्।
वर्णन्यासं तथा ध्यानं पुरश्चर्याविधिं तथा।।५५६।।
दशाक्षरोक्तवत्कुर्याच्चापबाणधरं स्मरेत्।
विशेषाज्जयदश्चायं सर्ववाञ्छितदायक:।।५५७।।

त्रयोदश मन्वन्तर में समुद्भूत राम का मन्त्र—अब मैं तेरहवें मन्वन्तर में प्रकटित राम के मन्त्र को कहता हूँ। दश अक्षरों वाला वह मन्त्र है—रामाय धनुष्पाणये स्वाहा। इस दशाक्षर मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द विराट्, देवता राक्षसों के विनाशक राम, बीज रां एवं शक्ति स्वाहा कहे गये हैं। बीजमन्त्र के छ: दीर्घ स्वरूपों (रां रीं रूं रैं रौं र:) से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। इसका वर्णन्यास, ध्यान एवं पुरश्चरण-विधान दशाक्षर मन्त्र के समान करना चाहिये। ध्यान के समय सर्वाभरण-भूषित के स्थान पर धनुष एवं बाण धारण किये हुये स्वरूप का ध्यान करना चाहिये। यह मन्त्र विशेषतया

विजय प्रदान करने वाला एवं सामान्यतया समस्त मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाला है।।५५४-५५७।।

अन्यमन्वन्तरोद्भूतराममन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि चान्यमन्वन्तरोद्भवम्।
ॐ हृद्भगवते रामचन्द्रायेति मनुर्मतः ।।५५८।।
अर्कार्णो द्विविधोऽप्यस्य मुनिर्ध्यानजपादिकम्।
दशाक्षरवदेव स्यादयं कल्याणकारकः ।।५५९।।

अन्य मन्वन्तरोद्भूत राम के मन्त्र—अब मैं अन्य (चौदहवें) मन्वन्तर में अवतरित राम के मन्त्र को कहता हूँ। बारह अक्षरों वाला दो प्रकार का वह मन्त्र इस प्रकार है—ॐ नमो भगवते रामचन्द्राय, ॐ नमो भगवते रामभद्राय। इस मन्त्र के ऋषि, ध्यान, जप आदि दशाक्षर मन्त्र के समान होते हैं। यह मन्त्र साधक का कल्याण करने वाला कहा गया है।।५५८-५५९।।

हनुमदुपासितराममन्त्रः

अथ वक्ष्ये वायुजातोपासितं मन्त्रनायकम्।
श्रीराम जयरामेति जयराम जयेति च ।।५६०।।
त्रयोदशाक्षरो मन्त्रः सर्वमस्य दशार्णवत्।
पदत्रयैर्द्विरावृत्त्या चाङ्गन्यासं समाचरेत् ।।५६१।।

हनुमान् द्वारा उपासित राम-मन्त्र—अब मैं पवनपुत्र हनुमान द्वारा उपासित मन्त्रराज को कहता हूँ। तेरह अक्षरों का वह मन्त्र है—श्रीराम जय राम जय राम जय। इस मन्त्र के जपादि समस्त कृत्य दशाक्षर मन्त्र के समान होते हैं। मन्त्र के तीन पदों की दो आवृति से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है।।५६०-५६१।।

भरतोपासितराममन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि भरतोपासितं मनुम्।
सतारं हृद्भगवते रामो ङेऽन्तो महा ततः।
पुरुषाय पदं पश्चाद् द्विठान्तोऽष्टादशाक्षरः ।।५६२।।
विश्वामित्रो मुनिश्छन्दो गायत्रं देवता मता।
दशास्यदर्पदलनो रामभद्रः प्रकीर्तितः ।।५६३।।
तारो बीजं नमः शक्ती रामचन्द्रः षडङ्गकम्।
मूलमन्त्रैः कोशलेन्द्रः सत्यसन्धस्ततः परम् ।।५६४।।

रावणान्तकनामा च सर्वलोकहितस्तथा ।
शश्वत्प्रसन्नवदनश्चतुर्थीं नमसा वदेत् ।।५६५।।
नन्दिग्रामस्योपवने भरतायतनेऽर्चिते ।
रम्ये सुगन्धपुष्पाद्यैर्वृक्षवृन्दैश्च मण्डिते ।।५६६।।
निष्कोणभेरीपटहशङ्खतूर्यादिनि:स्वने ।
पवित्ररूपे परितो जयमङ्गलभाषिते ।।५६७।।
पाटीरघुसृणोशीरकर्पूरागुरुगन्धिते ।
नानाकुसुमसौरभ्यवाहिगन्धवहान्विते ।
देवगन्धर्वनारीभिर्गायत्र्यादिविभूषिते ।।५६८।।
सिंहासनसमारूढं पुष्पकोपरि राघवम् ।
सौमित्रिसीतासहितं जटामुकुटशोभितम् ।।५६९।।
चापबाणधरं श्यामं ससुग्रीवबिभीषणम् ।
हत्वा रावणमायान्तं कृतत्रैलोक्यरक्षणम् ।।५७०।।
रामभद्रं हृदि ध्यायन्दशलक्षं जपेन्मनुम् ।
होमपूजाप्रयोगादि सर्वं ज्ञेयं षडर्णवत् ।।५७१।।

भरत द्वारा उपासित राम-मन्त्र—अब मैं भरत द्वारा उपासित राम-मन्त्र को कहता हूँ। अट्ठारह अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ नमो भगवते रामाय महापुरुषाय स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि विश्वामित्र, छन्द गायत्री एवं देवता दशमुख के दर्प को चूर-चूर करने वाले रामभद्र कहे गये हैं। ॐ बीज एवं नम: शक्ति है। मूलमन्त्र के छ: पदों से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है।

तत्पश्चात् कोशलेन्द्राय सत्यसन्धाय रावणान्तकाय सर्वलोकहिताय शश्वत्प्रसन्नवदनाय नम: कहकर प्रणाम करते हुये नन्दिग्राम के उपवन में रमणीय सुगन्धित पुष्पों वाले वृक्षों से घिरे हुये, भेरी, पटह, शंख, तुरही आदि की ध्वनि से निनादित, पवित्र जयघोष से पूरित, पाटीर (चन्दन) घुसृण (केशर) उशीर (खश) कपूर एवं अगुरु से सुगन्धित, अनेकविध पुष्पों की सुगन्धि से परिपूर्ण वायु से समन्वित, देवाङ्गनाओं गन्धर्वपत्नियों गायत्री आदि से विभूषित भरत के निवासस्थान में पूजित; लक्ष्मण एवं सीता के सहित पुष्पक विमान के ऊपर सिंहासन पर आसीन, जटा एवं मुकुट से सुशोभित, रावण का वध कर वापस आते हुये, त्रैलोक्य की रक्षा करने वाले रामभद्र का हृदय में ध्यान करके मन्त्र का दश लाख की संख्या में जप करना चाहिये। इसका होम-पूजन आदि सबकुछ षडक्षर मन्त्र के समान ही जानना चाहिये।।५६२-५७१।।

विभीषणोपासितराममन्त्रः

अथ वक्ष्ये बिभीषणोपासितं मोक्षदायकम् ।
राज्यश्रियाः प्रदातारं भक्तानामभयप्रदम् ॥५७२॥
रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम ।
दशास्यान्तक रां रक्ष देहि दापय मे श्रियम् ॥५७३॥
द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रो विश्वामित्रो मुनिर्मतः ।
छन्दोऽनुष्टुब्देवता तु रामभद्रः प्रकीर्तितः ॥५७४॥
चतुःसागरवेदाब्धिवस्विभैरङ्गकल्पनम् ।
मस्तके च ललाटे च नेत्रयोः कर्णयोस्तथा ॥५७५॥
गण्डयोश्च नसोरास्ये ततश्च भुजमूलयोः ।
कूर्परद्वितये वापि मणिबन्धद्वये तथा ॥५७६॥
कण्ठे च स्तनयोर्हृत्के नाभौ च जठरे कटौ ।
मेढ्रे पायावूरुमूलद्वये जान्वोश्च गुल्फयोः ॥५७७॥
मन्त्रावर्णान्न्यसेत्तेन जपादावधिकारवान् ।
पूर्वोक्तध्यानमत्रापि लक्षं च प्रयतो जपेत् ।
पीतं वा चिन्तयेद्रामं धनार्थं यो मनुं जपेत् ॥५७८॥

विभीषण द्वारा उपासित राम-मन्त्र—अब मैं विभीषण द्वारा उपासित राम-मन्त्र को कहता हूँ; जो कि मोक्ष प्रदान करने वाला, राज्यलक्ष्मी को देने वाला एवं भक्तों को अभय प्रदान करने वाला है। बत्तीस अक्षरों का वह मन्त्र इस प्रकार है—

रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम।
दशास्यान्तक रां रक्ष देहि दापय मे श्रियम्।।

इस मन्त्र के ऋषि विश्वामित्र, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता रामभद्र कहे गये हैं। मन्त्र के क्रमशः चार, चार, चार, चार, आठ एवं आठ वर्णों से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् मन्त्र के बत्तीस वर्णों को शरीर के बत्तीस अंगों में न्यस्त करना चाहिये; वे अङ्ग इस प्रकार कहे गये हैं—मस्तक, ललाट, दक्ष नेत्र, वाम नेत्र, दक्ष कर्ण, वाम कर्ण, दक्ष कपोल, वाम कपोल, दक्ष नासापुट, वाम नासापुट, ककुद, दक्ष भुजमूल वाम भुजमूल, दक्ष कूर्पर, वाम कूर्पर, दक्ष मणिबन्ध, वाम मणिबन्ध, कण्ठ, दक्ष स्तन, वाम स्तन, हृदय, नाभि, उदर, कटि, लिंग, पायु, दक्ष ऊरुमूल, वाम ऊरुमूल, दक्ष जानु, वाम जानु, दक्ष गुल्फ एवं वाम गुल्फ।

इस प्रकार से मन्त्रवर्णों का न्यास करने के बाद ही साधक जप का अधिकारी होता

है। यहाँ पर भी ध्यान पूर्ववत् ही करना चाहिये। तत्पश्चात् सावधान होकर मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिये। धन-प्राप्ति की कामना से मन्त्रजप करने वाले को पीतवर्ण स्वरूप वाले राम का चिन्तन करना चाहिये।।५७२-५७८।।

लक्ष्मणोपासितराममन्त्र:

अथात: सम्प्रवक्ष्यामि लक्ष्मणोपासितं मनुम्।
तारो नमो भगवते ङेऽन्त: स्याद्रघुनन्दन: ।।५७९।।
रक्षोघ्नविशदायेति मधुरेति पदं तत:।
प्रसन्नवदनायेति ततश्चामिततेजसे ।।५८०।।
बलायेति च रामाय विष्णवे नम इत्ययम्।
सप्तचत्वारिंशदर्णो मालामन्त्र उदीरित: ।।५८१।।
मुनि: पितामहश्छन्द: स्यादनुष्टुप् च देवता।
राज्याभिषिक्तो रामश्चों बीजं शक्तिर्नमस्त्विवति ।।५८२।।
सप्तषट्सप्तदशषट्रुद्रसङ्ख्यै: षडङ्गकम्।
शिरोमुखभ्रूमध्येषु नेत्रयो: कणयोर्नसो: ।।५८३।।
गण्डयोरोष्ठयोर्दन्तपङ्क्त्योरास्ये च कक्षयो:।
तथा कूर्परयोरस्य तथैव मणिबन्धयो: ।।५८४।।
अङ्गुलीमूलयोश्चैवाथाङ्गुलीनां तथाग्रयो:।
कण्ठे हृदि स्तनद्वन्द्वे पार्श्वयो: पृष्ठके करे ।।५८५।।
जठरे च तथा नाभौ स्वाधिष्ठाने ध्वजे गुदे।
ऊर्वोर्जान्वोस्तथांघ्रयोश्च सर्वाङ्गेऽपि न्यसेत्क्रमात् ।।५८६।।
ध्यानं दशाक्षरप्रोक्तं लक्षमेकं जपेन्मनुम्।
बिल्वप्रसूनै: पत्रैर्वा तिलैस्त्रिमधुना युतै: ।।५८७।।
मधुरत्रययुक्तेन पायसेनाथ वाम्बुजै:।
होमं दशांशत: कुर्यात्तथा सर्वत्र तर्पणम्।
मार्जनं भोजयेद्विप्रान् प्रयोगादि च पूर्ववत् ।।५८८।।

लक्ष्मण द्वारा उपासित राम-मन्त्र—अब मैं लक्ष्मण द्वारा उपासित राम-मन्त्र को कहता हूँ। सैंतालीस अक्षरों का वह मालामन्त्र इस प्रकार है—ॐ नमो भगवते रघुनन्दनाय रक्षोघ्नविशदाय मधुरप्रसन्नवदनाय अमिततेजसे बलाय रामाय विष्णवे नम:। इस मालामन्त्र के ऋषि पितामह (ब्रह्मा), छन्द अनुष्टुप्, देवता राज्याभिषिक्त राम, बीज ॐ एवं शक्ति नम: कहे गये हैं।

मन्त्र के क्रमशः सात, छः, सात, दश, छः एवं ग्यारह वर्णों से इसका षडङ्गन्यास करने के पश्चात् मन्त्र के सैंतालीस वर्णों को शरीर के इन सैंतालीस अंगों में क्रमशः न्यस्त करना चाहिये—शिर, मुख, भ्रूमध्य, दक्ष नेत्र, वाम नेत्र, दक्ष कर्ण, वाम कर्ण, दक्ष नासापुट, वाम नासापुट दक्ष कपोल, वाम कपोल, उर्ध्वोष्ठ, अधरोष्ठ, ऊर्ध्व दन्तपंक्ति, अधो दन्तपंक्ति, ककुद, दक्ष बाहुमूल, वाम बाहुमूल, दक्ष कूर्पर, वाम कूर्पर, दक्ष मणिबन्ध, वाम मणिबन्ध, दक्ष कराङ्गुलिमूल, वाम कराङ्गुलिमूल, दक्ष अङ्गुलि, वाम अङ्गुलि, दक्ष कराङ्गुल्यग्र, वाम कराङ्गुल्यग्र, कण्ठ, हृदय, दक्ष स्तन, वाम स्तन, दक्ष पार्श्व, वाम पार्श्व, पीठ, उदर, नाभि, स्वाधिष्ठान, लिंग, गुदा, दक्ष ऊरु, वाम ऊरु, दक्ष जानु, वाम जानु, दक्ष पाद, वाम पाद एवं सर्वाङ्ग।

इसके बाद पूर्वोक्त दशाक्षर मन्त्र के समान ध्यान करने के उपरान्त मन्त्र का एक लाख की संख्या में जप करना चाहिये। तदनन्तर त्रिमधुराक्त बिल्वपुष्पों, बिल्वपत्रों, तिलों, पायस अथवा कमलों से कृत जप का दशांश (दश हजार) हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् तर्पण एवं मार्जन करने के बाद ब्राह्मण-भोजन कराकर पूर्ववत् प्रयोग आदि का सम्पादन करना चाहिये।।५७९-५८८।।

शत्रुघ्नोपासितराममन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शत्रुघ्नोपासितां पराम्।
जयदां रामगायत्रीं जपितां सूर्यवंशजैः ।।५८९।।
दाशरथाय विद्महे तथा सीतेति वल्लभा।
य धीमहीति तन्नो रा तदग्रे मः प्रचोदयात् ।।५९०।।
एषा स्याद्रामगायत्री भक्तानां भुक्तिमुक्तिदा।
जन्मप्रभृति यत्पापं दशभिर्याति संक्षयम् ।।५९१।।
पुरा कृतं शतेनैव सहस्रेण जपेन वा।
चतुर्लक्षं जपेद्यस्तु मोक्षभाक् स न संशयः ।।५९२।।
यच्च यावच्च पूजादि सर्वं पूर्ववदाचरेत्।
तारादिरेषा गायत्री मुक्तिमेव प्रयच्छति ।।५९३।।
मायादिरपि वै द्रव्यं रमादिश्च श्रियं पराम्।
मन्मथेनापि संयुक्ता सम्मोहयति मेदिनीम् ।।५९४।।

शत्रुघ्न द्वारा उपासित राम-मन्त्र—अब मैं शत्रुघ्न द्वारा उपासित श्रेष्ठ राममन्त्र को कहता हूँ। यह रामगायत्री सूर्यवंशियों द्वारा जप करने पर जय प्रदान करने वाली है। भक्तों को भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाली वह रामगायत्री इस प्रकार है—

दाशरथाय विद्महे सीतावल्लभाय धीमहि तन्नो राम: प्रचोदयात्। इस रामगायत्री के दश बार जप करने से ही जन्म से लेकर जप-पर्यन्त किये गये पापों का विनाश हो जाता है; साथ ही एक सौ अथवा एक हजार ज़प से पूर्वजन्म-कृत पाप विनष्ट हो जाते हैं। जो साधक इस मन्त्र का चार लाख जप कर लेता है, वह मोक्ष प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है; इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिये।

इस रामगायत्री के पूजन आदि समस्त कृत्य पूर्ववत् ही करणीय होते हैं। इस गायत्री के पहले ॐ लगाकर जप करने से निश्चित रूप से मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार आदि में ह्रीं लगाकर जप करने से द्रव्यों की तथा श्रीं लगाकर जप करने से श्रेष्ठ लक्ष्मी की अवश्यमेव प्राप्ति होती है। मन्त्र के पहले क्लीं लगाकर जप करने से साधक साम्पूर्ण पृथिवी को सम्मोहित करने में सक्षम हो जाता है।।५८९-५९४।।

सीतोपासितराममन्त्र:

अथात: सम्प्रवक्ष्यामि श्रीसीतोपासितं मनुम्।
श्रीरामाय हुंफट् च स्वाहान्तोऽयं नवाक्षर: ।।५९५।।
अगस्त्योऽस्य मुनि: प्रोक्त: पङ्क्तिश्छन्द उदाहृतम्।
श्रीमद्दाशरथी रामो देवता परिकीर्तित: ।।५९६।।
स्वाहा शक्तिश्च रां बीजं बीजेनैव षडङ्गकम्।
सबिन्दुभिर्यकाराद्यै: पञ्चाङ्गन्यास ईरित: ।।५९७।।
नीलोत्पलदलश्यामं जटामुकुटमण्डितम्।
पीताम्बरधरं देवं चापबाणविभूषितम् ।।५९८।।
दक्षिणे लक्ष्मणं ध्यायेत्कनकाभं किरीटिनम्।
वामभागे जगद्योनिं प्रकृतिं परमेश्वरीम् ।।५९९।।
सीतां चम्पकगौराङ्गीं श्वेतवस्त्रविभूषिताम्।
सर्वाभरणसंयुक्तां द्विभुजां रत्नकुण्डलाम्।
धनुर्बाणकरं देवं सीतां पद्मकरां स्मरेत् ।।६००।।
यद्वा रामं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रासिशार्ङ्गिणम्।
सीतालक्ष्मणसंयुक्तं ध्यायेत्कल्पतरोरध: ।।६०१।।
ध्यात्वैवं हृदये राममन्तरा वा बहिर्यजेत्।
षट्कोणमध्ये रामं च कोणेष्वङ्गानि चार्चयेत् ।।६०२।।
तद्बाह्येऽष्टदले पूर्वदिगादौ भरतं यजेत्।
हनूमन्तं लक्ष्मणं च जाम्बवन्तं क्रमेण च ।।६०३।।

सुग्रीवमर्चयेत् पश्चात्पूजयेच्च विभीषणम्।
सीतां च सुग्रीवाग्रे तु दिक्पालान् हेतिभिः सह ॥६०४॥
जपेद् द्वादशलक्षाणि होमश्चाशोकपुष्पकैः।
तर्पणादि ततः कृत्वा प्रयोगार्हो भवेन्मनुः ॥६०५॥

सीता द्वारा उपासित राम-मन्त्र—अब मैं सीता द्वारा उपासित राम-मन्त्र को कहता हूँ। यह नवाक्षर मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—रां श्रीरामाय हुं फट् स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि अगस्त्य, छन्द पंक्ति, देवता दाशरथी राम, शक्ति स्वाहा एवं बीज रां कहा गया है। बीजमन्त्र के ही छः दीर्घ स्वरूपों (रां रीं रूं रैं रौं रः) से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। बिन्दुयुक्त यकारादि (य फट् स्वाहा) से इसका पञ्चाङ्गन्यास कहा गया है।
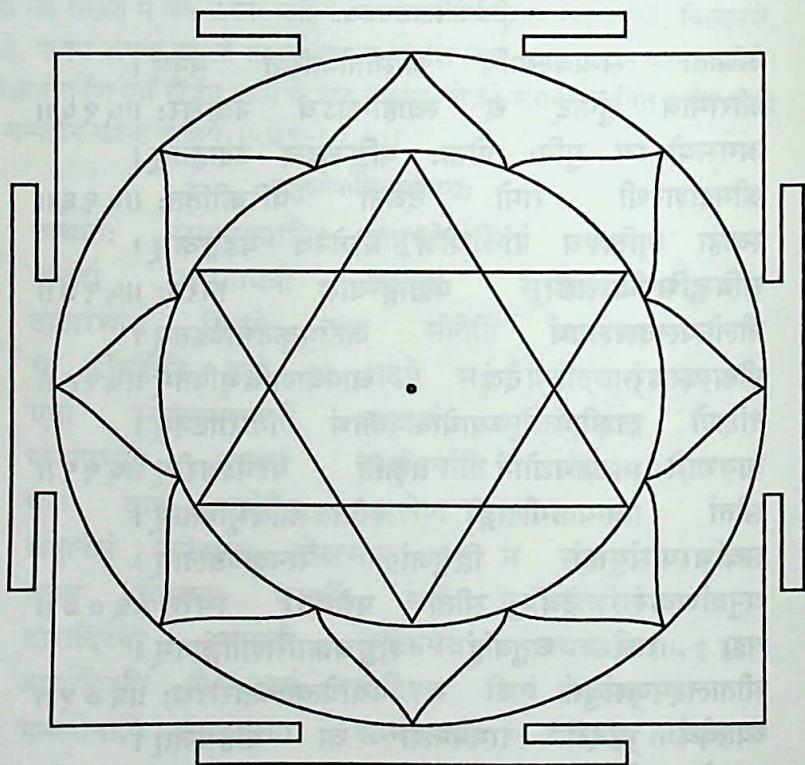
इस प्रकार न्यास करने के उपरान्त नीलकमल के समान श्याम वर्ण वाले, जटा एवं मुकुट से सुशोभित, पीत वस्त्र धारण करने वाले, चाप एवं बाण से विभूषित राम

का; उनके दाहिनी ओर किरीट धारण किये हुये स्वर्णवर्ण वाले लक्ष्मण एवं बाँयीं ओर चम्पक-सदृश गौर वर्ण वाली श्वेत वस्त्रों से विभूषित समस्त आभरणों से भूषित रत्न-निर्मित कुण्डल धारण की हुई दो भुजाओं में कमल धारण की हुई जगद्योनि-स्वरूपा प्रकृति-स्वरूपिणी परमेश्वरी सीता का स्मरण करना चाहिये। अथवा चार भुजाओं वाले, हाथों में शंख. चक्र तलवार एवं धनुष धारण किये हुये, सीता एवं लक्ष्मण के सहित कल्पवृक्ष के नीचे विराजमान राम का स्मरण करना चाहिये। इस प्रकार अपने हृदय में ध्यान करके अन्तस्तल में अथवा बाहर यन्त्र में राम का पूजन करना चाहिये।

षट्कोण-मध्य में राम का पूजन करके षट्कोणों में षडङ्गों का पूजन करने के उपरान्त राम के वाम भाग में सीता का पूजन करना चाहिये। उसके बाहर अष्टदल में पूर्व दिशा से प्रारम्भ करके चारो दिशाओं में क्रमशः भरत, हनुमान, लक्ष्मण एवं जाम्बवन्त का पूजन करने के बाद विदिशाओं में क्रमशः सुग्रीव, विभीषण एवं सीता का पूजन करने के पश्चात् भूपुर में आयुधों के सहित इन्द्रादि दश दिक्पालों का पूजन करना चाहिये।

उक्त प्रकार से पूजन करने के उपरान्त मन्त्र का बारह लाख जप करने के पश्चात् अशोकपुष्पों से हवन करके तर्पण-मार्जन करने पर मन्त्र प्रयोग करने के योग्य हो जाता है।।५९५-६०५।।

रक्तापामार्गपत्रैश्च मधुरत्रयसंयुतैः ।
वा कञ्जपत्रैर्जुहुयाद्धोमोऽयं लोकवश्यकृत् ॥६०६॥
जपापुष्पहुतं भस्म तिलकं लोकवश्यकृत् ।
मल्लिकाभिर्जगद्वश्यं भवत्येव न संशयः ॥६०७॥
लक्षत्रयं जपेन्मन्त्री सर्वज्ञानमवाप्नुयात् ।
अश्रुतान्यपि शास्त्राणि षड्भिर्लक्षैस्तु विन्दति ।
नवभिर्देवकन्याभिर्देववत्स प्रमोदते ॥६०८॥
चन्द्रसूर्योपरागे तु मोक्षौषध्यभिमन्त्रितम् ।
कपिलाज्यं पिबेद्यस्तु दूर्वारसविमिश्रितम् ॥६०९॥
अद्याज्ज्योतिष्मतीतैलमङ्कोलरसमिश्रितम् ।
शुद्धब्राह्मीरसं वापि स सर्वज्ञो भवेद् द्रुतम् ॥६१०॥
सन्ध्यात्रये प्रतिदिनं सहस्रत्रितयं जपेत् ।
मासेन महदैश्वर्यं जायते नात्र संशयः ॥६११॥
श्रीकामो जुहुयात्पद्मैरयुतं त्रिमधुप्लुतैः ।
धनवाञ्जायते मन्त्री द्वितीय इव यक्षराट् ॥६१२॥

बिल्वपत्रैश्च जुहुयादथवा तद्दलैर्हुनेत्।
लक्षमेकं निधिस्थाने निधिलाभो भवेद् ध्रुवम्॥६१३॥

लोकवशीकरण के लिये मधुरत्रय से समन्वित लाल अपामार्ग के पत्तों से अथवा कमल के पत्तों से हवन करना चाहिये। जपापुष्पों के हवन के भस्म का तिलक लगाने से लोकवशीकरण होता है। मल्लिकापुष्पों के हवन से निश्चित रूप से जगत् का वशीकरण होता है।

मन्त्र का तीन लाख जप करने से मन्त्रज्ञ साधक समस्त ज्ञानों को प्राप्त कर लेता है। छः लाख जप करने वाला साधक न सुने हुये शास्त्रों को भी जान लेता है। नव लाख जप करने वाला साधक देवकन्याओं के साथ देवता के समान प्रमुदित होता है।

चन्द्र अथवा सूर्यग्रहण में मोक्षौषधि को अभिमन्त्रित करके दूर्वारस से विमिश्रित कपिला गाय के घृत का जो पान करता है, अथवा उस अभिमन्त्रित औषधि में अंकोल-रसमिश्रित ज्योतिष्मती का तेल अथवा शुद्ध ब्राह्मीरस का जो पान करता है, वह शीघ्र ही सर्वज्ञ हो जाता है। एक मास-पर्यन्त प्रतिदिन तीनों सन्ध्याओं में तीन हजार मन्त्रजप करने से निश्चित रूप से महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

मधुरत्रय-समन्वित एक हजार कमलों से दश हजार हवन करने वाला लक्ष्मी-प्राप्ति का इच्छुक मन्त्रज्ञ साधक धनवान होकर दूसरे कुबेर के समान हो जाता है। खजाने के स्थान पर बिल्वपत्रों अथवा बिल्वदलों से एक लाख हवन करने पर निश्चित रूप से खजाने का लाभ होता है॥६०६-६१३॥

शिवोपासितराममन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मयैवोपासितं सुराः।
ज्ञानप्रदं महामन्त्रं सनकाद्यैरुपासितम्॥६१४॥
ॐ नमो ब्रह्मदेवाय रामायाकुण्ठमेधसे।
उत्तमश्लोकवर्याय न्यस्तदण्डार्चिताङ्घ्रये॥६१५॥
शुकदेवो मुनिश्चास्य छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम्।
श्रीरामो देवता बीजं रां वर्य्यः शक्तिरुच्यते॥६१६॥
चतुष्पादैः समस्तेन पञ्चाङ्गविधिरीरितः।
प्राग्वद्ध्यानादिकं लक्षं पुरश्चर्या प्रकीर्तिता॥६१७॥
आज्यपायसहोमं च ब्राह्मणार्चां समाचरेत्।
प्रयोगाः पूर्वमन्त्रोक्ता मोक्षार्थी साधयेदमुम्॥६१८॥

शिवोपासित राम-मन्त्र—हे देवताओं! अब मैं स्वयं द्वारा उपासित राम-मन्त्र

को कहता हूँ। सनकादि महर्षियों द्वारा उपासित यह महामन्त्र ज्ञान प्रदान करने वाला है। बत्तीस अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ नमो ब्रह्मदेवाय रामायाकुण्ठमेधसे उत्तमश्लोकवर्याय न्यस्तदण्डार्चितांघ्रये। इस मन्त्र के ऋषि शुकदेव, छन्द अनुष्टुप्, देवता श्रीराम, बीज रां एवं वर्य्यः शक्ति कहे गये हैं। इसके पञ्चाङ्गन्यास में मन्त्र के चार पादों से हृदय, शिर, शिखा एवं कवचन्यास करने के उपरान्त सम्पूर्ण मन्त्र से अस्त्रन्यास किया जाता है। इसके ध्यान आदि पूर्ववत् होते हैं तथा मन्त्र के एक लाख जप से इसका पुरश्चरण होता है। गोघृत-मिश्रित पायस से हवन करके तर्पणादि के बाद ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये। पूर्वमन्त्रोक्त प्रयोग इस मन्त्र से भी किये जाते हैं। मोक्षकामी को इस मन्त्र का साधन करना चाहिये।।६१४-६१८।।

शक्रोपासितराममन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शक्रेणोपासितं मनुम्।
येन कारागृहान्मुक्तो रावणस्य सुरेश्वरः ।।६१९।।
तारो नमो भगवते रामभद्राय संवदेत्।
बन्दीविमुक्तशृङ्खले स्वाहा द्वाविंशदक्षरः ।।६२०।।
विभीषणो मुनिः प्रोक्तो जगती छन्द ईरितम्।
स्वाहा शक्तिर्ध्रुवो बीजं रामभद्रोऽस्य देवता।
पदैरस्य षडङ्गानि जपेल्लक्षमितं सदा ।।६२१।।
प्राग्वद्धोमादिकं सर्वं यदर्थं जप्यतेऽयुतम्।
सप्ताहाज्जायते मोक्षो नात्र कार्या विचारणा ।।६२२।।

इन्द्र द्वारा उपासित राम-मन्त्र—अब मैं इन्द्र के द्वारा उपासित राम-मन्त्र को कहता हूँ, जिसके प्रभाव से देवराज इन्द्र रावण के कारागार से मुक्त हुये थे। बाईस अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ नमो भगवते रामभद्राय बन्दीविमुक्तशृङ्खले स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि विभीषण एवं छन्द जगती कहे गये हैं। शक्ति स्वाहा, बीज ॐ एवं इस मन्त्र के देवता रामभद्र हैं। इसके छः पदों से षडङ्गन्यास किया जाता है। पुरश्चरण-सिद्धि के लिये इसका एक लाख जप करना चाहिये। इसके हवन आदि समस्त कृत्य पूर्ववत् होते हैं। जिसके लिये इस मन्त्र का दश हजार जप किया जाता है, वह सात दिनों में निश्चित ही मुक्त हो जाता है; इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिये।।६१९-६२२।।

सीतामन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सीतामन्त्रं महाद्भुतम्।
श्रीसीतायै नमः स्वाहा सीतामन्त्रः षडक्षरः ।।६२३।।

जनकोऽस्य मुनिश्छन्दो गायत्रं देवता मता।
सीता भगवती प्रोक्ता श्रीं बीजं शक्तिरन्यकौ।
दीर्घस्वरयुताद्येन षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ।।६२४।।
पूजयेद्वैष्णवे पीठे ध्यायेद्राघवसंयुताम्।
स्वर्णाभामम्बुजकरां रामालोकनतत्पराम् ।।६२५।।
वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रमिष्टार्थं साधयेत्ततः।
आरोग्याय घृतं धान्यं ताम्बूलं वश्यसिद्धये।
श्रीफलानि तिलान्मुक्त्यै भुक्त्यै च जुहुयात्सदा ।।६२६।।

सीता-मन्त्र—अब मैं अत्यन्त अद्भुत सीता-मन्त्र को कहता हूँ। षडक्षर सीतामन्त्र है—श्रीसीतायै नमः अथवा श्रीसीतायै स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि जनक, छन्द गायत्री, देवता भगवती सीता, बीज श्रीं एवं शक्ति स्वाहा है। दीर्घ स्वर-युक्त श्री से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। वैष्णवपीठ पर इसका पूजन किया जाता है। स्वर्णवर्ण वाली, हाथों में कमल धारण की हुई, श्रीराम को निर्निमेष दृष्टि से देखती हुई राघव से समन्वित सीता का ध्यान करके मन्त्र का वर्णलक्ष अर्थात् छः लाख जप करने के पश्चात् अपना अभीष्ट-साधन करना चाहिये। आरोग्य-प्राप्ति के लिये घृतमिश्रित धान्य से, वशीकरण-सिद्धि के लिये ताम्बूल से, भोग-प्राप्ति के लिये श्रीफल से एवं मुक्ति-प्राप्ति के लिये सदा तिलों से हवन करना चाहिये।।६२३-६२६।।

श्रीकृष्णमन्त्राणां विधिः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कृष्णमन्त्रान्महाद्भुतान्।
कृष्णः स एव भगवान् कलिद्वापरसन्धिगः ।।६२७।।
वृद्धये कलिधर्माणां भक्तानां तारणाय च।
एकसप्ततिरूपोऽसौ प्रतिमन्वन्तरेऽभवत् ।।६२८।।
तदुक्ताचरणान्मोक्षस्तत्कृत्याचरणाच्च्युतिः।
इति तत्त्वं समाख्यातं विष्णोः सन्धिभवस्य च ।।६२९।।
जातश्चाद्ये कलियुगे नानागोपीरते रतः।
सत्कर्म कुर्वतां पातस्तदुक्तिर्मोक्षसाधनम् ।।६३०।।
स्वधर्मनिरतानां तु कलौ जन्म न जायते।
तस्य मन्त्रं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रसाधनम् ।।६३१।।

श्रीकृष्णमन्त्रों की विधि—अब मैं अत्यन्त अद्भुत कृष्णमन्त्रों को कहता हूँ। कलियुग के धर्मों की वृद्धि के साथ-साथ भक्तों के उद्धार के लिये वह भगवान् कृष्ण

ही कलियुग एवं द्वापर के सन्धिकाल में अवतरित हुये हैं। अपने इकहत्तर स्वरूपों में ये प्रत्येक मन्वन्तर में प्रकट होते हैं।

सन्धिकाल में अवतरित विष्णु द्वारा उपदिष्ट कर्त्तव्यों को करने से जीव को मुक्ति की प्राप्ति होती है एवं उनके द्वारा कृत कर्मों को करने से जीव का पतन होता है—यही उनके अवतरित होने का रहस्य कहा गया है। कलियुग के आरम्भ में अनेकानेक गोपियों के साथ रमण में वे रत रहे। उनके द्वारा कृत इस कर्म को करने से सत्कर्म करने वालों का भी पतन होता है एवं उनके उपदेश मुक्ति-प्राप्ति के साधन हैं। अपने धर्म में निरत मनुष्यों का कलियुग में जन्म नहीं होता। उन्हीं कृष्ण के भोग-मोक्ष के साधन-स्वरूप मन्त्र को अब मैं कहता हूँ।।६२७-६३१।।

दशाक्षरकृष्णमन्त्रः

गोपीजनवल्लभाय स्वाहा मन्त्रो दशाक्षरः।
नारदोऽस्य मुनिः प्रोक्तो विराट् छन्द उदाहृतम्।।६३२।।
देवता नन्दपुत्रः क्लीं बीजं शक्तिः शिखिप्रिया।
अचक्राय हृदाख्यातं विचक्राय शिरोऽपि च।।६३३।।
सुचक्राय शिखा पश्चात्त्रैलोक्यरक्षणन्ततः।
चक्राय कवचं प्रोक्तमसुरान्तकशब्दतः।।६३४।।
चक्रायास्त्रमिदं कुर्यादङ्गानां पञ्चकं मनोः।
सर्वाङ्गेषु मनुं न्यस्य मन्त्रन्यासं समाचरेत्।।६३५।।
जातियुक्तं च पञ्चाङ्गं तथा पञ्चाङ्गुलीषु च।
हृदये शीर्षके चैव शिखायां कवचे तथा।।६३६।।
अस्त्रे पार्श्वद्वये कण्ठे पृष्ठे मूर्द्धनि च क्रमात्।
ततः करतले पृष्ठे व्यापकत्वेन विन्यसेत्।।६३७।।
प्रणवाद्यं नमोऽन्तं च सकलं च मनुं बुधः।
वामाङ्गुष्ठं समारभ्य दक्षाङ्गुष्ठान्तकं न्यसेत्।।६३८।।
तारसम्पुटितैर्वर्णैर्दशभिश्च नमोयुतैः।--
एष संहारनामा तु न्यासः प्रथम ईरितः।।६३९।।
दक्षाङ्गुष्ठादिवामान्तं सृष्टिन्यास उदाहृतः।
अङ्गुष्ठाभ्यां समारभ्य कनिष्ठान्तं स्थितिर्भवेत्।।६४०।।
एवं न्यासत्रयञ्चेति पञ्चन्यासाः प्रकीर्तिताः।।६४१।।

कृष्ण का दशाक्षर मन्त्र—कृष्ण का दशाक्षर मन्त्र है—गोपीजनवल्लभाय

स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द विराट् एवं देवता नन्दपुत्र कृष्ण कहे गये हैं। इस मन्त्र का बीज क्लीं एवं शक्ति स्वाहा है। इसका पञ्चाङ्गन्यास इस प्रकार किया जाता है—अचक्राय हृदयाय नमः, विचक्राय शिरसे स्वाहा, सुचक्राय शिखायै वषट्, त्रैलोक्यरक्षणचक्राय कवचाय हुम्, असुरान्तकचक्राय अस्त्राय फट्। तत्पश्चात् सम्पूर्ण मन्त्र से समस्त शरीर में व्यापक न्यास करने के उपरान्त मन्त्र-न्यास करना चाहिये। पाँचों अंगुलियों में जाति से युक्त मन्त्र द्वारा पञ्चाङ्गन्यास करने के पश्चात् हृदय, शिर, शिखा, कवच, अस्त्र, पार्श्वद्वय, कण्ठ, पीठ एवं मूर्धा में मन्त्र के दश वर्णों को न्यस्त करने के उपरान्त करतल और करपृष्ठ में व्यापक न्यास करना चाहिये। विद्वान् साधक को मन्त्रवर्णन्यास करते समय समस्त मन्त्रों के आदि में 'ॐ' एवं अन्त में 'नमः' का संयोजन करना चाहिये। बाँयें हाथ के अंगूठे से आरम्भ करके दाहिने हाथ के अगूठे तक क्रमशः मन्त्रवर्णन्यास करना चाहिये। 'नमः' से युक्त एवं 'ॐ' से सम्पुटित दश वर्णों से किया गया यह प्रथम न्यास संहारन्यास कहा गया है। इसी प्रकार दाहिने हाथ के अंगूठे से आरम्भ करके बाँयें हाथ के अंगूठे तक किया गया द्वितीय न्यास सृष्टिन्यास कहलाता है तथा अंगूठे से आरम्भ करके कनिष्ठा तक किया गया तृतीय न्यास स्थितिन्यास होता है। इस प्रकार पूर्वकथित दो न्यासों के साथ इन तीन न्यासों को मिलाकर कुल पाँच प्रकार के न्यास कहे गये हैं।६३२-६४१।।

पूर्वमुक्तं तु पञ्चाङ्गं वामदक्षिणहस्तयोः।
न्यसेद्दशाङ्गुलीष्वेवं षष्ठो न्यासः प्रकीर्तितः ॥६४२॥
आदौ मूलं समुच्चार्य मातृकाञ्च सबिन्दुकाम्।
विपरीतं पुनर्मूलं सप्तमः परिकीर्तितः ॥६४३॥
पादयोः पाणियुग्मे हृन्मुखयोर्मस्तके तथा।
पुनर्हृदि च सर्वाङ्गे सर्वाङ्गसकलाङ्गके ॥६४४॥
दश तत्त्वानि भूस्तोयं तेजो वायुर्नभस्तथा।
अहङ्कारो महत्तत्त्वं प्रकृतिः पुरुषः परः।
तत्त्वन्यासोऽष्टमोऽयं हि मया तुभ्यं प्रकीर्तितः ॥६४५॥
सर्वाङ्गादि तु पादान्तं न्यासमेनं प्रविन्यसेत्।
विलोमतत्त्वन्यासोऽयं नवमः परिकीर्तितः ॥६४६॥
मस्तकादि तु पादान्तं कराभ्यां व्यापकं न्यसेत्।
तारसम्पुटितं मन्त्रं त्रिवारं दशमस्त्वयम् ॥६४७॥

पूर्वकथित दोनों पञ्चाङ्गन्यासों को वाम-दक्षिण हाथों में करने से छठे प्रकार का न्यास होता है। प्रथमतः मूल मन्त्र का उच्चारण करने के बाद बिन्दुयुक्त पचास

मातृकाओं से न्यास करने के पश्चात् पुनः विपरीतमातृकाओं से किया गया न्यास सातवाँ न्यास कहलाता है।

पुनः दोनों पैर, दोनों हाथ, हृदय, मुख, मस्तक, हृदय, सर्वाङ्ग एवं सकलाङ्ग में क्रमशः पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहंकार, महत्, प्रकृति, पुरुष एवं परतत्त्वरूप दश तत्त्वों का न्यास करना चाहिये। इस प्रकार यह आठवाँ तत्त्वन्यास मेरे द्वारा तुमसे कहा गया।

तत्पश्चात् सर्वांग से आरम्भ करके पादान्त तक किया गया विलोम तत्त्वन्यास नवम प्रकार का न्यास होता हैं। इसके बाद पुनः तीन बार 'ॐ गोपीजनवल्लभाय स्वाहा ॐ' से हाथों के द्वारा मस्तक से पैरों तक को स्पर्श करके किया गया व्यापक न्यास दशम न्यास होता है।।६४२-६४७।।

पादयोर्जानुनोर्लिङ्गे जठरे हृदये मुखे।
नासयोः कर्णयोरक्ष्णोः शिरसि क्रमतो न्यसेत्।
सबिन्दुकान् मन्त्रवर्णान् संहारोऽयं शिरोऽन्वितः ।।६४८।।
मस्तके नेत्रयोः कर्णे नासयोश्च मुखे हृदि।
जठरे व्यञ्जने जान्वोः पादयोश्च क्रमान्न्यसेत्।
मन्त्रवर्णान् द्वादशोऽयं सृष्टिन्यासः प्रकीर्तितः ।।६४९।।
हृदये जठरे लिङ्गे जानुनोः पादयोश्च के।
अक्ष्णोः श्रुत्योर्नसि मुखे मन्त्रवर्णान् क्रमान्न्यसेत्।
स्थितिन्यासः समाख्यातो मूलस्यायं त्रयोदशः ।।६५०।।
मूलाधारे ध्वजे नाभौ हृदये च गले मुखे।
अंसयोरूरुयुग्मे च न्यासोऽयं स्याच्चतुर्दशः ।।६५१।।
स्कन्धे नाभौ कुक्षिहृदोः कटौ पार्श्वद्वये तथा।
पृष्ठेऽग्रे च न्यसेन्मन्त्रवर्णान् पञ्चदशस्त्वयम् ।।६५२।।
मूर्ध्नि भ्रूमध्यके चाक्ष्णोः कर्णयोर्नासिकाद्वये।
गण्डयोश्च न्यसेद्वर्णान्न्यासोऽयं षोडशः स्मृतः ।।६५३।।

तदनन्तर अनुस्वार-सहित मन्त्र के दश वर्णों से क्रमशः पादद्वय, जानुद्वय, लिंग, उदर, हृदय, मुख, नासापुटद्वय, कर्णद्वय, अक्षिद्वय एवं शिर में किया गया ग्यारहवाँ संहारन्यास कहलाता है। तत्पश्चात् मस्तक, नेत्रद्वय, कर्णद्वय, नासापुटद्वय, मुख, हृदय, उदर, लिंग, जानुद्वय, पादद्वय में क्रमशः मन्त्रवर्णों से किया गया बारहवाँ न्यास सृष्टिन्यास कहलाता है। मन्त्रवर्णों का क्रमशः हृदय, उदर, लिंग, जानुद्वय, पादद्वय,

मस्तक, नेत्रद्वय, कर्णद्वय, नासापुटद्वय एवं मुख में किया गया तेरहवाँ न्यास स्थितिन्यास कहलाता है। मूलाधार, लिङ्ग, नाभि, हृदय, गला, मुख, दोनों कन्धों एवं दोनों ऊरुओं में किया गया न्यास चौदहवाँ न्यास होता है। पन्द्रहवें न्यास में मन्त्रवर्णों को कन्धों, नाभि, कुक्षि, हृदय, कटि, दोनों पार्श्व, पीठ एवं अपने आगे न्यस्त किया जाता है। मूर्धा, भ्रूमध्य, अक्षिद्वय, कर्णद्वय, नासापुटद्वय एवं कपोलद्वय में किया गया मन्त्रवर्णों का न्यास सोलहवाँ न्यास कहा गया है।।६४८-६५३।।

दक्षिणे भुजमूले च तन्मध्ये मणिबन्धके।
मूलाङ्गुलीनामग्रे च तथाङ्गुष्ठादिपञ्चसु ।।६५४।।
क्रमेण विन्यसेद्वर्णान्न्यासः सप्तदशः स्मृतः।
इत्थं वामकरे न्यस्य न्यासस्त्वष्टादशो भवेत् ।।६५५।।
दक्षोरुमूलजानौ च गुल्फे चाङ्गुलिमूलके।
अङ्गुल्यग्रे तथाङ्गुष्ठादौ न्यासस्तूनविंशकः ।।६५६।।
एवं न्यसेद्वामपादे न्यासो विंशमितः स्मृतः।
मस्तके तत्सर्वभागादौ सम्पूर्णे शिरस्यथ।
बाहुयुग्मे सन्धियुग्मे न्यासोऽयञ्चैकविंशकः ।।६५७।।
शीर्षाक्षिमुखकण्ठोरोजठरे मूलधारके।
लिङ्गे जानुनि पादे च द्वाविंशोऽयं प्रकीर्तितः ।।६५८।।
कर्णयोर्गण्डयोर्न्यस्येदंसयो स्तनयोस्तथा।
पार्श्वयोर्भुजयोश्चोर्वोर्जानुनोर्जङ्घयोः पदोः।
युग्मन्यासोऽयमाख्यातस्त्रयोविंशतिसङ्ख्यकः ।।६५९।।

दक्ष करमूल, कूर्पर, मणिबन्ध, अङ्गुलिमूल, अङ्गुल्यग्र एवं अङ्गुष्ठ से कनिष्ठा-पर्यन्त पाँच अंगुलियों में किया गया मन्त्रवर्णन्यास सत्रहवाँ न्यास कहा गया है। इसी प्रकार क्रमशः बाँयें हाथ में किया गया वर्णन्यास अट्ठारहवाँ न्यास होता है। दक्ष ऊरुमूल, घुटना, गुल्फ, अंगुलिमूल, अंगुल्यग्र और अंगुष्ठादि पाँच अंगुलियों में किया गया मन्त्रवर्णन्यास उन्नीसवाँ न्यास होता है। इसी प्रकार वाम पाद में किया गया न्यास बीसवाँ न्यास कहलाता है। मस्तक, मस्तक के अग्र भाग, दक्ष भाग, वाम भाग, पृष्ठ भाग, पूरा मस्तक, दोनों भुजाओं एवं दोनों कूर्परों में किया गया मन्त्रवर्णन्यास इक्कीसवाँ न्यास होता है। मस्तक, आँख, मुख, कण्ठ, हृदय, उदर, मूलाधार, लिंग, जाँघों एवं पैरों में किया गया वर्णन्यास बाईसवाँ न्यास कहा गया है। कर्णद्वय, कपोलद्वय, स्कन्धद्वय, स्तनद्वय, पार्श्वद्वय, भुजद्वय, ऊरुद्वय, जानुद्वय, जंघाद्वय एवं पादद्वय में किया गया मन्त्रवर्णों का युग्मन्यास तेईसवाँ न्यास होता है।।६५४-६५९।।

चतुर्दशं समारभ्य दशन्यासास्तु ये स्मृताः।
विभूतिपञ्जरो नाम चैष एव प्रकीर्तितः ॥६६०॥
अशेषसुखकर्मार्थकीर्त्तिकान्त्यादिकारकः।
नरनारीनरेन्द्राणां वश्यकर्मणि शस्यते।
भुक्तिमुक्तिप्रदो भक्तिप्रदो विष्णोः पदाम्बुजे ॥६६१॥
कुर्यान्मन्त्री ततो न्यासं नारसिंहं तु पञ्चमम्।
मूर्तिपञ्जरनामाख्यं प्रोक्तं पापप्रणाशनम् ॥६६२॥
पुनः सृष्टिस्थितिन्यासौ दशाङ्गन्यासमाचरेत्।
प्रोक्तमाद्यप्रकारेण न्यासानामुपकल्पने ॥६६३॥
वैष्णवीर्दर्शयेन्मुद्राः पूर्वोक्ताः सकला अपि।
एवं कृत्वा विधानेन मन्त्री मन्त्रकलेवरम् ॥६६४॥
त्रय्यन्ते बोधितं नित्यं कृष्णं ध्यायेज्जगत्पतिम्।

उक्त न्यासों में चौदहवें से तेईसवें तक के दश न्यासों को विभूतिपञ्जर न्यास कहा गया है; जो कि समस्त सुख, कर्म, अर्थ, कीर्ति, कान्ति आदि का कारक होता है। यह विभूतिपञ्जर न्यास पुरुषों, स्त्रियों एवं राजाओं को वशीभूत करने वाला होता है। साथ ही यह भोग एवं मोक्ष-प्रदायक होने के साथ-साथ विष्णु के चरणारविन्द में भक्ति प्रदान करने वाला भी होता है। इसके बाद साधक को नृसिंह के पञ्चम न्यास मूर्तिपञ्जर न्यास को करना चाहिये, जो कि पापों का विनाशक कहा गया है।

पुन: सृष्टि-स्थितिरूप दशाङ्गन्यास करना चाहिये, जो कि न्यास-वर्णनक्रम में पहले ही कहे जा चुके हैं। इन न्यासों को करने के पश्चात् पूर्वकथित समस्त वैष्णवी मुद्राओं का प्रदर्शन भी करना चाहिये। इस प्रकार उक्त न्यासों का सविधि सम्पादन करने वाला मन्त्रज्ञ साधक साक्षात् मन्त्रशरीर वाला हो जाता है। तत्पश्चात् साधक को प्रतिदिन वेदत्रयी से प्रतिबोधित जगत्पति कृष्ण का ध्यान करना चाहिये।।६६०-६६४।।

पूर्वं वृन्दावनं रम्यं स्मरेत्पुष्पविराजितम् ॥६६५॥
नवीनपल्लवोद्रेकफलसम्पत्तिसंयुतम्।
मधुपैः कृतराङ्कारैः कीराद्यैश्च निनादितम् ॥६६६॥
आदित्यतनयापार्श्वलहरीकणशीतलम्।
तस्मिन् वने कल्पतरुं नवपल्लवशोभितम् ॥६६७॥
सर्वशाखाग्रसंयुक्तं नवरत्नफलान्वितम्।
दिव्यामृतौघवर्षेण सिञ्चन्तं विश्वमुच्छ्रितम् ॥६६८॥

ज्वलद्रत्नसमाबद्धां पुष्परेणुविभूषिताम्।
षडूर्मिरहितां ध्यायेत्तस्याधस्ताद्वसुन्धराम् ॥६६९॥

सर्वप्रथम रमणीय पुष्पों से समन्वित, प्रचुर नूतन पल्लवों एवं फलरूपी सम्पत्तियों वाले वृक्षों से युक्त, भौरों के गुञ्जारों एवं पक्षियों के कलरवों से निनादित, बगल में प्रवाहित यमुना के जलकणों से शीतल वृन्दावन का स्मरण करना चाहिये। उस वन में नवीन पल्लवों से सुशोभित, समस्त शाखाओं के अग्रभाग से संयुक्त, नव रत्नरूपी फलों से समन्वित, समस्त विश्व को दिव्य अमृत के वर्षण से सिञ्चित करते हुये, जाज्वल्यमान रत्नों को धारण किये हुये पुष्पपरागों से विभूषित कल्पवृक्ष के नीचे प्राण चित्त और शरीर के छः क्लेशों (भूख-प्यास, लोभ-मोह, सर्दी-गर्मी) से रहित पृथिवी का ध्यान करना चाहिये।।६६५-६६९।।

माणिक्यकुट्टिमं तत्र योगपीठं विचिन्तयेत्।
पद्ममष्टदलं तत्र यथोक्तं रत्नपर्णकम् ॥६७०॥
तस्य मध्ये सुखासीनं कृष्णं ध्यायेदनन्यधीः।
उद्यदादित्यसङ्काशं प्रसन्नवदनं विभुम् ॥६७१॥
इन्द्रनीलमणिप्रख्यं स्निग्धदीर्घशिरोरुहम्।
मायूरेण सुपिच्छेन राजमानशुभाङ्गकम् ॥६७२॥
कुटिलालकविभ्राजदास्यं कर्णकृतोत्पलम् ॥६७३॥
गोरोचनाक्ततिलकं पूर्णचन्द्रनिभं स्मरेत्।
पद्मनेत्रं दीप्तमणिं मकराकृतिकुण्डलम् ॥६७४॥
कपोलस्थललावण्यविजितस्वच्छदर्पणम्।
अत्यद्भुतोन्नासिकं च पक्वबिम्बफलाधरम् ॥६७५॥
दाडिमीबीजरदनं कम्बुसुन्दरकण्ठकम्।
आरण्यैः पल्लवैः पुष्पैः कृतग्रैवेयसम्पदम् ॥६७६॥
कौस्तुभप्रभया दीप्तविशालोन्नतवक्षसम्।
श्रीवत्साङ्काङ्कितोरस्कं वृषस्कन्धं च हारिणम् ॥६७७॥

वहाँ पर माणिक्य-जटित योगपीठ का चिन्तन करना चाहिये। उस योगपीठ पर रत्नरूपी पत्तों वाले अष्टदल कमल के मध्य में सुख-पूर्वक आसीन कृष्ण का अनन्य मन से चिन्तन करना चाहिये। वे श्रीकृष्ण उदीयमान सूर्य के समान हैं, उनका मुख प्रसन्न है, वे सर्वव्यापी हैं, उनके शिर के लम्बे बाल इन्द्रनीलमणि के सदृश स्निग्ध हैं, उनका शीर्षभाग मयूर के सुन्दर पंख से सुशोभित है, उनके मुख पर घुंघराले बाल

सुशोभित हैं, कानों पर कमल सुशोभित है, वे गोरोचन का तिलक लगाये हुये हैं एवं पूर्ण चन्द्रमा के सदृश दिखाई दे रहे हैं। उनके नेत्र कमल के समान हैं, दीप्त मणि धारण किये हुये हैं, मकर की आकृति वाला कुण्डल धारण किये हुये हैं, उनके कपोल का लावण्य स्वच्छ दर्पण को भी तिरस्कृत करने वाला है, उनकी नासिका अत्यन्त अद्भुत है, पके हुये बिम्बफलों के समान उनके अधर हैं, अनार के दानों के सदृश उनके दाँत हैं, सुराही के समान सुन्दर उनका कण्ठ है, जंगली पत्तों एवं पुष्पों से निर्मित उनका हार है, उनका विशाल उन्नत वक्षःस्थल कौस्तुभ मणि की कान्ति से दीप्त है, उनकी छाती पर श्रीवत्स चिह्न अंकित है, बैलों के समान उनके कन्धे हैं और वे हार धारण किये हुये हैं।।६७०-६७७।।

आजानुलम्बदोर्दण्डं वलित्रययुतोदरम्।
क्षुद्रघण्टिकया बद्धकटिं ग्रैवेयराजितम्।।६७८।।
चक्रशङ्खलसत्पद्मामृतकुण्डाम्बरादिभिः।
कुलिशप्रमुखैश्चिह्नैरङ्कितस्वच्छपत्तलम्।।६७९।।
मुखाम्बुजसमायुक्तवंशच्छिद्रार्पिताङ्गुलिम्।
तन्मृदुध्वनिसन्तानविवशीकृतमानसम्।।६८०।।
अपाङ्गैः प्राणिजातन्तु मोहयन्तमनारतम्।
परमानन्दसन्दोहसम्पूर्णीकृतमानसम्।
मुखपद्मसमासक्तस्वान्तनेत्राभिराजितम्।।६८१।।
गोभिरूधोमहाभारमन्दयानाभिरेव च।
कवलीकृतसन्त्यक्तन्यासलेशाभिरप्यलम्।।६८२।।
प्रस्नुतस्तनपानेन सम्भृताननिःस्वनैः।
डिण्डीरवाभिसंयुक्तद्रवैर्दृष्टिमनोहरैः।।६८३।।
वंशवादनप्रोन्नीतगीताकर्णनलालसैः।
उत्तम्भनीकृतश्रोत्रपुटयुग्मैश्च तर्णकैः।।६८४।।
किञ्चिद्विषतरूद्भूतिजातकण्डूतिमस्तकैः।
परस्परविमर्दार्थखुरस्पृष्टमहीतलैः।।६८५।।
स्निग्धैर्गुरुभिरत्यन्तसुशोभिगलकम्बलैः।
वत्सीवत्ससमूहैश्च संवृतं तदनन्तरम्।।६८६।।
कृतसम्भ्रमसन्दोहं लघुदीर्घकलेवरैः।
उच्चकर्णपुटैः पीतवंशशब्दसुधारसैः।।६८७।।

स्ववयस्यैश्च गायद्भिर्धृत्यद्भिः सविभाषणैः ।
नानावेषधरैर्बालैः संस्तुवद्भिः समावृतम् ।
मधुराकृतिभिः सर्वैः पीयूषाद्भुतभाषणैः ॥६८८॥
शार्दूलनखसंक्लृप्तगलाकल्पैस्तथावृतम् ।
ततो गोपपुरन्ध्रीणां स्मरेद्वन्दं समाहितः ॥६८९॥
तद्भावभावकल्लोलसञ्जीवितमनोभवम् ।
वल्लवीवल्लवगवां देववृन्दं बहिः स्मरेत् ॥६९०॥
सम्मुखे देवदेवस्य काङ्क्षन्तं धनसञ्चयम् ।
ऋषिसङ्घं तथा दक्षे वेदाध्ययनतत्परम् ॥६९१॥
धर्मार्थिनं स्मरेत्पश्चान्मेनकाप्रमुखास्तथा ।
वामभागे च योगीन्द्रान् यक्षगन्धर्वकिन्नरान् ॥६९२॥
सिद्धविद्याधरांश्चापि चारणाप्सरसां गणम् ।
अनेकश्रुतिसम्पूर्णवीणावादनतत्परम् ॥६९३॥
आकाशे नारदं ध्यायेन्मुनिवर्यं गतस्मयम् ।
एवं ध्यात्वा यजेत्पीठे देहे मानसिकार्चनम् ॥६९४॥

उनकी भुजायें जानु-पर्यन्त लम्बी हैं, उदर तीन वलियों से समन्वित है एवं कमर में छोटी-छोटी घण्टियों से युक्त करधनी सुशोभित है। चक्र, शंख, कमल, अमृतकुण्ड, अम्बर आदि एवं वज्र आदि प्रमुख चिह्नों से अंकित अत्यन्त स्वच्छ उनके पदतल हैं। मुखकमल से युक्त वंशी के छिद्रों पर उनकी अंगुलियाँ विराजमान हैं। वंशी की मन्द-मन्द ध्वनि से वे सबके मन को वशीभूत किये हुये हैं। अपनी तिरछी नजरों से वे समस्त प्राणियों को निरन्तर मोहित करते रहते हैं। परमानन्द-समूह से चित्त को सराबोर करने वाले हैं। उनका मुखकमल अन्तर्नेत्र से सुशोभित है। विशाल स्तनों के अतिशय भार से आक्रान्त गायें उनको देखते ही घास के ग्रासों का भी त्याग कर देती हैं और उनके थनों से अपने-आप गिर रहे दुग्ध से पूरित उनका मुख निःशब्द है। वे श्रीकृष्ण डिण्डीरव से संयुक्त स्निग्ध मनोहर दृष्टियों से, वंशीवादन से निःसृत गीतों को सुनने की लालसा वाले, कर्णयुगलों को ऊपर उठाये हुये, कतिपय विषवृक्षों के सम्पर्क के कारण अपने मस्तक को खुजलाते हुये, आपस में लड़ने के लिये पृथ्वीतल पर खुरों को टिकाये हुये, अत्यन्त स्निन्ध एवं भारी गलकम्बलों से सुशोभित बछड़ियों एवं बछड़ों के समूहों से घिरे हुये हैं।

तदनन्तर अत्यधिक श्रम के कारण छोटे एवं बड़े शरीर वाले, कनों को उठाकर

वंशी की अमृतरस से परिपूर्ण पवित्र ध्वनि को सुनते हुये, अपने सखाओं के साथ ऊँचे स्वर में गान के साथ-साथ नृत्य करते हुये, अनेक वेषभूषा वाले बालकों द्वारा घेरकर स्तुति किये जाते हुये, मधुर आकृति वाले सभी बालकों द्वारा अमृतवर्षण-सदृश बातें करते हुये, सिंहनख से स्पृष्ट गला वाले बालकों से आवृत कृष्ण का ध्यान करना चाहिये।

तदनन्तर अपने हाव-भाव एवं हँसी-ठिठोली से कामदेव को विजित करने वाली गोपुर-स्त्रियों का समाहित चित्त से स्मरण करना चाहिये। उसके बाहर गोप, गोपी, गायों एवं देवताओं का स्मरण करना चाहिये। उन देवदेव के सम्मुख धनसञ्चय की कामना करते हुये ऋषियों का, दाहिनी ओर वेदाध्ययन में तत्पर ब्राह्मणों का, उसके बाद धर्मार्थियों एवं मेनका आदि प्रमुख अप्सराओं का ध्यान करना चाहिये। बाँयें भाग में श्रेष्ठ योगियों, यक्षों, गन्धर्वों, किन्नरों, सिद्धों, विद्याधरों, चारणों एवं अप्सराओं का स्मरण करना चाहिये। अनेक श्रुतियों से परिपूर्ण वीणावादन में तत्पर अहंकार-रहित मुनिवर नारद का आकाश में स्मरण करना चाहिये। इस प्रकार ध्यान करके शरीररूपी पीठ पर मानसिक पूजन करना चाहिये।।६७८-६९४।।

बाह्यपूजां ततः कुर्यान्मूर्तिं मूलेन कल्पयेत्।
न्यासोक्तं क्रमतः पश्चाद् गन्धाद्यैर्देवमर्चयेत्।।६९५।।
एवं ध्यात्वा यजेत्पीठे वैष्णवे नवशक्तिके।
आदौ स्वीये पीठमये देहे मानसिकार्चनम्।।६९६।।
सृष्ट्या स्थित्या च सम्पूज्य पञ्चाङ्गं च दशाङ्गकम्।
वंशं च वनमालां च श्रीवत्सं कौस्तुभं तथा।।६९७।।
पूजयेत्कृष्णवर्णस्थं ततश्चावरणार्चनम्।
कर्णिकायां चतुर्दिक्षु देवस्य परितोऽर्चयेत्।।६९८।।
दामं सुदामं श्रीदामं वसुदामं तथापरम्।
तेजोरूपधरांश्चैतान् केसरेष्वङ्गपूजनम्।।६९९।।

इसके बाद बाह्य पूजन करना चाहिये। एतदर्थ मूल मन्त्र से न्यासोक्त मूर्तियों की क्रमशः कल्पना करके गन्धादि उपचारों से देव का अर्चन करना चाहिये। इस प्रकार ध्यान करके नव शक्ति से समन्वित वैष्णव पीठ पर अर्चन करना चाहिये। वे नव शक्तियाँ हैं—विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वा, सत्या, ईशाना, एवं अनुग्रहा।

सर्वप्रथम अपने पीठमय शरीर पर मानसिक पूजन करना चाहिये। सृष्टि, स्थिति, पञ्चाङ्ग, दशाङ्ग का पूजन करके वंशी, वनमाला, श्रीवत्स एवं कृष्णवर्णस्थ कौस्तुभ

का पूजन करने के उपरान्त आवरण-पूजन करना चाहिये। देव के समीप चारो ओर कर्णिका की चारो दिशाओं में तेजोरूपधारी दाम, सुदाम, श्रीदाम एवं वसुदाम का अर्चन करना चाहिये। केशरों में षडङ्ग-पूजन करना चाहिये।।६९५-६९९।।

रुक्मिणीप्रमुखाश्चाष्टपत्रेषु महिषीर्यजेत्।
रुक्मिणीं सत्यभामां च नग्नजित्तनयार्कजे ।।७००।।
मित्रविन्दां लक्ष्मणां च जाम्बवत्या सुशीलिकाम्।
कमलं चार्घपात्रं च बिभ्रतीर्दक्षिणान्ययोः ।।७०१।।
सुन्दरीर्दिव्यरक्ताभा वस्तुलेपादिभिर्युताः।
स्तनभारनता नानारत्नजालविभूषणाः ।।७०२।।
पत्राग्रेषु ततः पूज्या वसुदेवश्च देवकी।
नन्दगोपो यशोदा च बलभद्रः सुभद्रिका ।।७०३।।
गोपाला गोपिकाः कृष्णशुश्रूषासक्तमानसाः।
स्वर्णाभो वसुदेवस्तु रक्तो नन्दः प्रकीर्तितः ।।७०४।।
रक्तश्यामनिभे प्रोक्ते मातरौ दक्षिणे करे।
वरं वामे वहन्त्यौ तु पात्रं गोपयसा भृतम्।
मुक्ताहारधरे रत्नकुण्डलादिविभूषिते ।।७०५।।
बलभद्रस्तु कुन्दाभो मुशली हलसंयुतः।
नीलाम्बरो मदोन्मत्तश्चञ्चलश्चैककुण्डलः।
नानोपायनहस्ताब्जगोपापत्यैः सुपूजितः ।।७०६।।

अष्टदल कमल के आठ दलों में आठ पटरानियों का पूजन करना चाहिये। वे पटरानियाँ हैं—रुक्मिणी, सत्यभामा, नाग्नजिती, कालिन्दी, मित्रबिन्दा, लक्ष्मणा, जाम्बवती और सुशीला चारुहासिनी। ये सभी दिव्य सुन्दरी पटरानियाँ अपने-अपने हाथों में कमल एवं अर्घपात्र ली हुई हैं, रक्त आभा वाली हैं, विविध वस्तुओं का लेप लगाई हुई हैं, स्तनों के भार से झुकी हुई हैं एवं अनेक रत्नों से अलंकृत हैं।

तदनन्तर अष्टपत्रों के अग्रभाग में कृष्ण की सुश्रूषा में निरत मन वाले वसुदेव, देवकी, नन्द, यशोदा, बलभद्र, सुभद्रा, गोपों एवं गोपियों का अर्चन करना चाहिये। इनमें से वसुदेव स्वर्णकान्ति वाले एवं नन्द रक्तवर्ण के कहे गये हैं।

मोतियों के हार एवं रत्न-निर्मित कुण्डल आदि से विभूषित देवकी एवं यशोदा—ये दोनों मातायें रक्त एवं श्याम वर्ण वाली हैं। ये दोनों अपने-अपने दाहिने हाथों में वर एवं बाँयें हाथों में गोदुग्ध से भरा पात्र धारण की हुई हैं।

कुन्द वर्ण की आभा वाले बलभद्र मुसल एवं हल धारण किये हुये हैं। मद से उन्मत्त वे नीला वस्त्र धारण किये हुये हैं। अत्यन्त चञ्चल कुण्डल धारण किये हुये हैं तथा अनेक सामग्रियों को हाथ में लिये हुये गोपवालकों द्वारा पूजित हैं।।७००-७०६।।

मध्ये बहिश्च पूर्वादौ मन्दारं पारिजातकम्।
सन्तानं कल्पवृक्षं च चन्दनं च प्रपूजयेत्।।७०७।।
दीर्घनम्रबृहच्छाखान् भूपुरे तु दिगीश्वरान्।
तदायुधानि विधिना क्रमतः सम्यगर्चयेत्।।७०८।।

अष्टदल के बाहर और भूपुर के मध्य में पूर्वादि क्रम से मन्दार, पारिजात, सन्तान, कल्पवृक्ष और चन्दन वृक्ष का पूजन करना चाहिये। ये सभी वृक्ष अत्यन्त लम्बे एवं झुकी हुई शाखाओं वाले हैं।
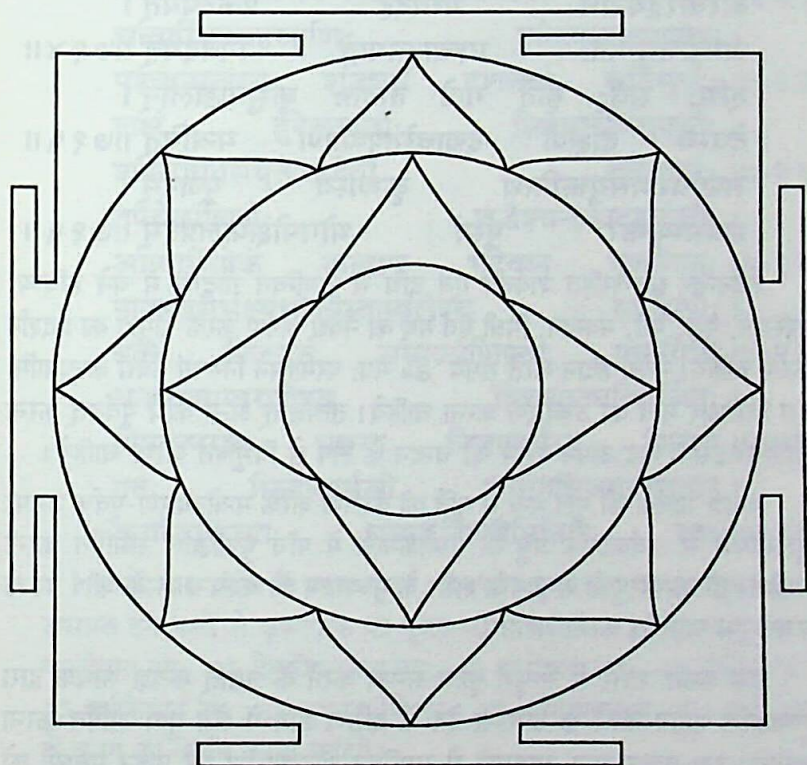
भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों और उनके वज्रादि दश आयुधों का क्रमशः सम्यक् रूप से पूजन करना चाहिये।।७०७-७०८।।

शर्करादधिसंयुक्तं सघृतं गोपयो हविः।
नालिकेरं गुडं पूरीर्नवनीतं सितोपलम् ॥७०९॥
क्षौद्रं सङ्कल्प्य नैवेद्यं गोमुद्रां सम्प्रदर्शयेत्।
ॐ नमः परमेत्युक्त्वात्मने निरुपमं वदेत् ॥७१०॥
नैवेद्यं कल्पयामीति विंशत्यर्णो मतो मनुः।
समये च निवेद्यं हि कुर्यादन्यत्पुरोक्तवत् ॥७११॥
ततश्चन्दनपङ्केन स्वीये देहे विभूषयेत्।
मूलमन्त्रेण मन्त्रज्ञो मूर्तिं निर्माय मन्त्रकैः ॥७१२॥
कुर्यात्पुष्पाञ्जलिं पञ्च तुलसीपत्रतो बुधः।
मूलमन्त्रं समुच्चार्य पादपद्मद्वयं विभोः ॥७१३॥
करवीरद्वयेनाथ मध्यदेहे प्रकल्पयेत्।
अम्भोजयुग्मतः पश्चादुत्तमाङ्गे निवेदयेत् ॥७१४॥
एभिः सर्वैः कृते गात्रे तावतः कुसुमाञ्जलीन्।
देवस्य दक्षिणे दद्याच्छ्वेतपुष्पाणि मन्त्रवित् ॥७१५॥
सप्तावरणसंयुक्तमित्थं कृष्णस्य पूजनम्।
सर्वसम्पत्करं पुंसां भोगमोक्षफलप्रदम् ॥७१६॥

तदनन्तर घृत-सहित शक्कर एवं दधि से समन्वित गोदुग्ध में बने हविष्य, नारियल, गुड़, पूरी, मक्खन, मिश्री एवं मधु का नैवेद्य अर्पण करके गोमुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिये। नैवेद्य प्रदान करते समय 'ॐ नमः परमात्मने निरुपमं नैवेद्यं कल्पयामि' इस विंशाक्षर मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये। तत्पश्चात् अन्य कार्य पूर्ववत् करना चाहिये। इसके बाद अपने शरीर को चन्दन के लेप से विभूषित करना चाहिये।

मन्त्रज्ञ साधक को मूल मन्त्र से मूर्ति की कल्पना करके मन्त्रोच्चारण-पूर्वक उसपर तुलसीपत्रों से सर्वव्यापक प्रभु के चरणकमलों में पाँच पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिये। दो करवीरपुष्पों से प्रभु के शरीर के मध्यभाग की कल्पना करके शीर्ष पर दो कमलपुष्प समर्पित करना चाहिये।

इस प्रकार शरीर में सम्पूर्ण कृत्य सम्पन्न करने के पश्चात् मन्त्रज्ञ साधक द्वारा पुष्पाञ्जलि प्रदान करने के उपरान्त देव के दक्षिण भाग में श्वेत पुष्प अर्पित करना चाहिये। इस प्रकार सात आवरणों से समन्वित श्रीकृष्ण का यह पूजन मनुष्यों को समस्त सम्पत्तियाँ प्रदान करने के साथ-साथ भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाला कहा गया है।।७०९-७१६।।

अङ्गैश्चेन्द्रादिभिर्वज्रप्रमुखैरावृतित्रयम् ।
संक्षेपपूजनं तेन कृत्वा कृष्णाष्टकं यजेत् ॥७१७॥
कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च ।
दामोदराय गोविन्द हृषीकेश कुभारहृत् ॥७१८॥
धर्मसम्पत्करश्चेति ङेनमोऽन्तो ध्रुवादिकः ।
एतैरेव विधातव्या कृष्णार्चा ह्यथवा बुधैः ॥७१९॥
समर्पयेदर्घ्यजलैर्गन्धपुष्पाक्षतान्वितैः ।
सम्पूज्य स्वे हृदम्भोजे समुद्वास्य नमेत्ततः ॥७२०॥
ततः पूर्वोक्तविधिना दीक्षितः प्रजपेन्मनुम् ।
मन्त्रार्थं चिन्तयन्मन्त्री नियमस्थो जितेन्द्रियः ॥७२१॥
चत्वारिंशत्सहस्राणि श्वेतपद्माक्षमालया ।
पश्चान्मन्त्रस्य शुद्ध्यर्थं दशलक्षं जपेत्सुधीः ॥७२२॥
लक्षं हुनेद्रक्तपद्मैः सितासर्पिर्मधुप्लुतैः ।
शर्कराघृतसंयुक्तैरब्जैर्वा जुहुयाद्वरैः ॥७२३॥
तर्पयेत्सलिलैः शुद्धैश्चन्द्रचन्दनसंयुतैः ।
आत्माभिषेकं कृत्वाथ भूदेवान् पूजयेत्ततः ॥७२४॥
नानाविधैर्भक्ष्यभोज्यैस्ताम्बूलैश्च सदक्षिणैः ।
ततो निजगुरुं सम्यक्प्रणिपत्य यथाविधि ॥७२५॥
धनधान्याम्बराद्यैश्च वित्तशाठ्यविवर्जितः ।
तोषयेत्परया भक्त्या निजकार्यस्य सिद्धये ॥७२६॥
ततः सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगान्निजवाञ्छितान् ।
कुर्याद्भक्तियुतः सम्यङ्नित्यनैमित्तिके रतः ॥७२७॥

इसके बाद संक्षेप में षडङ्ग-पूजन, दिक्पाल-पूजन एवं आयुध-पूजन करने के उपरान्त इन मन्त्रों से कृष्णाष्टक का पूजन करना चाहिये—ॐ कृष्णाय नमः, ॐ वासुदेवाय नमः, ॐ देवकीनन्दनाय नमः, ॐ दामोदराय नमः, ॐ गोविन्दाय नमः, ॐ हृषीकेशाय नमः, ॐ कुभारहारिणे नमः, ॐ धर्मसम्पत्कराय नमः। इन्हीं नाममन्त्रों से कृष्ण का अर्चन करना चाहिये।

अथवा विद्वान् साधक को गन्ध, पुष्प, अक्षत से युक्त जल से अर्घ्य समर्पित करके पूजन करने के उपरान्त अपने हृदयकमल में देवता का उद्वासन (विसर्जन) करने के बाद उन्हें प्रणाम करना चाहिये। इसके बाद पूर्वोक्त विधि से दीक्षित, व्रती एवं

जितेन्द्रिय साधक को श्वेत पद्माक्षों की माला से मन्त्रार्थ का चिन्तन करते हुये मन्त्र का चालीस हजार जप करना चाहिये। तत्पश्चात् मन्त्र की शुद्धि के लिये मन्त्र का दस लाख जप करने के पश्चात् शक्कर, आज्य एवं मधु से सिक्त रक्त कमलपुष्पों अथवा शर्करा एवं घृत से समन्वित कमलों से एक लाख आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करना चाहिये।

इसके बाद कपूर एवं चन्दन से युक्त शुद्ध जल से तर्पण करने के बाद स्वयं का अभिषेक (मार्जन) करके ब्राह्मण-पूजन करने के पश्चात् उन्हें दक्षिणा-सहित नाना प्रकार के भक्ष्य, भोज्य, ताम्बूल समर्पित करना चाहिये। तदनन्तर अपने गुरु को यथाविधि प्रणाम करके अपने कार्य की सिद्धि के लिये कंजूसी न करते हुये भक्ति-पूर्वक धन, धान्य, वस्त्र आदि प्रदान करते हुये उन्हें सन्तुष्ट करना चाहिये। इसके बाद सम्यक् रूप से नित्य एवं नैमित्तिक कर्मों के अनुष्ठान में निरत भक्ति से समन्वित मन्त्रसिद्ध साधक को अपने द्वारा आकांक्षित प्रयोगों का सम्पादन करना चाहिये।।७१७-७२७।।

तत्काले देवकीजातं शङ्खचक्रगदाम्बुजान्।
दधतं पीतवसनं सुन्दरं गगनप्रभम् ।।७२८।।
निशायामे चतुर्थे तु ध्यात्वा लक्षं जपेन्मनुम्।
त्रिमध्वक्तैस्तद्दशांशैः किंशुकप्रसवैर्हुनेत्।
वीर्यं प्रज्ञां स्मृतिं प्राप्य कवीनामग्रणीर्भवेत् ।।७२९।।
मातुरङ्कगतं दिव्यं चलत्पादकरं शिशुम्।
ध्यात्वा क्षीरधियां तोयैस्तर्पयेल्लभते सुतम् ।।७३०।।
पिबन्तं पूतनास्तन्यं यस्तु तस्याः शिरः स्मरेत्।
शतं साग्रं जपेन्मन्त्रं रुदतीं पूतनां तथा।
छिन्नमर्मप्रणादाढ्यां तदा नश्यन्ति राक्षसाः ।।७३१।।
अपामार्गस्य समिधः पञ्चगव्यान्विता हुनेत्।
ध्यायेत्ततस्ताः कृष्णस्य हुतशेषांस्तु प्राशयेत् ।।७३२।।
सहस्रमन्त्रितैस्तोयैरभिषिक्ताय रोगिणे।
ग्रहपीडादिमुक्तिः स्याद्बालानां रुग्विनाशनम् ।।७३३।।
स्वकीयवरसंक्षिप्तं सकलं भावयेन्मनुम्।
अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं विघ्नसङ्घाः शमं ययुः ।।७३४।।

रात्रि के चतुर्थ प्रहर में शंख, चक्र, गदा एवं कमल धारण किये हुये पीत वस्त्रधारी एवं नीली कान्ति वाले सुन्दर देवकीनन्दन का ध्यान करते हुये मन्त्र का एक लाख की संख्या में जप करने के उपरान्त त्रिमधु-सिक्त पलाशपुष्पों से कृत जप का दशांश

(दस हजार) हवन करने वाला साधक वीर्य, प्रज्ञा एवं स्मृति को अवाप्त करके कवियों में अग्रगण्य हो जाता है।

माता की गोद में स्थित होकर पैर चलाते हुये दिव्य शिशु के रूप में कृष्ण का ध्यान करते हुये दुग्धबुद्धि से जल द्वारा तर्पण करने वाला साधक पुत्र प्राप्त करता है।

जो साधक पूतना का स्तन-पान करते हुये कृष्ण के शिर का एवं मर्मस्थान के छिन्न होने के फलस्वरूप रुदन करती हुई पूतना का ध्यान करते हुये उनके समक्ष मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करता है, वह राक्षसों को विनष्ट कर देता है।

पञ्चगव्य-सिक्त अपामार्ग की समिधाओं से हवन करके उस हवन से बचे द्रव्यों का कृष्ण भक्षण कर रहे हैं—इस प्रकार चिन्तन करते हुये मन्त्र के एक हजार जप से अभिमन्त्रित जल से रोगी का अभिषेक करने पर रोगी ग्रहकृत पीड़ा आदि से मुक्त हो जाता है तथा बालरोगों का विनाश होता है। कृष्ण में लीन सवों की भावना करके दस हजार मन्त्रजप करने से समस्त विघ्न विनष्ट हो जाते हैं।।७२८-७३४।।

नीलगात्रं स्वहस्ताभ्यां नवनीतं नवं दधि।
दधानं किङ्किणीसङ्घं लसत्स्वच्छविभूषणम्॥७३५॥
दूर्वात्रयैश्च दुग्धाद्यैर्हुत्वैवं प्रजपेन्मनुम्।
सन्तोष्य गुरुविप्रांश्च व्याध्यादिरहितो भवेत्॥७३६॥
कर्मबन्धं पातयन्तं कृष्णं ध्यात्वा जपेन्मनुम्।
तेनापि मन्त्रितं तोयं क्षिप्त्वा पीडां व्यपोहति॥७३७॥
गोगणं साधु रक्षन्तं चारयन्तमितस्ततः।
वेणुं धमन्तं गोविन्दं ध्यायेत्पूर्वोदितं फलम्॥७३८॥

नीले शरीर वाले, अपने हाथों में सद्यः निःसृत मक्खन एवं दधि लिये हुये, छोटी-छोटी घण्टियों से शोभायमान, स्वच्छ आभूषण धारण किये हुये श्रीकृष्ण का ध्यान करके दूध, शक्कर एवं घृत से सिक्त तीन-तीन दूर्वा से हवन करके मन्त्र का जप करने के बाद गुरु और विप्रों को सन्तुष्ट करने से मनुष्य व्याधि आदि से मुक्त हो जाता है।

कर्म-बन्धन से मुक्त करते हुये कृष्ण का ध्यान करके मन्त्रजप करके उसी मन्त्र से अभिमन्त्रित जल के छींटे मारने से पीड़ा नष्ट होती है। गौवों की सम्यक् प्रकार से रक्षा करते हुये उन्हें इधर-उधर चराते हुये वंशी बजाते गोविन्द का ध्यान करने से भी पूर्वोक्त फल प्राप्त होता है।।७३५-७३८।।

कालीयस्य फणामध्ये नृत्यन्तं कृष्णमञ्जसा।
सुधादृष्ट्या वीक्षमाणं तद्रात्रौ प्रजपेन्मनुम्॥७३९॥

वामहस्तस्य तर्जन्या तर्जयेन्मतिसत्तमः।
सुखीकरोति धिषणं कालदष्टमपि क्षणात् ॥७४०॥
कालीयदमनं कृष्णं ध्यात्वा कुशचये जपेत्।
अष्टोत्तरशतं स्नायाद्विषार्तो निर्विषो भवेत् ॥७४१॥
गोवर्धनगिरिं वामबाहुदण्डेन बिभ्रतम्।
दक्षिणेन व्रजप्राणिप्राणसन्त्राणसूचकम् ॥७४२॥
कृष्णं सञ्चिन्तयेन्मन्त्रं गच्छञ्छत्रुं मृधे जयेत्।
भीतिदास्तं न बाधन्ते विषवर्षणवायुवत् ॥७४३॥
व्यर्थमेघोद्यमाद्यान्तं वासवं चिन्तयेद्धुनेत्।
अयुतं लवणैः शुद्धैरनावृष्टिर्भवेद् ध्रुवम् ॥७४४॥
यमुनायां तु गोपीभिर्जलक्रीडाकरं हरिम्।
मुहुर्मुहुः सिच्यमानं क्षीराक्तैरयुतं हुनेत्।
भूयसीं वृष्टिमिष्टां हि कुर्यादसमयेऽपि सः ॥७४५॥

रात्रि में कालीय नाग के फण के ऊपर शीघ्रता-पूर्वक नृत्य करते हुये एवं अपनी अमृतमयी दृष्टि से देखने वाले कृष्ण का स्मरण करते हुये मन्त्रजप करके बाँये हाथ की तर्जनी से विषातुर को मारने से कालनाग के दंस से पीड़ित मनुष्य भी क्षणमात्र में ठीक हो जाता है।

कालीय नाग का दमन करते हुये कृष्ण का ध्यान करके हाथों में कुशवल्लरी लेकर जल में डालकर एक सौ आठ बार मन्त्रजप करने के पश्चात् उस जल से विषार्त्त मनुष्य को स्नान कराने से तो वह मनुष्य निर्विष हो जाता है।

बाँयें हाथ से गोवर्धन पर्वत को उठाये हुये एवं दाँयें हाथ से व्रज के प्राणियों के रक्षण की सूचना देते हुये कृष्ण का चिन्तन करते हुये साधक यदि युद्ध में जाता है तो वह शत्रु को जीत लेता है और जिस प्रकार विषवर्षा को वायु बाधित नहीं करती, उसी प्रकार वे शत्रु उसे किसी प्रकार से बाधित नहीं कर पाते।

उठे हुये मेघों के ऊपर से निष्फल होकर इन्द्र को जाता हुआ चिन्तन करते हुये शुद्ध लवण से दस हजार हवन करने पर निश्चित ही अनावृष्टि होती है।

यदि प्रचुर जलवर्षण अभीष्ट हो तो यमुनाजल में गोपियों के साथ क्रीड़ारत श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुये बार-बार सिञ्चित किये जाते हुये क्षीराक्त लवण से हवन करने पर साधक असमय में भी वर्षा कराने में समर्थ होता है।।७३९-७४५।।

एवमेव स्मरन्कृष्णं पीडितस्य तु मस्तके।

मोहनार्त्तिगरस्फोटभूतराक्षसपन्नगैः ।
मन्त्रं जपेत्तदानीं तु सुखी भवति नान्यथा ॥६४६॥
वैनतेयगतं कृष्णं सप्रद्युम्नं बलान्वितम् ।
आत्मभूतपराभूतैर्जनैः सर्वैः स्तुतं तथा ॥७४७॥
एवं ध्यात्वा ग्रहाक्रान्तमस्तके सञ्जपेन्मनुम् ।
महाघोरग्रहो दुष्टस्तदानीं नाशमाप्नुयात् ॥७४८॥
एवं ध्यात्वानले कृष्णं साङ्गमभ्यर्च्य चायुतम् ।
क्षीराच्छिनाखण्डहोमात्सर्वं क्रूरज्वरं हरेत् ॥७४९॥
क्षीरार्णवप्रविष्टाङ्गं ग्रीष्मपीडाहरं हरिम् ।
ध्यात्वा स्पृशेज्जपन्नार्तं पाणिभ्यां स सुखी भवेत् ॥७५०॥
अर्चितेऽग्नौ हुनेत्कृष्णं सान्दीपिनिसुतप्रदम् ।
ध्यात्वा दुग्धगुडूचीभिरपमृत्युर्विनश्यति ॥७५१॥

इसी प्रकार से कृष्ण का स्मरण करते हुये मोहन, रोग, विष, चेचक, भूत, राक्षस, सर्पविष से पीड़ित व्यक्ति के मस्तक पर हाथ रखकर मन्त्र-जप करने से निश्चित ही वह पीड़ित व्यक्ति सुखी हो जाता है।

अपने एवं पराभूत समस्त जनों द्वारा स्तुति किये जाते हुये तथा प्रद्युम्न एवं बलराम के द्वारा अनुगम्यमान गरुड़ पर आसीन कृष्ण का ध्यान करके ग्रह से आक्रान्त व्यक्ति के मस्तक पर मन्त्र का सम्यक् रूप से जप करने पर अत्यन्त भयंकर एवं दुष्ट ग्रह भी तत्काल ही नाश को प्राप्त हो जाता है।

इसी प्रकार अग्निमध्य में श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुये अङ्ग-सहित उनका पूजन करके क्षीरवृक्ष के टुकड़ों से दस हजार हवन करने पर क्रूर ज्वर भी दूर हो जाता है।

क्षीरसागर में प्रविष्ट होकर गर्मी की पीड़ा को दूर कर रहे श्रीकृष्ण का ध्यान करके दु:खी व्यक्ति का स्पर्श करके मन्त्रजप करने पर वह व्यक्ति सुखी हो जाता है।

सान्दीपिनी मुनि को पुत्र प्रदान करने वाले श्रीकृष्ण का ध्यान करके दुग्ध-सिक्त गुरुचखण्डों द्वारा हवन करने पर अपमृत्यु का नाश होता है।।७४६-७५१।।

कृष्णं पुत्रान् प्रयच्छन्तं विप्राय मृतसूनवे ।
ध्यात्वा पार्थयुतं मन्त्रं जपेत्पुत्रसमृद्धये ॥७५२॥
पुत्रजीवककाष्ठाग्नौ सक्षौद्रैस्तु फलैर्हुनेत् ।
अयुतं लभते पुत्रान्नीरोगांश्चिरजीविनः ॥७५३॥

दुग्धवृक्षत्वचां क्वाथैः कृष्णमावाह्य रात्रिषु।
पूजयित्वायुतं जप्त्वा शतयोषापतिर्व्रजेत् ।।७५४।।
अभिषिञ्चेद् घृतेनैव पाययेदर्कवासरे।
एवं कतिपयैर्मासैर्वन्ध्यापि लभते सुतम् ।।७५५।।
बोधिपत्रगतं तोयं जप्तमष्टोत्तरं शतम्।
मौनं कृत्वा पिबेन्नारी प्राग्वर्षाल्लभते सुतम् ।।७५६।।

पुत्र की समृद्धि के लिये मृतपुत्र विप्र को पुत्र प्रदान करते हुये अर्जुन-सहित कृष्ण का ध्यान करके मन्त्र-जप करना चाहिये। पुत्रजीवक के लकड़ी की अग्नि में मध्वक्त फलों से दस हजार हवन करने पर चिरंजीवी एवं निरोग पुत्रों की प्राप्ति होती है।

क्षीरी वृक्ष की छाल का क्वाथ बनाकर रात्रि में उसमें कृष्ण का आवाहन कर पूजन करके मन्त्र का दस हजार जप करने वाला साधक सौ स्त्रियों का पति होता है।

इस मन्त्र से अभिमन्त्रित घृत से अभिषेक करके रविवार को उसी घृत का पान कराने से कुछ महीनों में ही वन्ध्या स्त्री भी पुत्रवती हो जाती है।

पीपल के पत्ते पर जल लेकर उसे मन्त्र के एक सौ आठ जप से अभिमन्त्रित करने के बाद जो स्त्री मौन धारण कर उस जल का पान करती है, वह एक वर्ष के भीतर पुत्र प्राप्त करती है।।७५२-७५६।।

कृत्यां क्रूरां महाभीमां काशिराजेन योजिताम्।
पराजित्यात्मचक्रेण काशीं तद्भववह्निना ।।७५७।।
शेषेण भस्मीकुर्वन्तं कृष्णं सम्यग्विचिन्तयेत्।
जुहुयान्निशि सिद्धार्थैः स्वीयतैलविलोलितैः ।।७५८।।
एवंकृते तु सप्ताहं वैरिणा केनचित्कृता।
कृत्या भूयस्तमेवाशु क्षपयेन्नात्र संशयः ।।७५९।।
संस्थितं त्वालये दिव्ये बदरीवृक्षभूषिते।
घण्टाकर्णं च हस्ताभ्यां स्पृशन्तं संस्मरेद्धरिम् ।।७६०।।
मधुराक्तैस्तिलैर्लक्षं जुहुयादेधितेऽनले।
अशेषपापनाशार्थं पुष्ट्यर्थं च जपेत्तथा ।।७६१।।
खगेश्वरसमारूढं कुर्वन्तं बाणवर्षणम्।
धावमानं रिपुगणमनुधावन्तमाशुगम् ।।७६२।।
जपेत्सप्तसहस्राणि कृष्णं ध्यात्वा मनुं बुधः।
सप्ताहाद्वैरिणां भूयो ह्युच्चाटो देशतो भवेत् ।।७६३।।

कपित्थफलसम्पातमेवमेवाब्दके क्षिपन्।
कृष्णं ध्यात्वायुतं जप्तो मनुरुच्चाटकृद्रिपोः ।।७६४।।

काशीराज द्वारा प्रेषित अत्यन्त भयानक क्रूर कृत्या को अपने चक्र द्वारा पराजित करके उस चक्र की अवषिष्ट अग्नि से काशी को भस्म करते हुये कृष्ण का सम्यक् रूप से चिन्तन करके सरसो के तेल से सिक्त सरसो से रात्रि में हवन करना चाहिये। एक सप्ताह तक ऐसा करने से किसी शत्रु द्वारा उत्पन्न की गई कृत्या अतिशीघ्र उस शत्रु का ही विनाश कर देती है, इसमें किसी प्रकार की विचिकित्सा नहीं करनी चाहिये।

समस्त पापों के विनाश एवं पुष्टि के लिये बेर के वृक्षों से सुशाभित अलौकिक आवास में अवस्थित घण्टाकर्ण का दोनों हाथों से स्पर्श करते हुये श्रीकृष्ण का स्मरण करते हुये प्रज्वलित अग्नि में त्रिमधु-सिक्त तिलों से एक लाख आहुतियों द्वारा हवन एवं मन्त्रजप करना चाहिये।

विद्वान् साधक द्वारा पक्षिराज गरुड़ पर विराजमान होकर बाणवर्षा करने के साथ-साथ भागते हुये शत्रुओं के पीछे शीघ्रता-पूर्वक दौड़ते हुये कृष्ण का ध्यान करके मन्त्र का सात हजार की संख्या में जप करने से सात दिनों के भीतर अपने देश से उसके शत्रुओं का उच्चाटन हो जाता है।

कैथ के फलों को तोड़-तोड़कर बादलों में फेंकते हुये कृष्ण का ध्यान करके मन्त्र का किया गया दस हजार जप शत्रुओं का उच्चाटन करने वाला होता है।।७५७-७६४।।

वैरिसङ्कटरूपं च कर्षणं प्राणवर्जितम्।
अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं हुनेद्वा तत्समं बुधः ।।७६५।।
समिद्भिर्जन्मनक्षत्रे मारणस्य प्रयोगवित्।
शत्रुर्निधनमाप्नोति सुधाभक्षोऽपि नान्यथा ।।७६६।।
कलिद्रुमसमिद्वर्यैर्निम्बतैलप्लुतैर्हुनेत् ।।७६७।।
यामिन्यामयुतं स्वस्थो रिपुर्यमपुरं व्रजेत् ।।७६८।।
कार्पासबीजरजनीनिम्बपत्रं कटुत्रयम्।
एवं तैलन्तु जुहुयाच्छ्मशाने निशि मारणे ।।७६९।।
मारणं नैव कुर्वीत बलात्कृत्यायुतं जपेत्।
हुनेच्च तावद्धविषा तत्पातकनिवृत्तये ।।७७०।।

प्राण-विहीन संकटरूपी शत्रु को खींचते हुये कृष्ण का ध्यान करके मारण-प्रयोग का ज्ञाता विद्वान् साधक यदि दस हजार मन्त्रजप अथवा शत्रु के जन्मनक्षत्रवृक्ष की समिधाओं द्वारा दस हजार हवन करता है तो अमृतपायी शत्रु भी निश्चित रूप से निधन को प्राप्त हो जाता है।

कलिद्रुम (बहेड़े के वृक्ष) की समिधाओं को नीम के तैल से सिक्त करके रात्रि में दस हजार हवन करने से सर्वविध स्वस्थ शत्रु भी यमलोक को प्रस्थान कर जाता है।

मारण के लिये रात्रि में श्मशान में जाकर कपास-बीज, हल्दी, नीम के पत्तों, त्रिकटु (सोंट-पिपर-मिर्च) एवं सरसो तैल से हवन करना चाहिये। कृत्या का मारण नहीं करना चाहिये और यदि हठात् उसका मारण करना पड़े तो उस पाप की निवृत्ति के लिये प्रायश्चित्त-स्वरूप दस हजार मन्त्रजप के साथ-साथ उतना ही हविष्य से हवन करना चाहिये।।७६५-७७०।।

पुरन्दरमुखाञ्जित्वा हरन्तं सुरपादपम्।
कृष्णं ध्यायञ्जपन् लक्षं सर्वतो जयमाप्नुयात्।।७७१।।
अर्जुनाय च गीतार्थं कथयन्तं जपेन्मनुम्।
ध्यात्वा धर्मस्य वृद्धिः स्याद्योगसिद्धिश्च जायते।।७७२।।
त्रिस्वादुयुक्तैर्लक्षं यः कण्डकप्रसवैर्हुनेत्।।७७३।।
महाकविः स वागीशो वेदवेदाङ्गपारगः।।७७४।।
विश्वरूपं हरिं ध्यायेत्सहस्रं साष्टकं जपेत्।
देहगेहपुरग्रामवास्तुरक्षा भवेद् ध्रुवम्।।७७५।।

इन्द्र आदि प्रमुख देवताओं को पराजित कर देववृक्ष का हरण करते हुये कृष्ण का ध्यान करके एक लाख मन्त्रजप करने वाला साधक सर्वत्र विजय प्राप्त करता है।

अर्जुन के लिये गीता का उपदेश करते हुये कृष्ण का ध्यान करके मन्त्रजप करने से धर्म की वृद्धि और योग की सिद्धि होती है।

जो साधक त्रिमधु-सिक्त चावलों से एक लाख हवन करता है, वह महाकवि एवं वागधिपति होने के साथ-साथ वेद-वेदाङ्गों में पारङ्गत हो जाता है।

विश्वरूप विराट् कृष्ण का ध्यान करके मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करने से निश्चित ही साधक के शरीर, गृह, पुर, ग्राम एवं वास्तु की रक्षा होती है।।७७१-७७५।।

आरण्यकारुणैः पुष्पैर्मध्याह्ने विधिनार्चयेत्।।७७६।।
हरिं गृहे जपेत्साष्टसहस्रं द्विजवश्यकृत्।।७७७।।
मालतीमाधवश्रेष्ठैर्गोपवेषं यथा पुरा।
कृष्णमभ्यर्च्य नृपतीन् वशन्नयति दासवत्।।७७८।।
रक्ताश्वमारैर्वैश्यांश्च शूद्रान्नीलोत्पलैस्तथा।
अत्र ध्यायेच्च गायन्तं श्रीकृष्णं जनमोहनम्।।७७९।।

तण्डुलैर्घृतपुष्पैश्च घृताक्तैर्यः सहस्रकम्।
अन्वहं सप्तशतकं हुत्वा तद्भस्म धारयेत् ॥७८०॥
तद्भस्मधारणान्नारी स्वपुमांसं वशं नयेत् ॥७८१॥
पुरुषश्च तथा नारीं दासीं कुर्यान्न संशयः ॥७८२॥
पुष्पताम्बूलवासांसि कज्जलालयनादिकम्।
सहस्रमभिमन्त्र्याथ येभ्यो दद्याच्च ते वशाः ॥७८३॥
आपणव्यवहारादौ विवादे राजवेश्मसु।
जपित्वाऽष्टोत्तरशतं बरीभर्त्ति च सद्वचः ॥७८४॥
उपविष्टं कदम्बाधो वल्लवीभिः स्मरेद्धरिम्।
त्रिमध्वपामार्गसमिद्धोमाल्लोकत्रयं वशम्।

गृह में मध्याह्नकाल में विधि-पूर्वक जंगली रक्तपुष्पों से कृष्ण का अर्चन करके किया गया मन्त्र का एक हजार आठ जप द्विजों को वशीभूत करने वाला होता है।

जैसे प्राचीन काल में कृष्ण गोपवेष में रहते थे, उस रूप का ध्यान करके मालती, महुआ आदि श्रेष्ठ पुष्पों से उनका अर्चन करने से राजा लोग भी दास के समान साधक के वशीभूत हो जाते हैं। गान करते हुये लोगों को मोहित करने वाले कृष्ण का ध्यान करके रक्त करवीरपुष्पों द्वारा किया गया कृष्ण का अर्चन वैश्यों को एवं नीलोत्पलों द्वारा किया गया अर्चन शूद्रों वशीभूत करने वाला होता है।

प्रतिदिन घृत-सिक्त चावलों एवं घृतपुष्पों (?) की एक हजार सात सौ आहुतियों द्वारा हवन करके उसके भस्म को धारण करने वाली स्त्री अपने पुरुष को वशीभूत कर लेती है। इसी प्रकार उस भस्म को धारण करने वाला पुरुष भी अपनी स्त्री को दासी बना लेता है; इसमें कोई सन्देह नहीं है।

मन्त्र के एक हजार जप से अभिमन्त्रित पुष्प, पान, वस्त्र, काजल रखने का पात्र (कजरौटा) आदि जिसको दिया जाता है, वह दाता के वशीभूत हो जाता है।

यह सत्य है कि क्रय-विक्रय आदि व्यवहार में, विवाद में, राजदरबार में उपस्थित मनुष्य इस मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करके सुरक्षित रहता है।

कदम्बवृक्ष के नीचे अवस्थित गोपियों से घिरे कृष्ण का स्मरण करके त्रिमधु-सिक्त अपामार्ग की समिधाओं के हवन से तीनों लोक वशीभूत होते हैं।।७७६-७८४।।

रासक्रीडारतं ध्यात्वा जपेन्नित्यं सहस्रकम् ॥७८५॥
इष्टां कन्यामवाप्नोति मासमात्रेण साधकः।

कुसुमाभ्युच्चयारूढं ध्यात्वा सायं सहस्त्रकम्।
ज़पेत्कन्या- मण्डलेन लभते वाञ्छितं वरम् ॥७८६॥

रासक्रीड़ा में तल्लीन कृष्ण का ध्यान करके प्रतिदिन मन्त्र का एक हजार जप करने वाला साधक एक मास में ही अभीष्ट कन्या को (पत्नी-रूप में) प्राप्त कर लेता है।

पुष्पों के ढ़ेर पर आरूढ़ श्रीकृष्ण का ध्यान करके प्रतिदिन सायंकाल मन्त्र का एक हजार जप करने वाली कन्या चालीस दिनों में आकांक्षित पति को प्राप्त कर लेती है।

कृतमालप्रसूनैश्च कुरण्टकुसुमैरपि।
हुत्वा वशीकरोत्येव भूपालान् सपरिच्छदान् ॥७८७॥
बकुलोद्भवसत्पुष्पैः पालाशोत्थैश्च तैरपि।
इक्षुजैर्वैश्यशूद्रौ च स्वायत्तौ कुरुते क्षणात्।
रक्तोत्पलैर्वा कुसुमैश्चम्पकैः पाटलोद्भवैः ॥७८८॥
हुत्वायुतं च मध्वक्तैर्वशयेद्गणयोषितः।
अश्वमारप्रसूनैर्यो मध्वक्तः प्रत्यहं हुनेत् ॥७८९॥
रात्रौ सहस्त्रसङ्ख्याकैः सप्तरात्रमतन्द्रितः।
सोऽङ्गनानां सहस्त्रञ्च नवयौवनगर्वितम्।
पञ्चबाणप्रविद्धाङ्गं दासीकुर्यान्न संशयः ॥७९०॥
सिद्धार्थलवणोपेतैर्मध्वक्तैस्त्रिसहस्त्रकम्।
होमं कुर्वीत रात्रौ च वह्नौ विप्रान् वशं नयेत् ॥७९१॥

कृतमाल-पुष्पों, कुरण्ट(कुटज)-पुष्पों, मौलसिरी-पुष्पों अथवा पलाशपुष्पों से किया गया हवन अनुचरों के सहित राजा को वशवर्ती बना देता है। ईख-खण्डों से किया गया हवन वैश्यों एवं शूद्रों को तत्क्षण अपने अधीन कर देता है।

मधु-सिक्त रक्तकमल, चम्पा-पुष्प अथवा केशर-पुष्पों से किया गया दस हजार हवन अङ्गनाओं को वशीभूत कर देता है।

आलस्य-रहित जो साधक सात रात्रियों में प्रतिदिन एक हजार की संख्या में अश्वमार (करवीर)-पुष्पों से हवन करता है, वह निःसन्देह रूप से कामबाणों से विद्ध एक हजार नवयौवनाओं को अपनी दासी बना लेता है।

लवण से समन्वित मध्वक्त सिद्धार्थों (सफेद सरसों) से रात्रि में अग्नि में हवन करने वाला साधक ब्राह्मणों को वशीभूत कर लेता है।।७८७-७९१।।

त्रिस्वाद्वक्तैर्बिल्वफलैर्वा पत्रैर्वा प्रसूनकैः।
पद्मैः सतण्डुलैर्होमात्तर्पणाच्छ्रीः स्थिरा भवेत् ॥७९२॥

वासांसि बल्लवस्त्रीणां मनोभिः सह केशवम्।
समादाय कदम्बन्तु समारूढं विचिन्तयेत् ॥७९३॥
जपेत्सहस्रमानं यो रात्रौ स दशभिर्दिनैः।
शचीमप्यानयेन्मन्त्री किमन्यां नरयोषितम् ॥७९४॥

त्रिमधु-सिक्त चावल-सहित बिल्वफलों, बिल्वपत्रों, बिल्वपुष्पों अथवा कमलपुष्पों से हवन एवं तर्पण करने से लक्ष्मी स्थिर होती है।

गोपियों के वस्त्र एवं मन को हरण करके कदम्ब-वृक्ष पर समारूढ़ श्रीकृष्ण का चिन्तन करते हुये जो साधक प्रतिदिन रात्रि में मन्त्र का दस हजार की संख्या में जप करता है, वह दस दिनों में इन्द्राणी को भी अपने वशीभूत कर लेता है; फिर अन्य मानुषी स्त्रियों की तो बात ही क्या है।७९२-७९४।।

द्वितीयकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि द्वितीये यस्तु जायते ॥७९५॥
तारसम्पुटितश्चायं मन्त्रः स्याद् द्वादशाक्षरः ॥७९६॥
पुरश्चर्याजपन्यासपूजाद्यं पूर्ववद्भवेत् ॥७९७॥
प्रयोगाश्च विशेषेण प्रयोगोऽत्र निरूप्यते ॥७९८॥
चन्द्रकुन्दसुगौराङ्गं रक्तपद्मदलेक्षणम्।
अरिकम्बुगदापद्मं बाहुदण्डैश्च बिभ्रतम् ॥७९९॥
दिव्यैश्च चन्दनालेपैः पद्मनाम्ना विभूषितम्।
पीताम्बरलसद्गात्रं तरुणं मुनिसेवितम् ॥८००॥
विकसत्पद्ममध्यस्थं ध्यात्वा नन्दात्मजं प्रभुम्।
स्वहृत्पद्मगतं देवं पुराणं पुरुषं नवम् ॥८०१॥
नीलमेघनिभं वापि द्रुतहेमनिभं तु वा।
लक्षद्वादशकं जप्त्वा तत्सहस्रं समिद्वरैः ॥८०२॥
दुग्धाप्लुतैर्हुनेन्मन्त्री पयोद्रुमसमुद्भवैः।
मध्वादिलोलितेनापि हविषा वा जितेन्द्रियः ॥८०३॥
पश्चाद्विश्वाधिपं नित्यं चिदानन्दकलेवरम्।
भवान्धकारद्युमणिं स्वीये हृत्सरसीरुहे ॥८०४॥
आत्माभेदेन सञ्चिन्त्य प्रत्यहं परमेश्वरम्।
त्रिसहस्रं जपेन्मन्त्री जपेत्सन्ध्योक्तवर्त्मना ॥८०५॥

मनुमेतं जपेद्यस्तु श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।
संसाराब्धिं समुल्लङ्घ्य जीवन्मुक्तः स जायते ॥८०६॥

द्वितीय कलि में उद्भूत कृष्ण का मन्त्र—अब मैं दूसरे कलि में प्रकटित कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। ॐ से सम्पुटित यह मन्त्र बारह अक्षरों का होता है। मन्त्र का स्वरूप होता है—ॐ गोपीजनवल्लभाय स्वाहा ॐ। इस मन्त्र का पुरश्चरण, जप, न्यास, पूजन आदि सबकुछ पूर्ववत् होता है। विशेष रूप से यहाँ इसके प्रयोगों का निरूपण किया जा रहा है। कर्पूर एवं कुन्दपुष्प के सदृश गौरवर्ण शरीर वाले, रक्त कमलदल के समान आँखों वाले, हाथों में चक्र शंख गदा एवं पद्म धारण किये हुये, पद्म-नामक दिव्य चन्दन के लेपों से विभूषित, पीत वस्त्र से सुशोभित शरीर वाले, तरुण अवस्था वाले, मुनियों द्वारा सेवित, विकासशील कमल के मध्य में विराजमान, नीले मेघ-सदृश अथवा द्रवित सुवर्ण-सदृश स्वरूप वाले पुराणपुरुष नन्दपुत्र प्रभु का अपने हृदयकमल में ध्यान करके मन्त्र का बारह लाख की संख्या में जप करके जितेन्द्रिय साधक को दुग्ध-सिक्त क्षीरीवृक्ष की समिधा से अथवा त्रिमधु-सिक्त हविष्य से बारह हजार हवन करना चाहिये।

इसके बाद नित्य, चिदानन्दविग्रह, संसाररूपी अन्धकार के लिये सूर्य-स्वरूप, जगत् के अधिपति परमेश्वर का अपने हृदयकमल में अपने से अभिन्न समझते हुये सन्ध्योक्त मार्ग से प्रतिदिन मन्त्र का तीन हजार जप करना चाहिये। जो साधक पूर्ण श्रद्धा एवं भक्ति से युक्त होकर इस मन्त्र का जप करता है, वह संसाररूपी समुद्र को पार करके जीवन्मुक्त हो जाता है।।७९५-८०६।।

तृतीयकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि तृतीयेयं जगत्पतिः ।
अयोनिजशरीरेण प्रकटो जायते भुवि ॥८०७॥
दशाक्षरोऽयं यामादिस्तस्य मन्त्रो भवाक्षरः ॥८०८॥
कामदेवो मुनिः प्राग्वदन्यत्सर्वं समीरितम् ॥८०९॥

तृतीय कलि में प्रकटित कृष्ण का मन्त्र—अब मैं तृतीय कलि में समुद्भूत कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ; ये जगत्पति पृथ्वी पर अयोनिज शरीर से प्रकट हुये हैं। दशाक्षर मन्त्र (गोपीजनवल्लभाय स्वाहा) के पूर्व 'यां' लगाने से यह मन्त्र ग्यारह अक्षरों का होता है। इसके ऋषि कामदेव हैं। अन्य सबकुछ पूर्ववत् ही कहा गया है।।८०७-८०९।।

तूर्यकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि चतुर्थेऽप्ययमेव हि ।
हरशिष्य इति ख्यातो वाममार्गप्रवर्त्तकः ॥८१०॥

दशाक्षरोऽयं लज्जादिस्तस्य मन्त्रो भवाक्षरः ॥८११॥
प्राग्वत्सर्वं विना शक्तिं नायं मन्त्रोऽस्य सिध्यति ॥८१२॥

चतुर्थ कलि में समुद्भूत कृष्ण का मन्त्र—अब मैं चतुर्थ कलि में समुद्भूत कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। ये ही वाममार्ग के प्रवर्तक हरशिष्य के रूप में विख्यात हैं। उक्त दशाक्षर मन्त्र के आदि में 'ह्रीं' लगाने से यह मन्त्र इस प्रकार ग्यारह अक्षरों का कहा गया है—ह्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा। इसके समस्त विधान पूर्ववत् होते हैं। विना शक्ति की उपासना के यह मन्त्र सिद्ध नहीं होता।।८१०-८१२।।

पञ्चमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि पञ्चमोऽयं जगत्पतिः ।
सुदामदारिद्र्यहरो मन्त्रोऽयं तदुपासितः ॥८१३॥
दशाक्षरोऽयं लक्ष्म्याद्यो भवेदेकादशाक्षरः ॥८१४॥
न्यासपूजाप्रयोगादि पूर्ववत्परिकीर्तितम् ॥८१५॥

पञ्चम कलि में उद्भूत कृष्ण का मन्त्र—अब मैं पाँचवें कलि में हुये श्रीकृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। सुदामा की दरिद्रता का हरण करने वाला यह मन्त्र सुदामा द्वारा ही उपासित है। पूर्वोक्त दशाक्षर मन्त्र (गोपीजनवल्लभाय स्वाहा) के पूर्व 'श्रीं' का संयोजन करने से यह मन्त्र ग्यारह अक्षरों का होता है। इस मन्त्र के न्यास, पूजन, प्रयोग आदि पूर्ववत् कहे गये हैं।।८१३-८१५।।

षष्ठकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कलौ षष्ठे जगत्पतिः ।
संसारानन्दसन्दोहदर्शकोऽस्य मनुस्त्वयम् ॥८१६॥
श्रीकृष्णाय वदेत्पश्चाद् गोविन्दाय दशाक्षरः ।
एवमष्टादशार्णोऽयं मन्त्रः प्रोक्तोऽखिलेष्टदः ॥८१७॥
कृष्णो देवस्तु गायत्री छन्दः स्यान्नारदो मुनिः ॥८१८॥
स्वाहा शक्तिश्च क्लीं बीजं वेदाब्ध्यब्धिविलोचनैः ॥८१९॥
मन्त्रार्णैः स्याच्च पञ्चाङ्गं त्वङ्गुलीषु करद्वये ।
मूलमन्त्रेण सर्वाङ्गे त्रिवारं व्यापकं चरेत् ॥८२०॥

षष्ठ कलि में समुद्भूत कृष्ण का मन्त्र—अब मैं छठे कलि में समुद्भूत कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। संसार को आनन्दसमूह का दर्शन कराने वाले जगत्पति का मन्त्र इस प्रकार है—श्रीकृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा। अट्ठारह अक्षरों वाला यह मन्त्र समस्त अभीष्ट को प्रदान करने वाला है।

इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द गायत्री, देवता कृष्ण, शक्ति स्वाहा एवं बीज क्लीं कहे गये हैं। मन्त्र के चार, चार, चार, चार एवं दो वर्णों से पञ्चाङ्ग न्यास इस प्रकार किया जाता है—श्रीकृष्णाय हृदयायं नमः, गोविन्दाय शिरसे स्वाहा, गोपीजन शिखायै वषट्, वल्लभाय कवचाय हुम्, स्वाहा अस्त्राय फट्। दोनों हाथों की अंगुलियों में भी इसी प्रकार न्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् मूल मन्त्र से सम्पूर्ण शरीर में तीन बार व्यापक न्यास करना चाहिये।।८१६-८२०।।

एतान्यङ्गानि विन्यस्य प्रणवेन ततः पुनः ॥८२१॥
के ललाटे भ्रुवोर्मध्ये कर्णयोर्नेत्रयोर्नसि ॥८२२॥
मुखे कण्ठे हृदि नाभौ कट्यां लिङ्गे ततः परम्।
जानुयुग्मे पदद्वन्द्वे न्यसेदेकैकमक्षरम् ॥८२३॥
पादादिमस्तकान्तं च न्यसेच्चैव पदानि तु।
शिरोवदनहृद्गुह्यपादेषु मनुवित्तमः ॥८२४॥
पञ्चाङ्गानि पुनर्न्यस्य मुन्यादिन्यासमाचरेत्।
न्यासान्तरादिकं सर्वं दशवर्णोक्तवद्भवेत् ॥८२५॥
ध्यानं चोक्तप्रकारेण पूजनं च तथा भवेत्।
अयुतद्वयसङ्ख्यातमधिकारार्थमादरात् ॥८२६॥
पञ्चलक्षं जपेत्पश्चाद्दशांशं पूर्ववद्धुनेत्।
तर्पणादि ततः सर्वं पूर्वोक्तविधिना चरेत् ॥८२७॥

इस प्रकार अङ्गन्यास करने के उपरान्त प्रणव (ॐ) के साथ मन्त्र के प्रत्येक अक्षरों का योग करते हुये मस्तक, ललाट, भ्रूमध्य, दक्ष कर्ण, वाम कर्ण, दक्ष नेत्र, वाम नेत्र, नासिका, मुख, कण्ठ, हृदय, नाभि, कटि, लिङ्ग, दक्ष जानु, वाम जानु, दक्ष पाद एवं वाम पाद में वर्णन्यास करना चाहिये।

तदनन्तर मन्त्रज्ञ साधक को मन्त्र के पाँच पदों का क्रमशः पाद, गुह्य, हृदय, मुख एवं मस्तक—शरीर के इन पाँच स्थानों पर न्यास करके पुनः विलोमक्रम से उन्हीं पाँच पदों का क्रमशः शिर, मुख, हृदय, गुह्य एवं पैरों में न्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् पुनः पञ्चाङ्गन्यास करने के बाद ऋष्यादि न्यास करना चाहिये। इसके बाद अन्य न्यास आदि सबकुछ दशाक्षर मन्त्र के समान ही होते हैं। इसका ध्यान एवं पूजन भी पूर्ववत् ही होता है।

इसके बाद मन्त्र में अधिकार-प्राप्ति के लिये आदर-पूर्वक मन्त्र का बीस हजार जप करना चाहिये। तत्पश्चात् मन्त्र का पाँच लाख जप करने के बाद पूर्ववत् कृत जप

का दशांश (पचास हजार) हवन करना चाहिये। तदनन्तर तर्पण आदि समस्त कृत्य पूर्वोक्त विधि से करना चाहिये।।८२१-८२७।।

अथ साधितमन्त्रस्य साधकस्य कलाप्तये।
त्रिकालार्चाविधिं वक्ष्ये गोविन्दस्य जगत्पतेः ।।८२८।।
उक्तवृन्दावने रम्ये स्वर्णभूमौ सुमण्डपम्।
रम्यं रत्नमयं दिव्यं स्मरेत्कल्पतरोरधः ।।८२९।।
नानारत्नस्थलीमध्ये रत्नसिंहासने शुभे।
यथोक्तपद्ममध्यस्थं वासुदेवं विचिन्तयेत् ।।८३०।।
इन्द्रनीलनिभं कान्तं शिशुं सुमधुराकृतिम्।
स्निग्धवस्त्रं ललाटान्तलुठन्मूर्द्धजसञ्चयम् ।।८३१।।
भृङ्गसङ्गसमासक्तपद्मसुन्दरसम्मुखम्।
इन्दीवरदलाकारशोभिनेत्रद्वयान्वितम् ।।८३२।।
चलत्कुण्डलसंशोभिपृथुगण्डसुमण्डितम्।
रक्ताधरं सुनासं च हसन्तं हृतमानसम् ।।८३३।।
नानारत्नगणाकीर्णकण्ठाभरणभूषितम्।
गोधूलिधमरोरस्कं शार्दूलनखधारिणम् ।।८३४।।
विशिष्टमुष्टसन्देहं स्वर्णनेपथ्यदीपितम्।
कटिदेशलसज्जङ्घाद्वये बद्धमनोहरम् ।।८३५।।
रत्नकाञ्चनसञ्छन्नकिङ्किणीजालमालिनम्।
तिरस्करन्तं वनजबन्धूकप्रसवश्रियम् ।।८३६।।
अत्यन्तारुणसच्छाखहस्तपादाब्जशोभितम्।
पयसोद्भूतपिण्डं च नवनीतमयं शुभम्।
दक्षिणोत्तरयोः पाष्र्योर्वहन्तं साधु सुस्पृहम् ।।८३७।।
पृथिव्यघकराणां च दैत्यानां दुष्टचेतसाम्।
पूतनाशकटादीनां विनाशाय कृतोद्यमम् ।।८३८।।
गोपीगोपालधेनूनां समूहेनावृतं सदा।
आखण्डलमुखैर्देवैः सेवितं कामतत्परैः ।।८३९।।

इस साधित मन्त्र वाले साधक द्वारा कला-प्राप्ति के लिये जगत्पति गोविन्द के त्रिकाल अर्चन की विधि को अब मैं कहता हूँ। पूर्वोक्त रमणीय वृन्दावन की स्वर्णमयी भूमि पर अत्यन्त रमणीय रत्नमय सुन्दर दिव्य मण्डप का स्मरण करना चाहिये। उस

मण्डप में कल्पवृक्ष के नीचे अनेकविध रत्नमयी भूमि के मध्य में शोभन रत्नसिंहासन पर पूर्वोक्त कमल के मध्य में विराजमान वासुदेव का चिन्तन करना चाहिये। वे वासुदेव इन्द्रनील मणि के समान हैं, मनोहर बालरूप हैं, उनकी आकृति अत्यन्त मधुर है, उनके वस्त्र कोमल हैं, ललाट-पर्यन्त झूलते हुये उनके शिर के बाल बँधे हुये हैं, भौंरों से समासक्त कमल के समान सुन्दर उनका मुख है, नीलकमल के दलों की आकृति-सदृश दो नेत्रों को वे धारण किये हुये हैं, चञ्चल कुण्ड़ल से सुशोभित विस्तृत गण्डस्थल से वे सुशोभित हैं, रक्त ओष्ठ एवं सुन्दर नासिका वाले वे हँसते हुये लोगों के मन को हरण करने वाले हैं, अनेकविध रत्न जड़े हुये कर्णाभूषण से वे अलंकृत हैं, गोधूलि के समय अपने वक्ष:स्थल पर वे बघनखा धारण किये हुये हैं, विशिष्ट चोरी के सन्देह में उनके आलय का स्वर्णमय नेपथ्य भाग प्रकाशमान है, सुवर्ण से निर्मित रत्न-जटित करधनी से बद्ध उनकी कमर एवं दोनों जंघायें अत्यन्त मनोहर हैं, वन में होने वाले बन्धूकपुष्प की कान्ति को वे तिरस्कृत कर रहे हैं, अत्यन्त रक्त वर्ण की सुन्दर शाखायें-सदृश हाथ एवं चरणकमल से वे सुशोभित हैं, दूध से नि:सृत मक्खन-स्वरूप पिण्ड को दाँयीं एवं बाँयीं एँड़ी के बल धारण किये हुये देखकर उसे लेने के लिये वे लालायित हैं। पृथिवी पर पाप करने वालों, दुष्ट बुद्धि वाले दैत्यों, पूतना, शकट आदि के विनाश-हेतु वे उद्यम करने वाले हैं। गोपियों, गोपालों एवं गौवों के झुण्ड़ से वे सदा आच्छादित हैं। काम-निरत इन्द्रादि प्रमुख देवताओं द्वारा वे सेवित हैं।।८२८-८३९।।

प्रातरेवंविधं कृष्णं ध्यात्वा सुस्थिरमानसः।
प्रागुक्त एव पीठेऽमुं हरिं सम्पूजयेत्प्रभुम् ।।८४०।।
स्वाङ्गावरणमाद्यं स्याद्द्वितीयं लोकपालकैः ।।८४१।।
वज्रादिभिस्तृतीयं च पूजयित्वा प्रसन्नधीः।
पक्वरम्भाफलं खण्डं नवनीतं हविर्दधि।
मेलयित्वा सुनैवेद्यं निवेद्य प्रीणयेद्विभुम् ।।८४२।।
उषस्येवं विधानेन श्रद्धाभक्तिसमन्वितः।
श्रीकृष्णं पूजयेद्यत्र पूजोपकरणैः शुभैः ।।८४३।।
ऐहिकीं सर्वसम्पत्तिं प्रागेव प्राप्नुयात्ततः।
देहान्ते विष्णुसायुज्यं प्रयाति नियतं कृती ।।८४४।।

स्थिरमति साधक को प्रात:काल इस प्रकार से कृष्ण का ध्यान करके पूर्वोक्त पीठ पर प्रभु श्रीहरि का पूजन करना चाहिये। प्रथम आवरण में षडङ्ग पूजन, द्वितीय आवरण में लोकपालों का पूजन एवं तृतीय आवरण में वज्रादि आयुधों का पूजन करके प्रसन्न

मन से पके केले, खण्ड, मक्खन, खीर, दही मिलाकर सुन्दर नैवेद्य निवेदित करके प्रभु को प्रसन्न करना चाहिये। जिस स्थान पर समस्त पूजोपकरणों के द्वारा प्रातःकाल में इस विधान से श्रद्धा एवं भक्ति-पूर्वक श्रीकृष्ण का पूजन किया जाता है, वहाँ पर पहले से ही समस्त लौकिक सम्पत्तियाँ उपलब्ध रहती हैं और नियत कृत्य को करने वाला शरीरान्त होने पर विष्णु के सायुज्य को प्राप्त करता है।।८४०-८४४।।

प्रातः प्रत्यहमेवं हि पूजयित्वा नरो हरिम्।
गव्यं दधि निवेद्यास्मै गुडयुक्तमथापि वा ।।८४५।।
तद्बुद्ध्या शुद्धनीरेण तर्पयेत्सुमुखं हरिम्।
अष्टोत्तरसहस्रं तु मूलमन्त्रं जपेत्ततः ।।८४६।।

मनुष्य को प्रतिदिन प्रातःकाल श्रीकृष्ण का पूजन करके उनके लिये गुड़-युक्त दुग्ध एवं दधि निवेदित करना चाहिये। अथवा उसी बुद्धि से शुद्ध जल से सुन्दर मुंख वाले हरि के लिये तर्पण करना चाहिये। तत्पश्चात् मूल मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करना चाहिये।।८४५-८४६।।

दिनमध्ये भजेच्चापि सुन्दराकृतिमद्भुतम्।
इन्द्रादिदेवसिद्धैश्च सेवितं खचरैस्तथा ।।८४७।।
गवां गोपालगोपीनां समूहैः परितो वृतम्।
नीलाम्बुवाहसत्कान्तिविशिष्टाङ्गश्रियं विभुम् ।।८४८।।
नीलकण्ठस्य सत्पिच्छैः केशभारसुमण्डितम्।
उद्भ्रमद् भ्रूलतं देवं पद्मपत्रायतेक्षणम् ।।८४९।।
पूर्णचन्द्रलसद्वक्त्रं रत्नकुण्डलमण्डितम्।
गण्डमण्डलसंशोभं सुघोषं सस्मिताननम्।
पीतवस्त्रधरं चारुमुक्ताहारविभूषितम् ।।८५०।।
काञ्चीकटककेयूरमुद्रिकानूपुरादिभिः ।
अलंकृतशरीरं तं पिशङ्गाम्बरसंवृतम् ।।८५१।।
मुक्तामाणिक्यसञ्छन्नवनमालाद्भुतांशुकम् ।
कामबाणप्रविद्धाङ्गं वेणुवादनतत्परम् ।।८५२।।
ह्रस्वं विचित्रितं वेषं वामे शङ्खं सुवेत्रकम्।
अभिरामतरं दक्षं रत्नश्रेष्ठमभीष्टकम् ।।८५३।।
ध्यात्वैवं विधिना देवं पूजयेदिष्टसिद्धये।
दामाद्यैरङ्गकैश्चापि महिषीभिश्च तत्परम् ।।८५४।।

वसुदेवादिभिः पश्चात्कल्पवृक्षैरनन्तरम् ।
इन्द्राद्यैश्च तदस्त्रैश्च सप्तावरणसंयुतम् ॥८५५॥

तदनन्तर मध्याह्न में अत्यन्त सुन्दर आकृति वाले, इन्द्रादि देवताओं सिद्धों एवं आकाशचारियों द्वारा सेवित, गौवों गोपालों एवं गोपियों के समूह से चारो ओर से घिरे हुये, नीले मेघों की सुन्दर कान्ति से विशिष्ट शोभा वाले, मयूरों के सुन्दर पंखों से सुशोभित केशों वाले, भौहों को ऊपर-नीचे घुमाने वाले, कमलपत्र-सदृश आँखों वाले, पूर्ण चन्द्रमा के समान सुशोभित मुख वाले, रत्न-निर्मित कुण्ड़ल से सुशोभित, शोभायमान गण्डस्थल वाले, सुन्दर ध्वनि वाले, किञ्चित् हास्य-युक्त मुख वाले, पीत वस्त्र धारण करने वाले, रमणीय मोतियों के हार से विभूषित, काञ्ची कटक केयूर मुद्रिका नूपुर आदि से अलंकृत शरीर वाले, लालिमा-युक्त भूरे रंग के वस्त्र से आच्छादित, मुक्ता एवं माणिक्य-जटित तथा वनमाला के कारण अद्भुत उत्तरीय वस्त्र वाले, कामबाण से विद्ध अंग वाले, वंशी को बजाने में तल्लीन, छोटा विचित्र वेष धारण किये हुये, बाँयें हाथ में सुन्दर छड़ी एवं शंख तथा दाहिने हाथ में अत्यन्त मनोहर प्रिय रत्न को धारण किये हुये प्रभु श्रीहरि का ध्यान करके अपनी इष्टसिद्धि के लिये उनका सविधि पूजन करना चाहिये।

यह पूजन सात आवरणों से युक्त होता है। पहले आवरण में दामादि का, दूसरे आवरण में षडङ्गो का, तीसरे आवरण में आठ पटरानियों का, चौथे आवरण में वसुदेवादि का, पाँचवें आवरण में कल्पवृक्ष आदि का, छठे आवरण में इन्द्रादि दस दिक्पालों का और सातवें आवरण में उनके वज्रादि दस आयुधों का पूजन किया जाता है।।८४७-८५५।।

अर्चयित्वा तु गोविन्दं विधिवत्साधकोत्तमः ।
नैवेद्यं काञ्चने पात्रे पूर्वोक्तं च निवेदयेत् ॥८५६॥
अष्टाधिकशतं पश्चाद्धुनेत्साधु पयोऽन्धसा ।
शर्कराघृतयुक्तेन बलिं पश्चात्प्रकल्पयेत् ॥८५७॥
देवर्षियोगिदेवेभ्य उपदेवेभ्य आदरात् ।
देवाग्रभागमारभ्य सव्यमार्गाद्बलिर्मतः ॥८५८॥
स्वस्वदिक्क्रमतो विद्वान्भक्तियुक्तः प्रसन्नधीः ।
नवनीतहविर्बुद्ध्या तोयैः सन्तर्पयेन्मुखे ।
सहस्त्रं शतमानं वा साष्टकं पूजयेज्जपन् ॥८५९॥
मध्याह्ने कृष्णमेवं यः पूजयेद्भक्तितत्परः ।
गीर्वाणवृन्दवन्द्योऽसौ सम्मतः सर्वजन्तुषु ॥८६०॥

आयुर्बुद्ध्यादिश्रीकान्तिसुभगत्वादिसंयुतः ।
सत्सन्ततिसुहृद्वर्गपशुक्षेत्रधनादिभिः ।
सर्वैश्वर्यसमेतोऽत्र सुखं भुक्त्वा हरिं व्रजेत् ॥८६१॥

साधकश्रेष्ठ को इस प्रकार विधि-पूर्वक गोविन्द का अर्चन करने के बाद सुवर्णपात्र में उनके लिये पूर्वोक्त नैवेद्य समर्पित करना चाहिये। तत्पश्चात् दुग्धान्न से सम्यक् प्रकार से एक सौ आठ आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करके शक्कर एवं घृत से युक्त बलि प्रकल्पित करनी चाहिये।

देवता के आगे से आरम्भ करके वामावर्तक्रम से देवर्षियों, योगियों, देवों एवं उपदेवों को आदर-सहित बलि प्रदान करना चाहिये। तदनन्तर विद्वान् साधक को भक्तिपूर्वक प्रसन्न मन से जल को मक्खन और हवि मानकर तत्तत् दिशाक्रम से उनके मुख में तर्पण करना चाहिये। इसके बाद एक हजार आठ अथवा एक सौ आठ बार मन्त्र-जप करते हुये पूजन करना चाहिये।

जो साधक मध्याह्नकाल में भक्तिभाव से इस प्रकार कृष्ण का पूजन करता है, देवताओं द्वारा वन्दनीय वह व्यक्ति समस्त जीवों का प्रिय हो जाता है। वह व्यक्ति आयु, बुद्धि, लक्ष्मी, कान्ति, सौभाग्य आदि के साथ-साथ सत्सन्तति, बन्धु-बान्धव, पशु, क्षेत्र, धन आदि समस्त ऐश्वर्य से सम्पन्न होकर इस मर्त्यलोक में सुख का भोग करके अन्त में वैकुण्ठ-गमन करता है।।८५६-८६१।।

अपराह्णार्चनं सन्ध्यापर्यन्तं मनुनामुना ।
दशाक्षरेण मनुना रात्रौ पूजनमाचरेत् ॥८६२॥
सन्ध्यायां द्वारकामध्ये रम्ये रामाश्रये शुभे ।
गृहैः षोडशसाहस्रैः सर्वतः परिवेष्टिते ॥८६३॥
पद्मेन्दीवरकह्लारसंसृतैः सुजलाशयैः ।
हंसादिपक्षिभिर्व्याप्तैः संवृताद्भुतमन्दिरे ॥८६४॥
उद्यदादित्यसङ्काशे चित्रिताद्भुतमण्डपे ।
कोमलास्तरणे दिव्यस्वर्णपङ्कजमण्डिते ॥८६५॥
सूपविष्टं परात्मानं कृष्णं ध्यायेत्समाहितः ।
नारदादिमुनिश्रेष्ठैः संवृतं मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥८६६॥
अद्वैतार्थविचारेण मुनिवर्येभ्य एव च ।
अग्निरूपं परं तेजो दिशन्तं मन्त्रगौरवात् ॥८६७॥
नीलेन्दीवरसङ्काशं शान्तमूर्तिं गुणालयम् ।
सरोजदलसङ्काशनेत्रं मकरकुण्डलम् ॥८६८॥

स्निग्धालकाग्रसम्बद्धमुकुटाद्धुतमस्तकम् ।
अत्यन्तमधुराकारं प्रसन्नमुखपङ्कजम् ॥८६९॥
श्रीवत्सवक्षसं दिव्यवनमालाविभूषितम् ।
दूरीकृतधराभारं प्रसन्नहृदयं विभुम् ॥८७०॥
शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं तु चतुर्भुजम् ।
इत्थं सञ्चिन्त्य देवेशं गोविन्दं सम्यगर्चयेत् ॥८७१॥

अपराह्न से आरम्भ करके सन्ध्या-पर्यन्त इस मन्त्र से और रात्रि में दशाक्षर मन्त्र से पूजन करना चाहिये। सन्ध्या के समय द्वारका के मध्य सोलह हजार गृहों से चारो ओर से परिवेष्टित लक्ष्मी के रमणीय आश्रय में कमलों, नीलकमलों, कह्लारों एवं हंसादि पक्षियों से व्याप्त सुन्दर जलाशयों से घिरे अद्भुत भवन में उदीयमान सूर्य के समान बनाये गये अद्भुत मण्डप में दिव्य स्वर्णकमल से मण्डित कोमल शय्या पर सुष्ठु रूप से विराजित परमात्मा कृष्ण का समाहित चित्त से ध्यान करना चाहिये।

वे परमात्मा मोक्ष के आकांक्षी नारदादि श्रेष्ठ मुनियों से घिरे हुये हैं, मन्त्र की श्रेष्ठता के कारण श्रेष्ठ मुनियों के द्वारा अद्वैत के अर्थ-विवेचन से वे अग्निरूप परम तेजोमय कहे जाते हैं, वे नीलकमल के समान वर्ण वाले हैं, परम शान्त-स्वरूप हैं, समस्त गुणों के आगार हैं, कमलदल के समान उनके नेत्र हैं, मकरकुण्डल धारण किये हुये हैं, अग्रभाग में स्निग्ध अलकों से सम्बद्ध होने के कारण उनका मस्तक अद्भुत है, उनकी आकृति अत्यन्त मधुर है, मुखकमल प्रसन्न है, वक्ष:स्थल पर श्रीवत्स-चिह्न है, वे दिव्य वनमाला से विभूषित हैं, पृथिवी के भार को दूर करके वे प्रसन्नहृदय हैं। वे विभु चार भुजाधारी हैं एवं चारो भुजाओं में शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण किये हुये हैं। इस प्रकार देवेश गोविन्द का चिन्तन करके उनका सम्यक् रूप से अर्चन करना चाहिये।।८६२-८७१।।

अष्टप्रियाभिरङ्गैश्च तृतीये गरुडं पुरः ।
पर्वतं विष्णुनिशठं वृद्धवृन्दारकं तथा ॥८७२॥
विष्वक्सेनं च शैनेयं प्रादक्षिण्येन पूजयेत् ।
लोकपालांस्तदस्त्राणि पञ्चमावरणार्चनम् ॥८७३॥
नैवेद्यं पायसं दत्वा सम्यक् पूजावसानकम् ।
खण्डाक्तक्षीरसद्बुद्ध्या नीरैः कृष्णं तु तर्पयेत् ॥८७४॥
अष्टोत्तरशतं पश्चाज्जपेत्तावद्धिचिन्तयन् ।
सर्वार्चासु हुनेन्मन्त्री मध्याह्ने तु यथाविधि ॥८७५॥

अवसानार्घ्यविध्यन्तं विधाय स्तुतिमाचरेत् ।
नत्वा निवेद्य चात्मानं विष्णुं तु स्वहृदि स्वयम् ।
न्यस्येद्देवमयो भूत्वा स्वात्मानं पूजयेत्ततः ॥८७६॥
सन्ध्याकाले हरिं त्वेवं प्रत्यहं योऽर्चयेन्नरः ।
इह भोगान्बहून्भुक्त्वा व्रजेच्चान्ते स सद्गतिम् ॥८७७॥
नन्दात्मजं यजेद्रात्रौ कामाकुलितचेतसम् ।
रासक्रीडासमाक्रान्तं वल्लवीचक्रवेष्टितम् ॥८७८॥

इसके बाद पाँच आवरणों में पूजन करना चाहिये। प्रथम आवरण में षडङ्ग-पूजन करने के पश्चात् द्वितीय आवरण में रुक्मिणी आदि आठ पटरानियों का पूजन करना चाहिये। तृतीय आवरण में देव के आगे गरुड़ का पूजन करने के बाद दलाग्र में प्रदक्षिणक्रम से पर्वतमुनि, विष्णु, निशठ, वृद्धवृन्दारक, विष्वक्सेन, सात्यकि का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर चतुर्थ आवरण में इन्द्रादि दस दिक्पालों का एवं पञ्चम आवरण में उनके वज्रादि दस आयुधों का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् नैवेद्य में पायस समर्पित करके पूजा के अन्त में जल द्वारा मिश्री-मिश्रित दुग्धबुद्धि से कृष्ण का तर्पण करना चाहिये। इसके बाद प्रभु का स्मरण करते हुये मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करना चाहिये। मन्त्रज्ञ साधक को समस्त पूजनों में हवन अवश्य करना चाहिये।

मध्याह्न-पूजन के अन्त में यथाविधि अर्घ प्रदान करने के पश्चात् स्तुति करनी चाहिये। तत्पश्चात् प्रणाम करते हुये अपने को विष्णु के लिये समर्पित करने के अनन्तर उन्हें स्वयं अपने हृदय में न्यस्त करके देवमय होकर अपने-आप का पूजन करना चाहिये।

जो मनुष्य प्रतिदिन सन्ध्याकाल में भी इसी प्रकार विष्णु का अर्चन करता है, वह इस लोक में प्रचुर भोगों का भोग करके अन्त में सद्गति को प्राप्त करता है।

रात्रि में काम से व्याकुल चित्त वाले, रासक्रीड़ा द्वारा सम्यक् रूप से ग्रसित एवं गोपियों के घेरे से घिरे हुये नन्दतनय का यजन करना चाहिये।।८७२-८७८।।

स्थलपङ्कजपुष्पाणां दिव्यरेणुयुतेन च ।
रिङ्गत्तरङ्गबिन्दूनां सम्पृक्ताग्र्येण वायुना ।
कालिन्दीसैकते शुभ्रे शीतले तापहारिणि ॥८७९॥
कामबाणप्रविद्धाङ्गदिव्यस्त्रीकोटिकादिभिः ।
सेविते चन्द्रकिरणसमुद्द्योतितदिङ्मुखे ।
चलद्भृङ्गाङ्गनाशब्दवाचालितदिगन्तरे ॥८८०॥

सिद्धगन्धर्वदेवौघयक्षकिन्नरपन्नगैः ।
विद्याधरैः सपत्नीकैर्विमानेषु कृतासनैः ।
आकाशे सञ्चरद्भिस्तैः पुष्पवृष्टिकृताद्भुते ॥८८१॥
रासक्रीडाविधौ रत्नशङ्गं परमेश्वरम् ।
एतद्देहसमाक्लृप्तदिव्यानेककलेवरम् ।
नारीणां युग्मयोर्देवं प्रत्येकं चान्तरागतम् ॥८८२॥
तत्तत्कण्ठसमालम्बिबाहुद्वयविराजितम् ।
आत्मसम्बन्धसञ्जातकामानलसुदीपितम् ।
रोमोद्गमसमाक्रान्तनागवल्लीतरुं मुहुः ॥८८३॥
नानामुनिगणैर्मिश्रं मधुरस्वरसंयुतम् ।
सुवर्णरचितैर्दिव्यैर्महामणिपरिष्कृतैः ।
कृतचारुस्वनैः सर्वालङ्कारैर्हृदयङ्गमम् ॥८८४॥
इत्थं पृथक्छरीरं तं संयुतं मणिभिर्यथा ।
हिरण्यरचितं सम्यक्सरो मरकतावृतम् ।
मणिशङ्खौ सुविस्तीर्णे रक्तपद्मगतं प्रभुम् ॥८८५॥
अतसीपुष्पसङ्काशं यौवनश्रीसमन्वितम् ।
तदानीं रक्तफुल्लारविन्दच्छदविलोचनम् ॥८८६॥
भूषणैर्विविधैश्चारुपल्लवानेकगुच्छकैः ।
शितिकण्ठशिखण्डैश्च बद्धमूर्द्धजसञ्चयम् ॥८८७॥
पूर्णिमाचन्द्रसङ्काशसुन्दराननपङ्कजम् ।
रत्नकुण्डलसंशोभिगण्डमण्डलमण्डितम् ॥८८८॥
पक्वबिम्बफलाकाररक्ताधरविराजितम् ।
नानारत्नसमाक्लृप्तसम्भूषणसुभूषितम् ॥८८९॥
स्वर्णवर्णलसद्वस्त्रं विद्रुमश्रीगृहं परम् ।
नवप्रवालरुचिरहस्तपादतलं विभुम् ॥८९०॥
भ्रमरालीलसत्पुष्पमालिकावृतपद्द्वयम् ।
अङ्गनाकुचसंश्लेषलग्नकुङ्कुमवक्षसम् ॥८९१॥
महोक्षांसनिभस्कन्धं वंशवादनतत्परम् ।
अनङ्गबाणसंविद्धं सर्वलोकैकसद्गतिम् ।
इत्थं ध्यात्वा यजेत्पीठे चाङ्गावरणसंयुतम् ॥८९२॥

स्थलकमलों के दिव्य परागों से समन्वित, लहराते तरङ्गबिन्दुओं से संलग्न प्रवहमान वायु के द्वारा शुभ्र, शीतल, तापहारी यमुनातट पर कामबाण से सम्यक् रूप से विद्ध शरीराङ्ग वाले, दिव्य करोड़ों स्त्रियों द्वारा सेवित, आकाशभाग के चन्द्रकिरणों से प्रकाशमान होने पर, इधर-उधर घूमते हुये भ्रमरियों के शब्द से दिशाओं के गुञ्जायित होने पर, सिद्धों गन्धर्वों देवताओं यक्षों किन्नरों नागों विद्याधरों द्वारा पत्नी-सहित विमान पर बैठकर आकाश में सञ्चरण करते हुये अद्भुत पुष्पवृष्टि करने पर, रासक्रीड़ा के क्रम में रत्नशङ्कु-स्वरूप परमेश्वर द्वारा प्रकृत शरीर के समान ही अनेक शरीर धारण करके समस्त स्त्रियों के अन्तस्तल में प्रविष्ट होकर उनके गले में बाँहें ड़ालकर स्वयं से सम्बन्ध होने के फलस्वरूप कामाग्नि के अच्छी तरह प्रदीप्त हो जाने के कारण उन स्त्रियों के रोमाञ्चित होकर बार-बार पानलता के समान अपने से लिपट जाने पर, अनेक मुनियों के मिले-जुले मधुर स्वर से संयुक्त, मनोहर शब्द करते हुये सुवर्ण-निर्मित एवं श्रेष्ठ मणियों से परिष्कृत समस्त अलंकारों को हृदयङ्गम किये हुये—इस प्रकार शरीर से अलग होते हुये भी मणियों से संयुक्त के समान होकर सम्यक् प्रकार से मोतियों से घिरे तथा मणि एवं शंख से समन्वित सुवर्ण-रचित अत्यन्त विस्तृत तालाब में स्थित रक्तकमल पर अतसी-पुष्प के समान युवावस्था से समन्वित प्रभु के आसीन होने पर विकसित रक्तकमल के समान नेत्रों वाले, शिर के बालों से बद्ध अनेक आभूषणों से मनोहर पल्लवों के गुच्छों एवं मयूरपंखों वाले, पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखकमल वाले, रत्नमय कुण्डलों से सुशोभित गण्डस्थल वाले, पक्व बिम्बफल-सदृश रक्तवर्ण ओष्ठ वाले, अनेक रत्न-जटित महनीय आभूषणों से सम्यक् प्रकार से भूषित, स्वर्णवर्ण वाले वस्त्रों से सुशोभित, श्रेष्ठ मूँगों के आगार के समान, नूतन प्रवाल-सदृश रुचिर हस्त एवं पादतल वाले, भ्रमरपंक्तियों से सुशोभित पुष्पमालिका से घिरे हुये दोनों पैरों वाले, कामिनी-कुच से संस्पर्श से वक्षःस्थल पर कुङ्कुम लगे हुये, विशाल वृक्षभ के स्कन्ध-सदृश स्कन्ध वाले, वंशी बजाने में तल्लीन, कामबाण से सम्यक् रूप से विद्ध, समस्त लोकों के लिये एकमात्र सद्गति-स्वरूप प्रभु श्रीकृष्ण का ध्यान करके पीठ पर साङ्ग सावरण-पूजन करना चाहिये।।८७९-८९२।।

श्रींक्लींपूर्वाः केशवाद्याः सबिन्दुस्वरसंयुताः ।
मातृकास्तु न्यसेत्पूर्वं ततः पूजनमाचरेत् ।
इन्द्राद्या भूपुरे पूज्या वज्रादीन्यायुधान्यपि ।।८९३।।
ततः सुक्वथितं दुग्धं सितोपलसमन्वितम् ।
राजते भाजने सम्यक्संस्कृत्य विनिवेदयेत् ।।८९४।।
कांस्यपात्रेषु नैवेद्यं स्वरसङ्ख्येषु कल्पयेत् ।
प्रत्येकं मिथुनेभ्यश्चान्यत्सर्वं पूर्ववन्मतम् ।।८९५।।

रात्रावेवं भोजयेद्वै सर्वकामवशङ्करः।
इन्दिरामन्दिरो भूत्वा सर्वाराध्यः सुभुक्तिमान् ॥८९६॥
रात्रौ सन्ध्यासु यश्चैवं प्रत्यहं तु प्रपूजयेत्।
तुल्यं फलं स चाप्नोति भवाब्धेः पारगो भवेत् ॥८९७॥

सर्वप्रथम आदि में श्रीं एवं क्लीं से संयुक्त बिन्दु तथा स्वर से समन्वित प्रत्येक मातृकाओं से केशवादि मातृकान्यास करने के पश्चात् पूजन का आरम्भ करना चाहिये। अन्त में भूपुर में इन्द्रादि दस दिक्पालों एवं उनके आयुधों का भी पूजन करना चाहिये।

तत्पश्चात् सम्यक् रूप से क्वथित एवं मिश्री-मिश्रित दुग्ध को अच्छी तरह से संस्कृत चाँदी के पात्र में रखकर प्रभु को अर्पित करना चाहिये। सोलह मिथुनों के लिये अलग-अलग प्रत्येक को काँसे से निर्मित सोलह पात्रों में नैवेद्य समर्पित करना चाहिये। शेष समस्त कृत्य पूर्ववत् कहे गये हैं। इस प्रकार रात्रि में जो साधक भगवान् को भोग लगाता है, उसकी समस्त कामनायें उसके वशीभूत हो जाती हैं। साक्षात् लक्ष्मी का निवास-स्वरूप वह सबके द्वारा आराध्य होकर सुन्दर भोगों से समन्वित हो जाता है।

प्रतिदिन रात्रि के साथ-साथ तीनों सन्ध्याओं में भी जो साधक इस प्रकार पूजन करता है, वह भी उक्त फल को प्राप्त करता है एवं संसारसागर को पार करने वाला हो जाता है।८९३-८९७॥

अर्चान्तरे देवकस्य तर्पणानां विधिम्ब्रुवे।
पुरोक्तानां च काम्यानां साधकेषु फलप्रदम् ॥८९८॥
पूजनव्यतिरेकेऽपि तत्फलं लभ्यते बुधैः।
पीठाद्भिस्तर्पणादौ तु कृत्वा मूलेन चैकशः ॥८९९॥
तत्रावाह्य यजेद्देवं जले चैवोपचारकैः।
धेनुमुद्रां प्रदर्श्यात्र स्मृत्वा तर्पणसाधकम् ॥९००॥
तद्धिया जलमादाय स्वर्णपात्रे कृतेन तु।
सम्यगञ्जलिना देवं तर्पयेन्मूलमुच्चरेत् ॥९०१॥
त्रिकालं तर्पयेन्नित्यमष्टाविंशतिसङ्ख्यया।
तत्तत्कालोचितान् पश्चात्तर्पयेत्परिवारकान् ॥९०२॥
एकैकवारं मन्त्रज्ञो मूलेनापि प्रतर्पयेत्।

पूजन के पश्चात् देव के तर्पणों की विधि कहता हूँ, जो कि पूर्वोक्त काम्य कर्मों में साधकों के लिये फलप्रद होते हैं और पूजन में व्यतिरेक (व्यवधान अथवा अन्तर) होने पर भी इसको करने वाला विज्ञ साधक उक्त फल को अवाप्त कर लेता है। तर्पण

के आरम्भ में मूल मन्त्र द्वारा पीठजल से वहाँ पर जल में देवता का आवाहन करके विविध उपचारों से यजन करने के उपरान्त धेनुमुद्रा दिखाकर तर्पणसाधक का स्मरण करके तर्पण-बुद्धि से स्वर्णपात्र में रखे जल को ग्रहण करके मूल मन्त्र का उच्चारण कर सम्यक् रूप से जलाञ्जलि प्रदान करते हुये देवता के लिये तर्पण करना चाहिये। प्रतिदिन तीनों सन्ध्याओं में अट्ठाईस बार तर्पण करना चाहिये। इसके बाद मन्त्रज्ञ साधक को मूल मन्त्र के द्वारा तत्तत् समयोचित परिवारों के लिये भी एक-एक बार तर्पण करना चाहिये।।८९८-९०२।।

गुडयुक्तं दधि प्रातर्नवनीतयुतं हरेः ॥९०३॥
अह्नो मध्ये समाख्यातं सन्ध्यायां दुग्धमुत्तमम्।
सितोपलविमिश्रं तु तर्पणद्रव्यमीरितम् ॥९०४॥
बाह्येऽत्र पूर्ववद्विद्यादन्यत्सर्वं यथा भवेत्।
तत्प्रसादजलैः सिञ्चेदात्मानमिह मन्त्रवित् ॥९०५॥
मूलमन्त्राभिजपितं जलं मन्त्री पिबेत्ततः।
हरिमुद्वास्य मन्त्रज्ञो जपेन्मन्त्रन्तु तन्मयः ॥९०६॥

हरि के लिये प्रातःकाल गुड़-दधि, मध्याह्न में गुड़-मक्खन एवं सायंकाल मिश्री-मिश्रित दुग्ध तर्पणद्रव्य कहा गया है। तर्पण मन्त्र यहाँ और अन्यत्र यथावत् होते हैं।

तर्पण के पश्चात् मन्त्रज्ञ साधक को तर्पणजल से स्वयं का अभिषेक करना चाहिये। तदनन्तर मूल मन्त्र से अभिमन्त्रित जल का साधक को पान करना चाहिये। इसके बाद मन्त्रज्ञ साधक को हरि का उद्वासन (विसर्जन) करके तन्मय होकर मन्त्र-जप करना चाहिये।।९०३-९०६।।

काम्यतर्पणवस्तूनि ततो वक्ष्यामि यानि तु।
भजेदुक्तप्रकारेषु समालभ्यैकमेव तु ॥९०७॥
सकृज्जलेन सन्तर्प्य दुग्धैर्वारचतुष्टयम्।
पश्चात्षोडशभिर्द्रव्यैः प्रत्येकं च चतुष्टयम् ॥९०८॥
पायसं दधि भक्तं च तिलास्तण्डुलकास्तथा।
गुडो भक्तं च दुग्धं च दध्यथो नवनीतकम् ॥९०९॥
घृतं च कदलं मोचामलकं मधुवल्लभा।
मृद्वी मोदकपूर्यश्च पृथुकाश्चैव लाजकाः ॥९१०॥
द्रव्याणि षोडशैतानि मूलमन्त्रेण तर्पयेत्।
प्रातरेवं तर्पयेद्यः सायं वा सप्तसङ्ख्यया ॥९११॥

कृष्णं प्रतिदिनं विद्वाञ्छुद्धबुद्धिश्च तत्परः ।
तस्य मण्डलमात्रेण वाञ्छितं भवति ध्रुवम् ॥९१२॥

अब मैं काम्य तर्पण की वस्तुओं को कहता हूँ, उन वस्तुओं में से एक को भी प्राप्त करके उसी से उक्त प्रकार से तर्पण करना चाहिये। सर्वप्रथम एक बार जल से तर्पण करने के बाद चार बार दूध से तर्पण करना चाहिये। तत्पश्चात् सोलह द्रव्यों से प्रत्येक से चार-चार बार तर्पण करना चाहिये। वे सोलह द्रव्य इस प्रकार हैं—पायस, दधि-भात, तिल-तण्डुल, गुड़-भात, दुग्ध, दधि, मक्खन, घृत, केला, मोचा (आम), आँवला, मधुवल्लभा, मृद्वी (दाख का गुच्छा), मोदक एवं पूरी, चूड़ा एवं लाजा (धान का लावा)। इन सोलह द्रव्यों के द्वारा मूल मन्त्र से तर्पण करना चाहिये।

जो विद्वान् शुद्ध बुद्धि से तल्लीन होकर प्रतिदिन प्रातः एवं सायंकाल सात-सात बार कृष्ण को तर्पण करता है, उसके समस्त अभीष्ट चालीस दिनों में निश्चित रूप से सिद्ध हो जाते हैं।।९०७-९१२।।

अथान्यत्तत्फलं वक्ष्ये पूर्ववत्तत्फलप्रदम् ।
धारोष्णं क्वथितं दुग्धं दधि दध्युदकं पुनः ॥९१३॥
सर्पिस्तथा पायसं च तक्रं त्रिक्षौद्रमेव च ।
पञ्चामृतं नवैतानि प्रत्येकं शतमष्ट च ॥९१४॥
तर्पयेल्लोकमान् योऽसौ यशस्वी च प्रजायते ।
खण्डमिश्रितधारोष्णदुग्धबुद्ध्या जलैः शुभैः ॥९१५॥
कृष्णं सन्तर्प्य गच्छेद्यो ग्रामं वा नगरं तथा ।
स तु नानारसोपेतं भक्ष्यं भोज्यं च विन्दति ॥९१६॥
तर्पणं यावदाख्यातं जपस्तावानिह स्मृतः ।
इह सन्तर्पणादेव फलमाप्नोति वाञ्छितम् ॥९१७॥

अब पूर्व के समान ही फलप्रद तर्पण के अन्य फलों को कहता हूँ। धारोष्ण दुग्ध, क्वथित दुग्ध, दधि, दधि का जल, घृत, पायस, तक्र (मट्ठा), त्रिमधु एवं पञ्चामृत—इन नव द्रव्यों में से प्रत्येक से एक सौ आठ बार जो तर्पण करता है, वह लोकमान्य एवं यशस्वी होता है।

मिश्री-मिश्रित धारोष्ण दुग्धबुद्धि से जल द्वारा कृष्ण के लिये सम्यक् रूप से तर्पण करने के बाद जो साधक ग्राम अथवा नगर में जाता है, वह अनेक रसों से समन्वित भक्ष्य एवं भोज्य प्राप्त करता है।

जहाँ जितनी संख्या में तर्पण कहा गया है, वहाँ उतना ही जप भी करना चाहिये।

इस लोक में सम्यक् रूप से तर्पण करने वाला साधक अभीष्ट फल को प्राप्त कर लेता है।।९१३-९१७।।

भिक्षुको ब्राह्मणो नित्यं स्वयं गोविन्दरूपधृक्।
मत्वा नानाविधैर्भावैरभिरामैर्मुहुर्मुहुः ।।९१८।।
मनोभिः सह गोपीनां दधिदुग्धघृतादिकम्।
बलाद् गृह्णन्ददद्भिक्षामायाति महतीं तुलाम्।।९१९।।
गोपीहस्तसरोजानि धृत्वा नृत्यन्तमञ्जसा।
कृष्णं सञ्चिन्त्य मन्त्रज्ञो जपेदष्टादशाक्षरम्।।९२०।।
लाजैर्मधुप्लुतैर्वापि चूर्णैर्लाजसमुद्भवैः।
हुत्वायुतं जपेत्तावत्कन्यामिष्टां लभेत सः।।९२१।।
अष्टादशार्णमन्त्रेण पलाशसमिधोयुतम्।
मधुप्लुतकुशैर्वापि हुनेद्वा तिलतण्डुलैः।।९२२।।
वशीभवन्ति भूपाला दत्त्वा सर्वस्वमादरात्।
एवमष्टादशार्णस्य प्रयोगः कथितो मया।।९२३।।

भिक्षुक ब्राह्मण प्रतिदिन स्वयं गोविन्द का रूप धारण करके अनेक प्रकार के भावों को बार-बार प्रदर्शित करते हुये अपने-आपको मनोहर मानकर पुष्पों के साथ गोपियों से बलपूर्वक दधि, दुग्ध, घृत आदि को ग्रहण करते हुये के समान प्रदत्त भिक्षा को लेकर लौटता हुआ कृष्ण से अपनी महान् तुलना करता है।

गोपियों के करकमलों को पकड़कर अनायास नृत्य करते हुये कृष्ण का ध्यान करके मन्त्रज्ञ साधक को अष्टादशाक्षर मन्त्र का जप करना चाहिये।

मधु-सिक्त लाजा अथवा लाजाचूर्ण से हवन करने के पश्चात् मन्त्र का दस हजार जप करने वाला साधक अभप्सित कन्या को प्राप्त कर लेता है।

अष्टादशाक्षर मन्त्र के द्वारा पलाश की समिधा, मध्वक्त कुश अथवा तिल-तण्डुल से दस हजार हवन करने पर राजागण साधक के वशीभूत हो जाते हैं और आदरपूर्वक उसे अपना सर्वस्व प्रदान कर देते हैं। इस प्रकार अष्टादशाक्षर मन्त्र के प्रयोगों को मेरे द्वारा कहा गया।।९१८-९२३।।

सप्तमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सप्तमेयं जनार्दनः।
प्रत्यक्षो जायते मन्त्रः क्लीं कृष्णाय नमस्त्विति।।९२४।।

मुनिः कामोऽस्य गायत्रं छन्दः कृष्णोऽस्य देवता।
षड्दीर्घान्वितबीजेन षडङ्गानि च पूजनम् ॥९२५॥
प्राग्वज्जपेद्वर्णलक्षं तर्पणं चात्र पूर्ववत्।
सम्पत्प्रदो विशेषेण मन्त्रोऽयं परिकीर्तितः ॥९२६॥

सप्तम कलि में उद्भूत कृष्ण का मन्त्र—अब मैं सप्तम कलि में समुद्भूत कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—क्लीं कृष्णाय नमः। इस मन्त्र के ऋषि काम, छन्द गायत्री एवं देवता कृष्ण हैं। बीजमन्त्र के छः दीर्घ स्वरूपों (क्लां क्लीं क्लूं क्लैं क्लौं क्लः) से षडङ्ग-न्यास करके पूर्ववत् पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् मन्त्र का छः लाख जप करके पूर्ववत् तर्पण करना चाहिये। यह मन्त्र विशेषतया सम्पत्ति-प्रदायक कहा गया है।।९२४-९२६।।

अष्टमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि जातो यश्चाष्टमे कलौ।
एकावतारे सम्पूर्णे सूक्ष्मरूपी जनार्दनः ॥९२७॥
हिमाचले वरे तीर्थे समाधिं स समाश्रयेत्।
पुनश्च कलिधर्माणां वृत्त्यर्थं च जनार्दनः ॥९२८॥
कञ्चिद्वेषं समापद्य प्रकटो जायते भुवि।
भक्तेभ्यश्चाभयं दत्त्वा मोहयित्वा च दुष्कृतान् ॥९२९॥
पाखण्डमार्गं प्रकटं किञ्चित्सिद्धिसमन्वितम्।
दर्शयित्वा च मर्त्यानां पुनस्तत्रैव यात्यसौ ॥९३०॥
एकादशाक्षरो मन्त्रो मायाश्रीबीजपूर्वकः।
स्याद्योऽष्टमे कलियुगे सर्वसिद्धिविधायकः ॥९३१॥
मुन्यादिकं जपो न्यासो ध्यानं होमश्च तर्पणम्।
वक्ष्यमाणस्य कृष्णस्य द्वादशार्णमनोः समम् ॥९३२॥

अष्टम कलि में समुद्भूत कृष्ण का मन्त्र—अब मैं आठवें कलियुग के कृष्ण-मन्त्र को कहता हूँ। सम्पूर्ण एकावतार में सूक्ष्म रूप धारण करके भगवान् जनार्दन हिमाचल के श्रेष्ठ तीर्थ में समाधिस्थ हो गये। फिर कलिधर्माचरण के लिये किसी वेष को धारण कर पृथ्वी पर प्रकट हुये और भक्तों को अभय प्रदान करके दुष्कर्मियों को मोहित करके कतिपय सिद्धियों से समन्वित पाखण्डमार्ग को प्रकट किया और उस मार्ग को मनुष्यों को दिखलाकर वे पुनः हिमाचल को प्रस्थान कर गये। इस अष्टम कलियुग में समस्त सिद्धियों का विधायक ग्यारह अक्षरों का मन्त्र है—ह्रीं श्रीं कृष्णाय

गोविन्दाय स्वाहा। इस कृष्णमन्त्र के ऋषि, जप, न्यास, ध्यान, हवन, तर्पण आदि सभी कुछ द्वादशाक्षर मन्त्र के समान होते हैं।।९२७-९३२।।

नवमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि यो जातो नवमे विभुः ।
क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय मन्त्रोऽस्याष्टाक्षरो मतः ।।९३३।।
प्रागवन्मुन्यादिकं ध्यानं चानुलोमविलोमकैः ।
पादैः कराङ्गन्यासस्तु प्रयोगाद्यं च पूर्ववत् ।।९३४।।

नवम कलि में समुद्भूत कृष्ण का मन्त्र—अब मैं नवम कलि में समुद्भूत कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। इनका अष्टाक्षर मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय। इस मन्त्र के ऋषि आदि एवं ध्यान पूर्ववत् हाते हैं। मन्त्र के पदों अनुलोम-विलोमक्रम से इसका कराङ्गन्यास किया जाता है। इसके प्रयोग आदि पूर्ववत् होते हैं।।९३३-९३४।।

दशमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि दशमे देवकीसुतः ।
जातः कृष्णस्तस्य मनुरों नमो ङेऽन्तकृष्णकः ।।९३५।।
देवकीपुत्राय हुंफट् स्वाहा षोडशवर्णकः ।
नारदोऽस्य मुनिश्छन्दोऽनुष्टुप् कृष्णस्तु देवता ।।९३६।।
ताराद्यैः षट्पदैश्चास्य षडङ्गविधिरुच्यते ।
वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रमन्यत्प्रोक्तं दशार्णवत् ।।९३७।।

दशम कलि में समुद्भूत कृष्ण का मन्त्र—अब मैं दशम कलि में हुये देवकीनन्दन कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। सोलह अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ नमः कृष्णाय देवकीपुत्राय हुं फट्। इस षोडशाक्षर मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता कृष्ण कहे गये हैं। मन्त्र के ॐ आदि छः पदों से इसका षडङ्गन्यास कहा गया है। पुरश्चरण-हेतु इस मन्त्र का वर्णलक्ष (सोलह लाख) जप करना चाहिये। अन्य समस्त कृत्य दशाक्षर मन्त्र के समान होते हैं।।९३५-९३७।।

एकादशकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि जातमेकादशे कलौ ।
स्वयमेव मुनिर्जातः स्वगायत्र्युपदेशतः ।।९३८।।
उद्धृता बहवो लोकाः सगर्वा भ्रंशिता द्विजाः ।
शूद्रोऽपि राज्यं सम्प्राप्य गायत्रीं सम्यगभ्यसेत् ।।९३९।।

स शूद्रः क्षत्रियो ज्ञेयः संग्रामे जायते जयः।
तस्य वंशे स्थिरं राज्यं मृतो विष्णुपदं व्रजेत् ॥९४०॥
दामोदराय विद्महे वासुदेवाय धीमहि।
तन्नः कृष्णः प्रचोदयात् ॥९४१॥
गायत्रं छन्द उद्दिष्टं श्रीकृष्णो देवता स्मृतः।
पञ्चत्रिपञ्चरामाब्धिवेदवर्णैः षडङ्गकम् ॥९४२॥
गायत्रीवत्पुरश्चर्या न्यासमुद्रादिदर्शनम्।
ध्यानपूजादिकं सर्वं ज्ञेयं कृष्णदशार्णवत्।
प्रयोगांश्चात्र गायत्र्यास्तथा कुर्यान्न संशयः ॥९४३॥

ग्यारहवें कलि में समुद्भूत कृष्ण का मन्त्र—अब मैं ग्यारहवें कलियुग में समुद्भूत कृष्ण के मन्त्र का वर्णन करता हूँ। अपनी गायत्री के उपदेश द्वारा वे स्वयं इसके मुनि हुये हैं। उन्होंने बहुत से लोकों का उद्धार किया और अभिमानी द्विजों को नष्ट किया। कृष्णगायत्री के सम्यक् अभ्यास से शूद्रों ने भी राज्य प्राप्त किया। उस शूद्र को भी क्षत्रिय जानना चाहिये, जिसकी युद्ध में विजय होती है और उसके वंश में राज्य स्थिर रहता है तथा मरने के बाद वह विष्णुपद को प्राप्त करता है। वह कृष्णगायत्री इस प्रकार कही गई है—दामोदराय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो कृष्णः प्रचोदयात्। इस कृष्णगायत्री का छन्द गायत्री एवं देवता कृष्ण कहे गये हैं। इस मन्त्र के क्रमशः पाँच, तीन, पाँच, तीन, चार एवं चार वर्णों से षडङ्गन्यास किया जाता है।

गायत्री मन्त्र के समान ही इसका पुरश्चरण करना चाहिये अर्थात् इस मन्त्र का चौबीस लाख जप, उसका दशांश हवन, उसका दशांश तर्पण एवं उसका दशांश मार्जन करना चाहिये। न्यास, मुद्रादि-प्रदर्शन, ध्यान, पूजन आदि सब कुछ कृष्ण के दशाक्षर मन्त्र के समान करना चाहिये। गायत्री के समान ही इस कृष्णगायत्री से भी प्रयोगों का सम्पादन करना चाहिये; इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिये।।९३८-९४३।।

द्वादशकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि यो जातो द्वादशे कलौ।
नन्दगोपकुमाराख्यः प्रकटोऽभूज्जनार्दनः ॥९४४॥
ग्लौंक्लीं नमो भगवते नन्दपुत्राय बालकः।
रूपाय च बलायेति गोपिजनपदं वदेत् ॥९४५॥
वल्लभायाग्निजायान्तो मन्त्रोऽयं रदवर्णकः।
षड्दीर्घाढ्याद्यबीजेन षडङ्गविधिरीरितः ॥९४६॥

ध्यानपूजादिकं सर्वं दशार्णवदुदीरितम्।
अष्टादशार्णमन्त्रस्य प्रयोगानाचरेत्तथा ॥१४७॥

बारहवें कलि में समुद्भूत कृष्ण का मन्त्र—अब मैं बारहवें कलि में नन्दकुमार के रूप के प्रकट हुये जनार्दन के मन्त्र को कहता हूँ। बत्तीस अक्षरों का वह मन्त्र है— ग्लौं क्लीं नमो भगवते नन्दपुत्राय बालकरूपाय बलाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा। आद्य बीज ग्लौं के छः दीर्घ स्वरूपों (ग्लां, ग्लीं, ग्लूं, ग्लैं, ग्लौं, ग्लः) से इसका षडङ्ग-न्यास कहा गया है। इस मन्त्र के ध्यान-पूजन आदि सबकुछ दशाक्षर मन्त्र के समान कहे गये हैं। अष्टादशाक्षर मन्त्र के समान ही इस मन्त्र से भी प्रयोगों का सम्पादन करना चाहिये।।१४४-१४७।।

त्रयोदशकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि तं यो जातस्त्रयोदशे।
गोपानां मध्यतो गोपश्चमत्कारप्रदर्शकः ॥१४८॥
योगीश्वरास्तु जानन्तः प्रशंसन्ति महर्षयः।
गोपीभिश्च तदा गोपैः स पृष्टश्च जनार्दनः।
केनेदृशी तु भवता सिद्धिर्लब्धा तु तद्वद ॥१४९॥
यदा गोपाङ्गना भूत्वा ब्रह्मज्ञा मुनयोऽपि च।
त्वामेव प्रणमन्तिस्म क्रीडन्नारीशतैस्तदा ॥१५०॥
सर्वाः स्खलन्ति तास्त्वं तु वीर्यं नैव प्रमुञ्चसि।
कामार्तः कथ्यते नातः सर्वज्ञस्त्वं कथं पुनः ॥१५१॥
वयं निष्कपटा भक्ताः सत्यमेतत्तदा वद।
एवमुक्तो हरिस्तत्र स्वप्नलब्धं मनुं जगौ ॥१५२॥
तेसुकीदेवदेवीततवेदेवरतोरतः ।
तरतो रूढतो ख्यातो न ख्यातो देवकीसुतः ॥१५३॥
जप्तव्यः सिद्धमन्त्रोऽयमेकान्ते निर्जने वने।
वर्णलक्षजपेन प्राग्जन्मपापं विनश्यति ॥१५४॥

तेरहवें कलि में प्रकटित कृष्ण का मन्त्र—अब मैं तेरहवें कलि में प्रकट होकर गोपों के मध्य चमत्कार प्रदर्शित करने वाले गोपरूप जनार्दन के मन्त्र को कहता हूँ, जिनको महर्षिगण गोपीश्वर के नाम से जानते हैं एवं उनकी प्रशंसा करते हैं। उस समय गोपियों के साथ-साथ गोपों द्वारा भी उन जनार्दन से यह प्रश्न करने पर कि इस प्रकार की सिद्धि आपने कैसे प्राप्त की? उसे आप कहें।

ब्रह्मज्ञानी होते हुये मुनि लोग भी जब गोपस्त्रियाँ बनकर आप ही को प्रणाम करती हैं, सैंकड़ों स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करते रहने पर वे सभी स्खलित हो जाती हैं; किन्तु आप वीर्य का त्याग नहीं करते, इसीलिये आप कामार्त भी नहीं कहलाते। फिर आप सर्वज्ञ कैसे हैं?

यदि हम सब निष्कपट भक्त हैं, यह सत्य है तो आप वह सब कहें। इस प्रकार प्रश्न करने पर हरि ने स्वप्न में प्राप्त मन्त्र को प्रकाशित किया। वह मन्त्र है—तेसुकीदेवदेवीततवेदेवरतोरत:। तरतो रूढतो ख्यातो न ख्यातो देवकीसुत:। इस सिद्ध मन्त्र का एकान्त निर्जन वन में जप करना चाहिये। इस मन्त्र के वर्णलक्ष अर्थात् बत्तीस लाख जप करने से मनुष्यों के पूर्वजन्म-कृत पाप विनष्ट हो जाते हैं।।९४८-९५४।।

ततो लक्षत्रयजपाद्भूतप्रेतपिशाचका:।
सर्वे प्रत्यक्षतां यान्ति साधकानां तु मन्त्रिणाम्।।९५५।।
लक्षद्वादशजापेन दृश्यन्ते यमकिङ्करा:।
लोकानां वशमायान्ति तत्स्मृतं कथयन्ति च।।९५६।।
जप्त्वा षोडशलक्षाणि शक्राद्या: प्रकटा: सुरा:।
योगिनो योगिनीसङ्घो ब्रह्मविष्ण्वादिदर्शनम्।।९५७।।
द्वात्रिंशत्प्रमिते जप्ते मत्समो नात्र संशय:।
प्राप्यते चन्द्रदेवेन श्रीकृष्णस्य सरूपताम्।।९५८।।

उक्त मन्त्र के तीन लाख जप करने से भूत, प्रेत, पिशाच आदि सभी मन्त्रज्ञ साधकों के सामने प्रत्यक्ष हो जाते हैं। मन्त्र के बारह लाख जप से यमदूत दिखायी पड़ते हैं; वे यमदूत लोकों को उसके वशीभूत कर देते हैं तथा उसके द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देते हैं। मन्त्र का सोलह लाख जप करने पर इन्द्र आदि देवता साधक के समक्ष प्रकट हो जाते हैं और उस साधक को योगियों, योगिनियों, ब्रह्मा, विष्णु आदि का दर्शन प्राप्त होता है। इस मन्त्र का बत्तीस लाख जप करने वाला साधक निश्चित रूप से मेरे ही समान हो जाता है। चन्द्रमा के द्वारा श्रीकृष्ण की सरूपता प्राप्त की जाती है।।९५५-९५८।।

चतुर्दशकल्युद्भूतकृष्णमन्त्र:

अथात: सम्प्रवक्ष्यामि यो जातस्तु चतुर्दशे।
सिद्धा यज्जपमात्रेण पुरानेके महर्षय:।।९५९।।
क्षीरगोपपगोरक्षी रक्षमाक्षक्षमाक्षर।
गोमानो गगनो मा गो यक्षगत्यत्यगक्षय।।९६०।।

चौदहवें कलि में समुद्भूत कृष्ण का मन्त्र—अव मैं चौदहवें कलि में अवतरित कृष्ण के मन्त्र को बतलाता हूँ, जिसके जपमात्र से पूर्वकाल में अनेक महर्षिगण सिद्ध हो चुके हैं। वह मन्त्र है—क्षीरगोपपगोरक्षी रक्षमाक्षक्षमाचर। गोमानो गगनो मा गो यक्षगत्यत्यगक्षय।।९५९-९६०।।

पञ्चदशकल्युद्धूतकृष्णमन्त्र:

अथात: सम्प्रवक्ष्यामि कलौ पञ्चदशे तु य:।
निवसन् कुन्दकुञ्जेषु मुकुन्दो य: प्रकीर्तित: ।।९६१।।
श्रीमन्मुकुन्दचरणौ सदा शरणमित्यपि।
अहं प्रपद्ये मन्त्रोऽयं प्रोक्तश्चाष्टादशाक्षर: ।।९६२।।
नारदोऽस्य मुनिश्छन्दो गायत्रं देवता भवेत्।
मुकुन्द आचक्रायेत्यादिकै: पञ्चाङ्गमीरितम्।
दशार्णवत्पूजनं स्यादङ्गेन्द्रादि तदायुधै: ।।९६३।।
चतुर्लक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं च होमयेत्।
पलाशपुष्पैस्तच्चूर्णैस्तर्पणादि ततश्चरेत् ।।९६४।।
मन्त्रेणानेन जपितमष्टोत्तरशतं जलम्।
दिनादावन्वहं पीत्वा मासमात्रं प्रसन्नधी:।
सद्य: श्रुतिधरो मन्त्री जायते वेदपारग: ।।९६५।।

पन्द्रहवें कलि में प्रकटित कृष्ण का मन्त्र—अब मैं पन्द्रहवें कलि में कुन्द की झाड़ियों में निवास करते हुये जो 'मुकुन्द' नाम से ख्यात हुये, उन जनार्दन के मन्त्र को कहता हूँ। इनका अष्टादशाक्षर मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—श्रीमन्मुकुन्दचरणौ सदा शरणमहं प्रपद्ये।

इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द गायत्री एवं देवता मुकुन्द होते हैं। 'आचक्राय' इत्यादि से इसका पञ्चाङ्ग-न्यास कहा गया है (जो इस प्रकार किया जाता है—आचक्राय हृदयाय नम:, विचक्राय शिरसे स्वाहा, सुचक्राय शिखायै वषट्, त्रैलोक्यरक्षणचक्राय कवचाय हुम्, असुरान्तकचक्राय अस्त्राय फट्)। दशाक्षर मन्त्र के समान ही इसका पूजन होता है। अन्त में इन्द्रादि दस दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन होता है।

पुरश्चरण-हेतु इस मन्त्र का चार लाख जप पूर्ण करने के पश्चात् पलाशपुष्पों से कृत जप का दशांश (चालीस हजार) हवन करके पलाशपुष्पचूर्ण-मिश्रित जल से तर्पण आदि करना चाहिये। इस मन्त्र के एक सौ आठ जप से अभिमन्त्रित जल का एक मास-पर्यन्त प्रतिदिन प्रात: प्रसन्न मन से पान वाला मन्त्रज्ञ साधक तत्काल ही श्रुतिधर एवं वेदपारगामी हो जाता है।।९६१-९६५।।

षोडशकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि षोडशे बालकृष्णकम्।
ध्रुवो नमो भगवते बालकृष्णाय हुं तथा।
फडन्तोऽयं महामन्त्रः षोडशाक्षर उच्यते॥९६६॥
अस्य षोडशवर्णस्य मुनिः स्यान्नलकूबरः।
छन्दो गायत्रमुद्दिष्टं बालकृष्णस्तु देवता॥९६७॥
पञ्चाङ्गानि तु युक्तानि ध्यानं पूर्वोदितं भवेत्।
पूजा चाङ्गस्ववर्गाद्यैः पुरश्चर्यादि पूर्ववत्॥९६८॥

सोलहवें कलि में समुद्भूत कृष्ण का मन्त्र—अब मैं सोलहवें कलि में प्रकटित बालक कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। इनका षोडशाक्षर मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—ॐ नमो भगवते बालकृष्णाय हुं फट् स्वाहा। इस षोडशाक्षर मन्त्र के ऋषि नलकूबर, छन्द गायत्री एवं देवता बालकृष्ण कहे गये हैं।

मन्त्र के पदों से इसका पञ्चाङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—ॐ नमो हृदयाय नमः, भगवते शिरसे स्वाहा, बालकृष्णाय शिखायै वषट्। हुं फट् कवचाय हुम्, स्वाहा अस्त्राय फट्। इसके ध्यान, पूजन, पुरश्चरण आदि पूर्ववत् होते हैं।।९६६-९६८।।

सप्तदशकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथ सप्तदशे जातं कृष्णं वच्म्यन्नदायकम्।
अन्नरूप रसरूप तुष्टिरूप नमो नमः॥९६९॥
अन्नाधिपतयेऽन्नं च तथा मह्यं समुच्चरेत्।
प्रयच्छाग्निवधूर्मन्त्रस्त्रिंशद्वर्णोऽन्नदायकः॥९७०॥
नारदो मुनिरस्य स्याच्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम्।
अन्नाधिपतिकृष्णोऽस्य देवता परिकीर्तितः॥९७१॥
पञ्चाङ्गन्यासपूजादि सर्वं ज्ञेयं दशार्णवत्।
अन्नदो जायते मन्त्री मन्त्रमेतं सदा जपेत्॥९७२॥

सत्रहवें कलि में अवतरित कृष्ण का मन्त्र—अब में सत्रहवें कलियुग में अव-तरित अन्नप्रदायक कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। तीस अक्षरों का वह अन्न प्रदान करने वाला मन्त्र इस प्रकार है—अन्नरूप रसरूप तुष्टिरूप नमो नमः अन्नाधिपतयेऽन्नं मह्यं प्रयच्छ स्वाहा।

इस अन्न-प्रदायक मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता अन्नाधिपति कृष्ण

कहे गये हैं। इस मन्त्र के पञ्चाङ्गन्यास, पूजन आदि सब कुछ दशाक्षर मन्त्र के समान ही जानने चाहिये। इस मन्त्र का सदा जप करने वाला मन्त्रज्ञ साधक अन्न प्रदान करने वाला होता है।।९६९-९७२।।

अष्टादशकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथ चाष्टादशे जातवासुदेवमनुं ब्रुवे।
तारो नमो भगवते वासुदेवाय हुं च फट्।।९७३।।
स्वाहा षोडशवर्णोऽयं गायत्रं छन्द ईरितम्।
मुनिर्ब्रह्मा ग्रहघ्नाख्यो देवता देवकीसुतः।।९७४।।
दशार्णवच्च पञ्चाङ्गं वर्णलक्षं जपेन्मनुम्।
अर्चनाङ्गैर्लोकपालैर्ग्रहाद्यैश्च समीरिता।।९७५।।
सर्वग्रहभये घोरे भूतप्रेतादिसङ्कुले।
राजद्वारे रणे द्यूते जप्तव्योऽयं मनूत्तमः।

अट्ठारहवें कलि में प्रकटित कृष्ण का मन्त्र—अब मैं अट्ठारहवें कलि में अवतरित वासुदेव-स्वरूप कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ; सोलह वर्णों का यह मन्त्र इस प्रकार है—ॐ नमो भगवते वासुदेवाय हुं फट् स्वाहा। इस षोडशाक्षर मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री एवं देवता ग्रहों के विनाशक देवकीनन्दन कृष्ण कहे गये हैं।

दशाक्षर मन्त्र के समान ही इसका पञ्चाङ्गन्यास करना चाहिये। पुरश्चरण-हेतु मन्त्र का वर्णलक्ष (सोलह लाख) जप करना ाहिये। पूजनक्रम में षडङ्गपूजन, ग्रहपूजन, दिक्पाल-पूजन, अस्त्र-पूजन आदि कहे गये हैं। समस्त ग्रहों का भय उपस्थित होने पर, भयंकर भूत-प्रेत आदि से आक्रान्त होने पर, राजद्वार में, युद्ध में एवं द्यूत में इस उत्तम मन्त्र का जप करना चाहिये।९७३-९७५।।

एकोनविंशकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि ऊनविंशे मनुं परम्।।९७६।।
तारो नमो भगवते वासुदेवाय संवदेत्।
पुरुषोत्तम आयुर्मे देहीत्युक्त्वा च विष्णवे।।९७७।।
प्रभविष्णव इत्युक्त्वा नमोऽन्तस्त्रिंशदर्णकः।।९७८।।
मुन्याद्या नारदोऽनुष्टुप् श्रीकृष्णः परिकीर्तितः।
पञ्चाङ्गं द्वादशान्ते हि हृदानन्दात्मने तु हृत्।।९७९।।
पुरुषोत्तम प्रीत्यात्मने हृदन्तं तु शिरः स्मृतम्।
द्वादशार्णान्त आयुर्मे देहि स्याज्ज्योतिरात्मने।।९८०।।

शिखाथ द्वादशार्णान्ते विष्णवे प्रभविष्णवे।
मायात्मने च कवचं द्वादशार्णं ततो वदेत्।
नमश्चिदात्मने नेत्रं पञ्चाङ्गविधिरीरितः ॥९८१॥
अङ्गलोकेशवज्राद्यैरर्चयित्वा जपेन्मनुम्।
लक्षमेकं दशांशेन जुहुयात्पायसैः शुभैः ॥९८२॥
दुग्धादिसम्प्लुतैर्दूर्वात्रितयैरेधितेऽनले।
जुहुयाद्दीर्घशालित्वं लभते नात्र संशयः।
प्राग्वद्दशार्णमन्त्रोक्ताङ्गन्यासं तु समाचरेत् ॥९८३॥

उन्नीसवें कलि में समुद्भूत कृष्ण का मन्त्र—अब मैं उन्नीसवें कलि के श्रेष्ठ कृष्णमन्त्र को कहता हूँ। 'नमः' से अन्त होने वाला तीस अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ नमो भगवते वासुदेवाय पुरुषोत्तम आयुर्मे देहि विष्णवे प्रभविष्णवे (नमः)।

इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता श्रीकृष्ण कहे गये हैं। इसका पञ्चाङ्ग न्यास इस प्रकार करना चाहिये—ॐ नमो भगवते वासुदेवाय हृदानन्दात्मने हृदयाय नमः, पुरुषोत्तम प्रीत्यात्मने ह्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ नमो भगवते वासुदेवाय आयुर्मे देहि ज्योतिरात्मने शिखायै वषट्, ॐ नमो भगवते वासुदेवाय विष्णवे प्रभविष्णवे मायात्मने कवचाय हुम्, ॐ नमो भगवते वासुदेवाय नमः चिदात्मने नेत्रत्रयाय वौषट्।

षडङ्गों, दिक्पालों, आयुधों आदि का पूजन करने के उपरान्त मन्त्र का एक लाख की संख्या में जप करने के अनन्तर पायस से कृत जप का दशांश (दस हजार) हवन करना चाहिये। तदनन्तर प्रज्वलित अग्नि में दुग्धादि-सिक्त तीन-तीन दूर्वा से हवन करने वाले साधक को निश्चित रूप से धान्यभाण्डार की प्राप्ति होती है। पूर्ववत् दशाक्षर मन्त्र में कथित अङ्गन्यास का भी यहाँ सम्पादन करना चाहिये।।९७६-९८३।।

विंशकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि विंशे कलियुगे मनुम्।
बालवपुषे स्वाहेति सप्तार्णोऽयं मनुर्मतः ॥९८४॥
अस्यैकर्णेन पञ्चाङ्गं षष्ठं द्व्यर्णेन कीर्तितम्।
मुन्याद्यं ध्यानपूजादि सर्वं स्याद्बालकृष्णवत् ॥९८५॥
सप्तलक्षं जपेन्मन्त्रं जुहुयान्नवनीतकम्।
बालानां भयनाशार्थं रक्षार्थं च ततो जपेत् ॥९८६॥

बीसवें कलि में अवतरित कृष्ण का मन्त्र—अब मैं बीसवें कलि में प्रकटित

कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। सात अक्षरों का यह मन्त्र है—बालवपुषे स्वाहा। मन्त्र के क्रमश: एक-एक वर्णों से हृदय, शिर, शिखा, कवच एवं नेत्र में न्यास करने के उपरान्त दो वर्णों (स्वाहा) से अस्त्र न्यास कहा गया है। इस मन्त्र के ऋषि, छन्द, देवता, ध्यान, पूजन आदि सबकुछ बालकृष्ण मन्त्र के समान होते हैं। मन्त्र का सात लाख जप करने के पश्चात् मक्खन से हवन करना चाहिये। इसके बाद बालकों के भय का नाश एवं उनकी रक्षा के लिये मन्त्र का जप करना चाहिये।।९८४-९८६।।

एकविंशकल्युद्भूतकृष्णमन्त्र:

अथात: सम्प्रवक्ष्यामि त्वेकविंशकलौ मनुम्।
गोपालकपदं ब्रूयात्ततो वेदधराय च।।९८७।।
वासुदेवाय हुं फट् च स्वाहान्तोऽष्टादशाक्षर:।
नारदोऽस्य मुनिश्छन्दो गायत्रं कृष्ण देवता।।९८८।।
आचक्रादिभिरङ्गानि पूजा पूर्वोक्तवर्त्मना।
ग्रहगोपालरक्षादौ प्रशस्त: शान्तिकेऽपि च।।९८९।।

इक्कीसवें कलि में समुद्भूत कृष्ण का मन्त्र—अब मैं इक्कीसवें कलि के कृष्णमन्त्र को कहता हूँ। यह अष्टादशाक्षर मन्त्र है—गोपालक वेदधराय वासुदेवाय हुं फट् स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द गायत्री एवं देवता कृष्ण हैं। आचक्रादि से अङ्गन्यास करने के बाद पूर्वकथित विधि से पूजन करना चाहिये। ग्रहों से गोपालों की रक्षा के साथ-साथ शान्तिकर्म के लिये भी यह मन्त्र प्रशस्त है।।९८७-९८९।।

द्वाविंशकल्युद्भूतकृष्णमन्त्र:

अथात: सम्प्रवक्ष्यामि द्वाविंशे तु कलौ मनुम्।
य: कालियफणामध्ये दिव्यं नृत्यं करोति तम्।।९९०।।
नमामि देवकीपुत्रं नृत्यराजानमद्भुतम्।
मुनिर्नारद आख्यातश्छन्दोऽनुष्टुबुदीरितम्।
कालीयमर्दन: कृष्णो देवता परिकीर्तित:।।९९१।।
चतुष्पादैश्च सर्वेण पञ्चाङ्गविधिरीरित:।
अङ्गैरिन्द्रादिभि: पश्चाद्वज्राद्यैरर्चयेच्च तम्।।९९२।।
एकलक्षं जपित्वाग्नौ जुहुयादयुतं घृतै:।
विषनाशकरा योगा: कर्तव्या मनुनामुना।।९९३।।
एतन्मन्त्रप्रयोगेण त्रस्यन्त्यथ महोरगा:।
एतन्मन्त्रसमो लोके विषघ्नो नैव विद्यते।।९९४।।

शुष्कवृक्षस्य पञ्चाङ्गैर्गोमूत्रेण सुवेष्टितैः।
निर्मिता गुटिका सम्यङ्मन्त्रेणानेन मन्त्रिता।
नेत्रे चाञ्जनमात्रेण सैषा विषविनाशिनी ॥९९५॥

बाईसवें कलि में प्रकटित कृष्ण का मन्त्र—अब मैं बाईसवें कलि में अवतरित कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—यः कालियफणामध्ये दिव्यं नृत्यं करोति तम्। नमामि देवकीपुत्रं नृत्यराजानमद्भुतम्। इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता कालीयमर्दन कृष्ण कहे गये हैं। पञ्चाङ्गन्यास में मन्त्र के चार पदों से हृदय, शिर, शिखा, कवच में न्यास करने के बाद सम्पूर्ण मन्त्र से अस्त्रन्यास करना चाहिये। पञ्चाङ्ग-पूजन, इन्द्रादि दस दिक्पाल-पूजन एवं वज्रादि दस आयुध-पूजन के द्वारा उनका पूजन करना चाहिये। तदनन्तर मन्त्र का एक लाख जप करने के उपरान्त अग्नि में घृत से दस हजार हवन करना चाहिये।

इस मन्त्र से विष-नाशक प्रयोगों का सम्पादन करना चाहिये। इस मन्त्र के प्रयोग से भयङ्कर सर्प भी त्रस्त हो जाते हैं। इसके समान विष-विनाशक मन्त्र इस संसार में दूसरा कोई नहीं है। सूखे वृक्ष के पञ्चाङ्ग (जड़, धड़, शाखा, पत्ता, फूल या फल) को गोमूत्र की सहायता से पीसकर निर्मित गोलियों को इस मन्त्र से सम्यक् रूप से अभिमन्त्रित करके घिस कर नेत्रों में अञ्जन लगाने से विष का नाश होता है।।९९०-९९५।।

त्रयोविंशकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि त्रयोविंशकलौ मनुम्।
श्रीमायाकामबीजानि ङेऽन्तं कृष्णमुदीरयेत् ॥९९६॥
ङेयुतं चापि गोविन्दं स्वाहान्तो द्वादशाक्षरः।
मुनिर्ब्रह्मा च गायत्रं छन्दः कृष्णोऽस्य देवता।
भूभूभूरामवेदाक्षिमन्त्रार्णैरङ्गकल्पनम् ॥९९७॥

तेईसवें कलि में उद्भूत कृष्ण का मन्त्र—अब मैं तेईसवें कलियुग में अवतरित कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। वह द्वादशाक्षर मन्त्र है—श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री एवं देवता कृष्ण हैं। मन्त्र के क्रमशः एक, एक, एक, तीन, चार एवं दो वर्णों से इसकी षडङ्ग-कल्पना की जाती है।।९९६-९९७।।

कोटिभास्करसङ्काशे द्वारकायां गृहोत्तमे।
बहुभिः कल्पतरुभिर्वेष्टिते रत्नमण्डपे ॥९९८॥
विलसन्मणिवर्यौघचित्रितस्वर्णभित्तिके।
विकसत्पुष्पमालाभिः सहितेऽनङ्गमौक्तिकैः।
पुष्परागधराशोभिरत्नविद्योतितान्तरे ॥९९९॥

निरन्तरतरद्रत्नसुधाधाराभिवर्षिणः ।
अधो वै कल्पवृक्षस्य शाखाव्याप्तस्य पत्रिणः ॥१०००॥
फलरत्नप्रदीपालीसमुद्योतितदिङ्मुखे ।
तद्योगे रविबिम्बाभरत्नसिंहासनाम्बुजे ॥१००१॥
सूपविष्टं रमाकान्तं द्रुतस्वर्णनिभं स्मरेत् ।
समेघरविचन्द्रोद्यद्विद्युत्कोटिनिभच्छविम् ॥१००२॥
हृद्यङ्गं सर्वतः सौम्यं नानालङ्कारमण्डितम् ।
अरिशङ्खगदापद्मधारिणं पीतवाससम् ॥१००३॥
स्पृशन्तं कलशं द्योतन्मणिधारमहर्निशम् ।
रुक्मिणीसत्यभामे द्वे दक्षे वामे स्थिते प्रभोः ॥१००४॥
कालिन्दी मित्रविन्दा च सत्या जाम्बवती तथा ।
सुशीला लक्ष्मणा चेति समावृत्य स्त्रियः स्थिताः ॥१००५॥
ततः षोडशसाहस्रमिता नार्यः समन्ततः ।
स्मर्तव्याः स्वर्णरत्नादिधरा दुग्धलसत्कराः ॥१००६॥

तदनन्तर करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशित द्वारिका के उत्तम गृह में अनेक कल्पवृक्षों से घिरे तथा चमकते हुये श्रेष्ठ मणियों से चित्रित स्वर्णमयी भित्ति वाले, विकसित पुष्पों की मालाओं के सहित अनङ्गमौक्तिकों एवं पुखराजों से सुशोभित तथा रत्नों से प्रकाशित रत्नमण्ड़प के भीतर सतत रत्नों एवं अमृतप्रवाह की वर्षा करने वाले, प्रसृत पत्रयुक्त शाखाओं वाले कल्पवृक्ष के नीचे रत्नरूप फल से प्रदीपित दिशाओं से युक्त सूर्यबिम्ब की आभा वाले, रत्नकमलरूप सिंहासन पर सुन्दर रूप से विराजमान तरल स्वर्ण-सदृश रमाकान्त का स्मरण करना चाहिये। उनकी कान्ति उदीयमान करोड़ों मेघ, सूर्य, चन्द्र एवं विद्युत् के समान है, उनके अङ्ग मनोहर हैं, उनका स्वरूप सौम्य है, वे अनेक अलंकारों से अलंकृत हैं, हाथों में चक्र, शंख, गदा एवं पद्म धारण किये हुये हैं, उनका वस्त्र पीला है, मणियों से भरे कलश का अहर्निश स्पर्श किये हुये हैं, उनके दाहिने एवं बाँयें भाग में रुक्मिणी एवं सत्यभामा स्थित हैं, कालिन्दी मित्रविन्दा सत्या जाम्बवती सुशीला एवं लक्ष्मणा उन्हें घेरकर स्थित हैं। तदनन्तर उनके चारो ओर दुग्धधवल हाथों से रत्न आदि से परिपूर्ण स्वर्णकलशों को धारण की हुई सोलह हजार स्त्रियों का स्मरण करना चाहिये। इस प्रकार ध्यान करके यन्त्रमध्य में श्रीकृष्ण का पूजन करना चाहिये।।९९८-१००६।।

यजेदष्टनिधींस्तासां धनान्यावर्षतो बहिः ।
ततोऽग्रे दिक्पतीन् देवान् पूजयेदपि पूर्ववत् ॥१००७॥

पूर्वं सञ्चिन्त्य देवेशं ततः पूजां समाचरेत्।
पूर्वोदितप्रकारेण पीठन्यासावसानकम् ॥१००८॥
कर्म निर्वर्त्य मन्त्रज्ञो मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्।
प्राणायामत्रयं कृत्वा ऋष्यादिन्यासमाचरेत् ॥१००९॥
कराङ्गुलीषु करयोः षडङ्गन्यासमाचरेत्।
व्यापकं मूलमन्त्रेण विन्यस्य च करात्पुनः ॥१०१०॥
पुनः षडङ्गं विन्यस्य देहे देशिकसत्तमः।
पुटितं मूलमन्त्रेण मातृकावत्प्रविन्यसेत् ॥१०११॥
मूलेन व्यापकं कृत्वा मन्त्रवर्णं ततो न्यसेत्।
मूर्तिपञ्जरकस्थाने मूर्तिपञ्जरमाचरेत् ॥१०१२॥

फिर उसके बाहर धन-धान्य का वर्षण करती हुई अष्ट निधियों का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर उनके आगे भूपुर में इन्द्रादि दस दिक्पालों और उनके आयुधों का भी पूर्ववत् पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् प्रथमतः देव का सम्यक् रूप से चिन्तन करके उनका पूजन करना चाहिये। इसके बाद पूर्वोक्त प्रकार से पीठन्यास-पर्यन्त कर्म समाप्त कर मन्त्रज्ञ साधक को मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करने के पश्चात् ऋष्यादि न्यास करना चाहिये। इसके बाद हाथों की अंगुलियों में षडङ्गन्यास करने के पश्चात् मूल मन्त्र से व्यापक न्यास करना चाहिये।

देशिकोत्तम साधक को पुनः मूल मन्त्र से पुटित षडङ्गन्यास करके मातृकाओं के समान उन्हें शरीर में विन्यस्त करना चाहिये। तत्पश्चात् मूल मन्त्र से व्यापक करके मन्त्रवर्णन्यास करना चाहिये। मूर्तिपञ्जर के स्थान पर मूर्तिपञ्जरन्यास करना चाहिये।

देवस्य बाह्यपूजार्थं चोच्यते यन्त्रमुत्तमम्।
गोमयेनोपलिप्तायां भूमौ पीठं प्रविन्यसेत् ॥१०१३॥
अष्टगन्धादिकेनैव षट्कोणं यन्त्रमुद्धरेत्।
कामबीजं कर्णिकायां ससाध्यं सुलिखेत्ततः ॥१०१४॥
क्लींह्रीमष्टादशार्णेन तत्त्वं सम्यक्च वेष्टयेत्।
शक्रराक्षसवायूनां कोणे श्रीबीजमालिखेत् ॥१०१५॥
अन्त्येष्वग्न्यादिकोणेषु मायाबीजं प्रकल्पयेत्।
कोणसन्धिषु षड्वर्णमन्त्रस्यैकैकमक्षरम् ॥१०१६॥
बहिरष्टदलं पद्मं केशरेषु त्रिशस्त्रिशः ॥१०१७॥
सुलिखेत्कामतः पश्चाद्वर्णानथ दलेषु च ॥१०१८॥

क्रमोत्क्रमाभ्यां मन्त्रस्य कामदेवस्य वर्णितान्।
लिखेद्वर्णान् धृतिदले बहिर्वृत्तद्वयं लिखेत् ॥१०१९॥
तद्वीथ्यां मातृकावर्णैर्बिन्दुयुक्तैश्च वेष्टयेत्।
धरापुरे चतुर्दिक्षु रमां मायां च कोणगाम् ॥१०२०॥
संलिख्यैवं महावश्यं पत्रे स्वर्णादिजे बुधः।
सम्यक्सम्पूज्य प्रजपेद्भूतं च मनुजोत्तमैः ॥१०२१॥
करोमि लोकपूज्यं तं राजवश्यं च सर्वदा ॥१०२२॥
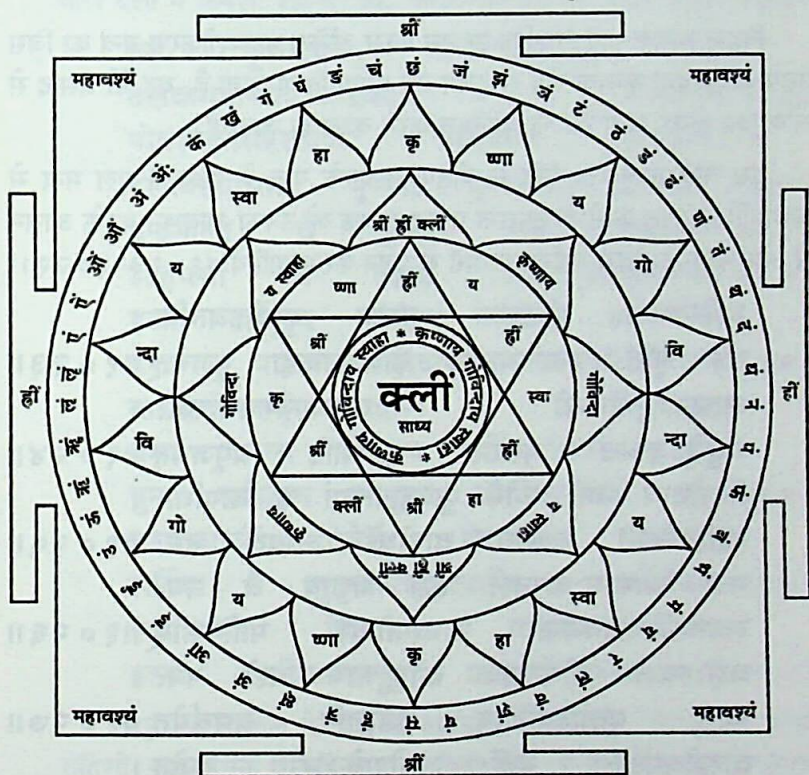
अब देव के बाह्य पूजन-हेतु उत्तम यन्त्र को कहा जा रहा है। गोबर से लिप्त भूमि पर पीठ का निर्माण करके उस पर अष्टगन्ध से षट्कोण यन्त्र बनाना चाहिये। उसकी कर्णिका में साध्य-सहित क्लीं बीज का अंकन करने के उपरान्त मन्त्र के 'क्लीं ह्रीं' इत्यादि अट्ठारह वर्णों से उसे चारो ओर से सम्यक् रूप से वेष्टित कर देना चाहिये। पूरब, नैर्ऋत्य और वायव्य कोण में श्रीबीज लिखना चाहिये। अन्तिम अग्न्यादि कोणों

में मायाबीज (ह्रीं) का अंकन करके कोण की सन्धियों में षडक्षर मन्त्र (क्लीं कृष्णाय नमः) के एक-एक अक्षरों को अंकित करना चाहिये। अष्टदल के बाहर केशरों में द्वादशाक्षर मन्त्र के तीन-तीन वर्णों को लिखना चाहिये। तत्पश्चात् उसके बाहर अष्टादशदल पद्म बनाकर उसके दलों में द्वादशाक्षर मन्त्र के 'श्रीं ह्रीं क्लीं' को छोड़कर अवशिष्ट नव अक्षरों (कृष्णाय गोविन्दाय स्वाहा) को दो आवृत्ति में लिखना चाहिये। अनन्तर अष्टादश दल के बाहर दो वृत्त बनाकर वृत्त की वीथियों में बिन्दु-युक्त इक्यावन मातृकावर्णों को लिखकर वेष्टित कर देना चाहिये। इसके बाद भूपुर के चारो कोणों में 'ह्रीं श्रीं' का अंकन करना चाहिये।

विद्वान् साधक द्वारा स्वर्णपत्र पर इस प्रकार अंकित महावशीकरण यन्त्र का जिस उत्तम व्यक्ति द्वारा सम्यक् रूप से पूजन एवं धारण किया जाता है, वह मेरे प्रसाद से लोकपूज्य होकर राजा को भी वशीभूत करने वाला हो जाता है।

इस यन्त्र में पूर्वोक्त रीति से पीठपूजन करके यन्त्र के मध्य में मूल मन्त्र से कृष्णमूर्ति कल्पित करने के उपरान्त मन्त्रज्ञ साधक को उनका आवाहन करके आसन से आरम्भ करके नैवेद्य-पर्यन्त उपचारों से पूजन करना चाहिये।।१०१३-१०२२।।

अस्मिन्यन्त्रे पीठपूजां कृत्वा पूर्वोक्तवर्त्मना।
तत्र मूर्तिं प्रकल्प्यास्यां कृष्णमावाह्य पूजयेत् ॥१०२३॥
आसनप्रमुखैर्मन्त्री भोज्यान्तैरुपचारकैः।
चतुर्थेऽङ्गाच्च मूलान्तं भूषणादि प्रपूजयेत् ॥१०२४॥
किरीटाय नमः शीर्षे कुण्डलाभ्यां च कर्णयोः।
दक्षोर्ध्वहस्ते चक्राय वामोर्ध्वे कम्बवे नमः ॥१०२५॥
गदां वामाधःकरतले दक्षे पद्माय वै नमः।
स्कन्धादिपादपर्यन्तं नाभ्यन्तोपरि मालिकाम् ॥१०२६॥
वक्षःस्थले श्रीवत्साय कौस्तुभाय गले नमः।
षट्सु पूर्वादिकोणेषु षडङ्गानि समर्चयेत् ॥१०२७॥
वासुदेवादिका मूर्तीः कोणकेशरगा यजेत्।
शान्तिं श्रियं भारतीं च रतिं दिग्दलकेशरे ॥१०२८॥

तत्पश्चात् मूल मन्त्र के अन्त में चतुर्थ्यन्त 'कृष्णाय' पद का उच्चारण करते हुये 'किरीटाय नमः' कहकर शीर्षभाग में किरीट का, 'कुण्डलाभ्यां नमः' कहकर दोनों कानों में कुण्डलों का, 'चक्राय नमः' कहकर दाहिने ऊपर वाले हाथ में चक्र का, 'कम्बवे नमः' कहकर बाँयें ऊपर वाले हाथ में शङ्ख का, 'गदायै नमः' कहकर बाँयें

नीचे वाले हाथ में गदा का, 'पद्माय नम:' कहकर दाहिने नीचे वाले हाथ में पद्म का, 'वनमालिकायै नम:' कहकर स्कन्ध से लेकर पाद-पर्यन्त नाभि के ऊपर वनमाला का, 'श्रीवत्साय नम:' कहकर वक्ष:स्थल पर श्रीवत्स का एवं 'कौस्तुभाय नम:' कहकर गले में कौस्तुभ मणि का पूजन करना चाहिये। इसके बाद पूर्वादि छ: कोणों में षडङ्ग-पूजन करना चाहिये।

तदनन्तर अष्टदल के अग्नि, नैर्ऋत्य, वायव्य, ईशान कोण वाले दलों में क्रमश: वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध का तथा पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर दिशा वाले दलों में क्रमश: शान्ति, श्री, भारती एवं रति का अर्चन करना चाहिये।

ततः पूर्वादिपत्रेषु रुक्मिणीप्रमुखा यजेत् ।
दक्षवामक्रमात्पश्चाद्देवदेवं समर्चयेत् ॥१०२९॥
षोडशस्त्रीसहस्राणि देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ।
दलाग्रस्थास्ततः पूज्याः पूजनीयाः क्रमादमी ॥१०३०॥
इन्द्रनीलौ च कुमुदो मकरोऽनङ्गकच्छपौ ।
शङ्खपद्मौ च तद्वाह्ये लोकेशानायुधान्यपि ॥१०३१॥
इत्थं सम्पूज्य गोविन्दं नैवेद्यं हविरर्पयेत् ।
हरेः पायसखण्डादिदधिभिः परिकीर्तितम् ॥१०३२॥
करोद्वर्त्तनताम्बूलवस्त्रादीनि निवेदयेत् ।
तथा प्रणम्य चोद्वास्य हरिं सावरणं हृदि ।
पुनः सञ्चिन्त्य सम्पूज्य प्रजपेच्छक्तितो मनुम् ॥१०३३॥
परमभ्यर्च्य देवेशं वेदलक्षं जपेन्मनुम् ।
सर्पिषा जुहुयात्पश्चाद्दशांशं तर्पयेत्ततः ॥१०३४॥
स्वाभिषेकं विधायाथ ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ।
इत्थं साधितमन्त्रस्तु प्रयोगान्विदधीत वै ॥१०३५॥

तदनन्तर अष्टदल के पत्रों के अग्रभाग में रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती, रोहिणी, चारुहासिनी, मित्रविन्दा, नाग्नजिती और कालिन्दी का यजन करना चाहिये। तत्पश्चात् देवदेव श्रीकृष्ण की सोलह हजार रानियों का पूजन अष्टदल के प्रत्येक दल में दो-दो सौ के हिसाब से करना चाहिये। इसके बाद दल के अग्रभागों में इन पूज्य पूजनीयों का पूजन करना चाहिये—इन्द्र, नील, कुमुद, मकर, अनङ्ग, कच्छप, शङ्ख एवं पद्म। उसके बाहर भूपुर में इन्द्रादि दस दिक्पालों और उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार पूजन करके नैवेद्य में कृष्ण को हवि (खीर) समर्पित करना चाहिये। हरि के लिये पायस, खण्ड़ दधि आदि नैवेद्य कहे गये हैं।

इसके बाद करोद्वर्तन, ताम्बूल, वस्त्रादि निवेदित करने के बाद प्रणाम करके आवरण-सहित कृष्ण का अपने हृदय में उद्वासन (विसर्जन) करने के बाद पुनः ध्यान, पूजन करके यथाशक्ति मन्त्रजप करना चाहिये। पुरश्चरण-हेतु देवेश का अर्चन करके मन्त्र का चार लाख मन्त्र करने के उपरान्त गोघृत द्वारा कृत जप का दशांश (चालीस हजार) हवन करने के बाद तर्पण करना चाहिये।

इसके बाद स्वयं का अभिषेक करने के पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। इस प्रकार से साधित मन्त्र द्वारा प्रयोग-विधान करना चाहिये।।१०२९-१०३५।।

पूजयित्वाऽनले कृष्णं श्वेतैस्तत्पुष्पतण्डुलैः।
अयुतं घृतसंयुक्तैर्हुत्वा तद्भस्म धारयेत् ।।१०३६।।
समस्तधनधान्यादिस्त्रीवश्यं च भवेद् ध्रुवम्।
मन्त्रार्णैर्लक्षसङ्ख्यं यो हुनेन्मधुरसान्वितैः ।।१०३७।।
गोघृतैर्वापि जुहुयात्तस्य लक्ष्मीः स्थिरा भवेत्।
रक्तादिवसनाकाङ्क्षी हुनेत्पुष्पैश्च तादृशैः ।।१०३८।।
मधुराक्तैर्घृताक्तैर्वाप्यष्टोत्तरसहस्रकम्।
मधुना संयुतैश्चैव सुगन्धाष्टकसंयुतैः ।।१०३९।।
सहस्रं जुहुयान्नित्यं मासमात्रेण साधकः।
राज्ञः पुरोहितो भूत्वा भुक्तिभाङ्नात्र संशयः ।।१०४०।।

अग्नि में कृष्ण का पूजन करने के पश्चात् घृत-संयुक्त श्वेत पुष्प एवं तण्डुल से दस हजार हवन करने के पश्चात् उसके भस्म को धारण करना चाहिये।

इस भस्म को धारण करने से निश्चित रूप से समस्त धन-धान्यदि की प्राप्ति एवं स्त्री का वशीकरण होता है। जो साधक मधुरसान्वित हवनीय द्रव्यों अथवा गोघृत से इस मन्त्र से बारह लाख हवन करता है, उसकी लक्ष्मी स्थिर हो जाती है।

रक्त वस्त्रों के आकांक्षी को त्रिमधु-सिक्त अथवा घृत-सिक्त रक्त पुष्पों से एक हजार आठ बार हवन करना चाहिये।

जो साधक प्रतिदिन मध्वक्त अष्टगन्ध-समन्वित पुष्पों से एक हजार हवन करता है, वह एक मास में ही राजा का पुरोहित होकर निःसन्दिग्ध रूप से समस्त भोगों को प्राप्त करता है।।१०३६-१०४०।।

प्रयोगजपहोमादि दशाक्षरसमं मतम्।
मन्त्रेणानेन कुर्वीत ताभ्यां मन्त्रोत्तमाद्वरात् ।।१०४१।।

न्यासध्यानजपार्चाभिर्होमतो यो भजेन्मनुम्।
रत्नकाञ्चनधान्यादिसमृद्धं तस्य मन्दिरम्।
जायते हस्तगा तस्य सकला वसुधा चिरम्॥१०४२॥
पुत्रपौत्रकलत्राद्यैर्भुक्त्वा भोगान् बहूनिह।
अन्ते याति परं धाम वैष्णवं मुनिदुर्लभम्॥१०४३॥

इस मन्त्र के प्रयोग, जप, हवन आदि दशाक्षर मन्त्र के समान कहे गये हैं। दशाक्षर-कथित समस्त प्रयोगादि का इस श्रेष्ठ मन्त्र से साधन करना चाहिये। न्यास, ध्यान, जप, अर्चन, हवन करते हुये जो इस मन्त्र की साधना करता है, उसका गृह रत्न, सुवर्ण, धान्य आदि से समृद्ध हो जाता है। थोड़े ही दिनों में समस्त पृथिवी उसके हस्तगत हो जाती है। वह साधक इस संसार में पुत्र, पौत्र, पत्नी आदि के सहित प्रचुर भोगों का भोग करने के अनन्तर शरीरान्त होने पर मुनियों द्वारा भी दुर्लभ वैष्णवों के परम धाम अर्थात् वैकुण्ठ को प्रस्थान करता है।।१०४१-१०४३।।

चतुर्विंशकल्युद्भूतकृष्णमन्त्र:

अथात: सम्प्रवक्ष्यामि चतुर्विंशकलौ मनुम्।
लक्ष्मीशक्तिमनोजातबीजान्ते दशवर्णकम्॥१०४४॥
कामाद्यश्च हृदन्तोऽयं षोडशार्णो मनुर्मत:।
ऋष्यादिकं दशार्णोक्तं पञ्चाङ्गमपि तादृशम्॥१०४५॥
वराभयकराभ्यां तमालिङ्गन्तं प्रियाङ्गकम्।
अब्जोत्पललसद्धस्तपद्मयालिङ्गितं मुदा॥१०४६॥
धारयन्तं रथाङ्गं च शङ्खं सव्यकरे परे।
एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं दशलक्षं समाहित:॥१०४७॥
तावत्सङ्ख्यसहस्राणि हुनेदाज्यमनुत्तमम्।
तर्पणाद्यैर्भवेन्मन्त्र: सिद्धोऽशेषफलप्रद:॥१०४८॥
पूजा चात्र विधातव्या पूर्वोक्तद्वादशार्णवत्।
दशार्णवज्जपश्चापि विधेयो नात्र संशय:॥१०४९॥

चौबीसवें कलि में अवतरित कृष्ण का मन्त्र—अब मैं चौबीसवें कलि में अवतरित कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। सोलह अक्षरों का वह मन्त्र है—श्रीं ह्रीं क्लीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा क्लीं ह्रीं श्रीं। इस मन्त्र के ऋषि आदि के साथ-साथ पञ्चाङ्गन्यास भी दशाक्षर मन्त्र के समान कहे गये हैं।

वर एवं अभय वाले हाथों से प्रिया के अङ्ग का आलिङ्गन करते हुये, कमल-

सदृश सुशोभित हाथों वाली लक्ष्मी से प्रसन्नता-पूर्वक आलिङ्गित, बाँयें हाथों में चक्र एवं शंख धारण किये हुये प्रभु का ध्यान करके समाहित चित्त से मन्त्र का दस लाख जप करने के बाद गोघृत से दस हजार हवन करके तर्पण आदि करने से समस्त फलों को देने वाला यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

पूर्व-कथित द्वादशाक्षर मन्त्र के समान ही इसमें भी पूजन किया जाता है। दशाक्षर मन्त्र के समान ही इसका भी जप किया जाता है; इसमें कोई संशय नहीं है।

पञ्चविंशकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि पञ्चविंशे कलौ मनुम्।
मायाश्रीसहितो मन्त्रो दशार्णो द्वादशाक्षरः ॥१०५०॥
विधानमस्य विज्ञेयं षोडशार्णोक्तवर्त्मना ॥१०५१॥
यस्मिन्मन्त्रे यस्य मनो रमते दिष्टकर्मतः।
देवः प्रागुक्तवत्तत्र मन्त्रसिद्धिर्द्रुतं भवेत् ॥१०५२॥

पच्चीसवें कलि में प्रकटित कृष्ण का मन्त्र—अब मैं पच्चीसवें कलि में प्रकटित कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। माया एवं श्री (ह्रीं श्रीं) के साथ दशाक्षर मन्त्र (गोपीजनवल्लभाय स्वाहा) को संयुक्त करने से इनका मन्त्र द्वादशाक्षर होता है। इस मन्त्र के समस्त विधान पूर्वोक्त षोडशाक्षर मन्त्र के समान जानने चाहिये। निर्दिष्ट कर्म के अनुरूप जिस मन्त्र में जिसका मन प्रवृत्त होता है, उसमें देवता पूर्वोक्तवत् होते हैं और शीघ्र ही मन्त्रसिद्धि प्राप्त हो जाती है।।१०५०-१०५२।।

षट्-सप्ताष्टाविंशकल्युद्भूतकृष्णमन्त्राः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि क्रमाज्जाता युगत्रये।
ये मन्त्रा दशवर्णस्य भेदाः सिद्धिविधायकाः ॥१०५३॥
काममायेन्दिरापूर्वो मायाश्रीकामपूर्वकः।
लक्ष्मीमायास्मराद्यश्च मन्त्रराजो दशाक्षरः ॥१०५४॥
त्रयोदशाक्षरा मन्त्रास्त एवैते युगत्रये।
मुन्याद्यन्तु विधिस्तेषां पङ्क्त्यामुक्तविधानतः ॥१०५५॥
ध्यानन्तृतीयमन्त्रे तु दशार्णे समुदाहृतम्।
विंशार्णोक्तं द्वितीये तु प्रथमेऽथ निगद्यते ॥१०५६॥
दरारिवाद्यशब्देन रञ्जिताशामुखाम्बुजम्।
वंशमादाय हस्ताभ्यां वादयन्तं मुदान्वितम् ॥१०५७॥

रविमण्डलगं कृष्णं ध्यायेदिष्टफलाप्तये ।
अङ्गेन्द्रादिकवज्राद्यैरर्चना सर्वसिद्धिदा ॥१०५८॥

कृष्ण के मन्त्रत्रय—अब मैं क्रमः छब्बीसवें, सत्ताईसवें एवं अट्ठाईसवें कलि में प्रादुर्भूत कृष्ण के मन्त्रों को कहता हूँ। उपर्युक्त दश अक्षरों वाले मन्त्र के ये तीन भेद सिद्धि प्रदान करने वाले हैं। दशाक्षर मन्त्र के आरम्भ में क्रमशः काम, माया एवं इन्दिरा (क्लीं ह्रीं श्रीं) माया, श्री एवं काम (ह्रीं श्रीं क्लीं) तथा लक्ष्मी, माया एवं कामबीजों (श्रीं ह्रीं क्लीं) का संयोजन करने से तेरह अक्षरों वाले ये तीनों मन्त्र इस प्रकार के होते हैं—क्लीं ह्रीं श्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा, ह्रीं श्रीं क्लीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा एवं श्रीं ह्रीं क्लीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा।

इन तीनों मन्त्रों के ऋषि आदि पंक्ति में कथित विधि के अनुरूप होते हैं। इनमें से तृतीय मन्त्र का ध्यान दशाक्षर मन्त्र के समान एवं द्वितीय मन्त्र का ध्यान विंशाक्षर मन्त्र के समान किया जाता है। अब प्रथम मन्त्र का ध्यान कहा जा रहा है।

अपने अभीष्ट फल की प्राप्ति के लिये शङ्ख, चक्र आदि के शब्दों से दिशाओं को आह्लादित करने वाले एवं दोनों हाथों से वंशी को पकड़कर प्रसन्नता-पूर्वक बजाते हुये सूर्यमण्डल में अवस्थित कृष्ण का ध्यान करना चाहिये। षडङ्ग, दश दिक्पाल एवं दिक्पालों के दस आयुधों से समन्वित की गई इनकी अर्चना समस्त सिद्धियाँ प्रदान करने वाली होती है।।१०५३-१०५८।।

बाणलक्षं जपित्वाग्रे दशांशं हविषा हुनेत् ।
तर्पणादि ततः कृत्वा सिद्धमन्त्रः समाचरेत् ॥१०५९॥
कान्तिपुष्टिघृताद्यन्नकामो मन्त्रैः प्रयोगकान् ।
दशाष्टादशवर्णोक्तानष्टाविंशे कलाविति ॥१०६०॥

पूजन के अनन्तर देवता के सम्मुख बैठकर मन्त्र का पाँच लाख जप करने के उपरान्त हविष्य (पायस) से कृत जप का दशांश (पचास हजार) हवन करना चाहिये। इसके बाद तर्पण आदि करके सिद्ध हुये मन्त्र से प्रयोगों का सम्पादन करना चाहिये।

कान्ति, पुष्टि, घृत आदि तथा अन्न-प्राप्ति की कामना से इस मन्त्र के द्वारा प्रयोग किये जाते हैं। अट्ठाईसवें कलि के मन्त्र से दशाक्षर एवं अष्टादशाक्षर मन्त्र में कथित प्रयोगों का साधन करना चाहिये।।१०५९-१०६०।।

एकोनत्रिंशकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि चोनत्रिंशमिते कलौ ।
अष्टादशाक्षरो मन्त्रः कामान्तोऽत्र प्रकीर्तितः ॥१०६१॥

नारदोऽस्य मुनिश्छन्दो गायत्रं कृष्णदेवता।
षड्दीर्घान्वितकामेन षडङ्गविधिरीरितः ॥१०६२॥
बिभ्राणं दक्षिणे हस्ते ससितं दुग्धमोदकम्।
वामे नवीनमाज्यस्य पिण्डं सुन्दरमद्भुतम् ॥१०६३॥
वैयाघ्रनखसंशोभिगलं सान्द्रघनच्छविम्।
एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रमेकलक्षमनन्यधीः।
शर्कराघृतयुक्तेन दशांशं हविषा हुनेत्।
तर्पणादि ततः कुर्यात्प्राग्वद् ब्राह्मणभोजनम् ॥१०६४॥

उन्तीसवें कलि के कृष्ण का मन्त्र—अब मैं उन्तीसवें कलि में प्रादुर्भूत कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। अष्टादशाक्षर मन्त्र (श्रीकृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा) के अन्त में 'क्लीं' का संयोजन करने से यह मन्त्र बनता है। इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द गायत्री एवं देवता कृष्ण कहे गये हैं। कामबीज के छः दीर्घ स्वरूपों (क्लां क्लीं क्लूं क्लैं क्लौं क्लः) से इसका षडङ्ग-न्यास कहा गया है।

इसके बाद दाहिने हाथ में शर्करा एवं दुग्ध से समन्वित सुन्दर मोदक तथा बाँयें हाथ में सद्यः निःसृत घृत का अद्भुत गोला लिये हुये, चीते के नख से सुशोभित कण्ठ वाले, नीले मेघ की कान्ति वाले कृष्ण का ध्यान करके एकाग्रचित्त से मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिये। तदनन्तर शर्करा एवं घृत से समन्वित हविष्य द्वारा कृत जप का दशांश (दस हजार) हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् तर्पण आदि करने के बाद पूर्ववत् ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये।।१०६१-१०६४।।

अङ्गलोकेशवज्राद्यैरर्चनास्य समीरिता ॥१०६५॥
सरोजमध्यगं कृष्णं पूजयित्वा विधानतः।
तस्यैव स्त्रीमुखाम्भोजमर्चयेन्मन्त्रमुच्चरन् ॥१०६६॥
गोदुग्धेन सुपक्वेन सुपक्वैः कदलीफलैः।
दध्ना च नवनीतेन पुत्रमाप्नोति वत्सरात्।
यद्यदिच्छति तत्सर्वं तर्पणेनैव सिध्यति ॥१०६७॥
दध्ना श्रीर्मधुना तेजो घृतेनायुर्विवर्धते।

षडङ्गों, दिक्पालों, आयुधों का पूजन करते हुये इनका पूजन कहा गया है। कमल के मध्य में अवस्थित कृष्ण का सविधि पूजन करने के बाद उन्हीं के मुखकमल में मन्त्रोच्चारण करते हुये स्त्रीमुख का अर्चन करना चाहिये। एक वर्ष-पर्यन्त गोदुग्ध में भली प्रकार पकाये गये पके केले, दधि एवं मक्खन का हवन करने से पुत्र-प्राप्ति होती

है। इस मन्त्र से तर्पण-मात्र से ही समस्त अभीष्ट पूर्ण होते हैं। इस मन्त्र द्वारा दधि के हवन से लक्ष्मी-प्राप्ति, मधु के हवन से तेजःप्राप्ति तथा घृत के हवन से आयुवृद्धि होती है।।१०६५-१०६७।।

त्रिंशत्तमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रं त्रिंशत्तमे कलौ।
ऐंक्लीं कृष्णाय चेत्युक्त्वा गोविन्दाय रमां वदेत् ।।१०६८।।
गोपीजनवल्लभाय स्वाहान्तो विंशवर्णकः।
सर्वैश्वर्यप्रदो नित्यं साधकानामभीष्टदः।
अष्टादशलिपिः प्रोक्तं मुन्याद्यं चाङ्गकल्पनम् ।।१०६९।।
विंशाक्षरोक्तवज्ज्ञेया सपर्या ध्यानमुच्यते।
दक्षोर्ध्वे स्फाटिकीं मालां वामेन धृतपुस्तकम्।
अधःकराभ्यां मुरलीं वादयन्तं मनोहरम् ।।१०७०।।
पीताम्बरं मेघकान्तिं गायन्तमतिकोमलम्।
मयूरपक्षसम्बद्धकेशजालश्रियान्वितम् ।।१०७१।।
सर्वज्ञं मुनिवृन्देन सेवितं सर्वदैवतम्।
युवतीवेषलावण्यरमणीयतरं स्मरेत्।
पञ्चपञ्चेषुवेदत्रिवर्णैः पञ्चाङ्गकल्पनम् ।।१०७२।।

तीसवें कलि में समुद्भूत कृष्ण का मन्त्र—अब मैं तीसवें कलि में प्रकटित कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। समस्त ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाला एवं समस्त अभीष्टों को नित्य प्राप्त कराने वाला बीस अक्षरों का वह मन्त्र है—ऐं क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय श्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा। अट्ठारह अक्षरों वाले मन्त्र के समान ही इसके ऋषि आदि और षडङ्ग-न्यास कहे गये हैं। इसका पूजन विंशाक्षर मन्त्र में कथित विधान से करना चाहिये। अब इनका ध्यान कहा जा रहा है।

दाहिने ऊपर वाले हाथ में स्फटिक की माला एवं बाँयें ऊपर वाले हाथ में पुस्तक धारण किये हुये तथा नीचे वाले दोनों हाथों से वंशी बजाते हुये, मनोहर पीत वस्त्र धारण किये हुये, मेघ-सदृश कान्ति वाले, मधुर गान करते हुये, मोरपंख बँधे हुये कान्तिमान केशों वाले, सबकुछ जानने वाले, मुनियों द्वारा उपासित, सबके स्वामी, युवतीरूप के सदृश लावण्य से समन्वित तथा अत्यन्त रमणीय प्रभु का स्मरण करना चाहिये।

उक्त प्रकार से कृष्ण का ध्यान करने के पश्चात् मन्त्र के पाँच, पाँच, पाँच, चार एवं तीन वर्णों से पञ्चाङ्गन्यास करना चाहिये।।१०६८-१०७२।।

वेदलक्षं मनुं जप्त्वा किंशुकैर्मधुना प्लुतैः।
दशांशं जुहुयादग्नौ साधको मन्त्रसिद्धये।
तर्पणादि ततः कुर्यान्मन्त्री पूर्वोक्तवर्त्मना ॥१०७३॥
मनुमेनं जपेद्यस्तु देवं सम्पूज्य यत्नतः।
देवस्यानुग्रहात्तस्य सुखं पद्माक्षिकोद्भवम् ॥१०७४॥
गङ्गातरङ्गकल्लोलवाग्विलासमनोहरा।
गद्यपद्यात्मिका तस्य ब्रुवतो भारती सदा ॥१०७५॥
अशेषवेदवेदार्थसर्वशास्त्रविशारदः।
राज्यैश्वर्यं परं प्राप्य भुङ्क्ते भोगाननेकशः।
ध्यानं पूर्वोक्तमप्यन्ते देहं त्यक्त्वा हरिं व्रजेत् ॥१०७६॥

साधक को मन्त्रसिद्धि की प्राप्ति के लिये उक्त मन्त्र का चार लाख की संख्या में जप करने के बाद अग्नि में मधु-सिक्त पलाशपुष्पों से कृत जप का दशांश (चालीस हजार) हवन करने के पश्चात् पूर्वोक्त विधि से तर्पण करना चाहिये।

जो साधक प्रयत्न-पूर्वक कृष्ण का पूजन करके उक्त मन्त्र का जप करता है, उसे देवता की कृपा से लक्ष्मी द्वारा प्रदत्त सुख प्राप्त होता है। उसके बोलने पर गंगा के तरंग-सदृश मनोविनोद करने वाली गद्य-पद्यों से समन्वित मनोहर वाणी सदा निःसृत होती रहती है। वह निखिल वेद-वेदार्थ के साथ समस्त शास्त्रों में पारङ्गत हो जाता है; साथ ही श्रेष्ठ राज्यरूपी ऐश्वर्य को प्राप्त करके अनेक भोगों का भोग करता है और अन्त में पूर्वोक्त ध्यान करते हुये शरीर का त्याग करके हरि के लोक (वैकुण्ठ) को गमन करता है।।१०७३-१०७६।।

एकत्रिंशत्तमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि चैकत्रिंशोन्मिते कलौ।
तारो नमो भगवते नन्दपुत्राय नन्द च ॥१०७७॥
व्रजगोपीजनेत्युक्त्वा तदन्ते ङेऽन्तवल्लभम्।
स्वाहाष्टाविंशदर्णोऽयं मुनिरस्य तु नारदः ॥१०७८॥
उष्णिक् छन्दो देवता च नन्दपुत्रोऽखिलेष्टदः।
आचक्रादिपदैः प्राग्वत्पञ्चाङ्गं परिकीर्तितम् ॥१०७९॥
रत्नपात्रं करे दक्षे हेमजातं च वामतः।
बहन्तं मध्यगं कृष्णं स्त्रीभ्यामालिङ्गितं सदा ॥१०८०॥
अङ्गलोकेशवज्राद्यैः पूजनं परिकीर्तितम्।
लक्षं जपेत्प्रजुहुयाद्धविषा सर्वसिद्धये ॥१०८१॥

इकतीसवें कलि में समुद्भूत कृष्ण का मन्त्र—अब मैं इकतीसवें कलि में समुद्भूत कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। अट्ठाईस (?) अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ नमो भगवते नन्दपुत्राय नन्दव्रजगोपीजनवल्लभाय स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द उष्णिक् एवं देवता समस्त अभीष्टों को देने वाले नन्दपुत्र कहे गये हैं। पूर्ववत् आचक्रादि पदों से इसका पञ्चाङ्गन्यास कहा गया है। दाहिने हाथ में रत्नपात्र एवं बाँयें हाथ में स्वर्णपात्र धारण किये हुये मध्य में अवस्थित होकर सदा स्त्रियों द्वारा आलिङ्गित कृष्ण का ध्यान करके षडङ्ग, दिक्पाल और आयुधों का पूजन करना कहा गया है। समस्त सिद्धियों की प्राप्ति के लिये मन्त्र का एक लाख जप करके हविष्य से हवन करना चाहिये।।१०७७-१०८१।।

द्वात्रिंशत्तमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि द्वात्रिंशत्प्रमिते कलौ।
नन्दपुत्रस्य शब्दान्ते श्यामलाङ्गाय कीर्तयेत् ।।१०८२।।
ततश्च बालवपुषे कृष्णाय पदमुच्चरेत्।
गोविन्दाय दशार्णं च द्वात्रिंशद्वर्ण ईरितः ।।१०८३।।
मुन्याद्या नारदोऽनुष्टुप्कृष्णः पूजादिकाप्तये।
अष्टादशार्णकप्रोक्तप्रयोगा इह वर्णिताः ।।१०८४।।

बत्तीसवें कलि के कृष्ण का मन्त्र—अब मैं बत्तीसवें कलि में प्रकटित कृष्ण के मन्त्र को करता हूँ। बत्तीस अक्षरों का वह मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—नन्दपुत्राय श्यामलाङ्गाय बालवपुषे कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा। पूजा आदि के लिये इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता कृष्ण हैं। अट्ठारह अक्षरों वाले मन्त्र में कथित प्रयोग ही इसके भी प्रयोग कहे गये हैं।।१०८२-१०८४।।

त्रयस्त्रिंशत्तमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि त्रयस्त्रिशमिते कलौ।
ॐ श्रीं ह्रीं हृद्भगवते नन्दपुत्राय बालव ।।१०८५।।
पुषे च श्यामलाङ्गाय ततश्चाष्टादशाक्षरः।
द्विचत्वारिंशदर्णोऽयं छन्दोऽनुष्टुब्विधिर्मुनिः ।।१०८६।।
कृष्णो देवोऽस्य पूजाद्यं प्रागवत्सर्वं प्रकल्पयेत्।
रामैकादशपञ्चेषु धृत्यर्णैरङ्गकल्पनम् ।।१०८७।।
अन्यत्सर्वं प्रयोगाद्यमष्टाविंशतिवर्णवत्।
मन्त्रोऽयं सकलैश्वर्यकाङ्क्षितार्थैकसाधनः ।।१०८८।।

तैंतीसवें कलि के कृष्ण का मन्त्र—अब मैं तैंतीसवें कलि में प्रादुर्भूत कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। बयालीस अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ श्रीं ह्रीं नमो भगवते नन्दपुत्राय बालवपुषे श्यामलाङ्गाय श्रीकृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता कृष्ण हैं।

इसका पूजन आदि सब कुछ पूर्ववत् ही करना चाहिये। मन्त्र के तीन, ग्यारह, पाँच, पाँच एवं अट्ठाईस वर्णों से पञ्चाङ्गन्यास करना चाहिये। प्रयोग आदि अन्य सब कुछ अट्ठाईस अक्षरों वाले मन्त्र के समान करना चाहिये। यह मन्त्र समस्त आकांक्षित ऐश्वर्यों का एकमात्र साधक है।।१०८५-१०८८।।

चतुस्त्रिंशत्तमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि चतुस्त्रिंशात्मके कलौ।
तारो नमो भगवते रुक्मिणीवल्लभाय च ॥१०८९॥
स्वाहान्तः षोडशार्णोऽयं मन्त्रराण्नारदो मुनिः।
छन्दोऽनुष्टुब्देवतास्य रुक्मिणीवल्लभः स्मृतः ॥१०९०॥
भूद्व्यब्धिसप्तनेत्रार्णैः पञ्चाङ्गं परिकीर्तितम्।
कलया श्यामलं कृष्णं नानालङ्कारमण्डितम् ॥१०९१॥
पीतकौशेयसद्वस्त्रं स्वर्णवेत्रविभूषितम् ॥१०९२॥
करपद्मेन दक्षेण लिम्पन्तं वामपाणिना।
वराभीष्टवतीं देवीं मञ्जगां काञ्चनप्रभाम्।
वामहस्तधृताम्भोजां तां समालिङ्गितां प्रियाम् ॥१०९३॥
अङ्गैर्नारदमुख्यैश्च लोकपालैस्तदायुधैः।
पूजनं धर्मकर्मार्थं निःश्रेयसफलप्रदम् ॥१०९४॥
सप्तलक्षं जपेन्मन्त्रं हुनेन्मधुरलोलितैः।
दशांशं कमलैः पश्चात्तर्पणादि समाचरेत् ॥१०९५॥
महदैश्वर्यमोक्षादिकाङ्क्षिभिः सेवितो मनुः।
अभीष्टकृत्प्रयोगाद्यं विज्ञेयन्तु दशार्णवत् ॥१०९६॥

चौंतीसवें कलि में अवतरित कृष्ण का मन्त्र—अब मैं चौंतीसवें कलि में अवतार धारण करने वाले कृष्ण के मन्त्रराज को कहता हूँ। सोलह अक्षरों का वह मन्त्रराज है—ॐ नमो भगवते रुक्मिणीवल्लभाय स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता रुक्मिणीवल्लभ कहे गये हैं। मन्त्र के एक, दो, चार, सात एवं दो वर्णों से इसका पञ्चाङ्गन्यास कहा गया है।

तदनन्तर श्याम वर्ण वाले कृष्ण का ध्यान करना चाहिये। वे अनेक अलंकारों से अलंकृत हैं, पीत कौशेय उनका वस्त्र है। दाहिने हाथ में स्वर्णवेत्र लिये हुये वे अपने बाँयें हाथ से बाँयें हाथ में कमल धारण की हुई अभीष्ट वर प्रदान करने वाली स्वर्णमयी कान्तिमती अपनी प्रिया का आलिङ्गन किये हुये हैं।

धर्मकर्म के लिये पञ्चाङ्ग, नारदादि, लोकपालों एवं उनके आयुधों के सहित किया गया उनका पूजन समस्त कल्याणदायक फलों को देने वाला होता है। इस मन्त्र का सात लाख जप पूर्ण करके मधुर-लिप्त कमलपुष्पों से कृत जप का दशांश (सत्तर हजार) हवन करने के पश्चात् तर्पण आदि करना चाहिये।

महान् ऐश्वर्य, मोक्ष आदि की कामना वालों के द्वारा इस मन्त्र की उपासना करनी चाहिये। इस मन्त्र को दशाक्षर मन्त्र-सदृश अभीष्ट कृत्य, प्रयोग आदि का साधक जानना चाहिये।।।।१०८९-१०९६।।

पञ्चत्रिंशत्तमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि पञ्चत्रिंशन्मिते कलौ।
लीलादण्डं सुशिक्षन्तं गोपीजनपदं व्रजेत् ।।१०९७।।
दोर्दण्डं बालरूपेति मेघश्यामपदं तथा।
भगवन्प्रभविष्णो स्यादेवन्तु त्रिंशदक्षरः ।।१०९८।।
नारदोऽस्य मुनिश्छन्दो गायत्री देवता मता।
लीलादण्डधरः कृष्णो देवस्तु परिकीर्तितः ।।१०९९।।
वामहस्ताम्बुजस्थेन लीलादण्डेन गोपिकाः।
पुराङ्गनाश्च साकूतं मोहयन्तं महाप्रभुम् ।।११००।।
आत्मनः प्रियमित्रस्य स्कन्धन्यस्तान्यहस्तकम्।
हतकंसं स्मरेत्कृष्णमप्रमेयपराक्रमम् ।।११०१।।
अङ्गैरिन्द्रादिवज्राद्यैरर्चनं च समीरितम्।
लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं दशांशं तिलतण्डुलैः।
त्रिमध्वक्तैर्हुनेत्पश्चान्मार्जनादि समाचरेत् ।।११०२।।
शुभगः स जगद्वन्द्यो रमाया भवनं भवेत् ।।११०३।।

पैंतीसवें कलि में समुद्भूत कृष्ण का मन्त्र—अब मैं पैंतीसवें कलि में प्रादुर्भूत कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। तीस अक्षरों का उनका मन्त्र है—लीलादण्डं सुशिक्षन्तं गोपीजनदोर्दण्डं बालरूप मेघश्याम भगवन् प्रभविष्णो। इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द गायत्री एवं देवता लीलादण्डधारी कृष्ण कहे गये हैं।

मन्त्र की उपासना करते समय बाँयें करकमल में धारण किये हुये लीलादण्ड द्वारा गोपियों एवं पुरस्त्रियों को अपनी इच्छानुसार मोहित करते हुये एवं अपने दाहिने हाथ को प्रिय मित्र के कन्धे पर रखे हुये तथा कंस का वध करने वाले अमित पराक्रम वाले महाप्रभु कृष्ण का ध्यान करना चाहिये।

अङ्ग, दिक्पालादि एवं उनके आयुधों समेत इनका पूजन कहा गया है। इस मन्त्र का एक लाख जप करने के उपरान्त त्रिमधु-सिक्त तिल-तण्डुलों से कृत जप का दशांश (दस हजार) हवन करने के पश्चात् तर्पण, मार्जन आदि करना चाहिये। इस मन्त्र की उपासना करने वाला साधक सौभाग्यशाली, संसार द्वारा वन्दनीय एवं लक्ष्मी का आगार होता है।।१०९७-११०३।।

षट्त्रिंशत्तमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि षट्त्रिंशे यः कलौ भवेत्।
गोवल्लभाय स्वाहेति मन्त्रः सप्ताक्षरो मतः ॥११०४॥
नारदो मुनिरस्य स्यादुष्णिक् छन्दस्तु देवता।
गोवल्लभो हरिः प्रोक्तो गवां वृद्धिकरः परः।
दशार्णोक्तविधानेन पञ्चाङ्गविधिरीरितः ॥११०५॥
इन्द्रनीललसत्कान्तिं पीतवाससमच्युतम्।
सर्पारिपिच्छनिकरैः सम्यक्क्लृप्तावतंसकम् ॥११०६॥
वंशं वामकरे यष्टिं दक्षे पाशं च बिभ्रतम्।
कपिलां वनमध्यस्थामाह्वयन्तं च गां मुदा ॥११०७॥
एवं यजेत्ततस्तस्य पीठे पूर्वोदिते शुभे।
आदावङ्गानि सम्पूज्य पूजयेद्यो गणाष्टकम् ॥११०८॥
पीतो रक्तश्च सिन्दूरः श्वेतो नीलो हरिद्भवेत्।
कालः कर्णात्मकश्चेति ततः प्रोक्तं गणाष्टकम् ॥११०९॥
पुरन्दरमुखास्तेषामायुधानि ततः परम् ॥१११०॥

छत्तीसवें कलि में प्रकटित कृष्ण का मन्त्र—अब मैं छत्तीसवें कलि में अवतरित कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। सात अक्षरों का वह मन्त्र है—गोवल्लभाय स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द उष्णिक् एवं देवता गायों की वृद्धि करने वाले गोवल्लभ कृष्ण कहे गये हैं। दशाक्षर मन्त्र के समान ही इसके पञ्चाङ्गन्यास की विधि कही गई है। इन्द्रनीलमणि की कान्ति से शोभायमान, पीत वस्त्र धारण किये हुये, मयूरपिच्छों को सम्यक् रूप से चूड़ा में बाँधे हुये, बाँयें हाथ में बाँस की छड़ी एवं दाँयें

हाथ में पाश लिये हुये, वन के मध्य में अवस्थित होकर कपिला गायों को प्रसन्नतापूर्वक पुकारते हुये अच्युत भगवान् कृष्ण का ध्यान करके उनका यजन करना चाहिये।

तदनन्तर उनके पूर्वोक्त पीठ पर सर्वप्रथम अङ्ग-पूजन करने के उपरान्त पीत, रक्त, सिन्दूर, श्वेत, नील, हरित्, काल एवं कर्णात्मक—इन आठ गणों की पूजा करनी चाहिये। इसके बाद इन्द्रादि दश दिक्पालों और वज्रादि दश आयुधों का पूजन करना चाहिये।।११०४-१११०।।

ध्यात्वा मन्त्रं जपेत्तस्य वर्णलक्षं जितेन्द्रियः।
तत्सहस्रं हुनेन्मन्त्री गोदुग्धेन पुरोक्तवत् ॥१११९॥
गोदुग्धैः प्रत्यहं साग्रं सहस्रं जुहुयाच्च यः।
मोक्षार्थं च गवां वृद्धिर्जायते तस्य भूयसी ॥१११२॥
दशाक्षरोक्तवत्सर्वं विधानं चास्य कीर्तितम्।
सर्वे प्रयोगाः सिद्ध्यन्ति सम्पूर्णाः स्युर्मनोरथाः ॥१११३॥

अच्युत भगवान् श्रीकृष्ण के पूर्वकथित स्वरूप का ध्यान करके जितेन्द्रिय रहकर मन्त्र का वर्णलक्ष अर्थात् सात लाख जप करने के उपरान्त पूर्वोक्त प्रकार से गोदुग्ध के द्वारा सात हजार हवन करना चाहिये। जो साधक प्रतिदिन कृष्ण के सम्मुख गोदुग्ध से एक हजार हवन करता है, उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है एवं उसके गायों की संख्या में प्रचुर वृद्धि होती है। इसके अन्य सभी विधान दशाक्षर मन्त्र के समान कहे गये हैं। इससे समस्त प्रयोग सिद्ध होते हैं एवं सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं।।११११-१११३।।

सप्तत्रिंशत्तमकल्युद्धूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सप्तत्रिंशोन्मिते कलौ।
तारो नमो भगवते श्रीगोविन्दाय संवदेत् ॥१११४॥
द्वादशार्णो मनुः प्रोक्तो नारदोऽस्य मुनिर्मतः।
गायत्री छन्द उद्दिष्टं श्रीकृष्णो देवता मनोः ॥१११५॥
चन्द्रनेत्राब्धिबाणार्णैः सम्पूर्णेनाङ्गकल्पनम्।
कल्पद्रुमतले रम्ये रत्नसिंहासने शुभे ॥१११६॥
सर्वलक्षणसंयुक्ते निविष्टं नन्दनन्दनम्।
प्रस्नुतस्तनभारेण गोवृन्देन युतं भजेत् ॥१११७॥
मेघश्यामं वरं दण्डं हस्ताभ्यां बिभ्रतं तथा।
पद्मायताक्षं शक्रस्य हस्तिकुम्भामृतस्य तु ॥१११८॥
धारया सिच्यमानं च ध्यायेद्विष्णुं तमव्ययम्।
रुक्मिणीसत्यभामादिभागयोर्वामदक्षयोः ॥१११९॥

शक्रमग्रे पृष्ठतस्तु सुरभिं च समर्चयेत्।
रुद्रादिवरुणान्तेषु केशरेषु चतुर्ष्वपि ॥११२०॥
देवाग्राद्दश पत्रेषु कालिन्दी रोहिणी तथा।
नाग्नजिती सुनन्दा च मित्रविन्दा सुलक्षणा ॥११२१॥
जाम्बवती सुशीला च चतुष्कोणेषु भूपुरे।
आग्नेयादिषु सम्पूज्याः किङ्किणीदामयष्टिकाः ॥११२२॥
पद्मञ्च तत्पुरोभागे श्रीवत्सं कौस्तुभं तथा।
वनमालां भूपुरेऽथ देवाग्रादिप्रदक्षिणम् ॥११२३॥
शार्ङ्गं गदां तु चक्रं च वसुदेवं च देवकीम्।
नन्दं यशोदां धेनूश्च गोपालांश्चापि गोपिकाः ॥११२४॥
दशदिक्षु प्रपूज्यैवं लोकपालायुधानि च।
देवाग्रतस्तस्य वामे कुमुदं कुमुदाक्षकम्।
पुण्डरीकं वामनं च शङ्कुकर्णं ततः परम् ॥११२५॥
सर्पनेत्रञ्च सुमुखं सुप्रतिष्ठितमेव च।
देवस्यान्तरतो वामे विष्वक्सेनं समर्चयेत् ॥११२६॥

सैंतीसवें कलि में प्रादुर्भूत कृष्ण का मन्त्र—अब मैं सैंतीसवें कलि में अवतरित कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। बारह अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ नमो भगवते श्रीगोविन्दाय। इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द गायत्री एवं देवता श्रीकृष्ण कहे गये हैं। मन्त्र के एक, दो, चार, पाँच वर्णों एवं सम्पूर्ण मन्त्र से इसका पञ्चाङ्ग न्यास किया जाता है। कल्पवृक्ष के नीचे रत्न-निर्मित समस्त शुभ लक्षणों से समन्वित रमणीय सिंहासन पर नन्दपुत्र कृष्ण बैठे हुये हैं। वे बढ़े हुये स्तनभार वाले गौओं से घिरे हुये हैं। उनका वर्ण मेघ के समान श्याम है और वे अपने हाथों में वर एवं दण्ड धारण किये हुये हैं। उनकी आँखें कमल के समान हैं और अमृतकलश लिये हुये इन्द्र के हाथियों द्वारा उनका अभिषेक किया जा रहा है। उनके बाँयें एवं दाहिने भाग में रुक्मिणी, सत्यभामा आदि देवियाँ विराजमान हैं। इस प्रकार के अव्यय विष्णु का ध्यान करना चाहिये।

इस प्रकार ध्यान करके कृष्ण के आगे इन्द्र का और पीछे सुरभि का अर्चन करने के उपरान्त रुद्र से आरम्भ कर वरुण-पर्यन्त चार का केशरों में पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् देव के आगे से आरम्भ करते हुये दसदल कमल के दस पत्रों में कालिन्दी, रोहिणी, नाग्नजिती, सुनन्दा, मित्रविन्दा, सुलक्षणा, जाम्बवती, सुशीला, रुक्मिणी एवं सत्यभामा का अर्चन करना चाहिये। भूपुर के चारो कोणों में आग्नेयादि क्रम से

किंकिणी; दाम, यष्टि एवं पद्म का पूजन करना चाहिये। कृष्ण के आगे श्रीवत्स, कौस्तुभ एवं वनमाला का पूजन करना चाहिये। भूपुर में देव के अग्रभाग से प्रारम्भ करके दक्षिणावर्तक्रम से शार्ङ्ग, गदा, चक्र, वसुदेव, देवकी, नन्द, यशोदा, धेनु, गोपालकों एवं गोपियों का पूजन करना चाहिये।

तदनन्तर भूपुर की दसो दिशाओं में दिक्पालों एवं उनके आयुधों का पूजन करने के बाद देव के आगे से प्रारम्भ करके वामावर्त क्रम से कुमुद, कुमुदाक्ष, पुण्डरीक, वामन, शंकुकर्ण, सर्पनेत्र, सुमुख एवं सुप्रतिष्ठित—इन आठो का आठ दिशाओं में पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् देव से थोड़ी दूरी पर वाम भाग में विष्वक्सेन का सम्यक् रूप से पूजन करना चाहिये।।१११४-११२६।।

एवं सञ्चिन्त्य देवेशं वर्णलक्षं जपेन्मनुम्।
तत्सहस्राणि गोक्षीरैर्जुहुयात्तर्पयेत्ततः ।।११२७।।
आसनाराधनान्तन्तु प्राग्वत्कुर्यादतन्द्रितः ।
दिनादावथ मध्याह्ने समयत्रितयेऽथवा ।।११२८।।
गोष्ठाभ्यां सततं कृष्णमर्चयेद्विधिनामुना ।
भक्त्या परमयोपेतो गोपालांश्च समर्चयेत् ।।११२९।।
दीर्घायुर्निर्भयश्चैव धनधान्यधरादिभिः ।
पुत्रपौत्रैश्च सन्मित्रै राज्यान्ते विष्णुमन्दिरम् ।
तस्माद्भजेदमुं मन्त्रं द्रुतं सिद्धिप्रदं शिवे ।।११३०।।

तत्पश्चात् देवेश का ध्यान करके मन्त्र का वर्णलक्ष अर्थात् बारह लाख जप करने के बाद गोदुग्ध से बारह हजार हवन करके तर्पण करना चाहिये। इसके बाद आलस्य-रहित होकर आसन पर आसीन होकर प्रात: एवं मध्याह्न में अथवा तीनों सन्ध्याओं में अर्चन करना चाहिये।

इस विधि से अतिशय भक्ति-पूर्वक बराबर गोशाला में कृष्ण का एवं गोपालों का भी अर्चन करने से साधक दीर्घायु एवं निर्भय होता है; साथ ही इस पृथिवी पर धन, धान्य, धरा, पुत्र, पौत्र, अच्छे मित्र, राज्य आदि प्राप्त करके शरीरान्त होने पर विष्णुलोक को अवाप्त करता है। इसलिये हे शिवे! सद्य: सिद्धिप्रद इस मन्त्र की आराधना करनी चाहिये।।११२७-११३०।।

अष्टत्रिंशत्तमकल्युद्धृतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि त्वष्टाविंशन्मिते कलौ ।
वदेद् गोकुलनाथाय नमोऽन्तोऽष्टाक्षरो मनुः ।।११३१।।

अजो मुनिश्च गायत्री छन्दो देवो हरिर्मतः।
वर्णद्वयेन पञ्चाङ्गं सकलेन प्रकल्पयेत् ॥११३२॥
कुण्डलाभ्यां लसन्नेत्रं नीलाङ्गाभं महाद्युतिम्।
पञ्चान्तिके च धावन्तं मदनेन पुरान्वितम् ॥११३३॥
ग्रैवेयाङ्गदहारादिभूषणैर्जयशोभितम्।
नानामुनिगणैर्दृष्टं सेवितं सर्वलीलया ॥११३४॥
पूर्वोदिते यजेत्पीठे चतुर्दिक्केशरेषु च।
चतुरङ्गानि सम्पूज्य चास्त्रं कोणेषु पूजयेत् ॥११३५॥
दिक्पत्रेषु यजेन्मूर्तीर्वासुदेवादिकास्तथा।
रुक्मिणीं सत्यभामां च लक्ष्मणां जाम्बवतीं तथा।
तद्बहिर्लोकपालानां वज्रादीनां च पूजनम् ॥११३६॥
वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं तत्सहस्रं ततो हुनेत्।
पद्मैर्बिल्वसमिद्भिर्वा पायसैर्घृतसंयुतैः।
तर्पणादि ततः कृत्वा समृद्धिर्महती भवेत् ॥११३७॥

अड़तीसवें कलि में समुद्भूत कृष्ण का मन्त्र—अब मैं अड़तीसवें कलि में हुये कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। आठ अक्षरों का वह मन्त्र है—गोकुलनाथाय नमः। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री एवं देवता श्रीहरि कहे गये हैं। मन्त्र के दो-दो वर्णों से हृदय, शिर, शिखा एवं कवच में न्यास करने के पश्चात् सम्पूर्ण मन्त्र से अस्त्रन्यास करते हुये पञ्चाङ्गन्यास किया जाता है।

तदनन्तर कुण्डलों से शोभायमान नेत्रों वाले, नीले वर्ण की अङ्गकान्ति वाले, अतिशय प्रकाशमान, आगे-आगे दौड़ते हुये पाँच बाणों के सहित कामदेव वाले, ग्रैवेय अंगद हार आदि आभूषणों से सुशोभित, समस्त उपचारों से अनेक मुनियों द्वारा आराधित देव का ध्यान करके पूर्वोक्त पीठ पर यजन करना चाहिये।

यन्त्र के केशरों में चारो दिशाओं में हृदय, शिर, शिखा एवं कवच का पूजन करके कोण में अस्त्र का पूजन करना चाहिये। अष्टपत्रों में वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, रुक्मिणी, सत्यभामा, लक्ष्मणा और जाम्बवती का पूजन करना चाहिये। फिर उसके बाहर भूपुर में दश दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये।

इसके बाद मन्त्र का आठ लाख जप करने के बाद घृत-समन्वित पद्मों, बिल्ववृक्ष की समिधाओं अथवा पायस की आठ हजार आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् तर्पण आदि करने वाला साधक अतिशय समृद्धि को प्राप्त करता है।।११३१-११३७।।

एकोनचत्वारिंशत्तमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कलौ गोत्रिमितं हरिम्।
तारं रमां ह्रियं कामं श्रीकृष्णाय ततो वदेत् ॥११३८॥
श्रीगोविन्दाय चेत्युक्त्वा श्रीगोपीजनवल्लभः।
ङेऽन्तो बीजत्रयं चाद्यं पञ्चविंशाक्षरो मनुः ॥११३९॥
नारदो मुनिराख्यातो गायत्री छन्द उच्यते।
श्रीकृष्णो बलदेवेन युक्तः प्रोक्तोऽस्य देवता।
वेदवेदेषु गोरामसम्पूर्णेन षडङ्गकम् ॥११४०॥
सेवितौ वैनतेयेन मेदिनीमण्डलाविनौ।
रमन्तौ दिव्यभावेन बलकृष्णौ च संस्मरेत्।
पूजाजपप्रयोगादि सर्वं ज्ञेयं दशार्णवत् ॥११४१॥

उन्तालीसवें कलि में प्रकटित कृष्ण का मन्त्र—अब मैं उन्तालीसवें कलि में अवतरित कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। पच्चीस अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं श्रीकृष्णाय श्रीगोविन्दाय श्रीगोपीजनवल्लभाय श्री ह्रीं क्लीं।

इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द गायत्री एवं देवता बलदेव से समन्वित कृष्ण कहे गये हैं। मन्त्र के चार, चार, पाँच, नव, तीन वर्णों एवं सम्पूर्ण मन्त्र से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। गरुड़ द्वारा सेवित एवं दिव्य भाव से भूमण्डल में विचरण करते बलराम एवं कृष्ण का ध्यान करना चाहिये। इस मन्त्र का पूजन, जप, प्रयोग आदि सब कुछ दशाक्षर मन्त्र के समान जानना चाहिये।।११३८-११४१।।

चत्वारिंशत्तमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि चत्वारिंशत्कलौ मनुम्।
एकच्छन्दर्षिदेवादिप्रयोगन्यासकावपि ॥११४२॥
कृमित्येकाक्षरो मन्त्रः सर्वकामसमृद्धिदः।
नारदोऽस्य मुनिर्देवो गायत्रं छन्द उच्यते ॥११४३॥
देवस्तु बालगोपालः षड्दीर्घान्वितकामतः।
षडङ्गानि ततो ध्यायेत्संस्थितं कमलादिके ॥११४४॥
कृष्णं पद्मासनं गुञ्जत्किङ्किणीविलसत्कटिम्।
हस्ताभ्यां नवनीतं च पायसं चापि बिभ्रतम् ॥११४५॥
कण्ठदेशे व्याघ्रनखं स्वर्णपट्टविराजितम्।
मेघश्यामं च परितो गोपगोपीजनावृतम् ॥११४६॥

यजेत्पूर्वोदिते पीठे वह्नीशासुरवायुषु।
हृदादिकवचान्तानि चार्चेदङ्गानि साधकः ॥११४७॥
कृष्णं तत्पुरतोऽभ्यर्च्य दिक्ष्वतस्तद्बहिः सुरान्।
आखण्डलमुखांश्चैव वज्रादीन्यायुधानि च ॥११४८॥
लक्षं जपेद्धुनेद्धेनोः पयसा हविषा तथा।
कृत्वा ब्राह्मणभोज्यान्तं स्वेप्सितार्थान् लभेन्नरः ॥११४९॥

चालीसवें कलि में प्रादुर्भूत कृष्ण का मन्त्र—अब मैं चालीसवें कलि में अवतरित कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। इसके छन्द, ऋषि, देवादि तथा प्रयोग एवं न्यास भी एक ही होते हैं।

समस्त कामनाओं एवं समृद्धियों को देने वाला वह एकाक्षर मन्त्र 'कृं' है। इस एकाक्षर मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द गायत्री एवं देवता बाल गोपाल कहे गये हैं। क्लां क्लीं क्लूं क्लैं क्लौः क्लः से इसका षडङ्ग न्यास किया जाता है। इसके बाद कमल आदि पर विराजमान कृष्ण का स्मरण करना चाहिये।

पद्मासन पर विराजमान कृष्ण का कटिभाग शब्दायमान करधनी से सुशोभित है, उनके हाथों में मक्खन एवं पायस है, गले में स्वर्णपट्ट पर जटित बघनखा है, उनका वर्ण मेघ-सदृश श्याम है, गोप-गोपियों से वे चारो ओर से घिरे हैं। साधक को पूर्वोक्त पीठ पर अग्नि, ईशान, नैर्ऋत्य एवं वायव्य कोण में हृदय, शिर, शिखा एवं कवच-रूप अङ्ग का न्यास करना चाहिये।

तत्पश्चात् उनके सामने कृष्ण का पूजन करके उसके बाहर दसो दिशाओं में दस दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये। उसके बाद मन्त्र का एक लाख जप करने के बाद गोदुग्ध एवं हविष्य से हवन करने के पश्चात् ब्राह्मण-भोजनान्त कर्म का सम्पादन करके मनुष्य अपनी अभीप्सित कामनाओं को प्राप्त कर लेता है।

एकचत्वारिंशत्तमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कलावेकचतुर्मिते।
स एव कृष्णः प्रकटः कृष्णो द्व्यर्णो मनुर्मतः।
विप्रादिपादजान्तास्तु नाममन्त्राधिकारिणः ॥११५०॥

इकतालीसवें कलि में प्रादुर्भूत कृष्ण का मन्त्र—अब इकतालीसवें कलि में प्रकटित कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। उनका दो अक्षरों का मन्त्र है—कृष्ण। विप्र से लेकर शूद्र-पर्यन्त चारो वर्ण इस मन्त्र के अधिकारी होते हैं।।११५०।।

द्वाचत्वारिंशत्तमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि द्विचतुस्सम्मिते कलौ।
ॐ कृष्ण इति मन्त्रोऽयं त्रिवर्णः परिकीर्तितः ॥११५१॥
मुन्यादिकप्रयोगान्तं सर्वं पूर्ववदस्य तु।
मुनिभिस्तु विशेषेण संसेव्यो भुक्तिमुक्तिदः ॥११५२॥

बयालीसवें कलि में समुद्भूत कृष्ण का मन्त्र—अब बयालीसवें कलि में अवतार ग्रहण किये कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। तीन अक्षरों का यह मन्त्र है—ॐ कृष्ण। ऋषि से आरम्भ कर प्रयोग-पर्यन्त इस मन्त्र के समस्त विधान पूर्ववत् होते हैं। मुनियों के द्वारा आराधित होने पर यह मन्त्र विशेषतया भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाला होता है।।११५१-११५२।।

त्रिचत्वारिंशत्तमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि त्रिचतुस्सम्मिते कलौ।
ॐ कृष्णायेति मन्त्रोऽयं चतुर्वर्णोऽखिलेष्टदः।
मुन्यादिकं प्रयोगान्तं सर्वं प्राग्वत्समाचरेत् ॥११५३॥

तैंतालीसवें कलि में अवतरित कृष्ण का मन्त्र—अब मैं तैंतालीसवें कलि में प्रकट हुये कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। समस्त कामनाओं को प्रदान करने वाला चार अक्षरों का मन्त्र है—ॐ कृष्णाय। इस मन्त्र के ऋषि से आरम्भ कर प्रयोगान्त समस्त कार्य पूर्ववत् होते हैं।।११५३।।

चतुश्चत्वारिंशत्तमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वेदवेदमिते कलौ।
कृष्णाय हृदयं पञ्चवर्णः प्राग्वज्जपादिकम् ॥११५४॥

चौवालीसवें कलि में अवतरित कृष्ण का मन्त्र—अब मैं यहाँ पर चौवालीसवें कलि में समुद्भूत कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। पाँच अक्षरों का उनका मन्त्र है—कृष्णाय नमः। इस मन्त्र के जप आदि पूर्ववत् किये जाते हैं।।११५४।।

पञ्चचत्वारिंशत्तमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सायककृतसम्मिते कामबीजयोः।
मध्ये कृष्णाय पञ्चार्णः सर्वं पूर्ववदेव हि ॥११५५॥

पैंतालीसवें कलि में अवतरित कृष्ण का मन्त्र—अब यहाँ पर पैंतालीसवें कलि में विद्यमान कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। पाँच अक्षरों का वह मन्त्र है—क्लीं

कृष्णाय क्लीं। इस मन्त्र के जप, ध्यान आदि समस्त विधान पूर्ववत् ही कहे गये हैं।।११५५।।

षट्चत्वारिंशत्तमकल्युद्धूतकृष्णमन्त्रः

अथातः षट्कृतमिते गोपालायाग्निगेहिनी।
षडक्षरोऽयं मुन्यादिप्रयोगान्तं च पूर्ववत् ।।११५६।।

छियालीसवें कलि में समुद्धूत कृष्ण का मन्त्र—अब यहाँ पर छियालीसवें कलि में प्रकटित कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। छः अक्षरों का वह मन्त्र है—गोपालाय स्वाहा। मुनि से प्रारम्भ कर प्रयोग-पर्यन्त इस मन्त्र की समस्त विधियाँ पूर्ववत कही गई हैं।।११५६।।

सप्तचत्वारिंशत्तमकल्युद्धूतकृष्णमन्त्रः

अथातो नगवेदाख्ये क्लीं कृष्णायाग्निगेहिनी।
षडक्षरो मन्त्रराजो जपध्यानादि पूर्ववत् ।।११५७।।

सैंतालीसवें कलि में अवतरित कृष्ण का मन्त्र—अब यहाँ पर सैंतालीसवें कलि में समुद्धूत कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। छः अक्षरों का वह मन्त्रमुकुट है—क्लीं कृष्णाय स्वाहा। इस मन्त्र के जप, ध्यान आदि पूर्ववत् होते हैं।।११५७।।

अष्टचत्वारिंशत्तमकल्युद्धूतकृष्णमन्त्रः

अथाष्टवेदतुल्ये तु कृष्णायेति पदं वदेत्।
गोविन्दायेति सप्तार्णः प्राग्वन्मुन्यादिकं मतम् ।।११५८।।

अड़तालीसवें कलि में प्रकटित कृष्ण का मन्त्र—अब मैं अड़तालीसवें कलि में हुये कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। सात अक्षरों का वह मन्त्र है—कृष्णाय गोविन्दाय। इस मन्त्र के मुनि आदि सबकुछ पूर्ववत् कहे गये है।।११५८।।

एकोनपञ्चाशत्तमकल्युद्धूतकृष्णमन्त्रः

अथ गोवेदतुल्ये तु श्रीमायाकामबीजतः।
कृष्णाय कामबीजं च प्राग्वत्सप्ताक्षरो मनुः ।।११५९।।

उनचासवें कलि में अवतरित कृष्ण का मन्त्र—अब मैं उनचासवें कलि में अवतार ग्रहण किये कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। पूर्ववत् सात अक्षरों का वह मन्त्र है—श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय क्लीं। इस मन्त्र के भी ऋषि आदि सबकुछ पूर्ववत् होते हैं।।११५९।।

पञ्चाशत्तमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्र:

अथात: सम्प्रवक्ष्यामि पञ्चाशत्प्रमिते दधि।
भक्षणाय द्विठान्तोऽयमष्टवर्ण: प्रकीर्तित: ॥११६०॥

पचासवें कलि में अवतरित कृष्ण का मन्त्र—अब मैं पचासवें कलि में समुद्भूत कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। आठ अक्षरों का वह मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—दधिभक्षणाय स्वाहा।।११६०।।

एकपञ्चाशत्तमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्र:

अथैकपञ्चप्रमिते सुप्रसन्नात्मने नम:।
अष्टवर्ण: समाख्यातो मुन्याद्यं पूर्ववन्मतम् ॥११६१॥

इक्यावनवें कलि में प्रकटित कृष्ण का मन्त्र—अब यहाँ इक्यावनवें कलि में समुद्भूत कृष्ण के मन्त्र को कहा जा रहा है। आठ अक्षरों का वह मन्त्र कहा गया है—सुप्रसन्नात्मने नम:। इस मन्त्र के मुनि आदि सबकुछ पूर्ववत् कहे गये हैं।।११६१।।

द्विपञ्चाशत्तमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्र:

अथ द्विपञ्चप्रमिते कामं कृष्णाय संवदेत्।
गोविन्दाय पुन: कामो नवार्ण: परिकीर्तित: ॥११६२॥

बावनवें कलि में प्रकटित कृष्ण का मन्त्र—अब मैं बावनवें कलि में प्रकटित कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। नव अक्षरों का वह मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय क्लीं।।११६२।।

त्रिपञ्चाशत्तमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्र:

अथ त्रिपञ्चप्रमिते कृष्णो गोविन्द एव च।
ङेऽन्तश्च हृदयान्तश्च मनु: प्रोक्तो नवाक्षर: ॥११६३॥

तिरेपनवें कलि में अवतरित कृष्ण का मन्त्र—अब मैं तिरेपनवें कलि में अवतरित कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। नव अक्षरों का वह मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—कृष्णाय गोविन्दाय नम:।।११६३।।

चतु:पञ्चाशत्तमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्र:

अथ वेदेषु युक्तेषु कामं ग्लौं काममुच्चरेत्।
श्यामलाङ्गाय हृदयं दशार्ण: परिकीर्तित: ॥११६४॥

चौवनवें कलि में प्रकटित कृष्ण का मन्त्र—अब मैं चौवनवें कलि में समुद्भूत

कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। दस अक्षरों का उनका मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—क्लीं ग्लौं क्लीं श्यामलाङ्गाय नमः।।११६४।।

पञ्चपञ्चाशत्तमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथ पञ्चेषु संयुक्ते बालान्ते वपुषे वदेत्।
कृष्णाय वह्निजायान्तो मन्त्रः प्रोक्तो दशाक्षरः ॥११६५॥

पचपनवें कलि में प्रकटित कृष्ण का मन्त्र—अब यहाँ पर पचपनवें कलि में प्रकट हुये कृष्ण के मन्त्र को कहा जा रहा है। दस अक्षरों का मन्त्र है—बालवपुषे कृष्णाय स्वाहा।।११६५।।

षट्पञ्चाशत्तमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथ षड्बाणयुक्ते तु क्लीं कृष्णाय परेति च।
नन्देति बालवपुषे स्वाहा पञ्चदशाक्षरः ॥११६६॥

छप्पनवें कलि में उद्भूत कृष्ण का मन्त्र—अब मैं छप्पनवें कलि में समुद्भूत कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। पन्द्रह अक्षरों का वह मन्त्र है—क्लीं कृष्णाय परानन्द-बालवपुषे स्वाहा।।११६६।।

सप्तपञ्चाशत्तमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सप्तबाणमिते कलौ।
कामबीजद्वयं कृष्णपदं वेदार्ण उच्यते ॥११६७॥
मुन्यादयः षडङ्गानि चकार्णोक्तेन वर्त्मना।
तद्वद्ध्यानं विशेषोऽत्र कल्पवृक्षतले स्थितम् ॥११६८॥
अङ्गैरावरणं पूर्वं निधिभिस्तदनन्तरम्।
महापद्मश्च पंद्मश्च शङ्खो मकरकच्छपौ ॥११६९॥
मुकुन्दकुन्दनीलाश्च खर्वश्च निधयो नव।
लोकपालैश्च वज्राद्यैः पश्चादावरणद्वयम् ॥११७०॥
एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं वेदलक्षं जितेन्द्रियः।
दशांशं जुहुयादग्नौ श्रीफलैर्मधुरप्लुतैः ॥११७१॥
तर्पणादि ततः कुर्यात्पूर्वोक्तं मन्त्रसिद्धये।
मधुरत्रयसद्बुद्ध्या शुद्धतोयैर्दिनागमे ॥११७२॥
दशपूर्णप्रयोगाश्च कर्तव्याः साधकेन तु।
भुक्तिप्रदो मुक्तिदश्च सर्वकामप्रदस्त्विति ॥११७३॥

सत्तावनवें कलि में प्रकटित कृष्ण का मन्त्र—अब मैं सत्तावनवें कलि में उद्भूत कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। चार अक्षरों का वह मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—क्लीं क्लीं कृष्ण। इस मन्त्र के ऋष्यादि षडङ्ग न्यास बाईस अक्षरों वाले मन्त्र के समान होते हैं। ध्यान में यहाँ पर विशेषता यह है कि कल्पवृक्ष के नीचे अवस्थित कृष्ण का ध्यान किया जाता है।

पूजनक्रम में सर्वप्रथम षडङ्ग एवं आवरण-पूजन करने के उपरान्त नव निधियों का पूजन करना चाहिये। वे नव निधियाँ हैं—महापद्म, पद्म, शङ्ख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील एवं खर्व। इसके बाद दो आवरणों में दस दिक्पालों एवं उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये।

इस प्रकार पूजन करने के पश्चात् जितेन्द्रिय साधक को मन्त्र का चार लाख जप करना चाहिये। इसके बाद मधुर-प्लुत श्रीफल (बेल) से कृत जप का दशांश (चालीस हजार) हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् पूर्वोक्त मन्त्र की सिद्धि के लिये प्रातःकाल में शुद्ध जल को मधुरत्रय से समन्वित मानते हुये तर्पण आदि करने के बाद साधक को दस प्रयोग करने चाहिये। यह मन्त्र भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाला होने के साथ-साथ समस्त कामनाओं का प्रदाता कहा गया है।।११६७-११७३।।

अष्टपञ्चाशत्तमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वसुबाणमिते कलौ।
कृष्णस्यादौ द्वयोः कामबीजयोरङ्कयोजनात् ॥११७४॥
मन्त्रान्तरो युगे वृत्तो नारदाद्यैरुपासितः।
षड्दीर्घभाजा बीजेन तादृशेनाङ्गकल्पनम् ॥११७५॥
ततो ध्यायेत्कल्पवृक्षमूले चान्दोलिकास्थितम्।
किङ्किणीसंवृतकटिं नीलकुञ्चितमूर्द्धजम् ॥११७६॥
चित्रव्यासं सरोजाक्षं तिलकाभूषणान्वितम्।
आरक्तवर्णं गोपीभ्यां दशायां कलितं मुहुः।
प्राग्वत्पूजादिकं सर्वं पुरश्चर्या तथेरिता ॥११७७॥
रक्तपद्मैर्हुनेन्मन्त्री रक्तपत्रैर्दशांशतः।
तर्पणादि ततः कृत्वा गुरुं यत्नेन तोषयेत् ॥११७८॥
मधुरत्रयसंसिक्तामारक्तां शालिमञ्जरीम्।
जुहुयान्नित्यशः सार्धं शतमेकेन मन्त्रतः।
मण्डलात्सर्वसस्यादि वस्तुजातं तदा भवेत् ॥११७९॥

अट्ठावनवें कलि में समुद्भूत कृष्ण का मन्त्र—अब मैं अट्ठावनवें कलि में प्रकटित कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। 'कृष्ण' शब्द के आदि में दो कामबीजों को संयुक्त करने से यह मन्त्र इस प्रकार का होता है—क्लीं क्लीं कृष्ण। यह मन्त्र चारो युगों में नारद आदि मुनियों के द्वारा उपासित है। दीर्घ स्वर-समन्वित बीजमन्त्र के छः स्वरूपों (क्लां क्लीं क्लूं क्लैं क्लौं क्लः) से इसका षडङ्गन्यास करने के बाद कल्पवृक्ष के नीचे झूले पर विराजमान कृष्ण का ध्यान करना चाहिये। उनकी कमर में छोटी-छोटी घण्टियाँ लटक रही हैं, शिर पर नीले घुंघुराले बाल हैं, विचित्र फैले हुये कमल-सदृश उनके नेत्र हैं और वे तिलक से विभूषित हैं। किञ्चित् रक्त वर्ण वाले वे दो गोपियों द्वारा बार-बार आलिङ्गित हैं।

इनका पूजन आदि सबकुछ पूर्ववत् कहा गया है। पुरश्चरण-सिद्धि के लिये मन्त्र का चार लाख जप करने के उपरान्त रक्तकमलों एवं रक्तपत्रों (अशोक के पल्लवों) से कृत जप का दशांश हवन करना चाहिये। तदनन्तर तर्पण आदि करने के बाद यत्न-पूर्वक गुरु को सन्तुष्ट करना चाहिये।

इस मन्त्र के द्वारा चालीस दिनों तक प्रतिदिन त्रिमधु-संसिक्त किञ्चित् रक्तवर्ण धान्यमञ्जरियों की एक सौ इक्यावन आहुतियाँ प्रदान करते हुये यदि हवन किया जाता है, तो समस्त शस्यादि सम्पत्तियाँ साधक को प्राप्त होती हैं।।११७४-११७९।।

एकोनषष्टिकल्युद्धूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि नवबाणमिते कलौ।
वाग्लज्जाक्लींरमाह्लींग्रींश्रींत्रींजयजयेति च ॥११८०॥
कृष्णकृष्णोति चाभाष्य निरन्तरपदं वदेत्।
क्रीं त्रीं नित्यप्रमुदितरेतसे पदमुच्चरेत् ॥११८१॥
नित्यक्रियाय कृष्णाय क्लीं गोपीजनवल्लभा।
य स्वाहा ग्रीं च ह्लीं चेति द्विपञ्चाशल्लिपिर्मनुः ॥११८२॥
आनन्दनारदमुनिर्विराट् छन्दोऽस्य देवता।
सम्मोहनहरिः प्रोक्तो मन्त्रवर्णैः षडङ्गकम् ॥११८३॥
आद्यन्तैश्च त्रिभिर्बीजैः संयुक्तैश्च क्रमेण च।
अष्टभी रविभिर्नेत्रैर्नवभिश्च नखेन्दुभिः ॥११८४॥
न्यासादिकं ततः कृत्वा देहे पीठं प्रकल्प्य च।
हस्तद्वये दशार्णोक्तविधिना न्यासमाचरेत् ॥११८५॥
षडङ्गान्यस्य कामानां पञ्च पञ्च प्रविन्यसेत्।
त्रिवारं मूलमन्त्रेण व्यापकं च ततश्चरेत् ॥११८६॥

कामसम्पुटितान्यस्य मातृकार्णान्यथा पुरा।
दशतत्त्वादिकं न्यस्य तदन्ते मूर्तिपञ्जरम् ॥११८७॥
सृष्टिस्थितिषडङ्गानि वर्णान्यस्येच्च पूर्ववत्।
सर्वमन्यत्पुरोक्तेन विधानेन विधाय वै ॥११८८॥
साधकः सर्वलोकेशं ध्यायेत्सम्मोहनं हरिम्।

उनसठवें कलि में समुद्भूत कृष्ण का मन्त्र—अब मैं उनसठवें कलि में प्रकटित कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। बावन अक्षरों का वह मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—ऐं ह्रीं क्लीं श्रीं ह्रीं ग्रीं ज्रीं त्रीं जय जय कृष्ण कृष्ण निरन्तरं क्रीं त्रीं नित्यप्रमुदितरेतसे नित्यक्रियाय कृष्णाय क्लीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा ग्रीं ह्रीं।

इस मन्त्र के ऋषि आनन्दनारद, छन्द विराट् एवं देवता सम्मोहन हरि कहे गये हैं। मन्त्र के आठ, बारह, दो, नव, पाँच एवं सोलह वर्णों के आदि और अन्त में तीन बीजों (ऐं ह्रीं क्लीं) को संयुक्त करके इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये। इस प्रकार न्यास आदि करने के बाद अपने शरीर में पीठ की कल्पना करके दोनों हाथों में दशाक्षर मन्त्रोक्त विधि से न्यास करना चाहिये। हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र, अस्त्र में पाँच-पाँच बार क्लीं बीज का न्यास करने के बाद तीन बार मूल मन्त्र से व्यापक न्यास करना चाहिये।

तत्पश्चात् क्लीं से सम्पुटित इक्यावन मातृकाओं से पूर्ववत् न्यास करने के बाद दस तत्त्वों का न्यास करके मूर्तिपञ्जर न्यास करना चाहिये। पुनः सृष्टि, स्थिति एवं षडङ्गन्यास करके पूर्ववत् मन्त्रवर्णन्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् अन्य सबकुछ पूर्वोक्त विधान से करके साधक को समस्त लोकों के स्वामी सम्मोहन हरि का ध्यान करना चाहिये।।११८०-११८८।।

पुरे च मणिजे रम्ये पर्वताम्बुधिमध्यगे ॥११८९॥
नानाशोभाविचित्रेण मणिभिर्दीपितान्तरे।
उद्यानवापिकावाटीनानाजनमनोहरे ॥११९०॥
तत्रातिरम्ये विपुले विश्वकर्मविनिर्मिते।
नानारत्नगणाकीर्णे गेहे सञ्चिन्तयेद्धरिम् ॥११९१॥
नानालङ्कारशोभाढ्यं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम्।
नानासुगन्धरुचिरमङ्कन्यस्तकराम्बुजम् ॥११९२॥
विहिताम्भोजयुग्माभ्यां विस्तृताभ्यां च कामतः।
आलिङ्ग्य तां च बाहुभ्यां श्वेतमुक्ताविभूषितम् ॥११९३॥

स्वदक्षस्थितयाश्लिष्टं श्यामया सत्यभामया।
चक्रवज्जाम्बवत्या च श्लिष्टं वामस्थया तथा ॥११९४॥
कालिन्द्या च परिश्लिष्टमग्रदेशस्थया विभुम्।
पद्मं गदां शङ्खचक्रे चतुर्भिर्दधतं करैः ॥११९५॥
करद्वयलसद्वंशविभावितमुखाम्बुजम्।
चतुर्दिक्षु बहिर्देवैर्मुनिभिः सेवकैर्वृतम् ॥११९६॥

पर्वतों एवं समुद्रों के मध्य में रमणीय मणिमय पुर के भीतर अनेक उपवनों, छोटे-छोटे जलाशयों, पुष्पवाटिकाओं एवं अनेक लोगों से मनोहर अनेक प्रकार की शोभा से विचित्र मणियों से दीपित भीतरी भाग में अत्यन्त रमणीय अनेक रत्नों से खचित विश्वकर्मा-निर्मित गृह में विराजमान हरि का चिन्तन करना चाहिये। वे अनेक अलंकारों की शोभा से सम्पन्न हैं, उनके वक्षःस्थल पर श्रीवत्स का चिह्न अंकित है और अपने करकमलों को बहुविध सुगन्धित द्रव्यों से मनोहर गोद में रखे हुये हैं। दो विकसित कमलपुष्पों से अलंकृत बाहुओं वाले वे श्वेत मोतियों से विभूषित हैं। वे अपने दाहिने भाग में स्थित श्याम वर्ण वाली सत्यभामा, बाँयें भाग में अवस्थित चक्र-सदृश जाम्बवती तथा आगे स्थित कालिन्दी के द्वारा आश्लिष्ट हैं। अपने चारो हाथों में वे पद्म, गदा, शङ्ख एवं चक्र धारण किये हुये हैं। दोनों हाथों में सुशोभित वंशी से इंगित उनका मुखकमल है। उनका वह पुर चारो दिशाओं में बाहर से मुनियों, देवताओं एवं सेवकों द्वारा घिरा हुआ है।।११८९-११९६।।

एवं ध्यात्वा तु पूर्वोक्ते पीठे देवं समर्चयेत्।
विंशार्णोदितयन्त्रं च सम्यगत्र सुलेखयेत् ॥११९७॥
मध्यस्थपीठपरितः पूर्वादिषु लिखेत्क्रमात्।
ह्लींत्रींह्लींत्रीं च बीजानि शिष्टैर्वर्णैः प्रवेष्टयेत् ॥११९८॥
दशबीजैर्विरहितैर्द्विचत्वारिंशसम्मितैः।
षट्कोणेऽथ क्रमाल्लेख्यं ऐंह्लींश्रीमीशकोणतः ॥११९९॥
पुनस्तान्येव नैर्ऋत्याच्छेषं प्राग्वत्समाचरेत्।
अर्घ्यपात्रादि संस्थाप्य मध्यबीजे हरिं यजेत् ॥१२००॥
यथाध्यानं च तत्पूर्वादिष्वर्च्या रुक्मिणीमुखाः।
अङ्गानि षट्सु कोणेषु वामाङ्के सर्वगां यजेत् ॥१२०१॥
दलमध्ये तु लक्ष्म्याद्यास्तदग्रे धनुरादिकाः।
यजेत्कृष्णाग्रमध्ये तु पृष्ठगं चाङ्गनं धनुः ॥१२०२॥

शङ्खपद्मौ निधी पूज्यौ शुक्लवर्णौ तु पार्श्वयोः।
सर्वदा चापि वर्षन्तौ धाराभिर्वस्तुसञ्चयम् ॥१२०३॥
हेरम्बं साम्बनामानं दुर्गां च तदनन्तरम्।
विष्वक्सेनं च कोणेषु वर्णगान् पक्षिणो यजेत् ॥१२०४॥
रक्तमारक्तसुप्रख्यदूर्वाकनकवर्णकान्।
तद्बहिर्वासवादीनां वज्रादीनां च पूजनम् ॥१२०५॥

इस प्रकार से ध्यान करने के बाद पूर्वोक्त पीठ पर देव का सम्यक् रूप से अर्चन करना चाहिये। इसके बाद विंशाक्षर मन्त्र में कथित यन्त्र का सुन्दर रूप में अंकन करना चाहिये। उसमें मध्यस्थ पीठ के चारो ओर पूर्वादि दिशाक्रम से 'ह्रीं त्रीं ह्रीं त्रीं' इन बीजों को अंकित करने के उपरान्त उपर्युक्त बावन अक्षरों वाले मन्त्र में उल्लिखित दस बीजों को छोड़कर शेष बयालीस वर्णों को मध्य बिन्दु के चारो ओर लिखना चाहिये।

तत्पश्चात् षट्कोण में ईशान कोण से प्रारम्भ करके क्रमशः 'ऐं ह्रीं श्रीं' बीज को अंकित करने के बाद पुनः नैर्ऋत्य कोण से प्रारम्भ करके शेष कोणों में 'ऐं ह्रीं श्रीं' लिखना चाहिये। इसके बाद अर्घ्यपात्र आदि का स्थापन करने के उपरान्त यन्त्र के मध्य बिन्दु में श्रीहरि का यजन करना चाहिये। पुनः यथोक्त ध्यान करते हुये पूर्वादि क्रम से रुक्मिणी आदि पटरानियों का अर्चन करने के बाद षट्कोणों में हरि के वामाङ्क में स्थित रूप से अङ्गों का पूजन करना करना चाहिये।

दलों के मध्य में कृष्ण के आगे लक्ष्मी का एवं पीछे अञ्जन तथा धनु का पूजन करने के बाद दोनों पार्श्वों में शुक्ल वर्ण वाले विविध वस्तुओं की धाराप्रवाह वर्षा करते हुये शङ्खनिधि एवं पद्मनिधि का पूजन करना चाहिये। उसके बाद भूपुर के कोणों में प्रत्यक्षतया रक्त, ईषत् रक्त, दूर्वा एवं स्वर्णवर्ण वाले हेरम्ब, साम्ब, दुर्गा एवं विष्वक्सेन का पूजन करने के बाद उसके बाहर इन्द्रादि दस दिक्पालों एवं उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये।।११९७-१२०५।।

दीक्षितो विधिना मन्त्रं प्राप्यामुं सद्गुरोः कृती।
दर्शनं भाषणं स्पर्शवचनश्रवणादिकम्।
वर्जयेत्प्रजपेल्लक्षं स्त्रीमात्रस्य गुरोरपि ॥१२०६॥
सिताब्जमधुमिश्रैश्च दशांशं पायसैर्हुनेत्।
तर्पणं मार्जनं कृत्वा ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ॥१२०७॥

सद्गुरु से अथवा स्त्रीगुरु से भी विधिवत् दीक्षित होकर इस मन्त्र को प्राप्त करने के पश्चात् स्त्रियों का दर्शन, उनसे वार्तालाप, उनका स्पर्श, उनके वचनों का श्रवण—

इन सबका त्याग करते हुये मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिये। तत्पश्चात् मधुमिश्रित श्वेत कमल एवं पायस से कृत जप का दशांश (दस हजार) हवन करने के बाद तर्पण, मार्जन करके ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये।।१२०६-१२०७।।

मन्त्रमेनं जपेद्यस्तु प्रत्यहं विधिनामुना।
समर्चयति गीर्वाणाँल्लोकानन्दकरश्च सः ॥१२०८॥
दिवादौ कृष्णचन्द्रं च दुग्धबुद्ध्या जलैः शुभैः।
अन्वहं तर्पयेद्यस्तु शतं साग्रं भवेद् ध्रुवम् ॥१२०९॥
इन्दुश्रीजलबिन्द्वाभस्तद्विभूतिमहार्णवः।
चन्द्रचन्दनपङ्काक्तमालतीकुसुमैर्यवैः ॥१२१०॥
अयुतं मन्त्रवर्णेन यो जुहोति विभावसौ।
त्रैलोक्यं तद्वशे तिष्ठेत्ख्यातः कविवरो भवेत् ॥१२११॥
मन्त्रिणो ध्यानमात्रेण मन्त्रस्यास्य यथाविधि।
वश्या भवन्ति सततं स्मरार्ताः सुरयोषितः ॥१२१२॥
जपादिकर्मभिर्नूनमस्मात्किं किं न लभ्यते।
स्पर्द्धां स्वाभाविकीं त्यक्त्वा चित्रमेतत्सुमन्त्रिणः।
ग्रहेन्दिरा सदस्या स्यात्सेवने भक्तितत्परा ॥१२१३॥
व्याधिदारिद्र्यपापौघक्रूरग्रहविषादिभिः।
विपत्तिदुःखदौर्भाग्यमृत्य्वादिरहितः सदा ॥१२१४॥
पुत्रपौत्रधनारोग्यवरस्त्रीगन्धवाहिभिः।
सम्पन्नः सर्वसम्पत्त्या यशस्वी दीर्घजीवनः ॥१२१५॥

इस विधि से प्रतिदिन जो साधक इस मन्त्र का जप करके देवताओं का अर्चन करता है, वह लोकों को आनन्द प्रदान करने वाला होता है। जो साधक देवता के आगे प्रतिदिन दिन के प्रारम्भ में जल में दुग्धबुद्धि रखते हुये उससे एक सौ तर्पण करता है, वह निश्चित ही लक्ष्मी के स्वच्छ वैभव का आगार हो जाता है।

जो साधक रात्रि में कर्पूर एवं चन्दन के लेप से सिक्त मालती-पुष्पों एवं यव (जौ) से मन्त्र का उच्चारण करते हुये दस हजार हवन करता है, उसके वश में तीनों लोक हो जाते हैं, वह विख्यात एवं श्रेष्ठ कवि हो जाता है। कामार्त्त देवाङ्गनायें इस मन्त्र के विधिवत् ध्यानमात्र करने वाले मन्त्रज्ञ साधक के वशीभूत रहती हैं। इस मन्त्र के जप आदि कर्म करने से क्या नहीं प्राप्त किया जा सकता? अपनी स्वाभाविक स्पर्धा का त्याग करके ग्रह एवं लक्ष्मी इस मन्त्र का स्मरण करने वाले साधक के सेवन में

भक्ति-पूर्वक तत्पर हो जाती हैं। वह मन्त्रज्ञ साधक व्याधि, दारिद्र्य, समस्त प्रकार के पाप, क्रूर ग्रह, विष, विपत्ति, दु:ख, दुर्भाग्य, मृत्यु आदि से रहित होकर पुत्र, पौत्र, धन, आरोग्य, सुन्दर पत्नी, कस्तूरी मृग एवं समस्त सम्पत्तियों से सम्पन्न होकर यशस्वी एवं दीर्घजीवी होता है।।१२०८-१२१५।।

षष्टितमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्र:

अथात: सम्प्रवक्ष्यामि कलौ षष्टिमिते मनुम्।
यज्जपादेव पुत्रादेरुत्पत्तिर्भवति ध्रुवम्।।१२१६।।
देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गत:।।१२१७।।
द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रो नारदोऽस्य मनोर्मुनि:।
छन्दोऽनुष्टुब्देवता च कृष्ण: सन्तानदायक:।।१२१८।।
पादैश्चतुर्भि: सर्वैश्च पञ्चाङ्गानि मनोर्विदु:।
शङ्खचक्रधरं देवं श्यामवर्णं चतुर्भुजम्।।१२१९।।
सर्वाभरणसन्दीप्तं पीतवाससमच्युतम्।
मयूरपिच्छसंयुक्तं विष्णुतेजोपबृंहितम्।
समर्पयन्तं विप्राय नष्टानानीय बालकान्।।१२२०।।
ध्यात्वा ततोऽर्चनादीनि कुर्याद्भक्तिपरायण:।
अर्चना चेन्द्रवज्राद्यैरुदितास्य महात्मन:।।१२२१।।

साठवें कलि में समुद्भूत कृष्ण का मन्त्र—अब मैं साठवें कलि में अवतरित कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ, जिसके जप से निश्चित ही पुत्र आदि की उत्पत्ति होती है। बत्तीस अक्षरों का वह मन्त्र इस प्रकार है—देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते। देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गत:। इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता सन्तान-प्रदायक कृष्ण कहे गये हैं। मन्त्र के चार पादों एवं सम्पूर्ण मन्त्र से इसका पञ्चाङ्गन्यास किया जाता है।

तदनन्तर शंख-चक्र धारण करने वाले, श्याम वर्ण वाले, चार भुजाओं वाले, समस्त आभूषणों से अत्यन्त प्रकाशमान, पीत वस्त्र धारण करने वाले, मयूरपिच्छ से संयुक्त, विष्णुतेज से उपबृंहित, मृत बालक को लाकर ब्राह्मण को समर्पित करने वाले अच्युत का ध्यान करके भक्तिपरायण होकर उनका अर्चन आदि करना चाहिये। साथ ही इन्द्रादि दस दिक्पालों एवं उनके वज्रादि आयुधों का भी अर्चन करना चाहिये। यही भगवान् कृष्ण का अर्चन कहा गया है।।१२१६-१२२१।।

लक्षं जप्त्वा तद्दशांशं जुहुयाद्गोघृतेन च ।
तर्पणादि ततः कुर्यान्मन्त्रः सिद्ध्यति मन्त्रिणः ॥१२२२॥
दशम्यामर्धरात्रे तु शुक्लपक्षस्य मन्त्रवित् ।
पुत्रार्थे शान्तिकं कृत्वा तत्रस्थो विष्णुमर्चयेत् ॥१२२३॥
य एवं भजते मन्त्री साधकः पुत्रकाम्यया ।
स वर्षाल्लभते पुत्रं विनीतं चिरजीविनम् ॥१२२४॥

तत्पश्चात् मन्त्र का एक लाख जप करने के उपरान्त गोघृत से कृत जप का दशांश (दस हजार) हवन करके तर्पण आदि करने से मन्त्रज्ञ साधक को मन्त्र सिद्ध हो जाता है। पुत्र-प्राप्ति के लिये शुक्लपक्ष की दशमी तिथि को अर्धरात्रि में साधक को शान्तिकर्म करने के अनन्तर वहीं बैठकर विष्णु का अर्चन करना चाहिये। पुत्र की कामना से जो मन्त्रज्ञ साधक इस प्रकार उपासना करता है, वह एक वर्ष बाद विनीत एवं चिरजीवी पुत्र को प्राप्त करता है।।१२२२-१२२४।।

एकषष्टितमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि ह्येकषष्टितमे कलौ ।
वासुदेवाय निगडच्छेदन ङेऽन्तमुच्चरेत् ।
वासुदेवाय हुंफट् च स्वाहा विंशार्णको मनुः ॥१२२५॥
नारदोऽस्य मुनिः प्रोक्तो गायत्री छन्द उच्यते ।
श्रीकृष्णो देवता प्रोक्तो निगडच्छेदकारकः ।
न्यासध्यानजपार्चादि दशवर्णोक्तवद्भवेत् ॥१२२६॥

इकसठवें कलि में प्रकटित कृष्ण का मन्त्र—अब मैं इकसठवें कलि में प्रकट हुये कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। बीस अक्षरों का वह मन्त्र है—वसुदेवनिगडच्छेदनाय वासुदेवाय हुं फट् स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द गायत्री एवं देवता निगड़-च्छेदनकारक श्रीकृष्ण कहे गये हैं। इसके न्यास, ध्यान, जप, पूजन दशाक्षर मन्त्र के समान होते हैं।।१२२५-१२२६।।

द्विषष्टितमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि नेत्रषष्टिमिते कलौ ।
कामबीजात्मको मन्त्रो मुनिर्मोहननारदः ॥१२२७॥
छन्दो गायत्रकं देवः कृष्णः सम्मोहनो मतः ।
षड्दीर्घभाजा बीजेन षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ॥१२२८॥

आसनं न्यासपर्यन्तं चोक्तरीत्या विधाय तु।
अङ्गुलीषु न्यसेदङ्गं हस्तयोस्तलयोरपि ॥१२२९॥
पञ्चाङ्गुलीषु बाणांश्च पूर्वोक्तान् क्रमतो न्यसेत्।
बीजसम्पुटितान्न्यस्य मातृकार्णाननन्तरम् ॥१२३०॥
षडङ्गानि पुनर्न्यस्य यथास्थाने शरान्न्यसेत् ॥१२३१॥
शिरोवदनहृल्लिङ्गपादेषु क्रमतः सुधीः।
शेषतत्प्रमुखानेतान् पञ्चबीजप्रपूर्वकान्॥१२३२॥

बासठवें कलि में समुद्भूत कृष्ण का मन्त्र—अब मैं बासठवें कलि में अवतरित कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। इनका एकाक्षर मन्त्र है—क्लीं। इस मन्त्र के ऋषि मोहन नारद, छन्द गायत्री एवं देवता सम्मोहन कृष्ण कहे गये हैं। दीर्घ स्वर-युक्त बीजमन्त्र के छ: स्वरूपों (क्लां क्लीं क्लूं क्लैं क्लौं क्ल:) से इसका षडङ्ग न्यास किया जाता है। आसन से न्यास-पर्यन्त समस्त कर्म पूर्वोक्त रीति से करने के बाद हाथ की अंगुलियों एवं दोनों हस्ततलों में अङ्ग-न्यास करना चाहिये। साथ ही पाँचो अंगुलियों में पूर्वोक्त पाँच बाणों का भी न्यास करना चाहिये। इसके बाद बीजमन्त्र से सम्पुटित मातृकाओं का न्यास करके पुन: षडङ्गन्यास करने के बाद यथास्थान कामदेव के पाँच बाणों का पाँच बीजों के सहित क्रमश: शिर, मुख, हृदय, लिङ्ग एवं गुह्यप्रदेश में न्यास करना चाहिये।।१२२७-१२३२।।

जगत्सम्मोहनं कृष्णं ध्यायेत्पश्चात्समाहितः।
वृन्दारकद्रुमौघेन विलसत्कल्पशाखिनः।
मूले लसत्स्थलीराजद्रत्नसिंहासनोपरि ॥१२३३॥
वामस्कन्धे पक्षिपत्रे स्थितं बन्धूकसन्निभम्।
अरिशङ्खसृणीन् पाशं पुष्पबाणेक्षुकार्मुकम् ॥१२३४॥
पद्मं गदां च हस्ताब्जैरष्टभिर्दधतं निजैः।
घूर्णनेत्रं कुण्डलिनं हारिणं सुकिरीटिनम् ॥१२३५॥
किङ्किणीनूपुराद्यैश्च मुद्रिकारत्नमाल्यकैः।
पीताम्बरै रक्तलेपैर्युक्तं वामोरुगां रमाम्।
आलिङ्गन्तं वामबाहुधृतपद्मावलिं विभुम् ॥१२३६॥
विंशाक्षरोदिते पीठे भूषणाद्यैर्यजेद्धरिम्।
पश्चादङ्गानि बाणांश्च न्यासमार्गेण पूजयेत् ॥१२३७॥
किरीटं मस्तके श्रोत्रद्वये कुण्डलयुग्मकम्।
चक्राद्यं त्रिषु हस्तेषु श्रीवत्सं कौस्तुभं तथा ॥१२३८॥

वक्षो हृदि तथा कण्ठे वनमालां नितम्बके।
पीताम्बरं महालक्ष्मीं वामाङ्के बीजपूर्विकाम् ॥१२३९॥
अभ्यर्च्य कर्णिकामध्ये दिग्विदिक्ष्वङ्गदेवताः।
ततो बहिश्चरान् बाणान् दिक्षु कोणेषु पूजयेत् ॥१२४०॥
यजेदग्राग्रपत्रेषु लक्ष्म्याद्याः प्रोक्तलक्षणाः।
इन्द्रादीन् पूजयेद्वाह्ये वज्रादीन्यायुधान्यपि ॥१२४१॥

तदनन्तर समाहित चित्त से जगत् को सम्मोहित करने वाले कृष्ण का ध्यान करना चाहिये। उत्कृष्ट वृक्षों से सुशोभित कल्पवृक्ष के नीचे शोभायमान स्थल पर सुशोभित रत्न-निर्मित सिंहासन के ऊपर बाँयें भाग में गरुड़ के पंख पर बन्धूकपुष्प-सदृश विराजमान, आठ हाथों में चक्र, शंख, सृणि (अंकुश), पाश, पुष्पबाण, इक्षुधनुष, पद्म एवं गदा धारण किये हुये, घूर्णित नेत्रों वाले, कुण्ड़ल हार एवं किरीट धारण किये हुये, करधनी नूपुर अंगूठी रत्नमाला पीत वस्त्र एवं रक्त अङ्गराग से युक्त, बाँयीं जङ्घा पर विद्यमान लक्ष्मी का आलिङ्गन करते हुये एवं बाँयीं भुजा में कमलों की माला धारण किये हुये विभु कृष्ण का ध्यान करके विंशाक्षर मन्त्र में कथित पीठ पर आभूषण आदि से पूजन करना चाहिये। उसके बाद न्यासमार्ग से अङ्गों एवं बाणों का पूजन करना चाहिये। इसके बाद कर्णिकामध्य में बीज का उच्चारण करते हुये मस्तक पर किरीट का, कर्णयुगलों में दोनों कुण्डलों का, तीन हाथों में चक्र शङ्ख एवं गदा का, वक्षःस्थल पर श्रीवत्स तथा कौस्तुभ का, कण्ठ में वनमाला का, नितम्ब पर पीताम्बर का एवं वाम पार्श्व में महालक्ष्मी का अर्चन करने के पश्चात् बाहर दृगोचर होने वाले बाणों का दिशाओं के कोणों में पूजन करना चाहिये। उसके आगे पत्रों में लक्ष्मी आदि का पूजन करने के उपरान्त उसके बाहर भूपुर में इन्द्रादि दस दिक्पालों एवं उनके वज्रादि दस आयुधों का पूजन करना चाहिये।।१२३३-१२४१।।

प्रजपेद्दशलक्षाणि पलाशकुसुमैर्हुनेत्।
त्रिस्वाद्वक्तैस्तर्पयेच्च सहस्रद्वादशावधि ॥१२४२॥
आत्माभिषेकं कृत्वाथ विप्रानभ्यर्च्य तोषयेत्।
अनेन मनुना तोयैर्मोहिनीपुष्पसंयुतैः ॥१२४३॥
दिनादारभ्य मन्त्री तु तर्पयेच्च फलप्रदम्।
त्रैलोक्यं मोहयेद्यस्तु जपेन्मन्त्रं समाहितः ॥१२४४॥
सर्वान् कामानवाप्नोति वाञ्छितानत्र वर्णितान्।
अयुतं सर्पिषा हुत्वा ससम्पातं हुताशने ॥१२४५॥

तावज्जले जपित्वा च तद्घृतं भोजयेत्स्त्रियम्।
यस्तु तद्वशगा सा स्यात्सापि तं वशमानयेत्॥१२४६॥
अष्टादशलिपिप्रोक्ते वश्यं चानेन साधयेत्।
एवं यो भजते मन्त्रं भोगान् भुक्त्वा हरिं व्रजेत्।

इसके बाद मन्त्र का दस लाख जप करने के पश्चात् त्रिमधु-सिक्त पलाशपुष्पों से हवन करने के बाद बारह हजार तर्पण करने के उपरान्त स्वयं का अभिषेक (मार्जन) करके ब्राह्मणों का अर्चन करते हुये भोजन कराकर उन्हें प्रसन्न करना चाहिये।

जो मन्त्रज्ञ साधक प्रतिदिन प्रात:काल इस मन्त्र के द्वारा मोहिनीपुष्प-संयुक्त जल से तर्पण करता है, वह तीनों लोकों को मोहित करने में समर्थ हो जाता है।

जो साधक एकाग्रचित्त होकर इस मन्त्र का जप करता है, वह यहाँ कथित समस्त अभीष्ट कामनाओं को प्राप्त कर लेता है।

जो साधक गोघृत की दस हजार आहुतियों से अग्नि में हवन करते समय घृतबूँदों को जलपात्र में टपकाते हुये हवन के पश्चात् दस हजार मन्त्रजप करके उस घृत को किसी स्त्री को खिलाता है, वह स्त्री उस साधक के वशीभूत हो जाती है। इसी प्रकार से स्त्री भी पुरुष को वशीभूत कर सकती है। अट्ठारह अक्षरों वाले मन्त्र में वर्णित वशीकरण को इस मन्त्र से सिद्ध किया जा सकता है।

इस प्रकार जो मन्त्रज्ञ साधक इस मन्त्र की उपासना करता है, वह इस संसार में भोगों का भोग करने के बाद शरीरान्त होने पर विष्णुलोक में गमन करता है।

त्रिषष्टितमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि रामषष्टिमिते कलौ॥१२४७॥
त्रैलोक्यमोहनाय विद्महे स्मराय धीमहि।
तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्॥१२४८॥
जपेदस्यैव गायत्रीं चतुर्वर्गफलप्रदाम्।
मुन्यादि सकलं प्राग्वद् गायत्री सपुरस्क्रिया।
नाशयेत्सर्वपापानि सिद्धेयं कल्पवल्लिका॥१२४९॥
यद्यदिष्टं भवेत्कार्यं सहस्रादयुतादपि।
यथायोग्यं जपेत्साध्यमसाध्यं च प्रसिद्ध्यति॥१२५०॥

तिरेसठवें कलि में अवतरित कृष्ण का मन्त्र—अब मैं तिरेसठवें कलि में समुद्भूत कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—त्रैलोक्यमोहनाय विद्महे स्मराय धीमहि

तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्। इस गायत्री मन्त्र का जप करने मात्र से ही धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षरूप चतुर्वर्गफल की प्राप्ति होती है। इस गायत्री मन्त्र के ऋषि आदि सबकुछ पूर्ववत् ही होते हैं। पुरश्चरण-सहित यह गायत्री समस्त पापों का नाश करती है। सिद्ध होने पर यह गायत्री कल्पवृक्ष के समान होती है और यह साधक के साध्य अथवा असाध्य-रूप किसी भी अभीष्ट कार्य को यथायोग्य एक हजार से लेकर दस हजार तक जप करने से सिद्ध करती है।।१२४७-१२५०।।

चतुःषष्टितमकल्युद्धूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वेदषष्टिमिते कलौ।
ग्लौमित्येकाक्षरो मन्त्रो जगती छन्द ईरितम् ॥१२५१॥
ऋषिस्तु नारदः प्रोक्तः श्रीकृष्णो देवता मतः।
बीजं गकार ॐकारः शक्तिः प्रोक्तं षडङ्गकम् ॥१२५२॥
षड्दीर्घान्वितबीजेन गकारं मूर्ध्नि विन्यसेत्।
ग्लौं नाभौ तु तथौं गुल्फे बिन्दुं पादद्वये न्यसेत् ॥१२५३॥
कदम्बमूले क्रीडन्तं वृदावननिवासिनम्।
पद्मोपरि स्थितं वन्दे वेणुं गायन्तमीश्वरम् ॥१२५४॥
पीताम्बरधरं देवं वनमालाविभूषितम्।
गोपीभिर्गोपवृन्दैश्च सेवितं कृष्णमर्चयेत् ॥१२५५॥
दशार्णवच्च पूजा स्यात्पिङ्गगोपालसम्मता।
लक्षायुतसहस्राणि चत्वार्यस्य जपो मनोः ॥१२५६॥
घृतहोमदशांशेन तर्पणादि ततश्चरेत्।
एवं संसिद्धमन्त्रस्तु दशार्णोक्तप्रयोगकान् ॥१२५७॥
कुर्यादिह तु सौभाग्यमन्ते याति हरेः पुरम् ॥१२५८॥

चौंसठवें कलि में प्रकटित कृष्ण का मन्त्र—अब मैं चौसठवें कलि में प्रकट हुये कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। इनका एकाक्षर मन्त्र है—ग्लौं। इस एकाक्षर मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द जगती एवं देवता श्रीकृष्ण कहे गये हैं। इसका बीज गकार एवं शक्ति ॐ कहा गया है। बीज के छः दीर्घ स्वरूपों (गां गीं गूं गैं गौंः गः) से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् वर्णन्यास के क्रम में गकार का मूर्धा में, ग्लौं का नाभि में, औं का गुल्फ में एवं बिन्दु का दोनों पैरों में न्यास करना चाहिये।

इसके बाद इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—कदम्ब के नीचे क्रीड़ा करते हुये, वृन्दावन में निवास करने वाले, कमल पर विराजमान, वंशी-वादन करते हुये ईश्वर

को मैं प्रणाम करता हूँ। तत्पश्चात् वनमाला से विभूषित तथा गोपवधुओं एवं गोपों द्वारा सेवित पीताम्बर-धारी प्रभु कृष्ण का पूजन करना चाहिये।

दशाक्षर मन्त्र के समान ही पिङ्गगोपाल का पूजन कहा गया है। एक लाख, दस हजार अथवा चार हजार की संख्या में इस मन्त्र का जप करना कहा गया है। यथेच्छ जप के उपरान्त घृत से कृत जप का दशांश हवन करने के बाद तर्पण आदि करना चाहिये। इस प्रकार से सिद्ध किये गये इस मन्त्र से दशाक्षर मन्त्र के समान प्रयोगों का साधन करना चाहिये। इस मन्त्र को सिद्ध करने वाला साधक संसार में सौभाग्यशाली होता है एवं शरीरान्त होने पर विष्णुलोक को प्रस्थान करता है।।१२५१-१२५८।।

पञ्चषष्टितमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि पञ्चषष्टिमिते कलौ।
कामबीजान्तरे कृष्णमन्त्रोऽयं त्र्यक्षरो मतः ।।१२५९।।
नारदोऽस्य मुनिश्छन्दो गायत्री देवता मता।
कृष्णः ककारो बीजं स्यादीकारः शक्तिरुच्यते ।।१२६०।।
षड्दीर्घस्वरयुक्तेन मूलेनापि षडङ्गकम्।
ध्यानपूजाप्रयोगादि पिङ्गगोपालवन्मतम् ।।१२६१।।

पैंसठवें कलि में अवतरित कृष्ण का मन्त्र—अब मैं पैंसठवें कलि में प्रकट हुये कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। तीन अक्षरों का वह मन्त्र है—क्लीं कृष्ण। इसके ऋषि नारद, छन्द गायत्री, देवता कृष्ण, बीज ककार एवं शक्ति ईकार कहा गया है। छः दीर्घ स्वर-युक्त मूल मन्त्र से इसका षडङ्ग न्यास करना चाहिये। इस मन्त्र के ध्यान, पूजन, प्रयोग आदि पिङ्गगोपाल मन्त्र के समान ही कहे गये हैं।।१२५९-१२६१।।

षट्षष्टितमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि रसषष्टिमिते कलौ।
तारो नमश्च कृष्णाय मन्त्रो रसमितार्णकः ।।१२६२।।
नारदोऽस्य मुनिश्छन्दो गायत्री देवता मताः।
श्रीकृष्णः प्रणवो बीजं माया शक्तिश्च पूर्ववत्।

छियासठवें कलि में अवतरित कृष्ण का मन्त्र—अब मैं छियासठवें कलि में अवतरित कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। छः अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ नमः कृष्णाय। इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द गायत्री, देवता कृष्ण, बीज ॐ एवं शक्ति ह्रीं कहे गये हैं। ध्यान, पूजन आदि पूर्ववत् होते हैं।।१२६२।।

विशंष—यहाँ पर मूल ग्रन्थ की वर्त्तमान में उपलब्ध प्रतियों में सड़सठवें कलि

में अवतरित कृष्ण का मन्त्र वर्णित नहीं है; प्रतीत होता है कि मूल पाठ स्खलित हो गया है।

अष्टषष्टितमकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वसुषष्टिमिते कलौ ॥१२६३॥
उत्तिष्ठ श्रीकृष्ण स्वाहा मनुरष्टाक्षरो मतः।
वामदेवो मुनिः पंक्तिश्छन्दो विष्णुश्च देवता।
हुं भीषयद्वयं हृच्च हुमन्तं त्रासयद्वयम् ॥१२६४॥
शिरः शिखा च वर्मोक्तं प्रमर्दययुगं मतम्।
वर्म प्रध्वंसययुगं वर्मान्तं रक्षयद्वयम् ॥१२६५॥
हुमन्तमन्त्रं सम्प्रोच्य षडङ्गानि समाचरेत्।
अष्टाङ्गानि न्यसेन्मन्त्री मन्त्रवर्णैर्यथाविधि ॥१२६६॥
पञ्चाङ्गनेत्रजठरपृष्ठेषु क्रमतो न्यसेत्।
विदध्यात्करयोर्न्यासं मन्त्रार्णैरष्टभिः सुधीः ॥१२६७॥
दक्षतर्जनिकायाश्च यावत्स्याद्वामतर्जनी।
सृष्टिरेतद्वैपरीत्यं संहारो गदितः स्थितिः ॥१२६८॥
दक्षान्यतर्जनीपूर्वा कनिष्ठायुग्मकान्तकाम्।
द्रावण्याद्यबीजयुतामङ्गुष्ठादिषु विन्यसेत् ॥१२६९॥
सबीजपूर्वकान् कामानङ्गुष्ठादिषु विन्यसेत्।
ततो बाणार्णपुटितां मातृकां च प्रविन्यसेत् ॥१२७०॥
प्रकृतिश्च महत्तत्त्वमहङ्कारखवायवः।
तेज आपो धरा चेति तत्त्वाष्टकमुदीरितम् ॥१२७१॥

अड़सठवें कलि में अवतरित कृष्ण का मन्त्र—अब मैं अड़सठवें कलि में अवतरित कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। आठ अक्षरों का वह मन्त्र है—उत्तिष्ठ श्रीकृष्ण स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि वामदेव, छन्द पंक्ति एवं देवता विष्णु कहे गये हैं। इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—हुं भीषय भीषय हुं हृदयाय नमः, हुं त्रासय त्रासय हुं शिरसे स्वाहा, हुं प्रमर्दय प्रमर्दय हुं शिखायै वषट्, हुं प्रध्वंसय प्रध्वंसय हुं कवचाय हुं, हुं रक्षय रक्षय हुं नेत्रत्रयाय वौषट्, हुं उत्तिष्ठ श्रीकृष्ण स्वाहा हुं अस्त्राय फट्। तदनन्तर विद्वान् साधक को शरीर के पञ्चाङ्ग, नेत्र, उदर एवं पृष्ठ—इन आठ अंगों में यथाविधि मन्त्र के आठ वर्णों का क्रमशः न्यास करना चाहिये। इसके बाद मन्त्र के आठ वर्णों से करन्यास करना चाहिये। दाहिनी तर्जनी से प्रारम्भ कर बाँयीं

तर्जनी-पर्यन्त किया गया मन्त्रवर्णों का क्रमशः न्यास सृष्टिन्यास कहलाता है और इसके विपरीत बाँयीं तर्जनी से आरम्भ करके दाहिनी तर्जनी-पर्यन्त किया गया न्यास संहारन्यास कहा गया है। दोनों तर्जनियों से प्रारम्भ करके दोनों कनिष्ठाओं से अन्त करने वाला न्यास स्थितिन्यास होता है। इसके बाद अंगूठों में इस प्रकार न्यास करना चाहिये—द्रां द्रीं क्लीं क्लूं सः अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ह्रीं क्लीं ऐं क्लूं सः अंगुष्ठाभ्यां नमः। तत्पश्चात् द्रां द्रीं क्लीं क्लूं सः से पुटित मातृकावर्णों का न्यास करना चाहिये। प्रकृति, महत्, अहंकार, आकाश, वायु, तेज (अग्नि), जल एवं पृथिवी—ये तत्त्वाष्टक कहे गये हैं। इन आठ तत्त्वों में क्रमशः मन्त्रवर्णों का किया गया न्यास तत्त्वन्यास कहलाता है।।१२६३-१२७१।।

व्यस्तमन्त्रार्णसंयुक्तं पादे लिङ्गे तथा हृदि।
मुखे शीर्षे हृदि पुनर्हृदये सकलाङ्गके ।।१२७२।।
न्यसेत्संहार उक्तोऽयं सर्गस्तद्विपरीतकः।
तारसम्पुटमूलेन त्रिशो न्यस्येत्तनौ पुनः।
कट्यास्यहृन्नाभिगुल्फजानुपादेषु विन्यसेत्।
एषा सृष्टिश्च नाभ्याद्या हृदन्ता स्थितिरीरिता ।।१२७३।।
सर्गत्यक्तमतिश्चापि संहारो मन्त्रिभिर्मतः।
मन्त्रार्णानामयं प्रोक्तस्त्रिधा न्यासो धनप्रदः ।।१२७४।।

व्यस्त मन्त्रवर्णों से क्रमशः पाद, लिङ्ग, हृदय, मुख, शीर्ष, हृदय, हृदय एवं सर्वाङ्ग में किया गया न्यास संहारन्यास होता है, जो इस प्रकार करना चाहिये—हां नमः पादयोः, स्वां नमः लिङ्गे, ष्णं नमः हृदि, कृं नमः मुखे, श्रीं नमः शीर्षे, ष्ठं नमः हृदये, त्तिं नमः हृदये, उं नमः सर्वाङ्गे। इसके विपरीत किया गया न्यास सृष्टिन्यास कहा गया है।

तार (ॐ) से पुटित मूल मन्त्र से शरीर में तीन प्रकार का न्यास करना चाहिये। कटि, मुख, हृदय, नाभि, गुल्फ, जानु एवं पैरों में किया गया न्यास सृष्टिन्यास, नाभि से आरम्भ कर हृदय-पर्यन्त किया गया न्यास स्थितिन्यास एवं सृष्टिन्यास के विपरीत पैरों से आरम्भ कर किया गया न्यास संहारन्यास होता है। ये तीनों न्यास धन प्रदान करने वाले होते हैं।।१२७२-१२७४।।

मूलाधारे हृदि मुखे बाहुद्वन्द्वोरुनाभिषु।
मन्त्रार्णान् विन्यसेन्मन्त्री न्यासोऽयं दार्ढ्यकारकः ।।१२७५।।
गले च जठरे हस्ते स्तनयोः पार्श्वयोस्तथा।
पृष्ठे च विन्यसेद्वर्णान्न्यासोऽयं शुभकारकः ।।१२७६।।

मूर्द्धनेत्रश्रोत्रमुखहस्ताग्रे मणिबन्धयोः ।
कूर्परे चांसके न्यस्य मनोर्वर्णान् धनप्रदान् ॥१२७७॥
पादाग्रयोर्गुल्फयोश्च जानुनोश्च नितम्बयोः ।
मन्त्रस्य विन्यसेद्वर्णान्यासोऽयं काम्यकः स्मृतः ॥१२७८॥
दक्षबाहौ तथा मूले मध्ये च मणिबन्धके ।
अङ्गुष्ठादौ न्यसेद्वर्णान् पञ्चमो धर्मवृद्धिकृत् ॥१२७९॥
एवं न्यासो वामहस्ते षष्ठः पापनिवर्तकः ।
दक्षोरुमूले जानौ च गुल्फे पञ्चाङ्गुलीषु च ॥१२८०॥
अयन्तु सप्तमो न्यासो वामगस्त्वष्टमो मतः ।
दक्षाङ्गुष्ठं समारभ्य वाममध्याच्च विन्यसेत् ॥१२८१॥
क्रमेण मन्त्रवर्णांश्च न्यासोऽयं नवमः स्मृतः ।
एवन्तु पादयोर्न्यस्येन्न्यासोऽयं दशमो भवेत् ॥१२८२॥

मन्त्रवर्णों का मूलाधार, हृदय, मुख, भुजद्वय, ऊरु एवं नाभि में किया गया न्यास दृढ़ता प्रदान करने वाला होता है। गला, जठर, हस्तद्वय, स्तनद्वय, पार्श्वद्वय एवं पीठ में किया गया मन्त्रवर्णों का न्यास कल्याण-कारक होता है। मूर्धा, नेत्र, कान, मुख, हस्ताग्र, मणिबन्ध, कूर्पर एवं कन्धों में किया गया मन्त्रवर्णों का न्यास धन प्रदान करने वाला होता है। दोनों पादाग्र, दोनों गुल्फ, दोनों जानु एवं दोनों नितम्बों में किया गया मन्त्रवर्णन्यास काम्य न्यास कहा गया है।

दक्ष बाहु, दक्ष बाहुमूल, दक्ष बाहुमध्य (कूर्पर), मणिबन्ध, अंगूठे आदि में किया गया पाँचवाँ मन्त्रवर्णन्यास धर्म की वृद्धि करने वाला होता है। इसी प्रकार से बाँयें हाथ में किया गया छठा न्यास पाप-विनाशक होता है। सातवाँ मन्त्रवर्णन्यास दक्ष ऊरुमूल, दक्ष जानु, दक्ष गुल्फ एवं दाहिने हाथ की पाँचों अंगुलियों में किया जाता है एवं वाम ऊरुमूल, वाम जानु, वाम गुल्फ एवं बाँयें हाथ की पाँचों अंगुलियों में आठवाँ न्यास किया जाता है। नवम मन्त्रवर्णन्यास क्रमशः दाहिने हाथ के अंगूठे से आरम्भ करके बाँयें हाथ की मध्यमा-पर्यन्त किया जाता है। इसी प्रकार दक्ष पादाङ्गुष्ठ से प्रारम्भ करके वाम पाद के मध्यमा-पर्यन्त किया गया मन्त्रवर्णों का न्यास दशम न्यास होता है।।१२७५-१२८२।।

मूर्द्धाक्षिकण्ठहृदये जठरे चोरुजानुनोः ।
पादयोश्च न्यसेद्वर्णान्यास एकादशः स्मृतः ॥१२८३॥
त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्रमरुत्सु च ।
कर्मणा विन्यसेद्वर्णान्यासोऽयं द्वादशः स्मृतः ॥१२८४॥

दक्षगण्डे च दक्षांसे तत्स्तने दक्षपार्श्वके।
दक्षस्फिचि च जङ्घायां पादेऽयन्तु त्रयोदशः ॥१२८५॥
एवं प्रविन्यसेद्वामगुल्फादौ स चतुर्दशः।
प्रथमार्णं पादतले पदपादाग्रजानुषु ॥१२८६॥
गुदगुह्ये तृतीयन्तु पार्श्वनाभौ चतुर्थकम्।
वक्षःपृष्ठहृदयेषु कण्ठे वक्त्रे नसोस्तले ॥१२८७॥
श्रोत्रनेत्रद्वये चान्यं ललाटे चाष्टमं न्यसेत्।
सर्वोपद्रवहन्तायं न्यासः पञ्चदशः स्मृतः ॥१२८८॥
शिरोऽक्षिमुखहृन्नाभिगुह्यजान्वंघ्रिषु न्यसेत्।
षोडशोऽयमिति प्रोक्तस्तत्त्वपञ्जरसंज्ञकः ॥१२८९॥
ततस्तनौ मूलमन्त्रं व्यापकत्वेन विन्यसेत्।
नृसिंहं पञ्चमे प्रोक्तमाचेरन्मूर्तिपञ्जरम् ॥१२९०॥

मूर्धा, नेत्र, कण्ठ, हृदय, जठर, उरु, जानु एवं पैरों में किया गया मन्त्रवर्णों का न्यास एकादश न्यास होता है। त्वचा, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र एवं वायुकर्म में किया गया न्यास बारहवाँ मन्त्रवर्णन्यास होता है। दक्ष कपोल, दक्ष कन्धा, दक्ष स्तन, दक्ष पार्श्व, दक्ष नितम्व, दक्ष जङ्घा, दक्ष पाद एवं दक्ष पादाग्र में तेरहवाँ मन्त्रवर्णन्यास होता है। इसी प्रकार वामाङ्गों में न्यास करने पर चौदहवाँ न्यास होता है। मन्त्र के प्रथम वर्ण का पादतल में, दूसरे वर्ण का पाद पादाग्र जानु गुदा एवं गुह्य में, तीसरे वर्ण का पार्श्व एवं नाभि में, चौथे वर्ण का वक्ष पीठ हृदय कण्ठ मुख एवं नासिका में, पाँचवें वर्ण का नेत्रद्वय में, छठे वर्ण का श्रोत्रद्वय में, सातवें वर्ण का कपोलद्वय में एवं आठवें वर्ण का ललाट में किया गया न्यास पन्द्रहवाँ न्यास होता है। यह पन्द्रहवाँ न्यास समस्त उपद्रवों का निवारक होता है।

शिर, नेत्र, मुख, हृदय, नाभि, गुह्य, जानु एवं पैरों में किया गया सोलहवाँ न्यास तत्त्वपञ्जर न्यास कहा गया है। इसके बाद मूल मन्त्र से आपाद मस्तक व्यापक न्यास करना चाहिये। इसके बाद पंचम नृसिंह में वर्णित मूर्तिपञ्जर न्यास करना चाहिये।

मुखे ब्राह्मणवर्णं च हस्तयोः क्षत्रियं न्यसेत्।
ऊर्वोर्वैश्यं शूद्रवर्णं पादयोरिति विन्यसेत् ॥१२९१॥
न्यसेत्किरीटं शिरसि श्रुत्योर्मकरकुण्डले।
ग्रैवेयं कौस्तुभं कण्ठे हृदि श्रीवत्सहारकम् ॥१२९२॥
अङ्गदे भुजयोर्न्यस्य केयूरान् सर्वबाहुषु।
कङ्कणे हस्तयोर्न्यस्य मेखलां च कटौ न्यसेत् ॥१२९३॥

न्यस्याङ्गुलीषु मुद्राश्च न्यसेत्पीताम्बरद्वयम्।
परिधाने चोत्तरीयं पादयोर्नूपुरं तथा ॥१२९४॥
न्यसेच्छङ्खं च चक्रं च वामदक्षोर्ध्वहस्तयोः।
अधःपाण्योर्गदापद्मे ततो ध्यानं समाचरेत् ॥१२९५॥

श्रीकृष्ण के मुख में ब्राह्मण वर्ण का, हाथों में क्षत्रिय वर्ण का, जाङ्घों में वैश्य वर्ण का एवं पैरों में शूद्र वर्ण का न्यास करना चाहिये। शिर में किरीट का, कानों में मकर एवं कुण्डल का, कण्ठ में ग्रैवेय एवं कौस्तुभ मणि का, हृदय में श्रीवत्स एवं हार का, भुजाओं में अङ्गदों का, बाहुओं में केयूरों का, हाथों में कङ्कण का, कमर में मेखला का, अंगुलियों में अंगूठियों का, दो पीताम्बर परिधान एवं उत्तरीय का तथा पैरों में नूपुर का न्यास करना चाहिये। बाँयें एवं दाहिने ऊपर वाले हाथों में क्रमशः शङ्ख एवं चक्र का तथा नीचे वाले बाँयें एवं दाँयें हाथों में क्रमशः गदा एवं पद्म का न्यास करने के बाद ध्यान करना चाहिये।।१२९१-१२९५।।

दुग्धाम्भोधौ सितद्वीपं नानामणिगणैर्युतम्।
वनं सञ्चिन्तयेत्तत्र सकलर्त्तुसमन्वितम् ॥१२९६॥
न्यासोक्ताभरणैः शस्त्रैरुपेतं दीप्ततेजसम्।
सुरासुरर्षिप्रमुखैः सेवितं चाप्सरोगणैः ॥१२९७॥
प्रसन्नवदनं ध्यात्वा तत्त्वदेवं प्रपूजयेत्।
पूर्वोक्तपीठे मूलेन मूर्तिं सङ्कल्प्य चाह्वयेत् ॥१२९८॥
अङ्गानि कर्णिकायाञ्च दिक्पत्रेषु चतुर्ष्वपि।
श्रियं पीताम्बराक्तां च धृतिं कान्तिं सितासिते ॥१२९९॥
इन्द्रादींश्चापि दिक्पत्रे वज्रादींस्तद्बहिर्यजेत्।
अष्टलक्षं जपेन्मन्त्रं नियमस्थो जितेन्द्रियः ॥१३००॥
दुग्धाक्तबिल्वसमिधां होमः प्रोक्तो दशांशतः।
जलैः सघृतदुग्धान्नैस्तर्पणादि समाचरेत् ॥१३०१॥
गुरुं सन्तोष्य यत्नेन सिद्धमन्त्रो भवेद् ध्रुवम्।
ततः कुर्वीत मन्त्रज्ञः प्रयोगांश्च प्रसिद्धये ॥१३०२॥

दुग्धसमुद्र में अनेक मणियों से संयुक्त श्वेत द्वीप पर समस्त ऋतुओं से समन्वित वन में उपर्युक्त न्यास में पठित आभूषणों एवं शस्त्रों से विभूषित, दीप्त तेजःसम्पन्न, प्रमुख देवताओं असुरों ऋषियों एवं अप्सराओं द्वारा उपासित प्रसन्नमुख तत्त्वदेव का ध्यान करके पूजन करना चाहिये। पूर्वोक्त पीठ पर मूल मन्त्र से मूर्ति कल्पित करके

देव का आवाहन करना चाहिये। कर्णिका में षडङ्ग-पूजन करने के बाद चारो दिक्पत्रों में श्री, पीताम्बराक्ता (मति ?), धृति एवं कान्ति का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् दिक्पत्रों में इन्द्रादि दस दिक्पालों एवं उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर व्रताचरण करते हुये जितेन्द्रिय साधक को मन्त्र का आठ लाख जप करने के बाद दुग्धाक्त बेल की समिधाओं से कृत जप का दशांश (अस्सी हजार) हवन करना चाहिये। इसके बाद घृत दुग्ध एवं अन्न-मिश्रित जल से तर्पण आदि करना चाहिये। तत्पश्चात् यत्न-पूर्वक गुरु को सन्तुष्ट करने से निश्चित ही मन्त्र सिद्ध हो जाता है। इसके बाद साधक को प्रसिद्धि के लिये प्रयोगों का सम्पादन करना चाहिये।।१२९६-१३०२।।

दुग्धपूतैः सरसिजैरयुतं जुहुयाच्छ्रिये।
मधुरत्रयसंयुक्तैः पलाशकुसुमैर्हुनेत् ।।१३०३।।
कान्त्यर्थं केवलाज्येन जुहुयाद्दुग्धमायुषे।
त्रिस्वादुयुक्तं लवणं हुनेन्निशि सहस्रकम् ।।१३०४।।
अष्टाधिकं च मासेन सोमरस्त्रीवृतो भवेत्।
का कथा सर्वयोषासु चान्यासु वशगासु च।
अयुतं जुहुयादाज्यं दूर्वाभक्तैश्च शोधितम् ।।१३०५।।
भुञ्जीत प्रत्यहं भक्तं गुरुं सन्तोषयेद्धनैः।
वस्त्रालङ्करणाद्यैश्च ब्राह्मणानपि भोजयेत् ।।१३०६।।
यो जपेन्मृत्युरोगादौ न्यसेच्चायुश्च विन्दति।
सूर्यबिम्बे न्यस्तदृष्टिरब्देन सततं जपेत् ।।१३०७।।
उत्क्षिप्तबाहुः षण्मासाद्धनाढ्यः सुमहान् भवेत्।
दुग्धमध्ये प्रातरमुं रमेशं तर्पयेद् बुधः।
अष्टाधिकं सहस्रं तु स भवेद् गोरमान्वितः ।।१३०८।।
सुमिष्टमन्नं लभते वने वै भृत्यवर्गयुक्।
षट्कर्माणि च सिद्ध्यन्ति याति विष्णोः परम्पदम् ।।१३०९।।

श्री-प्राप्ति के लिये दुग्ध-सिक्त कमलों अथवा त्रिमधु-समन्वित पलाशपुष्पों से दस हजार आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करना चाहिये। कान्ति के लिये केवल गोघृत से एवं आयुवृद्धि के लिये दुग्ध से हवन करना चाहिये।

एक मास-पर्यन्त त्रिमधु-सिक्त नमक से रात में एक हजार आठ बार हवन करने से देवस्त्री भी कामातुर हो जाती है; फिर अन्य समस्त स्त्रियों अथवा दूसरे के वशीभूत स्त्रियों की तो बात ही क्या है?

गोघृत से दस हजार हवन करने के पश्चात् दूर्वा से शोधित भात का प्रतिदिन भोजन करना चाहिये। धन, वस्त्र, अलंकार आदि से गुरु को सन्तुष्ट करना चाहिये; साथ ही ब्राह्मणों को भोजन भी कराना चाहिये। जो साधक मृत्यु, रोग आदि में इस मन्त्र का जप एवं न्यास करता है, वह दीर्घ आयु प्राप्त करता है।

सूर्यमण्डल को अपलक दृष्टि से देखते हुये एक वर्ष तक अथवा हाथों को ऊपर उठाकर छः मास-पर्यन्त लगातार इस मन्त्र का जो जप करता है, वह साधक धनाढ्य के साथ-साथ प्रभावशाली होता है।

जो विद्वान् प्रतिदिन प्रातःकाल दुग्ध के मध्य श्रीकृष्ण को स्थापित कर उनका एक हजार आठ बार तर्पण करता है, वह गौओं के साथ-साथ लक्ष्मी से भी सम्पन्न होता है।

सेवकों से समन्वित वह साधक वन में भी सुन्दर मिष्टान्न प्राप्त करता है। उसे षट्कर्मों की सिद्धि प्राप्त होती है तथा अन्त में वह विष्णु के परमपद को प्राप्त करने वाला होता है।।१३०३-१३०९।।

एकोनसप्ततिकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथो गोषट्कलौ मन्त्रस्तारादिरयमेव हि।
यज्जपेनावतारोऽत्र सर्वकालफलप्रदः ॥१३१०॥

उनहत्तरवें कलि में समुद्भूत कृष्ण का मन्त्र—उनहत्तरवें कलि में अवतरित कृष्ण का मन्त्र है—ॐ उत्तिष्ठ कृष्णाय स्वाहा। इस मन्त्र का जप सर्वदा फलदायी होता है।।१३१०।।

सप्ततिकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथ सप्ततिके चायं लक्ष्म्यादिर्जप्यते जनैः।
नावतारः स एवात्र देवः प्रत्यक्षतां गतः ॥१३११॥

सत्तरवें कलि में अवतरित कृष्ण का मन्त्र—सत्तरवें कलि में कृष्ण का कोई अवतार नहीं होता; अपितु उक्त मन्त्र में ही प्रणव के स्थान पर 'श्रीं' लगाकर लोगों द्वारा मन्त्रजप किया जाता है। मन्त्र का स्वरूप होता है—श्रीं उत्तिष्ठ कृष्णाय स्वाहा। इस कलि में पूर्व कलि के देवता ही प्रत्यक्ष रहते हैं।।१३११।।

एकसप्ततिकल्युद्भूतकृष्णमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि चैकसप्तमिते कलौ।
अवतारोऽत्र मन्त्रस्तु श्रीकृष्णः शरणं मम ॥१३१२॥
चतुष्पदैः समस्तेन पञ्चाङ्गविधिरीरितः।
ध्यानपूजाप्रयोगादि दशाक्षरवदीरितम् ॥१३१३॥

इकहत्तरवें कलि में प्रकटित कृष्ण का मन्त्र—अब मैं इकहत्तरवें कलि में अवतरित कृष्ण के मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—श्रीकृष्ण: शरणं मम। मन्त्र के चार पदों के साथ-साथ समस्त मन्त्र से इसका पञ्चाङ्ग न्यास कहा गया है। इसके ध्यान, पूजन, प्रयोग आदि दशाक्षर मन्त्र के समान कहे गये हैं।।१३१२-१३१३।।

बौद्धमहामन्त्रविधि:

अथात: सम्प्रवक्ष्यामि बौद्धमन्त्रं महाफलम्।
सभ्यत्वान्न द्विजातीनामधिकारोऽस्ति कर्हिचित्॥१३१४॥
वाममार्गरता विप्रा: कुण्डका जातिविच्युता:।
हीना वैदिकसंस्कारै: प्रमादान् म्लेच्छतां गता:।
गोलकाश्च तथा जात्या कायस्थादय एव च॥१३१५॥
बौद्धं विष्णुं समारभ्य भुक्तिं मुक्तिं प्रयान्ति ते।
पतितानामयं मन्त्र: सम्प्रोक्त: शरणप्रद:॥१३१६॥
नमो भगवते बुद्ध संसारार्णवतारक।
कलिकालादहं भीत: शरण्यं शरणङ्गत:॥१३१७॥
आद्यै: पदैश्चतुर्भिश्च चरणद्वितयेन च।
षडङ्गविधिराख्यात: सर्वेण व्यापकं चरेत्॥१३१८॥

बौद्ध मन्त्र—अब मैं महान् फलदायी बौद्ध मन्त्र को कहता हूँ। कुलीन होने के कारण द्विजातियों का कदापि इसमें अधिकार नहीं होता। वाम मार्ग का आश्रयण करने वाले, मूढ़, जाति से बहिष्कृत, वैदिक संस्कारों से रहित, प्रमादवश म्लेच्छता को प्राप्त विप्र, विधवा का जारज पुत्र एवं कायस्थ आदि जातियों के लोग बौद्ध विष्णु की सम्यक् रूप से आराधना करके भोग एवं मोक्ष प्राप्त करते हैं। यह मन्त्र पतितों को शरण प्रदान करने वाला कहा गया है। मन्त्र है—नमो भगवते बुद्ध संसारार्णवतारक। कलिकालादहं भीत: शरण्यं शरणङ्गत:। मन्त्र के आरम्भिक चार पदों एवं द्वितीय चरण से इसका षडङ्गन्यास कहा गया है। तत्पश्चात् सम्पूर्ण मन्त्र से व्यापक न्यास करना चाहिये।।१३१४-१३१८।।

पद्मे पद्मासनस्थं च ऊर्वोर्न्यस्तकरद्वयम्।
गौरं मुण्डितसर्वाङ्गं ध्यानस्तिमितलोचनम्॥१३१९॥
पुस्तकासक्तहस्तैश्च नानाशिष्यैश्च शोभितम्।
इन्द्रादिलोकपालैश्च ताम्रवर्णाम्बरावृतम्॥१३२०॥
एवं ध्यात्वा यजेत्पद्मे द्वात्रिंशद्दलसम्मिते।
कर्णिकायां षडङ्गानि दले शिष्यान् यजेत्क्रमात्॥१३२१॥

मीनाङ्कं ललितां वीरं योगिनीं ज्ञानदायिनीम्।
सर्वज्ञं सुगतं बुद्धं पार्श्वनाथं तथागतम् ॥१३२२॥
चार्वाकं धर्मराजं च जिनं पद्मावतीं तथा।
कामिनीं च महामायां श्रीकृष्णं च विनायकम् ॥१३२३॥
समन्तभद्रं वर्त्मर्षिं निधिचन्द्रं मनोहरम्।
षडभिज्ञं दशबलं शास्तारं श्रीघनं क्षयम् ॥१३२४॥
दण्डिनं मुण्डिनं क्रान्तं श्रावकं लोकपोषणम्।
तद्बाह्ये भूपुरे दिक्पांस्तदस्त्राणि च पूजयेत् ॥१३२५॥

पद्म पर पद्मासन में विराजमान होकर जाँघों पर दोनों हाथों को रखे हुये गौरवर्ण वाले, पञ्चकर्म किये हुये, नेत्र बन्द कर ध्यान में निमग्न, हाथों में पुस्तक लिये हुये अनेक शिष्यों से सुशोभित तथा ताम्र वर्ण वाले इन्द्रादि लोकपालों से घिरे बौद्ध विष्णु का ध्यान करके बत्तीस दलों वाले कमल की कर्णिका में षडङ्ग-पूजन करने के उपरान्त दलों में इन बत्तीस शिष्यों का पूजन करना चाहिये—मीनाङ्क, ललिता, वीर, योगिनी, ज्ञानदायिनी, सर्वज्ञ, सुगत, बुद्ध, पार्श्वनाथ, तथागत, चार्वाक, धर्मराज, जिन, पद्मावती, कामिनी, महामाया, श्रीकृष्ण, विनायक, समन्तभद्र, वर्त्मर्षि, निधिचन्द्र, मनोहर, षडभिज्ञ, दशबल, शास्ता, श्रीधन, क्षय, दण्डी, मुण्डी, क्रान्त, श्रावक एवं लोकपोषण। तत्पश्चात् बत्तीस दलों के बाहर भूपुर में दिक्पालों एवं उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये।।१३१९-१३२५।।

वर्णलक्षं जपेन्मन्त्री होमयेच्च घृतौदनम्।
तुलसीमिश्रतोयैश्च भगवन्तं प्रतर्पयेत् ॥१३२६॥
परस्य दुःखकरणं मनसापि न चाचरेत्।
एवं तु वर्तमानस्य वाक्सिद्ध्यादि प्रजायते ॥१३२७॥
राजानो वशगास्तस्य नाशं यान्ति ह्युपद्रवाः।
भूतप्रेतादिपीडायां महागदभये तथा ॥१३२८॥
अनेन मन्त्रितं भस्म दत्त्वा दुःखात्प्रमुच्यते।

इसके बाद मन्त्र का वर्णलक्ष (बत्तीस लाख) जप करने के पश्चात् घृत-मिश्रित ओदन से हवन करके तुलसी-मिश्रिश्र जल से भगवान् का तर्पण करना चाहिये। साधक को मन से भी दूसरों को दुःखी करने वाला आचरण नहीं करना चाहिये। इस प्रकार के आचरण एवं उपासना से साधक को वाक्सिद्धि आदि की प्राप्ति होती है। राजा लोग उसके वशीभूत होते हैं एवं सभी उपद्रव शान्त हो जाते हैं। भूत-प्रेत आदि

के कारण होने वाली पीड़ा तथा महारोग का भय उपस्थित होने पर पीड़ित को इस मन्त्र से अभिमन्त्रित भस्म प्रदान करने से वह दुःखों से मुक्त हो जाता है।

कल्किमहामन्त्रविधिः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कल्किमन्त्रं महाफलम्।
कङ्कल्किने हृदन्तोऽयं मन्त्रः प्रोक्तः षडक्षरः ॥१३२९॥
मन्त्रार्णैश्च षडङ्गानि पूर्णेन व्यापकं चरेत्।
मन्त्रोऽयमतिगोप्यस्तु स्तुत्यश्च नृपनाशकः ॥१३३०॥
ध्यानं नीलहयारूढं श्वेतोष्णीषविराजितम्।
महामुद्राढ्यहस्तं च कौस्तुभोद्दामकण्ठकम् ॥१३३१॥
मर्दयन्तं म्लेच्छगणं क्रोधपूरितलोचनम्।
अन्तर्हितैर्देवमुनिगन्धर्वैः संस्तुतं हरिम् ॥१३३२॥
वैष्णवे तु यजेत्पीठे पद्मे तं केशरेषु च।
षडङ्गानि च पत्रेषु पूजयेत्तस्य सेवकान् ॥१३३३॥
उद्दामं काञ्चनं दीर्घं भीमं घोरं भयानकम्।
कालं नीलं लोकपालान् भूपुरे हेतयस्तथा ॥१३३४॥

कल्कि मन्त्र-विधि—अब मैं कल्कि मन्त्र के महान् फल को कहता हूँ। कल्कि का छः अक्षरों का मन्त्र है—कं कल्किने नमः। मन्त्र के छः वर्णों से षडङ्गन्यास करने के उपरान्त सम्पूर्ण मन्त्र से व्यापक न्यास करना चाहिये। अत्यन्त गोपनीय एवं उपासना करने योग्य यह मन्त्र राजाओं का विनाश करने वाला है।

तदनन्तर नीले घोड़े पर सवार, श्वेत पगड़ी से सुशोभित, महामुद्रा से सम्पन्न हाथों वाले; कौस्तुभ मणि से सुशोभित गले वाले, क्रोध-पूर्ण नेत्रों से म्लेच्छों को तिरस्कृत करने वाले तथा उपस्थित देवताओं एवं मुनियों से स्तुत हरि का ध्यान करना चाहिये।

तत्पश्चात् वैष्णव पीठ पर उनका पूजन करने के बाद केशरों में षडङ्ग-पूजन करना चाहिये। इसके बाद कमलपत्रों में उनके सेवकों का पूजन करना चाहिये। ये सेवक हैं—उद्दाम, काञ्चन, दीर्घ, भीम, घोर, भयानक, काल एवं नील। तदनन्तर भूपुर में लोकपालों और उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये।।१३२९-१३३४।।

षड्लक्षं च जपेन्मन्त्रं ससितैः पायसैर्हुनेत्।
तर्पयेत्सलिलैः शुद्धैः प्रीणयेद् भूसुरानपि ॥१३३५॥
एवमाराधितो मन्त्रः संग्रामे विजयप्रदः।
एतत्साधकमालोक्य दूरतो दुःक्षितीश्वराः ॥१३३६॥

प्रणमन्ति तथा म्लेच्छाः शत्रवो यान्ति संक्षयम्।
दिने दिने वर्धते श्रीर्मृतो वैकुण्ठमाप्नुयात् ॥१३३७॥
एते तु मनवः प्रोक्ताः श्रीविष्णोः परमात्मनः।
दशावताररूपस्य किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥१३३८॥

इति श्रीमहामायामहाकालानुमते मेरुतन्त्रे शिवप्रणीते
दशावतारमन्त्रप्रकाशः षड्विंशः ॥२६॥

•

इसके बाद मन्त्र का छः लाख मन्त्र जप करने के उपरान्त शक्कर एवं पायस से हवन करने के बाद शुद्ध जल से तर्पण करना चाहिये; साथ ही ब्राह्मणों को भोजन भी कराना चाहिये। इस प्रकार आराधित यह मन्त्र संग्राम में विजयप्रद होता है। दुष्ट राजागण इसके साधक को देखकर दूर से ही प्रणाम करते हैं एवं म्लेच्छ तथा शत्रुगण विनाश को प्राप्त हो जाते हैं। उस साधक के लक्ष्मी की दिनोंदिन वृद्धि होती है तथा मृत्यु के उपरान्त उसे वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है। इस प्रकार ये सभी मन्त्र दशावताररूप परमात्मा श्रीविष्णु के कहे गये; अब और क्या सुनना चाहती हो।।१३३५-१३३८।।

इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र
में शिवप्रणीत 'दशावतारमन्त्रकथन'-नामक
षड्विंश प्रकाश पूर्णता को प्राप्त हुआ।

•

तन्त्रशास्त्र-ग्रन्थाः

अन्नदाकल्पतन्त्र। हिन्दी टीका सहित। श्री एस. एन. खण्डेलवाल

अभिनवगुप्त-एक परिचय। डॉ. (श्रीमती) प्रेमा अवस्थी

अहिर्बुध्यसंहिता (श्रीपाञ्चरात्रागमान्तर्गत) 'सरला' हिन्दीटीकासहित। डॉ. सुधाकर मालवीय

आगमतत्त्वविलास। हिन्दी-टीका सहित। श्री एस. एन. खण्डेलवाल। (1-4 भाग सम्पूर्ण)

ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी। (ज्ञानाधिकार)। प्रथम अधिकार के पाँचवे आह्निक की सप्तम कारिका से लेकर आह्निक के अन्त तक की 'लीला' हिन्दी व्याख्या। टीकाकार - डॉ. दयाशङ्कर शास्त्री

एकजटातारासाधनतन्त्र। हिन्दी टीका सहित। श्री एस. एन. खण्डेलवाल

Kamakala Vilasa : Text with 'Cidwalli' Sanskrit Commentary and English Translation, Notes etc. Dr. R. P. Dwivedi & Dr. S. Malaviya

कामकलाकालीसपर्या। डॉ. रामप्रिय पाण्डेय

कामकलाविलास। चिद्वली संवलितः। सरोजिनी हिन्दी व्याख्या। डॉ. श्यामकान्त द्विवेदी 'आनन्द'

कामाख्यातन्त्र। 'ज्ञानवती' हिन्दी टीका सहित। आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी

कुण्डलिनी शक्ति। (योग-तान्त्रिक साधना-प्रसङ्ग) श्री अरुणकुमार शर्मा

कुलार्णवतन्त्र। 'नीरक्षीरविवेक' हिन्दीटीका। डॉ. परमहंस मिश्र

गायत्री-मन्त्रार्थ भास्कर। भाषा टीका सहित। पं. यमुना प्रसाद द्विवेदी

गायत्रीमहातन्त्र। आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदिप्रणीत। हिन्दीभाष्य विभूषित

तन्त्रविज्ञान और साधना। श्री सीताराम चतुर्वेदी

तन्त्रसार। अभिनवगुप्तपादाचार्य विरचित। हिन्दीटीका सहित। (1-2 भाग)। डॉ. परमहंस मिश्र

तन्त्रराजतन्त्र। हिन्दी टीका सहित। श्रीकपिलदेव नारायण

तन्त्रसारसङ्ग्रह। नारायण विरचित। सव्याख्या। आंग्ल एवं संस्कृत भूमिका सहित।

तन्त्रालोक। अभिनवगुप्तपादाचार्य। जयरथकृत'विवेक' टीका एवं पं. राधेश्याम चतुर्वेदीकृत हिन्दीटीका

त्रिपुरारहस्य। डॉ. जगदीशचन्द्र मिश्रकृतहिन्दी अनुवाद सहित। (ज्ञान एवं महात्म्यखण्ड)

त्रिपुरार्णवतन्त्र। (उपासनाखण्ड) हिन्दीटीका सहित। डॉ. जगदीशचन्द्र मिश्र

त्रिपुरासारसमुच्चय। श्रीमधुसूदनप्रसादशुक्लः

दक्षिणकालिकासपर्यापद्धति। डॉ. रामप्रिय पाण्डेय

दुर्गासप्तशती। दुर्गाप्रदीप-गुप्तवती-चतुर्धरी-शान्तनवी-नागोजीभट्टी-जगच्चन्द्रिका-दंशोद्धार नामक सप्तटीकायुक्त।

दुर्गासप्तशती। मूलमात्र। नव-शत-सहस्रचण्डी-पल्लवयोजना-कवचअर्गला-कीलक-कुञ्जिकास्तोत्र सहित।

देवीरहस्य। (परिशिष्ट सहित) श्रीरुद्रयामलतन्त्रार्गत। हिन्दीटीका सहित। श्री कपिलदेव नारायण

नीलसरस्वतीतन्त्र। श्री एस. एन. खण्डेवालकृत हिन्दी टीका।

नित्याषोडशिकार्णव। संस्कृत एवं हिन्दी-टीका सहित। श्री एस. एन. खण्डेलवाल

नित्योत्सव। हिन्दी-टीका सहित। श्रीपरमहंस मिश्र

नेत्रतन्त्र। क्षेमराजकृत 'नेत्रोद्योत' संस्कृत एवं श्रीराधेश्याम चतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' हिन्दीटीका सहित

परलोकविज्ञान। श्री अरुणकुमार शर्मा

प्रत्यभिज्ञाहृदय। हिन्दी टीका सहित। डॉ. सुधांशु कुमार षडंगी
प्राणतोषिणी। मूलमात्र। श्रीरामतोषण भट्टाचार्य।
पुरश्चर्यार्णव। श्रीनेपालमहाराजाधिराज प्रतापसिंह साहदेवविरचित। सम्पादक - म. म. मुरलीधर झा
प्रपञ्चसारसारसंग्रह। (मूलमात्र) गीर्वाणेन्द्रसरस्वतीविरचित। के. एस. सुब्रह्मण्यशास्त्री सम्पादित।
ब्रह्मास्त्रविद्या एवं बगलामुखी साधना। डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी
भूतडामरतन्त्र। श्री एस. एन. खण्डेलवालकृत हिन्दी टीका
भारतीय शक्ति-साधना। (शक्ति-विज्ञान : स्वरूप एवं सिद्धान्त) डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'
Mahanirvanatantram. Sanskrit Text and English Translation by M. N. Dutta
मन्त्र और मातृकाओं का रहस्य। डॉ. शिवशङ्कर अवस्थी
महाकालसंहिता (कामकला कालीखण्ड)। 'ज्ञानवती' हिन्दीभाष्य सहित। प्रो. राधेश्याम चतुर्वेदी
महाकालसंहिता (गुह्यकालीखण्ड)। 'ज्ञानवती'हिन्दीभाष्यसहित। प्रो. राधेश्याम चतुर्वेदी (1-5 भाग)
मन्त्रमहोदधि। 'नौका' संस्कृत टीका तथा 'अरित्र' हिन्दी व्याख्या। डॉ. सुधाकर मालवीय
महानिर्वाणतन्त्र। हिन्दी टीका सहित। श्रीकपिल देव नारायण
मुद्राविज्ञान-साधना। डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी
राधातन्त्र। हिन्दी टीका सहित। श्री एस. एन. खण्डेलवाल
रुद्रयामलतन्त्र। हिन्दी टीका सहित। टीकाकार - डॉ. सुधाकर मालवीय
रेणुकातन्त्र। हिन्दी टीका सहित। श्रीकपिल देव नारायण
ललितासहस्रनाम। 'सौभाग्यभास्करभाष्य' एवं श्रीभारतभूषणकृत विस्तृत हिन्दी व्याख्या।
ललितोपाख्यान। (तन्त्र)। मूलमात्र
वर्णबीजप्रकाश। श्रीसरयूप्रसाद द्विवेदी। सम्पादक - डॉ. परमहंसमिश्र
वरिवस्यारहस्य। 'प्रकाश' संस्कृत एव डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द' कृत हिन्दी टीका सहित।
विज्ञानभैरव। श्रीबापूलाल आँजना विरचित कारिकानुवाद विवृतभागस्थ हिन्दी व्याख्या
वृहत्तन्त्रसार। कृष्णानन्द आगमवागीशकृत। 'साधनात्मक' हिन्दीटीका सहित। श्रीकपिलदेव नारायण
श्रीतत्त्वचिन्तामणि। संस्कृतटीका एवं 'भावना' हिन्दी टीका। श्रीमधुसूदनप्रसादशुक्ल (1-2 भाग)
श्रीविद्यार्णवतन्त्र। 'साधनात्मक' हिन्दीटीका सहित। श्रीकपिलदेव नारायण (1-5 भाग सम्पूर्ण)
श्रीविद्यासपर्यापद्धति। ब्रह्मश्रीशङ्करामशास्त्री
श्रीविद्या-साधना। (श्रीविद्या का सर्वाङ्गपूर्ण शास्त्रीय विवेचन)। डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी
शारदातिलक। 'पदार्थादर्श' संस्कृत टीका एवं डॉ. सुधाकर मालवीयकृत हिन्दी-टीका सहित।
षट्चक्रनिरूपण। पूर्णानन्दयति। शिवोक्त पादुकापञ्चक सहित। श्रीभारतभूषणकृत हिन्दी व्याख्या।
सप्तशतीसर्वस्व। (मूलमात्र) नानाविधसप्तशतीरहस्यसंग्रहः। पं. सरयू प्रसाद द्विवेदी
सर्वोल्लासतन्त्र। हिन्दी टीका सहित। टीकाकार - श्री एस. एन. खण्डेलवाल।
सार्द्ध-नवचण्डि-पुरश्चरण। डॉ. रामप्रिय पाण्डेय
सिद्धनागार्जुनतन्त्र। श्री एस. एन. खण्डेनवाल कृत हिन्दी टीका सहित।
सौन्दर्यलहरी। 'लक्ष्मीधरी' संस्कृत एवं 'सरला' हिन्दी व्याख्या। सुधाकर मालवीय
स्पन्दकारिका। विस्तृत हिन्दी व्याख्या, तुलनात्मक अध्ययन सहित। डॉ. श्यामकान्त द्विवेदी
स्वच्छन्दतन्त्र। संस्कृत-हिन्दी टीका सहित। प्रो. राधेश्याम चतुर्वेदी (1-2 भाग)
सिद्धसिद्धान्तपद्धति। हिन्दी अनुवाद सहित। स्वामी द्वारकादास शास्त्री।

●

Translated & Written by
Giri Ratna Mishra

Sri Kali Tantra & Sri Rudra Chandi

Text with English
Commentary & Introduction

•••••

An acme assortment of various mantras, variegated worship rituals and tantric practices of Sri Dakshin Kali, along with glory saga and worship ritual of Sri Rudra Chandi.

Bhootdaamar Tantra

Text with English
Commentary & Introduction

•••••

An authoritative Tantra of Sri Krodha Bhairava along with his; mantras, variegated mandal worship, rituals and accomplishment rituals of Bhootinis, Yakshinis, snake-girls etc.

Uddish Tantra

Text with English
Commentary & Introduction

•••••

An authoritative work on various exorcisms, Yakshini accomplishment, Bhootini accomplishment and black magic like Indrajaal compiled by Lankesh Ravan.

Sri Matrika Cakra Viveka

Text with English
Commentary & Introduction

•••••

An acme Sri Vidya mantra Shastra of Kashmir, correlating the creation and liberation of this world with Sri Yantra while describing the meaning of Sanskrit alphabets called Matrikas using Sri Yantra.

Sri Bagala Tatva Prakashika

•••••

A detailed study on philosophical and worship aspects of Sri Bagalamukhi as mentioned in Vedas, Upanishads, Puranas, Sri Durga Saptashati and Tantra.

तन्त्रशास्त्र-ग्रन्थ

एस.एन. खण्डेलवाल—अनुदित एवं लिखित

- नित्याषोऽशिकार्णव
- सर्वोल्लासतन्त्र
- नीलसरस्वतीतन्त्र
- भूतडामरतन्त्र
- सिद्धनागार्जुनतन्त्र
- अन्नदाकल्पतन्त्र
- राधातन्त्र
- सौभाग्यलक्ष्मीतन्त्र
- कालीतन्त्र-रुद्रचण्डीतन्त्र
- तोडलतन्त्र-निर्वाणतन्त्र
- आगमतत्त्वविलास (1-4)
- श्रीसाम्बपुराण
- श्रीदेवीपुराण
- श्रीसौरपुराण
- शाबर मंत्र सागर (1-2 भाग)
- महाचीनक्रमाचारसार तन्त्रम्
- पुरश्चरणरहस्यम्

श्यामाकान्त द्विवेदी—लिखित एवं अनुदित

- श्रीविद्या-साधना (1-2 भाग सम्पूर्ण)
- शक्तितत्त्व एवं शाक्त साधना
- ब्रह्मास्त्रविद्या एवं बगलामुखी-साधना
- काश्मीर शैवदर्शन एवं स्पन्दशास्त्र
- भारतीय शक्ति-साधना
- स्पन्दकारिका
- मुद्राविज्ञान एवं साधना
- कामकलाविलास
- वरिवस्यारहस्य
- महार्थमंजरी
- शिवसुत्र : सिद्धान्त एवं साधना

श्री कपिलदेवनारायण द्वारा अनुदित

- लक्ष्मीतन्त्र (1-2 भाग)
- तन्त्रराजतन्त्र (1-2 भाग)
- श्रीविद्यार्णवतन्त्र (1-5 भाग)
- मेरूतंत्रम् (1-5 भाग सम्पूर्ण)
- देवीरहस्य : (रुद्रयामलतन्त्रोक्त) (1-2 भाग)
- महानिर्वाणतन्त्र
- बृहत्तन्त्रसार (1-2 भाग)
- रेणुकातन्त्र-प्रचण्डचण्डिकातन्त्र

श्री परमहंस मिश्र द्वारा अनुदित

- तन्त्रसार (1-2 भाग)
- कुलार्णवतन्त्र
- नित्योत्सव : श्रीविद्याविमर्शकसद्ग्रन्थ

राधेश्याम चतुर्वेदी—अनुदित एवं लिखित

- कृष्णयामल महातंत्र
- गायत्री महातंत्र
- नेत्रतन्त्र
- कामाख्यातन्त्र
- शक्ति संगम तंत्र (1-4 भाग)
- महाकालसंहिता : (कामकला-कालीखण्ड)
- महाकालसंहिता : (गुह्यकाली-खण्ड) (1-5 भाग)
- तारिणीय पारिजाततन्त्र
- वामकेशवरीयतम्
- श्री तंत्रालोक (1-5 भाग)
- श्रीस्वच्छन्द तंत्र (1-2 भाग)

श्री जगदीशचन्द्र मिश्र द्वारा अनुदित

- त्रिपुरारहस्य (ज्ञानखण्ड एवं माहात्म्यखण्ड)
- त्रिपुरार्णवतन्त्र

श्री रामप्रिय पाण्डेय द्वारा लिखित

- श्रीदक्षिणकालिका-सपर्यापद्धति
- श्रीमहाविद्यापुरश्चरणपद्धति
- कामकलाकालीसपर्यापद्धति
- कालसर्पयोग-शान्तिप्रयोग
- सार्द्धनवचण्डीपुरश्चरण
- श्रीप्रत्यंगिरा-पुनश्चर्या
- विपरीतप्रत्यंगिरापुनश्चर्या
- अष्टलक्ष्मी प्रयोग
- बटुकभैरवसपर्या
- विनायकशान्तिपद्धति

मधुसुदन शुक्ल—अनुदित एवं सम्पादित

- षट्कर्म दीपिका
- सांख्यायन तंत्र
- स्वच्छन्दपद्धति
- श्रीतत्वचिन्तामणि
- त्रिपुरासारसमुच्चय
- ललितास्तवरत्नम् एवं त्रिपुरामहिम्नस्त्रोत

श्री राम चन्द्र पुरी—अनुदित एवं सम्पादित

- प्रपञ्चसारतन्त्रम् (1-2 भाग)
- श्रीतंत्र दुर्गासप्तशती
- सांख्यायनतन्त्र
- षट्वामतन्त्राणि। (तन्त्र)
- ललितात्रिशतीस्त्रोतम्

सुधाकर मालवीय—अनुदित एवं सम्पादित

- रुद्रयामलतन्त्र (1-2 भाग)
- शारदातिलकम् (1-2 भाग)
- सौन्दर्यलहरी
- मन्त्रमहोदधि

अन्य पुस्तकें—

- विज्ञानभैरव : बापूलाल आँजना
- कृष्ण की तान्त्रिक पूजा : विष्णु आचाय
- गौतमीयतंत्र : श्री निवास शर्मा
- अभिनवस्त्रोत्रावलि : चतुर्वेदी
- अनुष्ठान प्रकाशः (भा.टी.) - अभय कात्यायन
- श्री तैलगस्वामी के तत्वोपदेश – केशव प्रसाद काया
- बृहन्नील-तन्त्रम् (भा.टी.) – स्वामी शत्रुघ्न दास
- सप्तशती तन्त्रसार – स्वामी शत्रुघ्न दास
- फेत्करणी तन्त्र
- श्री लक्ष्मी-प्रत्यंगिरार्चन
- रुद्रयामल उत्तरतन्त्र – श्रीमनोज कुमार रजक।
- श्री बगला ब्रह्मास्त्र-कल्पः-पं. विकास थपलियाल
- त्रिपुरोपनिषद्-डॉ. क्षितीश्वरनाथ पाण्डेय
- उड्डीशतन्त्रम्-डॉ. शशिशेखर चतुर्वेदी

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी-221001

chaukhambasurbharatiprakashan@gmail.com

www.chaukhamba.co.in

@chaukhambabooks @chaukhambabooks

₹ 5000 set in 5 vols.